रेणु भटनागर

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप काव्य में लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति

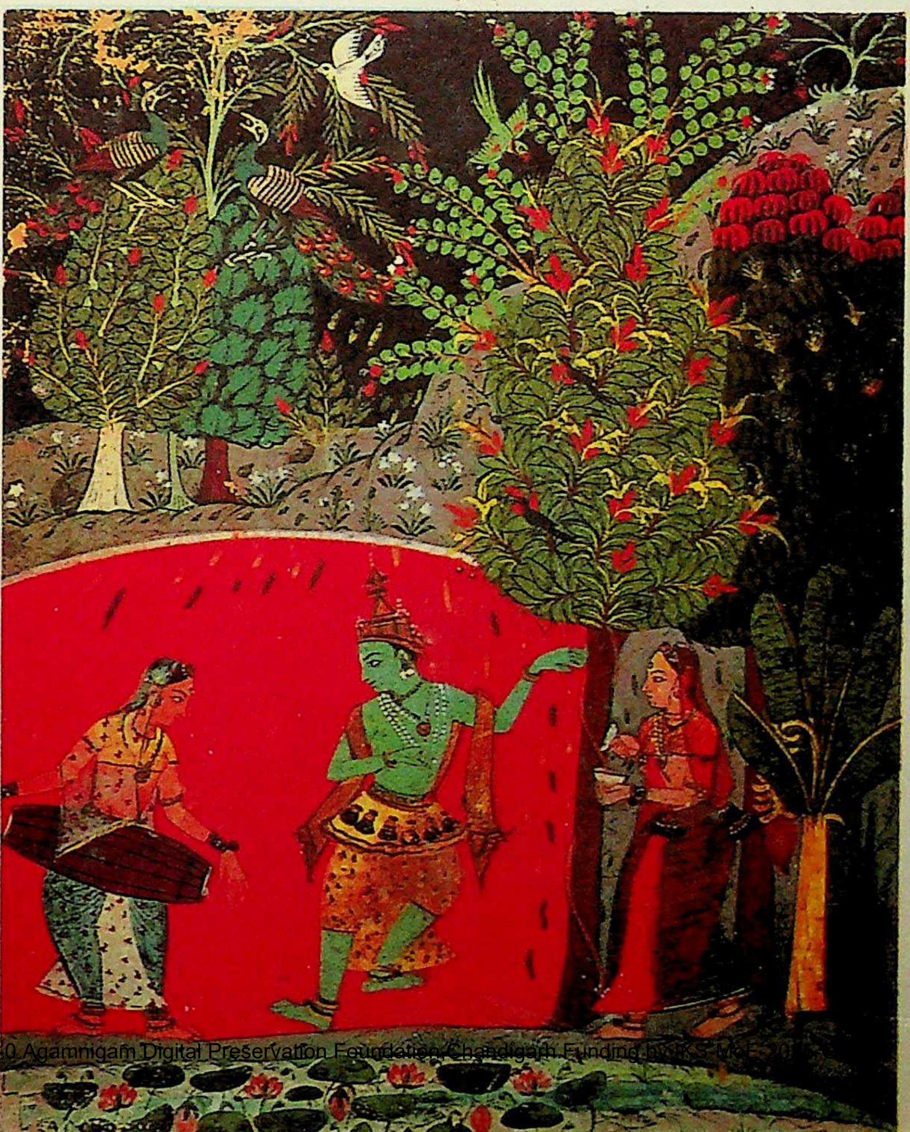

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE 20

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसाकि शीर्षक से स्पष्ट है, प्रस्तुत पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय अष्टछाप काव्य में ब्रज की लोकोन्मुखी संस्कृति का चित्रण है। संस्कृति की धारा अतीत काल से ही अप्रतिहत रूप से बहती चली आ रही है। लोक-जीवन उसी के अनुरूप अपनी मान्यताओं और विचारधाराओं को ढालकर अपने आचार-विचार निर्धारित करता है। ब्रज का लोक-जीवन भी इसका अपवाद नहीं है। अष्टछाप के समय तक विभिन्न संस्कृतियों की मान्यताएँ वहाँ के लोक-जीवन में घुलमिल चुकी थीं। अष्टछाप-काव्य ने उन सभी का प्रतिनिधित्व किया। ब्रज की लोक-संस्कृति के विभिन्न अंग-पर्व-उत्सव, आचार-विचार, रीति-रिवाज, और कला तथा दर्शन के सिद्धांत अपने सुंदरतम रूप में अष्टछाप-काव्य में व्यक्त हुए हैं। ब्रजवासियों के सुख-दुख, उल्लास-विषाद, रहन-सहन, सामान्य जीवन-प्रणाली और जीवन-दर्शन का चित्रण अष्टछाप-कवियों ने मनोयोग से किया है।

अष्टछाप-काव्य पर हिन्दी में लगभग एक दर्जन विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किंतु, लोकोन्मुखी ब्रज-संस्कृति की सूक्ष्म विवेचना का इन सभी ग्रंथों में प्रायः अभाव है। इनमें शास्त्रीय विवेचन पर अधिक बल है, और लोकपक्ष उपेक्षित-सा रह गया है। प्रस्तुत पुस्तक में इसी लोकपक्ष को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही, ब्रज की लोकोन्मुखी संस्कृति के जो अवशेष आधुनिक ब्रज-भूमि में अभी विद्यमान हैं, उनका सर्वेक्षण करते हुए अष्टछाप-काव्य में लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का वास्तविक स्वरूप निर्धारित करने की चेष्टा भी लेखिका ने की है। उनका यह प्रयास भी रहा है कि अपने निष्कर्ष के प्रत्येक तत्व की आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता दिखाई जाए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सारांश

सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप काव्य में लोकोन्मुखी ब्रज-संस्कृति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"Poetry"

अष्टछाप काव्य में लोकोन्मुखी ब्रज-संस्कृति

रेणु भटनागर

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

अक्षरा फाउण्डेशन
सोराब हाउस, कोलाबा कॉज़वे
मुम्बई, द्वारा प्रदत्त
उपहार

सारांश

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No....50356....
Dated 28/12/2023

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मूल्य : रु. 400.00
सर्वाधिकार © रेणु भटनागर
प्रथम संस्करण : 1996

प्रकाशक : सारांश प्रकाशन प्रा. लि., बहल हाउस, 13 दरियागंज, नई दिल्ली-110002
लेज़र कंपोजिंग : उमेश लेज़र प्रिंट्स, शाहदरा, दिल्ली-110032
मुद्रक : आदित्य ऑफसेट प्रेस, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

ASHTACHHAP KAVYA MEIN
LOKONMUKHI BRAJ-SANSKRITI
A Critical Study by Dr. Renu Bhatnagar

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शुभाशंसा

अपनी शोधप्रज्ञ डॉ. रेणु के डी. लिट् शोधप्रबन्ध को प्रकाशित देखकर मैं बहुत हर्षित हूँ। डॉ. भटनागर ने मेरे निर्देशन में चार वर्षों तक कठिन श्रम करके यह कार्य संपन्न किया है। दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए, महाविद्यालय में रीडर के पद पर कार्यरत रहते हुए और गृहस्थ धर्म निभाते हुए पी-एच. डी. के पश्चात् डी. लिट् कार्य कर डालना, वह भी मुझ जैसे जटिल निर्देशक के साथ पूरा कर लेना अपेक्षाकृत कठिन है।

रेणुजी का शोध-विषय प्रथम दृष्ट्या पारम्परिक लगता है, क्योंकि इस शीर्षक से मिलते-जुलते कई प्रबंध स्वीकृत हो चुके हैं, विशेषतः 'अष्टछाप का सांस्कृतिक अध्ययन' जैसे ग्रंथ। किंतु ये सांस्कृतिक अध्ययन प्रायः पुस्तकीय हैं, न कि जनपदीय। आवश्यकता लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति को खोजने और अष्टछापी साहित्य से मिलान करने की थी। इसके लिए ब्रजभूमि की परिक्रमा करनी थी, मात्र चौरासी कोस की नहीं बल्कि चौरासी बार की परिक्रमा। मैंने शोधार्थी से अपेक्षा की कि वह ब्रजक्षेत्र का सघन सर्वेक्षण करे और वहाँ के आचार-विचार, संस्कार-आहार, पर्व-त्योहार, वस्त्रालंकार, आदि का आर-पार संकलन करे। मुझे संतोष है कि शोधार्थी ने यह सब किया। फिर दूसरे चरण में 'अप्लाइड' विवेचन शुरू हुआ। यह देखकर मैं विस्मित हो गया कि पाँच सौ वर्षों के इस दीर्घ अंतराल में काफी कुछ ब्रज-संस्कृति लुप्त हो गई है (आधुनिकता की चपेट में), लेकिन फिर भी बहुत कुछ अभी शेष है। शोधार्थी ने उनका सुन्दर समुद्घाटन किया है। इस प्रकार लोकोन्मुखी अष्टछापी काव्य का यह अध्ययन पूर्ण हुआ।

इस शोधप्रबंध को हमारे विश्वविद्यालय ने 1995 का सर्वोत्तम शोधप्रबंध घोषित किया और इस पर बैनर्जी पुरस्कार प्रदान किया, साथ ही इसे हिंदी का सर्वोत्तम कार्य मानते हुए पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी स्मारक स्वर्णपदक से सम्मानित किया। मैं एतदर्थ रेणुजी को बधाई देता हूँ और उनके समुज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

होलिकोत्सव, 1996

डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित
आचार्य-अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राक्कथन

प्राकृतिक वैभव से भरपूर ब्रजभूमि वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति का केन्द्र रही है। भारत के सार्वभौम स्वरूप के दर्शन यहाँ होते हैं। इतिहास के उतार-चढ़ाव में आने वाली सभी संस्कृतियों का निचोड़ है यहाँ की संस्कृति। वास्तव में ब्रजमण्डल की संस्कृति ने भारत की विराट संस्कृति की उन्नति एवं समृद्धि में अपना विशेष योगदान देकर इसके गौरव में अभिवृद्धि करते हुए उसे परिपूर्णता प्रदान की। ब्रज के श्रीकृष्ण ने भारत की राजनीति, अर्थनीति, संस्कृति और दर्शन के क्षेत्रों में एक क्रांति की थी। पुरानी व्यवस्था को ऊपर से नीचे तक बदल डाला था। वे लोकनायक और जननायक बनकर उभरे। उनकी लोकक्रांति में जिसने भी व्यवधान उत्पन्न करना चाहा, उनके द्वारा विनष्ट कर दिया गया। चाहे वह महाबली कंस हो, प्रतिशोध से भरा जरासंध हो, कुटिल राजनीति का समर्थक शिशुपाल हो या विशाल कौरव साम्राज्य और उसके अभिमानी शासक हों। कृष्ण ब्रज के सांस्कृतिक गौरव के संवाहक हैं।

ब्रज संस्कृति को गौरव प्रदान करने में 15वीं-16वीं शताब्दी के धर्माचार्यों का अभूतपूर्व योगदान है। उन्होंने वैष्णव संस्कृति के पुनरुत्थान द्वारा राजनैतिक रूप से नष्टप्राय ब्रजमण्डल को अत्यधिक गौरव प्रदान किया और वैदिक तथा लौकिक परंपराओं को कृष्ण-चरित्र में ढाल दिया। विदेशी आक्रांताओं से पीड़ित लोकमानस को कृष्ण के रूप में एक आत्मिक आधार उनके द्वारा प्रदान किया गया। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि तत्ववेत्ताओं ने भक्ति को आधार बनाकर ब्रजलोक संस्कृति को जो नया रूप प्रदान किया उससे वह कालजयी बन गई।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने लोककल्याण की भावना से उत्प्रेरित होकर वल्लभ संप्रदाय की स्थापना की। लोकोन्मुख दृष्टिकोण को अपनाते हुए उन्होंने भक्ति के मार्ग में पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन किया और लोकचरित्र को सुधारने की दृष्टि से आत्मसमर्पण और आत्मनिवेदन को प्रमुखता दी। यह स्थापित किया कि भगवत्प्राप्ति में किसी विशेष साधन या प्रयत्न की आवश्यकता नहीं वरन् प्रीति या अनुग्रह ही पर्याप्त है; भगवान प्रेम के भूखे हैं, प्रेम से ही रीझते हैं और भक्त के वश में होते हैं। गृहस्थी के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए भी भगवान की प्राप्ति हो सकती है, इसके लिए वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है; श्रीकृष्ण की नित्य सेवा करना, रासलीला में भाग लेना, उनका कीर्तन-श्रवण करना ही पर्याप्त है। इस प्रकार वल्लभाचार्य जी ने सामूहिक आराधना को महत्व देकर कृष्ण की भक्ति को व्यक्तिगत धरातल से उठाकर सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। कृष्ण के मनमोहक और लोकरंजक रूप को आराध्य बनाकर विदग्ध लोक को असीम आनन्द की वर्षा से आप्लावित कर दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने भक्ति के प्रसार की दृष्टि से सेवाविधि का विस्तार किया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और उसे आकर्षक तथा लोकग्राह्य बनाने के लिए अष्टछाप की स्थापना की जिसमें वल्लभ संप्रदाय के अनेक शिष्यों में से आठ उच्च कोटि के भक्त-कवि और संगीतज्ञ शिष्यों को सम्मिलित किया। उन्होंने अपने भगवद् गुणगान द्वारा उत्तम काव्य की सृष्टि की और अपनी रागमयी अभिव्यक्ति द्वारा कृष्ण-भक्ति को लोकप्रिय बना दिया। इस प्रकार ब्रज के लोकोत्तर वैभव को स्थापित करने में श्री वल्लभ और श्री विट्ठलनाथ के अतिरिक्त उनके द्वारा स्थापित अष्टछाप के कवियों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने कृष्ण के माधुर्य रूप से संवलित लोकरंजक रूप की प्रतिष्ठा की, इनके प्रयासों से कृष्ण और ब्रज की लोक संस्कृति एक-दूसरे के पर्याय बन गए।

संस्कृति की धारा अतीत काल से ही अप्रतिहत रूप से बहती चली आ रही है। लोक जीवन उसी के अनुरूप अपनी मान्यताओं और विचारधाराओं को ढालकर अपने आचार-विचार निर्धारित करता है, युगानुकूल उसमें परिवर्तन करता चलता है। ब्रज का लोक जीवन भी इसका अपवाद नहीं है। अष्टछाप के समय तक विभिन्न संस्कृतियों की मान्यताएं लोक जीवन में घुलमिल चुकी थीं। अष्टछाप काव्य ने उन सभी का प्रतिनिधित्व किया। ब्रज लोक संस्कृति के विभिन्न अंग—पर्व, उत्सव, आचार-विचार, रीति-रिवाज, कला, दर्शन कें सिद्धान्त सभी अपने सुंदरतम रूप में अष्टछाप काव्य में व्यक्त हुए हैं। लोक संस्कृति के साथ-साथ ब्रज के लोकमानस का परिचय भी यह काव्य बाह्य जगत् को कराता है। ब्रजवासियों के सुख-दुःख, उल्लास-विषाद, रहन-सहन, सामान्य जीवन प्रणाली और जीवन-दर्शन का चित्रण अष्टछाप कवियों ने मनोयोग से किया है। अपनी इस अंतरंगता के कारण ही यह काव्य लोक काव्य के रूप में परिवर्तित हो गया है। सूरदास आदि कवियों के अनेक पदों ने आज लोकगीतों का पद प्राप्त कर लिया है। अष्टछाप काव्य का ब्रजलोक संस्कृति से तादात्म्य ही हमारा आलोच्य विषय है। कृष्ण ने ब्रज संस्कृति को लोक की और उन्मुख किया और इस लोकोन्मुखी संस्कृति को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का उत्तरदायित्व अष्टछाप के आठों कवियों ने निभाया। लोकजीवन के सामान्य संस्कार, विशेष पर्वोत्सव, लोकगीत, लोक विश्वास, जनसाधारण की धार्मिक मान्यताओं आदि को काव्य में पिरोकर अष्टछाप काव्य वास्तव में लोकोन्मुख बन गया। लोकपक्ष की इस अभिव्यक्ति को ही प्रस्तुत प्रबंध में विवेचित करने का प्रयास किया गया है। अष्टछाप के अध्ययन से संबंधित उल्लेखनीय ग्रंथ निम्नलिखित हैं—

1.	अष्टछाप और वल्लभसंप्रदाय (भाग 1 व भाग 2)	डॉ. दीनयाल गुप्त
2.	भारतीय साधना और सूर साहित्य	डॉ. मुन्शी राम शर्मा
3.	सूर निर्णय	श्री मीतल तथा श्री पारिख
4.	अष्टछाप परिचय	श्री प्रभुदयाल मीतल
5.	सूरदास	डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा
6.	सूर और उनका साहित्य	डॉ. हरवंश लाल शर्मा
7.	महाकवि सूरदास	श्री नंददुलारे वाजपेयी
8.	सूर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. प्रेमनारायण टण्डन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

9. सूर की भाषा — डॉ. प्रेमनारायण टण्डन
10. अष्टछाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन — डॉ. मायारानी टण्डन

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय में धर्म, दर्शन और भक्ति से संबंधित अष्टछापी कवियों के विचारों को प्रस्तुत किया गया है। विद्वत्तपूर्ण विवेचन के कारण यह ग्रंथ मील का पत्थर है। 'भारतीय साधना और सूर साहित्य' के 'सूरदास और ब्रज की संस्कृति' अध्याय में इस विषय के अध्ययन के सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं। अष्टछाप परिचय में नाम के अनुरूप अष्टछाप के कवियों से संबंधित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गई है। 'सूर निर्णय', 'सूरदास', 'सूर और उनका साहित्य', 'महाकवि सूरदास' और 'सूर की भाषा', ग्रंथों में सूरकाव्य के शास्त्रीय, धार्मिक और दार्शनिक पक्षों का विशद निरूपण किया गया है। 'सूर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' ग्रंथ में संस्कृति की पृष्ठभूमि में सूर साहित्य की विवेचना की गई है। 'अष्टछाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन' ग्रंथ में अष्टछाप के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन के इन्हीं सूत्रों को विस्तार से वर्णित किया गया है। इसमें प्रत्येक कवि के काव्य से उदाहरणों का चयन किया गया है और प्राकृतिक तथा सामाजिक जीवन के छोटे से छोटे अंग का भी उल्लेख किया गया है। इस ग्रंथ में उद्धरणों का आधिक्य है।

इन विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों के उपलब्ध होने से प्रस्तुत प्रबंध की उपादेयता कम नहीं हो जाती क्योंकि लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति की सूक्ष्म विवेचना का इन सभी ग्रंथों में अभाव है। सांस्कृतिक अध्ययन के संदर्भ में लोक संस्कृति के संकेत और सूर साहित्य के संदर्भ में विशद संकेत प्रायः सभी पूर्ववर्ती विद्वानों ने दिए हैं परन्तु अष्टछाप काव्य की लोक से एकाकार होने की भावना का प्रतिपादन उन्होंने नहीं किया है। इन विद्वानों के शास्त्रीय विवेचन में लोकपक्ष दब गया है, उपेक्षित-सा रह गया है। प्रस्तुत प्रबंध में इसी लोकपक्ष को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। अष्टछाप काव्य के रचयिता उच्चकोटि के भक्त और श्रेष्ठ संगीतज्ञ ही नहीं थे अपितु युग को प्रतिबिंबित करने वाले जागरूक कवि और आचार्य वल्लभाचार्य की लोकोन्मुखी दृष्टि के संवाहक थे, इस तथ्य को भी प्रमाणित किया गया है। ब्रज की लोकोन्मुखी संस्कृति के जो अवशेष आधुनिक ब्रजभूमि में अभी विद्यमान हैं, मैंने उनका सर्वेक्षण करते हुए अष्टछाप काव्य की लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति के सही स्वरूप निर्धारण की चेष्टा की है। अष्टछाप की संस्थापना और विकास ब्रजभूमि पर हुआ इसलिए ब्रज संस्कृति से उसका अभिन्न संबंध है। अष्टछाप के कवियों की रुचि ब्रज संस्कृति के लोकपक्ष में अधिक है, इसके 'शिष्ट नागरिक' अथवा 'आभिजात्यपक्ष में कम'। सूरदास और नंददास ने ही परोक्ष रूप से नागरिक संस्कृति के चित्र खींचे हैं। अन्य कवियों ने उपेक्षा भाव धारण किया है। अपने इस रुझान द्वारा उन्होंने यह निर्दिष्ट किया कि 'ग्राम्य संस्कृति' ही भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर सकती है। मथुरा तथा आगरा आदि नगर इस्लामी प्रभाव के कारण ब्रज संस्कृति से दूर हटते जा रहे थे, इसलिए इन कवियों ने अपनी विषय वस्तु को गोकुल-बृंदावन तक समेट लिया। वे इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि लोक ही वह तन्त्र है जो किसी भी 'मतवाद या राष्ट्र' के उन्नयन और स्थायित्व में प्रमुख भूमिका निभाता है।

ब्रज संस्कृति, कृष्ण संस्कृति है। कृष्ण यहाँ के सामान्य लोकजीवन के अपरिहार्य अंग हैं। 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन' ग्रंथ में डॉ. सत्येंद्र ने लिखा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है—"कृष्ण तो मूलतः लोकवार्ता की देन हैं और उनके विस्तृत वृत में अनेकों शुद्ध लोक वार्ताएँ हैं। सूर ने महाभारत अथवा भागवत से ही कृष्ण वृत को नहीं लिया, उन्होंने कई ऐसी बातें उसमें सम्मिलित की हैं जो नई हैं। ये नई बातें लोकमेधा से उन्हें प्राप्त हुई थीं।" हरिवंश पुराण ब्रह्मवैवर्त, श्रीमद्‌भागवद, महाभारत में वर्णित कृष्ण ही लोकजीवन में स्वीकार किए गए। आज भारत का हिन्दू समाज नहीं विश्व समाज भी कृष्ण के प्रति अगाध आस्था रखता है। कृष्ण अपने लोकोपकारी कृत्यों के कारण ही लोकवरेण्य हो सके हैं। अष्टछाप काव्य का योगदान, कृष्ण के इस लोकरंजक रूप की स्थापना में अनुपमेय है। उन्होंने कृष्ण कथा के प्रत्येक अंश को लोकजीवन के उल्लास और उगंग की अभिव्यक्ति बना दिया है। इस प्रकार 'लोक' को कृष्णमय बना दिया। लोकमानस की प्रत्येक भावना को कृष्ण की ओर मोड़ दिया। लोकसंस्कृति के निरूपण की दृष्टि से अष्टछाप कवियों के दो वर्ग किए जा सकते हैं। प्रथम वर्ग में वे कवि आते हैं जिन्होंने संस्कृति के प्रत्येक अंग का चित्रण किया। दूसरे वर्ग में वे कवि हैं जिन्होंने किसी एक अंश विशेष का ही तन्मयता से वर्णन किया है। 'पुष्टिमार्ग के जहाज' कहे जाने वाले सूरदास, संस्कृति के लोकपक्ष को पूर्णतः आत्मसात करके चले हैं। अकेले सूरसागर में ही मध्यकालीन ब्रज संस्कृति की बारीक से बारीक रेखा उभरी हुई है। उन्हीं को आदर्श मानकर अन्य कवियों ने भी अपने कीर्तन पदों द्वारा लोक संस्कृति को अभिव्यक्त किया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सूर के अतिरिक्त परमानंददास ने ही इस विषय का विशद निरूपण किया है। अन्य कवियों ने भक्ति की सीमा के अन्दर ही लोक संस्कृति के सीमित वर्णन द्वारा अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और जागरूकता का प्रमाण प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत प्रबंध में, अष्टछाप काव्य के प्रतिपाद्य विषय, लोकोन्मुखी संस्कृति के प्रत्येक तत्व का प्रमाण प्रस्तुत किया गया है। प्रायः सभी कवियों ने संस्कृति के जिस तत्व का प्रत्यक्ष वर्णन किया है, विषय विस्तार की दृष्टि से वहाँ प्रत्येक कवि के उदाहरण न देकर कुछ कवियों के उदाहरण दिए गए हैं जैसे वस्त्राभूषणों के नामोल्लेख के संदर्भ में। सामाजिक संबंधों की व्याख्या में भी यही नीति अपनाई गई है। कई स्थानों पर किसी एक कवि का उदाहरण देकर, बाकी कवियों के निरूपण को पदसंख्या द्वारा सूचित कर दिया गया है। प्रसाधन का व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए मण्डन तथा परिधान कला को उसके अंतर्गत परिगणित किया गया है और अष्टछापकाव्य द्वारा स्थापित उनके कलात्मक स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। ब्रजमण्डल में प्राचीनकाल से ही मनोरंजन को कला के रूप में अपनाया गया है। युग की आवश्यकता को देखते हुए अष्टछाप कवियों ने इसके कलात्मक रूप को उभारा। बालकों और किशोरों के उन मनोरंजनों को प्राथमिकता दी जिनसे स्वस्थ और आत्मरक्षा तथा जातिरक्षा में समर्थ युवा तैयार हो सकें। मनोरंजन के साधनों का विश्लेषण इसी कारण कला के संदर्भ में किया गया है। विवेचन में यह प्रयास कियां गया है कि अपने निष्कर्ष के प्रत्येक तत्व का आधुनिक संदर्भ में महत्व प्रस्तुत किया जाए। मुगलकालीन संस्कृति भी ब्रजलोक संस्कृति में समाहित होती जा रही थी। अष्टछाप काव्य पर उसके प्रभाव के विषय में भी यथास्थान विचार किया गया है। लोक संस्कृति ही किसी काव्य की जीवंतत , शक्तिमत्ता और लोकप्रियता का मूल है, यही स्थापित करने का विनम्र प्रयास इस प्रबंध के माध्यम से किया गया है।

प्रस्तुत प्रबंध डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित, आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के निर्देशस्वरूप ही आकार ग्रहण कर सका है। उनकी प्रेरणा और मार्गदर्शन के लिए 'आभार' शब्द अर्थहीन है। डॉ. ओमप्रकाश और डॉ. नित्यानंद शर्मा जैसे मनीषियों ने अपने अमूल्य परामर्श से पग-पग पर मेरा मार्गदर्शन करके मुझे प्रोत्साहित किया। उनके समक्ष मैं श्रद्धा से विनत हूँ। अपने प्रयास की संपूर्णता के संदर्भ में मेरा कर्तव्य है कि मैं उन विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करूँ जिनकी कृतियों से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष संकेत तथा सहायता मुझे उपलब्ध हुई। इन विद्वानों ने अपनी कृतियों के माध्यम से यदि मार्ग संकेत न दिए होते तो मेरे लिए सर्वथा नवीन मार्ग का निर्माण दुष्कर होता। कालिदास के शब्दों में—

"अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रास्येवास्ति मे गति॥"

वस्तुतः गुरुजनों के आशीर्वाद से ही मैं अपने कार्य को अपनी योग्यतानुसार पूर्ण कर सकी हूँ। मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, श्यामलाल कॉलेज पुस्तकालय, हरदयाल पब्लिक लायब्रेरी और दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी के अधिकारियों ने मेरी सहायता की, मैं उन सब सज्जनों को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। अपने समस्त परिजनों की भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने अपने सहयोग से विषम परिस्थितियों में मेरा मनोबल बनाए रखा। अंत में अपने पति श्री शशिकान्त के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनकी महत्वाकांक्षा और प्रेरणा मेरे पथ का प्रदीप बन गई।

रेणु भटनागर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय :	अष्टछाप तथा अष्टछापी काव्य	13
द्वितीय अध्याय :	ब्रज लोक-संस्कृति का विकासात्मक अध्ययन	53
तृतीय अध्याय :	अष्टछाप काव्य की लोकोन्मुखी ब्रज-संस्कृति : समाजिक परिप्रेक्ष्य	77
चतुर्थ अध्याय :	अष्टछाप काव्य में प्रतिबिंबित लोकमानस	166
पंचम अध्याय :	अष्टछाप काव्य में लोकोन्मुखी ब्रजसंस्कृति का आर्थिक पक्ष	217
षष्ठ अध्याय :	अष्टछाप काव्य में लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति का राजनीतिक पक्ष	237
सप्तम अध्याय :	अष्टछाप काव्य में लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति का कलात्मक पक्ष	255
	उपसंहार	320
	परिशिष्ट	329
	पाद टिप्पणी	335

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप तथा अष्टछापी काव्य

अष्टछाप के प्रणेता महाप्रभु वल्लभाचार्य

मध्यकालीन भारत में उदित हुए अनेक संप्रदायों के बीच महाप्रभु वल्लभाचार्य का व्यक्तित्व तथा शिक्षाएँ तत्कालीन समाज की विचारधाराओं को प्रभावित करने में सफल रहीं। उन्होंने चैतन्य महाप्रभु की तरह अपने विशिष्ट मत की स्थापना की और उसे जन समाज में लोकप्रिय बनाने के लिए एक नई पूजा पद्धति और भजन कीर्तन प्रणाली को प्रचलित किया। उनके द्वारा स्थापित यह संप्रदाय वल्लभ संप्रदाय कहलाया। इसे पुष्टि संप्रदाय भी कहते हैं जिसका प्रेरक ग्रंथ श्रीमद्‌भागवत है। 'पोषणं तदनुग्रह'[1क] द्वारा भागवत में घोषणा की गई कि भगवान की कृपा से ही जीव के हृदय में भक्ति का संचार होता है और उसी से भगवत्-प्राप्ति भी होती है। इस प्रकार भगवान का अनुग्रह (पोषण) भगवत्-प्राप्ति का साधन और फल दोनों है। वल्लभ ने इससे भी अधिक महत्व पुष्टि को देते हुए कहा कि पुष्टि से अर्थात् भगवत् कृपा से काल, कर्म और स्वभाव की बाधा भी दूर हो जाती है।

आचार्य वल्लभ के प्रादुर्भाव के समय देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था अत्यंत शोचनीय थी। राजनीतिक दृष्टि से उस समय भारत का अधिकांश भाग विदेशी मुसलमान शासकों की दासता के बंधन में जकड़ा हुआ था। शासक हर तरह से भारतीय जनता का मनोबल तोड़ने की चेष्टा कर रहे थे। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले राजाओं को कुचला जा रहा था। इसलिए सर्वत्र युद्ध और अराजकता का तांडव नृत्य चल रहा था। विधर्मी शासक मंदिर तथा मूर्त्तियों के विनाश के लिए कृतसंकल्प थे। साधारण प्रजा को इन स्थितियों का दंड भुगतना पड़ रहा था। उसका जीवन तथा धन-संपत्ति, दोनों ही एक क्षण के लिए भी सुरक्षित नहीं थे। युद्धों की विकराल छाया के कारण आर्थिक स्थिति डांवांडोल थी। कलाएँ नष्टप्राय थीं। कलाकारों की संपूर्ण चेतना अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने में लगी थी, राज्याश्रय के अभाव में कला की ऊँचाइयों को छूना उनके बस के बाहर था। वाणिज्य और व्यवसाय भी अस्थिरता के कारण प्रभावित हो रहा था। केवल शासकीय वर्ग से जुड़े व्यवसायी ही फल-फूल रहे थे। वाणिज्य गिने-चुने हाथों में सिमटकर रह गया था। धार्मिक परिस्थिति और भी दयनीय थी। विभिन्न कर्मकांडों, विवादों तथा मुस्लिम धर्म के अत्याचारों के नीचे हिंदू जनता पिसी जा रही थी। अपने धर्म को सुरक्षित रखने के लिए जजिया जैसे 'कर' देने के बाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी वह निश्चिंत होकर अपनी प्रथाओं का पालन नहीं कर सकती थी। शासन व्यवस्था में उसे सदैव द्वितीय श्रेणी का नागरिक समझा जाता था। 'कृष्णाश्रय' ग्रंथ में स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इस दशा का विवरण दिया है।[1ख] वेदोक्त कर्म ज्ञान और उपासना की मर्यादा नष्ट हो गई थी। विभिन्न मतों के प्रचलन से साधारण प्रजा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रही थी। जिस संस्कृति में 'जीवेम शरदः शतम' तथा 'व्यशेमहि देवहितं यदायुः' के उद्घोष द्वारा दीर्घ जीवन को सार्थक करने की कामना की जाती थी वहाँ 'सर्वक्षणिक' तथा 'जगमिथ्या' के प्रचार द्वारा जीवन और संसार को व्यर्थ समझा जाने लगा। जनता या तो सूरदास की तरह निरुपाय होकर रिरियाती घिघियाती थी[2] या जगन्नाथ जी के रथ के नीचे दबकर या 'काशी करवट' द्वारा अपने जीवन का अंत करने में ही विश्वास रखती थी। साधारण जनता से एक स्तर ऊँचा, अपने को ज्ञानी व पंडित कहने वाला वर्ग 'सोऽहं' के मंत्र का जाप करता हुआ अहंकार में मत्त होकर विभिन्न प्रकार के पाखंडों व कर्मकांडों को जाल बिछाने में व्यस्त था। विधर्मी शासकों के अत्याचारों से भी जनसाधारण आतंकित था। ऐसी विषम परिस्थितियों में आचार्य वल्लभ ने अपने धर्मोपदेश द्वारा साधारण जनता को कृष्ण भक्ति का सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

वल्लभ संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत विष्णुस्वामी संप्रदाय का शुद्धाद्वैतवाद है। ऐसी मान्यता है कि लक्ष्मण भट्ट विष्णु संप्रदाय के अनुयायी थे और उन्होंने अपने पुत्र को भी इस संप्रदाय की मंत्र दीक्षा दी थी। वल्लभाचार्य जी ने भी अपने को 'विष्णुस्वामी मर्यादानुयायी' अथवा 'विष्णुस्वामी महानुवर्ती' घोषित किया है।[3] इस प्रकार मूल परंपरा तथा दार्शनिक सिद्धांतों की अभिन्नता के कारण वल्लभ संप्रदाय विष्णु संप्रदाय से अवश्य संबद्ध है परंतु भक्ति तत्व की भिन्नता के कारण इसका विकास स्वतंत्र रूप से हुआ इसलिए इसे एक पृथक् संप्रदाय माना गया है।

आचार्य वल्लभ के पूर्वज आंध्र प्रदेश में गोदावरी के किनारे बसे 'काँकरवाड़' नामक स्थान के निवासी थे। वे भारद्वाज गोत्रीय तैलंग ब्राह्मण थे और उनका कुल 'बेलबाट' अथवा 'वेल्लनाडु' नाम से प्रसिद्ध था। उनके पिता श्री लक्ष्मण भट्ट भी प्रकांड विद्वान् और धार्मिक महापुरुष थे। उनकी माता इल्लम्मागारू विजयनगर के राजपुरोहित की पुत्री थीं। इस प्रकार विद्या तथा ज्ञान के संस्कार जन्म से ही श्री वल्लभ को प्राप्त थे। लक्ष्मण भट्ट काशी के हनुमान घाट पर, सं. 1534 से, स्थायी रूप से दक्षिण से आकर रहने लगे थे। उनके साथ पत्नी, एक पुत्र रामकृष्ण तथा दो पुत्रियाँ सरस्वती तथा सुभद्रा भी थीं। कुछ काल तक काशी में रहने के बाद, दिल्ली के सुल्तान के आक्रमण की चर्चा सुनकर, अन्य दाक्षिणात्यों के साथ वे भी दक्षिण की ओर चल दिए। वहीं मार्ग में चम्पारण में वल्लभ का जन्म हुआ जिसे मृत समझकर माता-पिता आगे चल दिए। दूसरे दिन यवन आक्रमण की संभावना समाप्त हो जाने पर काशी के लिए वापस उसी रास्ते पर लौटे तो शिशु को जीवित पाया। आनंदित होकर उन्होंने वहीं बालक के जातकर्म और नामकरण संस्कार किए। इस प्रकार वल्लभाचार्य की जन्मतिथि सं. 1535 की वैशाख कृ. 11. रविवार मानी गई। उनके जीवन का पूर्वार्द्ध काशी में व्यतीत हुआ। यहीं उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। पिता लक्ष्मण भट्ट के अतिरिक्त श्री माधवेंद्र पुरी, श्री विष्णुचित्त और श्री गुरुनारायण दीक्षित से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। जब वल्लभाचार्य जी की आयु बारह वर्ष की थी तब लक्ष्मण भट्ट तिरुपति के वेंकटेश्वर बालाजी के दर्शनों के लिए निकले। इसी यात्रा में संवत्

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1546 को उनका स्वर्गवास हुआ। आयु कम होने पर भी वल्लभ तब तक प्रकांड विद्वान् तथा धर्मवेत्ता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे और काशी तथा जगदीशपुरी के अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित भी कर चुके थे। इसके पश्चात प्रायः बीस वर्षों तक उन्होंने देशाटन किया पाखंडवाद का खंडन कर अपने विशुद्ध ब्रह्मवाद एवं भक्ति सेवाप्रधान पुष्टिमार्ग का मंडन किया। इन यात्राओं की 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' अथवा 'दिग्विजय' कहा जाता है। इनमें तीन यात्राएँ प्रमुख हैं। प्रथम यात्रा सं. 1548 से प्रारंभ हुई जिसमें जगन्नाथपुरी वैद्यनाथ धाम होते हुए सं. 1550 में वे ग्रीष्म के अंत में ब्रज पहुँचे। उन्होंने वहाँ चातुर्मास्य किया और गोकुल का अनुसंधान कर वहाँ के गोविन्दघाट पर श्रीमद्भागवत का पारायण किया। यहीं सर्वप्रथम दामोदरदास हरसानी को मंत्र दीक्षा देकर अपने प्रथम शिष्य बनाया। इस प्रकार समर्पण मंत्र द्वारा 'पुष्टि संप्रदाय' की स्थापना की। इस घटना के बाद मथुरा जाकर वहाँ विश्राम घाट की यंत्र बाधा दूर की। यह यात्रा सं. 1553 में पूरी हुई थी। द्वितीय यात्रा सं. 1556 में शुरू हुई। इस यात्रा में गोवर्धन की गिरिराज पहाड़ी पर श्रीनाथ जी के स्वरूप का प्रागट्य कर उनकी सेवा-पूजा की व्यवस्था की। सद्दू पांडे, रामदास चौहान, कुंभनदास आदि ब्रजवासियों को उन्होंने अपना शिष्य बनाया। इस यात्रा की समाप्ति पर सं. 1558 में उनका विवाह काशी में संपन्न हुआ। तृतीय यात्रा सं. 1558 में पौष मास से प्रारंभ हुई। इसमें उनके गौरव की अभूतपूर्व वृद्धि हुई। सर्वप्रथम वे गोवर्धन गए जहाँ पूरनमल खत्री के साथ श्रीनाथ जी का विशाल मंदिर बनाने की योजना पर विचार किया। सं. 1563 में काशी 'पत्रावलंबन ग्रंथ' द्वारा उन्होंने मायावादियों और शैव शाक्तों को परास्त किया। सं. 1565-66 में विजयनगर के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ में भाग लेकर विजय प्राप्त की। इस विजय के उपलक्ष में कृष्णदेव राय द्वारा उनका कनकाभिषेक किया गया। यात्रा की समाप्ति पर पुनः गोवर्धन श्रीनाथ जी के दर्शनों के लिए आए और सूरदास तथा कृष्णदास को अपना शिष्य बनाया। इसी समय से सूरदास की कीर्तन सेवा का तथा कृष्णदास को मंदिर की व्यवस्था का उत्तरदायित्व सौंपा। इसके पश्चात् गृहस्थाश्रम के निर्वाह के लिए प्रयाग में यमुना के किनारे अडैल नामक स्थान पर रहने लगे। उनका दूसरा स्थायी निवास काशी में चरणाट में था। उनके बड़े पुत्र गोपीनाथ जी का जन्म अड़ैल तथा छोटे पुत्र विट्ठलनाथ का जन्म चरणाट में हुआ। श्री वल्लभाचार्य जी का तिरोधान काशी में सं. 1557 में हुआ।

श्री वल्लभाचार्य जी ने निश्चित होकर ग्रंथ रचना नहीं की। प्रचार और देशाटन के कारण इस ओर अधिक ध्यान वे नहीं दे सके फिर भी उनके द्वारा रचित छोटे-बड़े कई ग्रंथ मिलते हैं जो उनकी विद्वत्ता का प्रमाण हैं। श्री माधव भट्ट नामक कश्मीरी पंडित आचार्य जी के लिपिक का कार्य करते थे। उनकी मृत्यु के बाद 'सुबोधिनी' अधूरी रह गई तथा अन्य ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ भी नहीं हो सकीं। 'वल्लभ दिग्विजय' में आचार्य जी की 84 कृतियों का उल्लेख है परंतु 'संप्रदाय कल्पद्रुम' में 35 कृतियों का। दूसरा मत ही उपयुक्त जान पड़ता है क्योंकि इस समय उनके उपलब्ध ग्रथों की संख्या 31 है जिनके नाम इस प्रकार हैं—

1. अणुभाष्य और वृहदभाष्य, 2. भागवत की 'सुबोधिनी' टीका, 3. भागवत तत्वदीप निबंध, 4. पूर्व मीमांसा भाष्य, 5. गायत्री भाष्य, 6. पत्रावलम्बन, 7. पुरुषोत्तम सहस्रनाम, 8. दशमस्कंध अनुक्रमणिका, 9. त्रिविध नामावली, 10. शिक्षा श्लोक, 11-26. षोडश ग्रंथ (यमुनाष्टक, बालबोध, सिद्धांत मुक्तावली, पुष्टि प्रवाह, मर्यादा भेद, सिद्धांत-रहस्य, नवरत्न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंतःकरण प्रबोध, विवेक धैर्याश्रम, कृष्णाय, चतुःश्लोकी, भक्तिवर्धिनी, जलभेद, पंचपद्य, संन्यास निर्णय, निरोध लक्षण, सेवाफल), 27. भगवत्पीठिका, 28. न्यायादेश, 29. सेवाफल विवरण, 30. प्रेमामृत तथा 31. विविध अष्टक (मधुराष्टक, परितृढ़ाष्टक, नंदकुमार अष्टक, श्रीकृष्णाष्टक, गोपीजन वल्लभाष्टक आदि।)।

इनमें से षोडश ग्रंथों तथा अन्य छोटे ग्रंथों की रचना शिष्य सेवकों के प्रबोधनार्थ की गई थी। सर्वाधिक प्रसिद्ध 'अणुभाष्य' महर्षि बादरायण व्यास कृत 'ब्रह्मसूत्र' (उत्तर मीमांसा) पर भाष्य रचना है जो शुद्धाद्वैत सिद्धांत को प्रतिपादित करने के लिए रची गई थी। 'सुबोधिनी' श्रीमद्‌भागवत की विशद टीका है जो भक्ति सिद्धांत को स्थापित करने के उद्देश्य से की गई थी। भागवत के एकादश स्कंध की अधूरी टीका ही मिलती है। इसी से उनकी रचना शैली का अनुमान लगाया जा सकता है। सुबोधिनी के विषय में श्री हरिराम जी ने लिखा है—

नाश्रितो वल्लभाधीशे न च दृष्टा सुबोधिनी
नाराधि राधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले।[4]

अर्थात् जिसने वल्लभाचार्य का आश्रय नहीं लिया, सुबोधिनी का पठन-पाठन नहीं किया और राधिका नाथ श्रीकृष्ण की उपासना नहीं की, उसका जन्म इस पृथ्वी पर व्यर्थ है। 'सुबोधिनी' पर गोस्वामी विट्ठलनाथ की 'टिप्पणी' पुरुषोत्तमजी का 'प्रकाश' तथा अन्य कई लेखादि मिलते हैं जिनसे इसकी लोकप्रियता का आभास मिलता है। 'भागवत तत्वदीप निबंध' सुबोधिनी की पूर्व पीठिका है। दशम स्कंध अनुक्रमणिका 68 श्लोकों की संक्षिप्त रचना है। 'वात्ता' के अनुसार इसी को सुनकर सूरदास तथा परमानंददास को लीला गान की प्रेरणा हुई थी। 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' शुद्धाद्वैत सिद्धांत को पुष्ट करने वाले एक हजार नामों का विवेचन है। 'पत्रावलंबन' सैद्धान्तिक रचना है। इसमें वद और वेदांतों की एक वक्यता का प्रतिपादन किया गया है। यह सभी ग्रंथ संस्कृत में हैं।

वल्लभाचार्य ने भक्ति पर सर्वाधिक बल दिया। उन्होंने चमत्कारों को ब्रह्म संबंध का परिपंथी कहा है। उनकी दृष्टि में उससे भक्ति की दृष्टि दूषित होनी है। सबमें मुख्य बात जिस पर श्री वल्लभ ने बल दिया—प्रत्येक साधक से भाईचारा रखना है। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म को मान्यता दी लेकिन भक्ति के समक्ष तुच्छ ठहराया है। उनके लिए नैतिकता का मानदंड ईश्वर भक्ति की ओर उन्मुख करना ही है । शंकराचार्य 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" का प्रत्युत्तर उन्होनें आधे श्लोक में "ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यं अंशो जीवो ही नापरः" कह कर दिया। उन्होंनें भी परब्रह्म के आधिदैविक स्वरूप को 'पुरुषोत्तम', आध्यात्मिक स्वरूप को 'अक्षर ब्रह्म' और भौतिक स्वरूप को 'जगत्' कहा है। परब्रह्म अपनी अनंत शक्तियों के साथ अपने आप में रमण करता रहता है इसलिए उसे 'आत्माराम' भी उन्होंने माना है। परब्रह्म कृष्ण ही सत्चित और आनन्द रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं वही ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप से जगत की उत्पत्ति पालन और संहार का दायित्व निभाते हैं। अपनी आनन्दमयी नित्य और दिव्यलीलाओं का ज्ञान कराने के लिए ही वे ब्रज में अवतरित हुए थे। इस प्रकार समस्त ब्रजमंडल कृष्ण रूप है। कृष्ण सभी धर्मों के आश्रय रूप होने के कारण 'धर्मी' हैं प्रकृतिजन्य सत्, रज, तम गुणों के अभाव में 'निर्गुण' हैं तो आनंदादि गुणों से युक्त होने के कारण 'सगुण' हैं। इसी प्रकार निराकार होते हुए भी साकार हैं, अणु होते हुए भी महानतम हैं। जीव को उन्होंने ब्रह्म का चिदंश कहा है जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्नि तथा उसकी चिनगारी में भेद नहीं है वैसे ही ब्रह्म और जीव में भी स्वरूपगत अभेदत्व है। जगत् परब्रह्म का भौतिक स्वरूप है। श्रीहरि अपने सत् धर्म आश्रय से 28 तत्वों के रूप में जगत स्वरूप हैं। जगत और संसार में उन्होंने भेद माना है। जगत सत्य है तो संसार मायाग्रस्त जीव की अविज्ञता के कारण अहं भाव से युक्त है इसलिए असत्य है। वल्लभाचार्य की यह विशेषता उन्हें एक अलग व्यक्तित्व प्रदान करती है। संसार से मुक्त नित्य जगत में प्रवेश करना ही जीव का एकमात्र लक्ष्य है। माया को उन्होंने 'व्यामोहिका' तथा 'करण' दो रूपों में स्वीकार किया है, एक में वह ईश्वर के चरणों की दासी है और उसके सेवक के पास जाने में लज्जित होती है, दूसरे में ईश्वर की शक्ति है जिसके माध्यम से जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार होता है। अपने इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए उन्होंने पुष्टि मार्ग की स्थापना की। इस सर्वथा नवीन पद्धति के कारण ही वल्लभ संप्रदाय पुष्टि संप्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। उन्होंने भक्ति के दो भेद—मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति माने। पहले में वेद-शास्त्र विहित साधनों की आवश्यकता एवं फल की आकांक्षा रहती है। किंतु दूसरी साधन निरपेक्ष और आकांक्षा से रहित होती है। तत्कालीन परिस्थितियों की गंभीरता को देखते हुए उन्होंने अपनी भक्ति पद्धति को सरलतम स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया। इसके लिए केवल समर्पण तथा आत्म निवेदन की भावना को महत्व दिया। समर्पण को ब्रह्म संबंध का नाम दिया जो वास्तव में पुष्टि मार्गीय दीक्षा है जिसे प्राप्त करने के लिए साधक को एक विशिष्ट प्रकार के रहन-सहन और आचार-विचार का पालन करना पड़ता है। अपने संप्रदाय में श्री वल्लभ ने श्रीकृष्ण की 'सेवा' को जीव का परम कर्त्तव्य घोषित किया क्योंकि उसी के द्वारा सांसारिकता से मुक्ति होती है और ब्रह्म का ज्ञान होता है। साधारणतया 'सेवा' और 'पूजा' समानार्थक माने जाते हैं परंतु वल्लभाचार्य ने भक्ति भावना के अनुसार इसमें भेद माना है। 'सेवा' भावनात्मकता से की जाती है इसमें किसी विधि विधान की आवश्यकता नहीं होती जबकि 'पूजा' में विधि विधान की आवश्यकता होती है। श्रीनाथ जी के मंदिर में उन्होंने सेवा पद्धति के निर्वाह की समुचित व्यवस्था की। कुंभन दास, सूरदास, परमानंददास और कृष्ण दास जैसे सुकवि और सुगायक—शिष्यों द्वारा उन्होंने कीर्तन पद्धति को प्रचलित व संवर्धित किया। और यही आगे चलकर अष्टछाप काव्य के मूलाधार बने। उनके शिष्यों में ब्राह्मणों से लेकर शूद्र तथा अंत्यज तक सभी वर्णों और जातियों के लोग थे। उनके विचारों की लोकप्रियता इस बात से प्रमाणित होती है कि ब्रज ही नहीं राजस्थान तथा गुजरात के अधिकांश भागों में इन विचारों को स्वीकार कर लिया गया। कृष्णोपासना के पुनरुद्धार तथा प्रचार का पूरा श्रेय श्री वल्लभाचार्य को है। श्री वल्लभ की मान्यताओं का निर्वाह श्री विट्ठलनाथ तथा अष्टछाप के कवियों द्वारा किया गया जिसके परिणामस्वरूप वल्लभ संप्रदाय को स्थायी आधार प्राप्त हो सका। लोक को अपने साथ ले चलने की उनकी दूरगामी दृष्टि को इन लोगों ने पूरी तरह आत्मसात कर लिया। कीर्तन पद्धति, सेवा पद्धति और पुष्टिमार्गीय भक्ति द्वारा श्री वल्लभाचार्य ने अष्टछाप के कवियों के लिए जो मार्गनिर्देश किया, उससे वे तिल भर भी नहीं हटे और उसी के अनुगमन के कारण लोक से उनका ऐसा अभिन्न संबंध स्थापित हुआ कि उनका काव्य लोक जीवन का पर्याय बन गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप के संस्थापक गोस्वामी विट्ठलनाथ

श्री विट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभाचार्य के छोटे पुत्र थे। उनका जन्म सं. 1572 में चरणाट में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा काशी में हुई। पंद्रह वर्ष की आयु में ही उन्होंने वेद-वेदांग दर्शन-पुराणादि की शिक्षा संपूर्ण कर ली थी। इसके अतिरिक्त सांप्रदायिक ग्रंथों का अनुशीलन भी भली-भाँति किया था। उनके ग्रंथों से उनकी विद्वत्ता तथा संप्रदाय की बहुमुखी उन्नति से उनकी संगठन क्षमता का परिचय मिलता है। उनके द्वारा रचित ग्रंथों में वल्लभाचार्य जी के दार्शनिक सिद्धांतों तथा भक्ति तत्व पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने पुष्टि संप्रदाय का सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक विवेचन किया। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ इस प्रकार हैं—1. विद्वन्मंडन, 2. भक्ति हंस, 3. भक्ति हेतु, 4. शृंगार रस मंडन, 5. विज्ञप्ति, 6. सर्वोत्तम स्त्रोत, 7. स्वामिनी स्त्रोत, 8. चतुःश्लोकी, 9. दान लीला, 10. अणुभाष्य का अंतिम डेढ़ अध्याय, 11. निबंध प्रकाश की पूर्ति और टीका, 12. सुबोधिनी टिप्पणी, 13. न्यासादेश विवृत्ति तथा षोडश ग्रंथ विवृत्ति आदि।" 'विद्वन्मंडन' में शंका समाधान पद्धति पर शुद्धाद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि उनके पुत्र गिरिधर जी पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते थे और श्री विट्ठल उसका खंडन कर अपने सिद्धांत की उत्तर पक्ष के रूप में स्थापना करते थे। 'भक्ति हंस' में पुष्टि मार्गीय भक्ति की विवेचना की गई है। 'शृंगार रस मंडन' आरंभिक काल की रचना होते हुए भी एक प्रौढ़ ग्रंथ है। इसमें शृंगार रस व्रतचर्या, दानलीला दशोल्लास आदि के वर्णन सहित पुष्टि संप्रदाय के रस पक्ष और लीला भाव का मार्मिक विवेचन किया गया है। 'विज्ञप्ति' दैन्य आत्मनिवेदन और भगवत् विरह सूचक ग्रंथ है जिसमें प्रार्थना पर बल दिया गया है। 'सर्वोत्तम स्त्रोत' में वल्लभाचार्य जी के 108 नामों का भावनात्मक कथन किया गया है। विट्ठलनाथ जी के अनेकों शिष्य-सेवक थे जिनमें से 252 विशिष्ट भक्तों के वृत्तान्त सांप्रदायिक शैली में '252 वैष्णवों की वार्ता' में लिखे गए हैं। उनके शिष्यों में भी विद्वान्, कवि, कलाकार, राजा, सेठ तथा साधारण पुरुषों के अतिरिक्त विरक्त साधु-संन्यासी, शूद्र, अंत्यज तथा मुसलमान भी थे। सर्वप्रसिद्ध शिष्य गोविंद स्वामी, नंददास, चतुर्भुजदास और छीत स्वामी थे जिन्हें अष्टछाप में सम्मिलित किया गया। इनके अतिरिक्त, गोपालदास, दामोदर झा, मुरारीदास, तानसेन, रसखान, गंगाबाई आदि का स्थान भी महत्वपूर्ण है। ताज बीबी, अलीखान पठान तथा भक्त गायक घोंघी के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

विट्ठलनाथ जी ने श्री वल्लभाचार्य के सिद्धांतों को आत्मसात करके उनका व्यापक प्रचार किया। वल्लभ संप्रदाय को लोकप्रिय बनाने में उनका अभूतपूर्व योगदान है। श्री वल्लभ की तरह उन्होंने भी अनेकों यात्राएँ कीं और पुष्टि संप्रदाय की लोकप्रियता में वृद्धि की। प्रथम यात्रा संवत् 1600 में शुरू की और गुजरात, सौराष्ट्र से होते हुए द्वारका तक गए। सं. 1610 में मगध तथा संवत् 1614 में गौड़ प्रदेश की यात्राएँ कीं। सं. 1616 में वे जगदीशपुरी की यात्रा पर गए और वहाँ जगन्नाथ जी का रथोत्सव देखने के बाद पुष्टि संप्रदाय में भी उसी प्रकार का उत्सव करना प्रारंभ कर दिया। इन सभी यात्राओं द्वारा उन्होंने कृष्ण भक्ति का प्रचार संपूर्ण उत्तरी भारत में कर दिया। उन्होंने छह बार द्वारका की यात्रा की जिसके फलस्वरूप गुजरात-सौराष्ट्र में वल्लभ संप्रदाय की जड़ें मजबूत हो गईं। संपूर्ण ब्रज की 84 कोस की यात्राएँ जिन्हें परिक्रमा भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहा जाता है, उन्होंने कई बार कीं और इस प्रकार ब्रजवासियों से अपना निकट संबंध स्थापित किया। ब्रजलोक से तादात्म्य स्थापित करने की, आचार्य वल्लभाचार्य की नीति का इस प्रकार उन्होंने सुंदर निर्वाह किया।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने संप्रदाय का आचार्यत्व सँभालते ही उसे व्यापक तथा लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयास प्रारंभ कर दिए। साधारण तथा विशिष्ट दोनों वर्गों से अंतरंगता स्थापित करने की दृष्टि से उन्होंने पुष्टि मार्गीय सेवा का विस्तार किया। श्रीनाथ जी के नित्योत्सव तथा वर्षोत्सव की सेवाविधियों को अत्यंत भव्य तथा आकर्षक रूप प्रदान किया। शृंगार भोग तथा राग को आधार बनाकर विभिन्न कलाओं के विकास की पीठिका का निर्माण किया। श्री विट्ठलनाथ जी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य अष्टछाप की स्थापना है। श्री नाथ जी की कीर्तन सेवा को विधिपूर्वक और नियोजित रूप से संपन्न करने के लिए उन्होंने स. 1602 में ही अष्टछाप की स्थापना कर दी थी। उस समय उन्होंने आचार्यत्व ग्रहण नहीं किया था। वल्लभ संप्रदाय को ही नहीं, अष्टछाप के रूप में, साहित्य व कला जगत को भी गोस्वामी विट्ठलनाथ ने एक अभूतपूर्व अमूल्य भेंट दी। अष्टछाप कवियों की रचनाएँ सांस्कृतिक व साहित्यिक दृष्टि के साथ-साथ धार्मिक महत्व संस्थापना की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

अष्टछाप की स्थापना तथा परिचय

सं. 1602 में स्थापित भक्त मंडली को—जिसमें कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास तथा परमानंद दास आचार्य वल्लभ के तथा गोविंद स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास तथा नंददास श्री विट्ठलनाथ के शिष्य थे—ही अष्टछाप का नाम दिया गया। अनेक शिष्यों के बीच इन आठ के चुनाव से गोस्वामी विट्ठलनाथ ने मानों इन पर अपने आशीर्वाद की मौखिक छाप लगा दी थी जिससे वे अष्टछाप नाम से प्रसिद्ध हुए। पुष्टि संप्रदाय की मान्यता है कि जब गोवर्धननाथ का प्राकट्य हुआ तब उनकी नित्य लीलाओं में सदैव उनके साथ रहने वाले आठ अंतरंग सखा भी पृथ्वी पर उनकी सेवा के लिए प्रकट हुए। अष्टछाप के आठों कवियों को इसलिए 'अष्टसखा' भी कहा गया है। वार्ता में कहा गया है—"जब श्री गोवर्धननाथ जी प्रगट भये तब अष्टसखा हू भूमि पै प्रगट भये। अष्टछाप सरूप होय के सब लीला कौ गान करत भये।"[4] श्री हरिराय जी कृत 'भावप्रकाश' में अष्ट सखाओं के सांप्रदायिक महत्व पर और अधिक प्रकाश डाला गया है। उनके अनुसार दिन में सखा रूप में यह श्रीनाथ जी के साथ रहते हैं और रात में स्वामिनी जी की सखी के रूप में निकुंज लीला का सुखानुभव करते हैं। इस प्रकार वल्लभ संप्रदाय में सूरदास को, कृष्ण, चम्पकलता, परमानंद दास को तोष, चंद्रभागा, कुंभनदास को अर्जुन, विशाखा, कृष्णदास को ऋषभ, ललिता, गोविंदस्वामी को श्रीदामा, भामा, छीतस्वामी को सुबल, पद्मा, चतुर्भुजदास को विशाल, विमला या रंगदेवी और नंददास को भोज, चंद्रलेखा, या सुदेवी के रूप में मान्यता दी गई है। सखा सखी रूप में इन कवियों का निरंतर कृष्णप्रेम में आसक्त रहना प्रदर्शित किया गया है।

सांप्रदायिक महत्व के अतिरिक्त अष्टछाप की रचना का मुख्य उद्देश्य श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा को भव्य स्वरूप प्रदान करना था। श्री वल्लभाचार्य ने सर्वप्रथम कुंभनदास को अ-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर सूरदास तथा परमानंददास को श्री नाथ जी का कीर्तनिया नियुक्त किया था। विट्ठलनाथ जी ने कीर्तन को अनेक राग-रागनियों में विविध वाद्यों के साथ संपन्न करने की विधि प्रारंभ की और इस प्रकार संगीत कला के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। अष्टछाप के आठों भक्त कवि सुंदर गायक तथा उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। श्री नाथ जी की आठों झाँकियों के समय मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, संध्याभोग, संध्या आरती और शयन के समय तथा सभी ऋतुओं के अनुसार कीर्तन का, रागों का, वाद्यों का जो क्रम विट्ठलनाथ जी द्वारा सुनिश्चित किया गया उसी का पालन आज वल्लभ संप्रदायी मंदिरों में किया जा रहा है। सभी लोक-पर्वों तथा उत्सवों पर भी संगीत का आयोजन इन मंदिरों में करके अष्टछाप के कवियों की प्रतिभा का सम्यक् उपयोग किया गया। गायन कला की उनकी प्रवीणता तथा पद संरचना की कुशलता इस कीर्तन पद्धति के माध्यम से निखरकर सामने आई है। प्रत्येक प्रहर के कीर्तन के लिए इन आठों में से एक को प्रधान कीर्तनकार नियुक्त किया गया था। सांप्रदायिक साहित्य के अनुसार 'मंगला' की झाँकी के लिए परमानंददास, 'शृंगार' के लिए नंददास, ग्वाल के लिए गोविंद स्वामी, राजभोग के लिए कुंभनदास, 'उत्थापन' के लिए सूरदास, 'संध्या भोग' के लिए चतुर्भुजदास, 'संध्या आरती' के लिए छीत स्वामी और 'शयन' के लिए कृष्णदास को प्रधान कीर्तनकार नियुक्त किया गया था। राजभोग की झाँकी में सब एक साथ कीर्तन करते थे। प्रधान कीर्तनकार के आठ-आठ सहकारी नियुक्त किए जाते थे जिन्हें 'झालरिया' कहा जाता था। अष्टछाप के कवियों द्वारा गीत और संगीत का मणि-कांचन योग प्रस्तुत किया गया। कीर्तन पद्धति के इस संयोजन द्वारा मंदिरों में प्रत्येक झाँकी में संगीत के आकर्षण में वृद्धि हुई और संगीत के माध्यम से तन्मयता के तत्व का समावेश हुआ। प्रत्येक अवसर पर गाए जाने वाले राग तथा पद को उल्लेख वहाँ उपस्थित लिखिया करता जाता था इसलिए वल्लभ संप्रदाय में विशाल और सुव्यवस्थित कीर्तन साहित्य उपलब्ध हो जाता है।

अष्टछाप के सभी कवियों ने अपने काव्य द्वारा पुष्टि संप्रदाय के सिद्धांतों का व्यापक प्रचार किया। तत्कालीन समाज में व्याप्त वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष और विनाश की भावनाओं के स्थान पर प्रेम और सहिष्णुता की भावनाओं को स्थापित करने का प्रयास किया। पुष्टिमार्गीय प्रेमलक्षणा भक्ति का सुंदरतम उदाहरण उन्होंने अपने काव्य द्वारा प्रस्तुत किया। अष्टछाप के कारण ही कृष्णभक्ति का प्रसार हुआ। इन्होंने अपने काव्य को साधारण लोक से जोड़कर उसे प्रत्येक घर में पहुँचा दिया। बालकृष्ण केवल वल्लभ संप्रदाय के आराध्य न रहकर प्रत्येक मनुष्य के लाड़ले हो गए। उनका रूप-सौन्दर्य और चंचलता प्रत्येक घर-आँगन में उतर आई। श्री वल्लभ और श्री विट्ठल की साधना को जन-जन तक पहुँचाने का श्रेय अष्टछाप को ही है।

श्री विट्ठलनाथ जी ने कृष्णभक्ति के प्रसार के लिए अपनी योजना में कृष्ण के लीलागुणगान और लीलानुकरण को विशेष महत्व प्रदान किया। उनके आठों शिष्यों ने उनके इस लक्ष्य को साकार कर दिखाया। मंदिरों में कीर्तन के अतिरिक्त विशिष्ट अवसरों पर गायन के साथ रास के माध्यम से लीलाओं का अनुकरण भी प्रस्तुत किया जाता था। प्रायः सभी कवियों ने अभिनय तत्व से युक्त अनेकों पदों की रचना की। कलात्मकता और काव्यात्मकता दोनों का अद्भुत संयोजन इन पदों में देखने को मिलता है। अष्टछाप द्वारा इस प्रकार वल्लभ संप्रदाय को भावात्मक तथा कलात्मक आधार प्रदान किया गया। अष्टछाप क[illegible] के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लीलागान और काव्यरचना द्वारा ब्रजभाषा को सशक्त व संपन्न किया गया। लोकभाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर वल्लभ संप्रदाय के लोक पक्ष को दृढ़ किया गया।

अष्टछाप के कवि : संक्षिप्त परिचय

कुंभनदास

कुंभनदास का जन्म सं. 1525 में गोवर्धन के समीप जमुनावतौ गाँव में हुआ था। वे कृषक थे और कृषि के द्वारा अपने परिवार का निर्वाह करते थे। उनके खेत निकटवर्ती परासौली गाँव में थे। वे 'गौरवरा' क्षत्रिय थे। कृषि कर्म में संलग्न रहते हुए भी गायन कला में उनका विशेष स्थान था। 'वार्ता' में उनके मधुर कंठ की प्रशंसा की गई है परंतु किस गुरु से उन्होंने संगीत सीखा इसका प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सं. 1556 में उन्हें संप्रदाय में दीक्षित किया। वे आरंभिक शिष्यों में से थे। श्रीनाथ जी की सेवा-पूजा की व्यवस्था श्री रामदास चौहान करते थे और कुंभनदास जी नित नये पदों की रचना द्वारा श्रीनाथ जी का कीर्तन करते थे। कुंभनदास की भक्ति भावना और पद लालित्य की प्रसिद्धि दूर-दूर तक हो गई थी। वार्ता के अनुसार राधावल्लभ संप्रदाय के संस्थापक हित हरिवंश भी कुंभनदास से मिलने आए थे। वे संतोषी स्वभाव के थे। सं. 1620 में राजा मानसिंह ब्रज आए तो श्रीनाथ जी के दर्शनार्थ जतीपुरा आए तब वहाँ राजभोग की झाँकी के समय कुंभनदास का कीर्तन सुनकर मुग्ध हो गए। दूसरे दिन जमुनावतौ जाकर उन्हें प्रभूत द्रव्य देना चाहा पर उन्होंने मना कर दिया। अकबर के दरबार में विवश होकर गए तो खिन्न होकर किसी काव्य सौंदर्ययुक्त रचना के स्थान पर 'भक्तन को कहा सीकरी सौंकाम' पद गाकर अपनी निर्भीकता और स्पष्टवादिता का परिचय दिया। उनके सात पुत्र थे जिनमें से चतुर्भुजदास श्रीनाथ जी की सेवा तथा गुणगान करते थे और कृष्णदास केवल श्रीनाथ जी की गायों की रखवाली करते थे। शेष पाँचों कृष्ण भक्ति से नहीं जुड़े थे इसलिए वे अपने केवल डेढ़ पुत्र ही बताते थे। उनकी मृत्यु सं. 1640 में 115 वर्ष की आयु में अन्यौर में हुई। कुंभनदास का रचा हुआ कोई विशेष ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। काँकरौली विद्या विभाग में उनके प्रायः 200 पद संग्रहीत हैं जिनमें गोचारण व गोदोहन की लीलाओं के सुंदर चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। कुंभनदास का प्रत्यक्ष संबंध कृषि व पशुपालन से था इसलिए इन विषयों का स्वाभाविक चित्रण उनके काव्य में उपलब्ध हो जाता है। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से अष्टछाप के अन्य कवियों की अपेक्षा उनका काव्य साधारण श्रेणी का कहा जा सकता है परंतु भाव सौंदर्य तथा सरसता की दृष्टि से वह न्यून नहीं है। उनके काव्य में माधुर्य भाव की भक्ति का प्राधान्य है। वल्लभाचार्य ने बालकृष्ण को आराध्य मानकर वात्सल्य रस से युक्त भक्ति का प्रावधान किया था परंतु कुंभनदास की वृत्ति वात्सल्य की अपेक्षा माधुर्य में अधिक रमी है। युगल स्वरूप की झाँकी और उनकी नाना प्रकार की लीलाओं का वर्णन ही उनके काव्य का उद्देश्य है। वार्ता में स्पष्ट लिखा है—

"सो कुंभनदास सगरे कीर्तन युगल स्वरूप संबंधी कीये।
सो बधाई पलना बाल लीला गाई नाहीं।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माधुर्य के निरूपण में तन्मयता और आत्मविभोरता के सुंदर चित्र उन्होंने चित्रित किए हैं। रूपासक्ति का यह चित्र काव्यात्मकता से युक्त है—

"तेरे नैन चंचल बदन कमल पर मनो जुग खंजन करत कलोल।
कुंचित अलक मनो रस लंपट चलि आये मधुपानि के टोल।
कहा कहौं अंग अंग की सोभा खुभी न परसत चारू कपोल।
कुंभनदास प्रभु गोवर्धन धर देखत बाढ़ै मनज अमोल।[7]

प्रीति और आसक्ति की पराकाष्ठा कुंभनदास में देखने को मिलती है। उनके लिए प्रेमाराध्य श्रीकृष्ण ही सर्वस्व हैं। संसार के अन्य कर्म, रीति व व्यवहार नगण्य हैं। संसार की लोक मर्यादा प्रेम और समर्पण के मार्ग में उपेक्षणीय है—

"हिलगनि कठिन है या मन की।
जाके लये देख मेरी सजनी, लाज जात सब तन की।
धर्म जाउ अरू हँसो लोक सब अरू आवौ कुल गारी।
सो क्यों रहै ताहि बिनु देखे जो जाको हित कारी।
रस लुबधक एक निमिख न छांडत ज्यों अदीन मृग गाने।
कुंभनदास सनेह मरमुइहि गोवर्धन धर जानै।"[8]

कुंभनदास के काव्य में उनके संगीत ज्ञान का निरूपण भी हुआ है। इसके साथ ही तत्कालीन दरबारी वातावरण की झलक भी मिल जाती है। रास संबंधी पदों में गति, नाद और सौंदर्य के साथ नृत्य की तीव्रता भी शब्दों से अभिव्यक्त की गई है—

"डुलत कुडल खुलत बेनी झूलति मोतिन माला।
धरत पग डगमग बिबस रस रास रच्यो नंद लाला।
पगनि गति कौतुक मचे कटि मुरि मुरि मध्य लचै।
सिथिल किंकिनी सोहै ता पर मुकुट लटक मन मोहे।"[9]

मध्यकालीन मुगल वैभव का अप्रत्यक्ष चित्रण भी इनके काव्य में मिल जाता है—

"ठीक दुपाहिरी में खस खाने रचे ता मधि बैठे लाल बिहारी।
खासो को कटि बन्यो पिछोरा चंदन भींजी कुलह सँवारी।
विविध सुगंध के छुटत फुहारे कुसमनि के विजना ढोरत पिय प्यारी।
सघन लता प्रभु झरत मालती सरस गुलाब माल गूँथति है प्यारी।"[10]

कुंभनदास ने अपने काव्य में स्वाभाविकता को प्राथमिकता दी। उनके शब्दों की संयोजना प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने में सफल है। ब्रजभाषा के सौंदर्य को सुरक्षित रखने की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। अपने काव्य द्वारा ब्रज भूमि के ग्राम्य परिवेश को उन्होंने जीवंत कर दिया। इस निरूपण द्वारा लोक पक्ष का प्रतिनिधित्व उनके काव्य में हो गया है। गायों को खिलाने तथा दीप मालिका अन्नकूट आदि के चित्रण द्वारा भी लोक संस्कृति के विभिन्न आयामों को उन्होंने सजीव किया है।

सूरदास

सूरदास अष्टछाप के ही नहीं ब्रजभाषा के कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनका जन्म सं. 1535 में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरियाणा के सीही (गुड़गाँव) ग्राम में हुआ। पुष्टि संप्रदाय के अनुसार, वे श्री वल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे। जन्म तिथि और मृत्यु को लेकर विद्वानों में मतभेद है परंतु सर्वमान्य रूप से उनका जीवनकाल सं. 1535 से सं. 1640 तक स्वीकार किया गया है। उनका अंधत्व भी विवाद का विषय है। अधिकांश आधुनिक विद्वान् इन्हें जन्मांध मानने को तैयार नहीं हैं—"सूरदास का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता।"[11] "सूरदास की रचनाओं में प्रकृति और मनुष्य के भावों के उतार-चढ़ाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देखकर यह कहने का साहस नहीं होता कि सूरदास ने बिना अपनी आँखों से देखे, केवल कल्पना से यह सब लिखा है।"[12] डॉ. दीनदयाल गुप्त उन्हें जन्मांध तो नहीं मानते पर यह भी स्वीकार नहीं करते कि सूर वृद्धावस्था में अंधे हुए होंगे। उनके अनुसार वे बाल्यकाल में ही अंधे हो गए थे।[13] श्री मीतल ने उन्हें जन्मांध माना है।[14] सूरदास ने घर छोड़कर सत्संग के माध्यम से ही शिक्षा व ज्ञान प्राप्त किया। छह वर्ष की आयु में सीही के निकटवर्त्ती गाँव के तालाब के किनारे, पीपल के पेड़ के नीचे झोंपड़ी डालकर रहने लगे। यहाँ उनकी प्रसिद्धि 'शकुन ज्ञाता' के रूप में हो गई। 18 वर्ष की आयु में उन्हें वैराग्य हुआ और प्रतीत हुआ कि जिसके कारण घर छोड़कर निकले थे उसी माया में फिर से लिप्त हो गए हैं।[15] अतः सब कुछ छोड़कर मथुरा होते हुए गऊ घाट पर रहने लगे। इस समय तक एक भक्त व गायक के रूप में वे प्रसिद्ध हो चुके थे और उनके अनेकों शिष्य व सेवक बन चुके थे। सं. 1567 में श्री वल्लभाचार्य जी गोवर्धन जाते समय गऊ घाट (आगरा) पर रुके थे—वहाँ सूरदास से उनकी भेंट हुई और वे उन्हें अपने साथ गोवर्धन ले गए। इसी समय उन्होंने सूरदास को वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित किया। गोवर्धन में वे श्रीनाथ जी के मंदिर के कीर्तनकार नियुक्त किए गए। तब से मृत्युपर्यंत नियमित रूप से अपना उत्तरदायित्व निभाते रहे। संवत् 1623 में उनकी ख्याति सुनकर अकबर उनसे मिला और तब सूरदास ने "मन रे तू करि माधौ सौं प्रीति" तथा "नाहिन रह्यौ मन ठौर।" पदों का गायन किया। परासौली में चंद्र सरोवर पर उन्होंने अपना निवास बनाया और वहीं उनकी मृत्यु सं. 1640 में हुई। सूरदास की प्रसिद्ध रचनाओं में सूरसारावली, साहित्यलहरी और सूरसागर आती हैं। इनके अतिरिक्त भागवत भाषा, दशमस्कंध भाषा, सूरदास के पद, नागलीला, मान लीला, सूर रामायण, सूरसागर सार, राधारस केलि कौतूहल, सूरपचीसी, गोवर्धनलीला, ब्याहलों, सूरशतक, प्राणप्यारी, भँवरगीत, सूरसाठी, हरिवंश टीका, एकादशी माहात्म्य, सेवाफल, दृष्टिकूट के पद, नल-दमयंती भी सूरदास के ग्रंथ कहे जाते हैं। इनमें से नल-दमयंती, हरिवंश टीका, रामजन्म तथा एकादशी माहात्म्य सूर की अप्रामाणिक रचनाएँ मानी गई हैं।[16] इन सब रचनाओं में 'सूरसागर' सर्वाधिक प्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ है। सूरदास को आचार्य वल्लभ 'भक्ति का सागर' और श्री विट्ठलनाथ 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहते थे। सूरसागर के नामकरण के मूल में संभवतः इन्हीं उपाधियों की प्रेरणा रही होगी।

सूरदास का काव्य प्रत्येक दृष्टि से सर्वोत्तम है। संप्रदाय के प्रत्येक अंग व सिद्धांत का सांगोपांग निरूपण इसमें हुआ है। पुष्टिमार्ग के जहाज होने के सभी लक्षण उनके काव्य में विद्यमान हैं। भक्ति व निष्ठा की वे चरम सीमा थे। वे भक्त पहले थे कवि बाद में, फिर भी काव्यात्मकता का चरमोत्कर्ष उनकी रचनाओं में द्रष्टव्य है। सूरदास का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। बाल लीला का प्रत्येक पद उनके सूक्ष्म पर्यवेक्षण का प्रमाण है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माता और शिशु से संबंधित कोई भी बात उनसे छूटी नहीं है। भाव के साथ-साथ कलात्मकता का समावेश स्वयंमेव होता जाता है। उनकी तन्मयता और भाव विह्वलता के कारण प्रत्येक पद एक सुंदर चित्र के समान प्रतीत होता है—

"सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।
चारू कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए।"[17]

दधिमंथन करती हुई यशोदा और पास खड़े कृष्ण के व्यवधान डालने, 'रई' की ध्वनि के साथ-साथ नाच उठने और आनंदित होकर हँसने के जो चित्र प्रस्तुत किए गए हैं वे प्रत्येक घर-आँगन के अनिवार्य अंग हैं—

"नंद जू के बारे कान्ह ढाँडि दै मथनियाँ
बार-बार कहति भतु जसुमति बंदरनियाँ।"[18]
"त्यों-त्यों मोहन नाचै ज्यों-ज्यों रई धमरकौ होई।"[19]
"जसुमति दधि मथन करति बैठी वर धाम अजिर
ठाढ़ै हरि हँसत नान्हि दँतियनि छबि छाजै।"[20]

मातृहृदय की प्रत्येक कामना सूर के अनुभव का विषय है। यशोदा के असीम स्नेह से भरपूर अनंत अभिलाषाएँ, कृष्ण से संबंधित उत्सुकताएँ और कामनाएँ उन्हें व कृष्ण को माता व शिशु के स्वाभाविक रूप में परिवर्तित कर देती हैं जिन पर देश, काल और स्थान का प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता। यशोदा के रूप में स्वयं सूर ने ही मानों बाल कृष्ण की एक-एक गतिविधि को अंकित किया है। कभी वे पालना झुलाकर उन्हें सुलाती हैं। उनकी मंगल कामना करती हैं, देवी-देवता मनाती हैं, गोद में खिलाते हुए उनके दाँत निकलने की, घुटनियों चलने की कल्पना करती हैं। उनकी हठ पर उन्हें मनाती हैं और उनके बाल सौंदर्य पर बार-बार न्यौछावर होती हैं। वात्सल्य के अतिरिक्त शृंगार रस के निरूपण में भी उन्होंने काव्यात्मकता के मानदण्ड स्थापित किए। गोपियों के प्रेम के माध्यम से प्रेमलक्षणा माधुर्य भक्ति का आदर्श स्थापित करके आचार्य वल्लभ तथा विट्ठल की मान्यताओं का सफल निरूपण किया। कृष्ण के रूप पर मुग्ध रागप्रधान अनुभूतियों के मनोरम चित्र गोपियों की भावाभिव्यक्ति में मिलते हैं। राधा-कृष्ण के पारस्परिक प्रेम के उत्तरोत्तर विकास और उसके स्वाभाविक सौंदर्य के वर्णन से सूरसागर भरा पड़ा है। मान, उत्कंठा, मिलन, उपालंभ, औत्सुक्य आदि भावों के प्रकाशन में उन्हें अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है। प्रेमाभक्ति की चरमसीमा में लोक मर्यादा का महत्व शून्य हो जाता है—

'नंदलाल सौं मेरो मन मान्यौ कहा करैगो कोउ।
मैं तो चरन कमल लपटानी जो भावै सो होउ।
बाप रिसाई माई घर मारै हँसैं बिराने लोग।
अब तौ स्यामहिं से रति बाढी बिधना रचौ संयोग।"[21]

संयोग शृंगार के अंतर्गत कुंजविहार, रास आदि प्रसंगों में उनकी वर्णनाशक्ति का सौंदर्य देखते ही बनता है। प्रेम के इस वर्णन में जिस एकनिष्ठा का निरूपण हुआ है वह पुष्टि संप्रदाय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की मूलभूत विशेषता है। कृष्ण का रूप-सौंदर्य तथा मुरली की तान दोनों ही सूर कांव्य का प्राण हैं। उनकी रूपासक्ति का आधार इन दोनों का समन्वित रूप है—

"निसिदिन इन नैननि को आली नंदलाल की रहै लाल साई।
मुरली तान पुरी है श्रवननि कैसे हूँ मुख नहीं जदुराई।"[22]

संयोग के चित्रण में तन्मयता और पूर्ण समर्पण की भावना का प्रतिपादन भी सूरकाव्य में हुआ है। लौकिक दृष्टि में यदि वह शृंगारिक है तो आध्यात्मिक दृष्टि से द्वैत भाव के नष्ट हो जाने की परिचायिका है। शृंगार और दर्शन को एक साथ गूँथ देना सूरदास की विशेषता है—

साध नही जुवंतिनि मन राखी।
मन वांछित सबदिनि फल पाय वेद उपनिषद साखी।
भुज भरि मिले कठिन कुच चापैं अधर सुधा रस चाखी।
हाव भाव नैननि सैननि दे वचन रचन मुख भाखी।
सुकभाग वत प्रगट गायौ कछू न दुविधा राखी।
सूरदास ब्रजनारि संहारे बाक रही न काखी।"[23]

संयोग के अंतर्गत रूप-सौंदर्य, रूप-सज्जा, मान, खंडिता, रहस्यक्रियाएँ, हर्ष, उल्लास, आशा जैसे अनेकों भावों का चित्रण किया गया है। रास लीला के प्रसंग में प्रेम की अनन्यता और तन्मयता का चित्रण किया गया है—

"ब्रज जुवती रस बास पगी।
कियौ स्याम सबकौ मन भायौ निसि रति रंग सगी।"[24]

भाव की अनूठी व्यंजना सूर की शक्ति है। उनके काव्य में साधारणीकरण का गुण भी सहज रूप में उपस्थित है। इसलिए प्रेषणीयता का गुण भी स्वतः उत्पन्न हो गया है। संयोग के साथ वियोग की तीव्रतम अनुभूतियाँ भी सूर काव्य की विशेषता हैं। कृष्ण के विरह में संतप्त नंद-यशोदा, गोप-गोपियों के अतिरिक्त जड़-चेतन पदार्थों की व्याकुलता को भी उन्होंने चित्रित किया है। गोकुलराई के बिना गोकुल में सभी उदास हैं। ब्रज की समस्त संपदा उन्हीं के साथ चली गई है—

"तब तें मिटें सब आनंद।
या ब्रज के सब भाग संपदा ले जु गए नंद नंद।
विह्वल भई जसोदा डोलति दुखित और उपनंद।
धेनु नहीं पय स्त्रवति रूचति मुख चरति नहीं तृण कंद।"[25]

विरह विदग्ध गोपियों को कुब्जा और मुरली दोनों से ईर्ष्या है। ज्ञान का संदेश लेकर आए उद्धव को भी वे अपनी व्यंग्योक्तियों का लक्ष्य बनाती हैं। उनकी झुँझलाहट, कृष्ण का सामीप्य न पा सकने की विवशता, प्रेम की एकनिष्ठता और व्याकुलता के कारण उनका 'भ्रमरगीत' वियोग शृंगार का अन्यतम ग्रंथ बन गया है। सांप्रदायिक दृष्टि से निर्गुण भक्ति के ऊपर वल्लभाचार्य की प्रेमालक्षणा भक्ति की स्थापना इसका मूल उद्देश्य है। सूर की क्षमता का परिचय इसी तथ्य से मिल जाता है कि एक ही भाव को बार-बार वर्णित करने पर भी उसका आकर्षण समाप्त नहीं हो जाता अपितु प्रत्येक बार किसी न किसी नवीन चमत्कार और सौंदर्य के दर्शन हो जाते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाव के साथ-साथ अभिव्यंजना का सौंदर्य भी उनके काव्य में मिलता है। विषय के अनुरूप छंद विधान, अलंकार योजना और शब्द शक्तियों का प्रयोग करने से उनके काव्य में उत्तम काव्य के सभी गुण समाविष्ट हो गए हैं। सूरदास के काव्य का सर्वाधिक सबल पक्ष है लोक संस्कृति का चित्रण। इस उत्तरदायित्व का निर्वाह सफलतापूर्वक करने के कारण ही उनका काव्य लोक जीवन में ग्राह्य हो सका। सूरदास का युग, उसकी प्रथाएँ, रीति-रिवाज, पर्व, उत्सव, सभी कुछ उनके काव्य में परिलक्षित होता है। यथार्थ के साथ-साथ कल्पना के सुंदर संयोग द्वारा उन्होंने प्रसंग को आकर्षक बना दिया है। सूर की काव्यकला का आकलन सीमित शब्दों में नहीं किया जा सकता। उनके एक-एक भाव, अभिव्यंजना की एक-एक पद्धति पर विद्वानों ने विशदता से विचार किया है। सूर प्रत्येक की कसौटी पर खरे उतरे हैं, उनकी शक्ति और सामर्थ्य का प्रमाण विद्वानों की विवेचनाएँ ही हैं। संप्रदाय, भक्ति भाव और कला का कोई भी अंश ऐसा नहीं है जिसमें सूर की ओर से शिथिलता आई हो। भावाभिव्यक्ति की यह कसावट सूरकाव्य का मूल स्वर है।

कृष्णदास

कृष्णदास का जन्म सं. 1553 में गुजरात के चिलोतरा ग्राम में हुआ। वे कुनबी कायस्थ पटेल थे जिसे वार्ता में शूद्र भी कहा गया है।[26] तेरह वर्ष की अवस्था में पिता की अनुचित अर्थलिप्सा के विरोध में विरक्त होकर वे ब्रज आ गए। यहाँ सं. 1568 में श्री वल्लभाचार्य ने उन्हें वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित किया और श्रीनाथ जी का भेटिया नियुक्त किया। बाद में उन्हीं को श्रीनाथ जी मंदिर का अधिकारी नियुक्त कर दिया। वे गोवर्धन स्थित वल्लभ संप्रदायी भक्तों एवं कलाकारों के सत्संग से उपासना में संलग्न होकर श्रीनाथ जी के कीर्तन के पदों की संरचना और गायन में व्यस्त हो गए। उनका जीवन अनेक विवादों से घिरा रहा। सबसे महत्वपूर्ण उत्तराधिकार का विवाद था जिसमें उन्होंने गोपीनाथ जी के पुत्र पुरुषोत्तम का पक्ष लिया और श्रीनाथ जी के द्वार श्री विठ्ठलनाथ जी के लिए बंद करवा दिए। श्री विठ्ठल ने अपने अधिकारी के आदेश का सम्मान करते हुए श्रीनाथ जी के मंदिर में जाना बंद कर दिया अंततः पुरुषोत्तम जी की मृत्यु के पश्चात् आचार्यत्व ग्रहण करने पर ही वे मंदिर में गए।

इस घटना को विविध भाँति से वर्णित किया गया। गंगाबाई के प्रसंग द्वारा उनके चरित्र पर आक्षेप भी लगाया गया परंतु यह सब विवाद का विषय है। कृष्णदास का आचरण शुद्ध न होने पर मृत्युपर्यन्त मंदिर का अधिकारी बने रहना संभव नहीं था। कृष्णदास में प्रबंधन व संयोजन की अपूर्व क्षमता थी। श्रीनाथ जी के मंदिर क अधिकारी होने पर उन्होंने बड़ी चतुराई से बंगाली वैष्णवों को श्रीनाथ जी की सेवा से हटवा दिया। श्री विठ्ठलनाथ जी ने उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित करके उनके महत्व को स्वीकार किया और कृष्णदास ने भी अपने पूर्व मनोमालिन्य को भुलाकर श्री विठ्ठल को आचार्य रूप में स्वीकार कर उनकी आज्ञानुसार संप्रदाय और श्रीनाथ जी के सेवा-विस्तार में पूर्ण योगदान दिया। वे रससिद्ध कवि और गायक थे, उनके रस लीला के पद सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी मृत्यु सं. 1636 में गोवर्धन स्थित गोपालपुर (जतीपुरा) के निकट पूँछरी गाँव के समीप बिलछूवन के एक कुँए में गिर जाने के कारण हुई। कृष्णदास के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काव्य में रसात्मकता का स्वर मुख्य है। उनकी कल्पना कृष्ण तथा राधा के सौंदर्य वर्णन में दर्शनीय है। कृष्ण के रूप में आसक्त उनका मन और कहीं नहीं जाना चाहता। तिमिर हरन ब्रजनाथ पर ही वे न्यौछावर है—

"मेरौ मन गिरिधर छवि पै अटक्यौ।
ललित त्रिभंगी अंगनि ऊपर चलि गयौ तहाँई अटक्यौ।
सजल स्यामघन नीलबरन है फिरि चित अनत न भटक्यौ।
'कृष्णदास' कियौ प्रान न्यौंछावरि यह तन जग सिर पटक्यौं।"[27]

स्वरूप वर्णन में उनकी कला का अद्‌भुत निखार देखने को मिलता है—

"नैननि तेरे मन मोह्यो री! प्यारी नेंकु न इत उत जाइ।
मनहुँ मत्त अतिकमल-कोस मँह लुबध रहे अरू झाई।"[28]
"माई री स्याम घटनि तन दामिनी दमकति पीतांबर फ़रहरै।
मुक्ता माल बगजाल कहि न परति, छबि बिसाल माननी की अरहरै।
मोर मुकुट इन्द्र धनुक कुसुम सोहत, मोहत मन अनंत दुति थरहरै।
'कृष्ण दास' प्रभु पुरंदर को सोभा निधान मुरली कौ घोर घरहरै।"[29]

कृष्णदास ने शृंगार रस का सुंदर वर्णन किया। हिंडोरा, फ़ाग, रास लीला, सुरत आदि के विभिन्न पदों में उनकी यह रसात्मकता स्पष्ट है—

"कंचुकी के बंद तरकि तरकि टूटे देखत मदनमोहन घनस्यामहिं।
काहे को दुराव करत है री नागरि मगत उरज दुरत क्यों यामहिं।"[30]
"कंचन मनन मरकत रस ओपी
नंद सुवन के संगम सुख कर अधिक विराजति गोपी।
मनहुँ विधाता गिरिधर पिय हित सुरत धुजा सुख रोपी।
बदन कांति कै सुन री भामिनी! सघन चंद श्री लोपी।"[31]

हिंडोरे के अवसर पर झूलते हुए राधा के रूप वर्णन, राजसी वैभव और प्राकृतिक सौंदर्य की पृष्ठभूमि में कल्पना का सौंदर्य और विविध रंगों का सम्मिश्रण उनकी काव्यकला का परिचायक है—

"झूलौ मेरी प्यारी हिंडोरे गोपाल लाल झुलवत थोरे थोरे।
रतन जटित के बने हैं री खंभा डाँडी लाल चहुँ ओरे।
सारी सुरंग बनी प्यारी की कंचुकी सौंधें बोरें।
काजर रेख बनी नैंननि में प्रीतम कौ चित चोरें।"[32]
"जुरि जुरि आई सुहाई मन भाई ब्रज सुंदरि सब
सावन ऋतु मनभावन गिरिवरधर पिय पास।
झूलनि हिंडोरे बैठि रसिक भामिनी संग
और तैसिये बन हरियारी खुलि रही बरन सारी।
तैसिये घटा कारी कजरारी. भारी छवि पर
बलिहारी तैसिये हिंडोरे कौ प्रकास।"[33]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025 Grant

होली के पदों में कृष्णदास ने रंग व उल्लास का सजीव कर दिया है। रास लीला के

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रसंग में राधा-कृष्ण की नृत्य-भंगिमाओं का सूक्ष्म चित्रण उन्होंने किया है। इन सभी अवसरों पर विभिन्न रागों के साथ विभिन्न वाद्यों का उल्लेख करके संगीत से अपने प्रगाढ़ परिचय का प्रमाण दिया है। सूरदास की भाँति संप्रदाय के सभी सिद्धांतों का निरूपण उन्होंने किया है और वार्ता के अनुसार वे सूर से प्रभावित भी रहे हैं परंतु फिर भी उनके पद उनके सौंदर्यबोध और उनके अभिव्यंजना कौशल को प्रदर्शित करते हैं। कृष्णदास के काव्य का मूल स्वर अष्टछाप कवियों के अनुरूप कृष्ण सानिध्य को प्राप्त करना है।

परमानंददास

परमानंददास का जन्म सं. 1550 में कन्नौज के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बचपन से ही वैराग्य भावना उनमें प्रबल थी। काव्य और संगीत में उनकी अभिरुचि थी इसलिए युवावस्था तक वे धर्मोपदेशक तथा गायक के रूप में विख्यात हो गए। 26 वर्ष की अवस्था में मकर संक्रांति पर वे प्रयाग गए और वहीं रहकर कीर्तन-भजन करने लगे। उनके भजनों की ख्याति चारों ओर फैल गई। उस समय श्री वल्लभाचार्य जी यमुना के दूसरी ओर अडैल में रह रहे थे। परमानंददास ने आचार्य के पांडित्य और अपूर्व भक्ति भाव की चर्चा सुन रखी थी। सं. 1577 में अडैल जाकर वे उनके शिष्य हो गए। सं. 1582 में वे वल्लभाचार्य जी के तथा उनके अनेक शिष्यों के साथ ब्रज आए। यहाँ श्रीनाथ जी के मंदिर में कुंभनदास, सूरदास और कृष्णदास की तरह वे भी कीर्तन सेवा में व्यस्त हो गए। उनके कीर्तनपदों का संग्रह परमानंद सागर नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनकी मृत्यु सं. 1641 में गोवर्धन स्थित जतीपुरा के निकटवर्ती सुरभीकुंड पर हुई।

परमानंददास मुख्यतः लीला गायक हैं। उन्होंने बाल लीला को प्रधानता दी है। दीक्षा लेने के बाद उन्होंने दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनी और सूरदास की भाँति हरि-लीला का गायन प्रारंभ कर दिया। अष्टछाप में सूरदास के बाद पदों के परिमाण की दृष्टि से उन्हीं का स्थान है। संप्रदाय में वे सूर के समकक्ष ठहराए गए हैं। उनकी प्रतिभा जन्मजात थी। अडैल में रहते हुए आचार्य वल्लभ से 'सुबोधिनी' सुनकर वे तत्काल उसे पंक्तियों में निबद्ध कर देते थे। उनकी एकमात्र प्रामाणिक रचना परमानंद सागर है। इसमें गेय शैली में कृष्ण लीला का गान किया गया है। ब्रज से बाहर की लीलाओं का गान उन्होंने नहीं किया है। कृष्ण से परे किसी अन्य विषय का गान उन्होंने नहीं किया है। कृष्ण जन्म से लेकर उनके मथुरागमन तक के प्रसंग परमानंद जी के काव्य का विषय है। संप्रदाय के अनुसार वर्षोत्सव तथा नित्यसेवन के पद भी उनके सागर में हैं। पालने से लेकर पौगण्ड अवस्था तक के पदों में उन्होंने वात्सल्य रस का सुंदर निर्वाह किया है—

"झुलावै सुत को महरि पलना कर लिये नवनीत।
नैनन अंजन गाल नसी बिंदुका तन ओढ़े पट पीत
बेनु देखत मंद हँसत हैं कबहुँक होत भयभीत।
दै करतार नचावत गोपी गावत मधुरे गीत।"[34]

बालक के मणिमय आँगन में घुटनों चलने का, दंडित होने पर हिलक-हिलककर रोने का, उसके निश्छल, मनमोहक सौंदर्य का वर्णन परमानंददास जी ने किया है। सूर के समान उन्होंने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी आकुल-व्याकुल मातृहृदय का चित्रण किया है। पौगण्ड लीला के वर्णन में उनकी वृत्ति अधिक रमी है। पतंग के पंच लड़ाने में, बालकों के आपस में खेलने-रूठने के, गेंद, होड़ा-होड़ी आदि के माध्यम से कृष्ण के स्वाभाविक विकास की ओर उन्होंने संकेत किया है। उनके बाल मनोविज्ञान का परिचय भी इन पदों से मिल जाता है—

"गुडी उड़ावन लागे बाल।
सुंदर पतंग बांधि मन मोहन नाचत हैं मोरन के ताल।
कोऊ पकरत कोऊ ऊँचत कोऊ देखत नैन बिसाल।
कोऊ नाचत कोऊ करत कुलाहल, कोऊ बजावत खरौकर ताल।"[35]

गोचारण तथा गोदोहन के प्रसंगों में आभीर संस्कृति के तत्वों का निर्देशन उन्होंने किया है। उनके द्वारा वर्णित यह ग्राम्य परिवेश आज की घोष बस्तियों में देखने को भी मिल जाएगा। उनकी भौतिकता और अभिव्यक्ति के कारण यह चित्र साहित्य में स्थायी हो गया है। दीपमालिका के अवसर पर गाय-बैलों के श्रृंगार तथा गाय से खेलने का सुंदर वर्णन उनके काव्य की शोभा है। उनके काव्य में विविध रसों की संयोजना मिल जाती है। मुख्य रूप से श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्षों का चित्रण उन्होंने किया है। प्रकृति को भी कृष्ण के वियोग में दुखदायी उन्होंने चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त उपमान तथा आलंबन रूप में भी प्रकृति का वर्णन किया है।[36] रास लीला के कई पदों में कृष्ण और गोपियों के रूप और श्रृंगार सज्जा को अनुमान के लिए छोड़कर गति और नृत्य को वर्णित किया है। ऐसे पदों में वर्णनात्मकता ही प्रधान हो गई है। इसके विपरीत अधिकांश पदों में संगीतमय वातावरण की सृष्टि के लिए वाद्ययंत्रों के बीच शास्त्रीय गायन और नृत्य के पद संचालन द्वारा गतिमान नृत्य को सजीव कर दिया है—

"बाजत बेनु रबाव किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनी सोरी।
ततथेई ततथेई सब्द उघटत पिय भले बिहारी बिहरत जोरी।
बरहा मुकुट चरन तट आवत धरे भुजन में भामिनी मोरी।
आलिंगन चुंबन परिरंभन परमानंद डारत तृन तोरी।"[37]

परमानंददास ने ब्रज संस्कृति के सभी अंगों का विषयानुसार वर्णन किया है। सभी संस्कारों, वर्षगाँठ, पर्वोत्सवों तथा दैनिक सामाजिक जीवन के चित्र उन्होंने खींचे हैं। बंदनवार, तोरणमाला, दधि-हल्दी का छिड़काव, नेग, बधाई, सतिए, चौक पूरना, पकवान, मिठाई का आदान-प्रदान, विप्र, मागध, सूत, बंदी आदि का आशीर्वचन आदि लोक रीतियों का समावेश उनके काव्य में हुआ है। परमानंददास का काव्य सौंदर्य उसकी सरलता और ऋजुता में है। उनमें रंगों व शब्दों का चमत्कार नहीं है; अनुभूति की अभिव्यक्ति ही उनका उद्देश्य है और उसी के कारण उनके प्रत्येक चित्र सजीव तथा मार्मिक बन सके हैं। वे मूलतः भक्त थे इसलिए आलंकारिक विधान उनमें बहुत कम हैं। फिर भी अनुभूति की व्यंजना में सुंदर सरल कल्पनाओं का प्रयोग उन्होंने किया है—

"जब तें प्रीति स्याम सौं कीनी।
ता दिन ते मेरे इन नैनन ने कहुँ नींद न लीनी।
सदा रहति चित चाक चढ़्यौ सो और न कछू सुहाय।"[38]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परमानंददास के काव्यानुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका काव्य सौंदर्य से युक्त है और उन सभी विशेषताओं से युक्त है जो सूर काव्य में मिलती हैं। भक्ति की तन्मयता, स्वरूपासक्ति, वात्सल्य, शृंगार, प्रकृति आदि सभी विषयों का सम्यक् निरूपण उन्होंने किया है। अष्टछाप में सूर के उपरांत यदि किसी को भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से महत्ता दी जा सकती है तो वे परमानंददास जी ही हैं।

गोविंद स्वामी

गोविंद स्वामी का जन्म सं. 1562 में ग्वालियर के निकटवर्ती आंतरी ग्राम में हुआ। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। वे सुशिक्षित थे और संगीत कला में निष्णात थे। संगीत की विधिवत शिक्षा उन्हें मिली होगी क्योंकि शास्त्रीय संगीत का उनका ज्ञान उच्चकोटि का था। इनके साथ इनकी बहन 'कान्हबाई' रहती थीं जो गोस्वामी विट्ठल नाथ की शिष्या थीं। युवावस्था में ही उन्हें गृहस्थी से विरक्ति हो गई थी और वे ब्रज में महाबन में रहकर, आराधना व संगीत साधना करने लगे। सं. 1592 में उन्होंने वल्लभ संप्रदाय की दीक्षा ग्रहण की। इसी समय से कीर्तन का नियमित अभ्यास भी इन्होंने प्रारंभ किया। सं. 1607 में अष्टछाप की स्थापना होने पर वे भी भक्त मंडली में श्री विट्ठल द्वारा सम्मिलित किए गए और तब गोवर्धन जाकर श्री नाथ जी की कीर्तन सेवा करने लगे। संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद वे स्वयं को 'दास' कहने लगे। वे यमुना जी को स्वामिनी मानकर, जल में पैर नहीं डालते थे। अष्टछाप मंडली के अन्य कवि यदि रससिद्ध गायक थे तो गोविंद स्वामी एकमात्र संगीताचार्य थे। संगीत सम्राट तानसेन उनके शिष्य थे और उनका गायन सुनने आते रहते थे। कीर्तन पद्धति का संगीत तानसेन ने उन्हीं से सीखा था। उनका निवास जतीपुरा के निकट की रमणीक कदमखंडी में टीले के नीचे एक कंदरा में था। सं. 1642 में गोस्वामी विट्ठलनाथ के देहावसान पर ही वे गोवर्द्धन की इस कंदरा में प्रवेश कर अंतर्धान हो गए।

गोविंद स्वामी की भक्ति सख्य और मधुर दोनों प्रकार की थी। संप्रदाय के अनुरूप बाल लीला के पदों की रचना भी उन्होंने की। अन्य कवियों की भाँति यशोदा के मातृस्नेह के अनुपम चित्र भी उन्होंने खींचे हैं—

"हौ बलि जाउं कलेवा लाल कीजे
खीर खांड घृत अति मीठो है अब कौ कौर बच्छ लीजे।
बेनी बढ़ै सुनो मन मोहन मेरौ कह्यो जु पतीजे।
औट्यौ दूध सध्य धौरी कौ सात घूँट भरि पीजै।"[39]

गोविंद स्वामी विख्यात संगीतज्ञ थे इसलिए उनके काव्य में संगीत तत्व की प्रधानता है। रासलीला के प्रसंगों में यह तत्व अधिक मुखर हुआ है—

"नाचत गति सुधंग चालि हस्तक गहे भेद लिए
ताल मृदंग झाँझ बजावत बाँसुरी रसा री।"[40]
तत ततनत थेई थेई गावत केदारो, राग,
सातराग क्रीड़त रस उपजत अति भारी।"[41]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोचारण से वापस आते हुए कृष्ण का वर्णन भी उन्होंने नर्त्तक के रूप में किया है—

"त्रिजग भँवरी लेत सुघर ग्र ग्र ताधिधिधिकट धुंग थुंगति।
निर्ततत रसिक सिरोमनि।"[42]

संगीत के प्रति उनके अनुराग का प्रमाण इस पद से मिल जाता है जहाँ शयन के लिए तत्पर राधा और कृष्ण ने उन्होंने कल्याण राग गवाया है—

"दम्पति रंग भरे।
बैठे कुंज महल ने निकसि राग कल्यान अलापत।
रस भरे लेत परस्पर रंग नितान तरे।
लेत अति जति भेद कर किन्नरि इकसरी टोकतान सुटार ठरे।"[43]

प्रकृति चित्रण में भी संगीत उन पर छाया रहा है। पावस का मानवीकरण करके उस पर नर्तकी की चेष्टाओं का आरोपण उन्होंने किया है। इसी प्रकार पावस में प्रकृति के विविध उपकरणों में संगीत सभा के उपकरणों की कल्पना भी उन्होंने कर ली है—

"पावस नट नट्यो अखारो वृंदावन अवनी रंग।
निर्तन गुन रासि बरूहा पपैया सबद उघटत
कोकिला गावत तानत रंग
जलधर तहाँ मंद मंद सुलप संच गति भेद—
उरपि तिरपि मानु लेत मधुर मृदंग।
गोविंद प्रभु गोबर्द्धन सिंहासन पर बैठे,
सुरभी सखा मध्य रीझे ललित त्रिभंग।[44]

हिंडोरा संबंधी पदों में राजसी वैभव और प्रकृति का सौंदर्य दोनों वर्णित किए गए हैं। हिंडोरे की रचना में मणि, रत्नों का प्रयोग यदि वैभव की ओर संकेत करता है तो कालिंदी की लहरें, कुसुमों के भार से झुकी डाल वाले वृक्ष, बादलों की गर्जना, चमकती हुई विद्युत की प्राकृतिक सुंदरता के बीच झूलते हुए राधा कृष्ण की शृंगार-सज्जा रंगों का मिश्रण उत्पन्न कर देती हैं।[45] शृंगार प्रसंगों में भी कवि की चित्र योजना का परिचय मिलता है। माधुर्य भक्ति का समावेश भी उन्होंने अपने काव्य में किया है। कृष्ण के रूप-सौंदर्य, उनकी विविध लीलाओं का वर्णन उनके काव्य में मिलता है। कृष्ण के रूप में आसक्त भक्त की तन्मयता का वर्णन करते हुए उन्होंने प्रेम के सामने सांसारिक संबंधों की असारता का वर्णन किया है—

"अब कहा करौं मेरी आली री आँखियन लागई रहत।
निसु दिन फिरत रूप रस मानी आवे नहीं ग्रह काज करत।
जदपि मात पिता पति सुख देखत तो हून धीरज धरों मोहन बेनु सुनत।
'गोविंद' प्रभु की हों जो लौं न देखौ आली तौ लों छिन छिन कैसे मेरे प्रान रहत।"[46]

कृष्ण में आसक्त भक्त कृष्ण के धाम वृंदावन को छोड़कर स्वर्ग की कामना भी नहीं करता क्योंकि वहाँ वृंदावन के लता-कुंज, सारस, हंस, मोर, गोपी, नंद-यशोदा नहीं हैं। संप्रदाय की मान्यता के अनुरूप कृष्ण प्राप्ति का एकमात्र साधन प्रेम को ही उन्होंने स्वीकार किया है। "प्रीतम प्रीत ही ते पैये"[47] कहकर उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि रूप-गुण-शील उच्चकुल में जन्म अथवा वेद-पुराण के पाठ से कृष्ण नहीं रीझते हैं। गोविंद स्वामी के काव्य में मध्यकालीन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजन्य संस्कृति का संस्पर्श है इसलिए कलात्मकता और अभिव्यंजना कौशल भाव की अपेक्षा अधिक है।

छीतस्वामी

छीतस्वामी का जन्म मथुरा के चुतर्वेदी परिवार में सं. 1571 में हुआ। प्रारंभिक जीवन में वे अत्यंत कुटिल स्वभाव के थे। राजा बीरबल इनके 'जजमान' थे। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में स्पष्ट लिखा है—"वे छीतस्वामी मथुरा में रहते हो और मथुरा में रहते हो और मथुरा में पाँच चौबे बड़ा गंडाहते और ठगाई करते और छीत चौबे विन पाँचन में मुख्य हतो।"[48] अपनी कुटिलता प्रदर्शन के लिए गोकुल में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से मिलें। गोसाई जी के औकिक प्रभाव से इनकी बुद्धि परिष्कृत हो गई और सं. 1592 में उन्होंने वल्लभ संप्रदाय की दीक्षा ग्रहण कर ली। यहाँ उन्होंने भक्ति, काव्य और कीर्तन पद्धति की साधना की और प्रत्येक क्षेत्र में प्रवीणता प्राप्त कर ली। इसी आधार पर सं. 1602 में उन्हें भी अष्टछाप में सम्मिलित कर लिया गया। उनका निवास जतीपुरा के निकट पूँछरी गाँव के नवल अप्सरा कुंड के श्याम तमाल के वृक्ष के नीचे था। यहीं सं. 1642 में उनकी मृत्यु हुई। इनकी रचना के रूप में कीर्तन विषयक स्फुट पद उपलब्ध होते हैं। छीतस्वामी के काव्य में सौंदर्य वर्णन की प्रधानता है। प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ गोपियों के उल्लास के चित्र उन्होंने वर्णित किए हैं—

"सोभित अति पीत वसन उपरेना उड़त ऊपर।
बरन चारू चटकीली चूनरी रंग बोरे।"[49]

कृष्ण का रूप-चित्रण सभी कवियों ने एक समान किया है परन्तु सबकी अपनी-अपनी विशेषता है। छीतस्वामी ने कृष्ण को मोरपंख मुकुट पहनाने के साथ-साथ उनके सेहरे में मोरपंखों को गूंथ दिया है—

"अति उदार मोहन मेरे निरखि नैन फूले री।
बीच बीच बरूहा चंद फूलानि के सेहरा भाई।
कुंडल स्रवननि पर, निगम निगम झूलेरी।[50]

राधा-कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में उनकी विशेष रुचि है और इनमें सजीवता के साथ साथ नाटकीयता भी है—"मारग जात मिले मोहि सखि, डग इत धरयो न जाई।"[51]

छीतस्वामी ने रूप चित्रण के लिए कल्पना शक्ति के सौंदर्य को प्रदर्शित किया है—

"लाल सारी पहिरि बैठी प्यारी, आधो मुख ढाँपे।
ठो मोहन दृग निरखत।
एक दिसि चंद छबि एक दिसि मानों आधों सूरज अरून में।
यह छवि मनहि विचारि लाल मन हरखत।"[52]

छीतस्वामी के काव्य में भी संगीत योजना का आग्रह अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन पदों की रचना ही मृदंग, पखवाज की ध्वनि और घुँघरूओं की झनकार के अनुरूप ही की गई है—

"लाल संग रास रंग लेत मान रसिक गनि।
थमत थमता तत तत तत थेई थेई गति लीनि।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सीरे कम पधनी गंभपधनी धुनि सुनि बुजराज कुवंरि गावत री ।
आगिति जति भेद सहितताननि न नन न न नन जनि गति लीन ।"[53]

संगीत से संबंधित विभिन्न रागनियों का उल्लेख भी उन्होंने किया है ।[54] रासलीला के उल्लेख में शास्त्रीय राग रागनियों में बँधे पदों में कत्थक नृत्य की मुद्राओं का निरूपण किया गया है ।[55] होली के प्रसंग में लोकजीवन का चित्रण करते हुए भी शास्त्रीय रागों के उल्लेख का मोह संवरण वे नहीं कर पाए हैं। उनकी शब्द-योजना इतनी सुंदर है कि वाद्य यंत्रों के उल्लेख मात्र से ही उन यंत्रों की ध्वनि झंकृत होने लगती है। कृष्ण के गोचारण के समय लोक-रीति तथा उनके लोकनृत्य का वर्णन भी कवि ने किया है। आभीर संस्कृति के अनुरूप वातावरण की सृष्टि अपनी शब्द संयोजना द्वारा उन्होंने कर दी है। दो दलों में बंटे ग्वालों का चित्र स्पष्ट सजीव हो उठता है—

"खरकि खिलावत गाइनि ठाढ़े ।
इत नंद लाल ललित लरिका उत गोप महाबल गाढ़े ।
सुनि निज नाम मैं चुकी निकसी बल बछरा जब काढ़े ।
अपनी जननि के जनु लागि पाप पवित नवल असाढ़े ।
नाचत गावत बसन फिरावत गिरि की सिखर पर चाढ़े ।
छीतस्वामी हम जब तें बसें ब्रज सैल सकल सुख बाढ़े ।[56]

सरलता ही छीतस्वामी के काव्य का सौंदर्य है। कृष्ण के प्रति आसक्ति का इससे सरलतम शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता है—

"भई भेंट अचानक भाई ।
हौं अपने गृह तें चली जमुना वे उततें चले चरावन गाइ ।
निरखत रूप उगोरी लागी उत कों युग भरी चल्यौ न जाइ ।
'छीतस्वामी' गिरिधरन कृपा करि, गौ तन चितए मुरिमु सिकाइ ।"[57]

छीतस्वामी ने सूरदास, परमानंददास की तरह प्रत्येक विषय का विशद वर्णन नहीं किया है। संगीत तथा माधुर्य व्यंजना ही उनके काव्य का प्रमुख विषय रहे हैं। कलात्मकता के प्रति भी उनका अधिक आग्रह नहीं रहा है।

चतुर्भुजदास

यह आचार्य वल्लभ के शिष्य और अष्टछाप के वयोवृद्ध कवि कुंभनदास के पुत्र थे। इन्हें कुंभनदास अपना पूर्ण पुत्र कहते थे क्योंकि वे श्रीनाथजी की सेवा के साथ-साथ उनकी लीलाओं का गायन भी करते थे। इनका जन्म जमुनावतौ में सं. 1575 में हुआ था। अपने पिता के साथ यह भी खेती करते थे और उन्हीं के संसर्ग से भक्ति की ओर उनका झुकाव हुआ था। कुंभनदास सुगायक थे और संगीत का यह ज्ञान चतुर्भुजदास को भी उन्होंने संभवतः सिखाया था। शैशवकाल में 1598 में ही उन्हें गोस्वामी विट्ठलनाथ से मंत्र दीक्षा दिलवाई थी। उनकी प्रतिभा व भक्ति का परिणाम था कि वे छोटी अवस्था में ही अष्टछांप में परिगणित किए गए। सं. 1642 में गोस्वामी विट्ठलनाथ की मृत्यु के बाद उनकी स्तुति गाते हुए उन्होंने प्राण त्यागें।

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चतुर्भजदास ने किसी ग्रंथ की रचना नहीं की। कीर्त्तन पदों के रूप में ही अपने भावों को अभिव्यक्त किया था। इनके पद सरस और काव्य सौंदर्य से भरपूर है बाल लीला तथा संयोग और वियोग में शृंगार के सुंदर पदों की रचना उन्होंने की है। वात्सल्य वर्णन में उन्होंने कृष्ण द्वारा यशोदा पर अभियोग लगाना की नूतन कल्पना की है—

"मैया मोहि माखन मिश्री भावै।
मीठौ दधि मधुधृत अपने कर क्यों नहिं मोहि खवाबै।
कनक दोहिनी देकर मोंको यौ जो दोहन क्यों न सिखावै।
औट्यौ दूध धेनु धौरी कौ भरि कटोरा क्यों न प्यावै।
अजहूँ व्याह करत नहिं मेरौ होय निसंक नींद क्यों आवै।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधर की बतियाँ लै उछंग पय पान करावत।"[58]

चतुर्भुजदास ने सख्यभाव से श्रीकृष्ण की भक्ति की थी। वे श्रीनाथजी के साथ खेलते हैं झगड़ते हैं और सुबल के साथ चुटिया की लंबाई को लेकर विवाद का उल्लेख करते हैं। चतुर्भुजदास ने पुरानी कल्पनाओं को एकदम नए रूप में प्रस्तुत किया है—

"चुटिया तेरी बड़ी किंधौ मेरी!
अहो सुबल बैठहु भैया हो हम तुम भापैं एक बेरी।
लै तिनका भापत उनकी कछु अपनी करत बड़ेरी।"[59]

मातृ हृदय का सुंदर चित्र उन्होंने खींचा है—

"भाई लेन देहु जो मेरे लालैं भावै।
दधी माखन चौगुनौ दै ऊँगी या सुत के लेखैं जाकौ जितनौ आवै।
सरबस ताहि दैऊँगी जो मेरे नान्हरे गोविंद पाँ पाँ चलन सिखावै।"[60]

कृष्ण के गो वत्स के साथ खेलने का उल्लेख गोचारण के प्रसंग में किया गया है—

"आपु गोपाल कूक मारत है गो सुत कों भरि कौरी।
थे थे करत लकुटि कर लीने मुख सों पकरि पिछौरी।"[61]

फाग व हिंडोरे के पदों में विभिन्न रंगों की संयोजना के साथ उल्लास को अभिव्यक्त किया गया है—

"छबीले लाल के संग ललना झूलत नव सुरंग हिंडोरे।
सोभित तन गोरे स्याम पीरो पटु कसुंभी सारी।
जटित मानिक मानि पटुला बैठे इक जोरी।
तेसी हरित भूमि तैसि के थोरी-थोरी बूँदें।
वैसिये गावति त्रिय तैसोइ घन मधुर-मधुर घोरें।"[62]

चतुर्भुजदास ने प्रकृति के सुंदर चित्र कृष्ण स्वरूप चित्रण, रास लीला में नृत्य की विभिन्न भंगिमाओं को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। अपने संक्षिप्त जीवन में जो काव्य रचना उन्होंने की उससे उनकी सामर्थ्य का परिचय मिलता है। भक्ति भावना तथा कृष्ण के प्रति आसक्ति उनके काव्य का मुख्य विषय है। कृष्ण जन्म से लेकर गोपी विरह तक की लीला का गान उन्होंने किया है। लोक संस्कृति के विभिन्न रूपों की ओर उनका ध्यान नहीं गया है। संगीत तथा सम्प्रदाय संबंधी सिद्धांतों पर ही उन्होंने बल दिया है। इस दृष्टि से उनका काव्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूरदास, परमानंददास जैसे महाकवियों की तुलना में न्यून ठहरता है। परन्तु भावाभिव्यक्ति में, चित्रात्मकता में वे किसी से कम नहीं हैं—

"नैननि ऐसी बानि परी।
बिन गिरधरन लाल मुख जुग भई गनत धरी।
मारग जग उलटि तिन चितयौं मोतिन दृष्टि भरी।
तब ही तें लागी है एकटक निमिख मरजाद हरी।
चतुर्भुजदास छुड़ावन को हठि मैं विधि बहुत करी।
तैं सर्व सुहरि कों हरि दीनों देह दसा बिसरी।"[63]

कृष्ण का सुंदर रूप नेत्रों की आदत उसे देखने की, तथा रूप के आकृषर्ण के सम्मुख सभी प्रयासों के विफल हो जाने की मार्मिक अभिव्यक्ति उक्त पद का सौंदर्य है। रूपासक्ति के और गोपियों के माध्यम से स्वयं उनके अपने ऐसे अनेकों उद्‌गार, उनके काव्य में बिखरे हुए हैं।

नंददास

नंददास का जन्म सोरो के समीपवर्ती रामपुर गाँव के एक ब्राह्मण कुल में सं॰ 1590 में हुआ था। सोरों में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ वे संस्कृत के विद्वान और ब्रजभाषा के कवि के रूप में विख्यात हो गए। संगीत विषयक निपुणता भी उन्होंने प्राप्त कर ली। युवावस्था में वे चंचल प्रवृत्ति के थे। ब्रज आने पर गोसाईं विट्ठलनाथ के उपदेश से उनकी वृतियाँ निर्मल हो गई सांसारिक विषयों का परित्याग कर वे कृष्णोपासक भगवद्‌भक्त हो गए। उन्होंने विट्ठलनाथ जी से मंत्रदीक्षा ली और उनके आदेश से गोवर्द्धन जाकर सूरदास के सतसंग में रहने लगे। उन्होंने अपने हृदय की प्रमोसक्ति श्रीनाथ जी के चरणों में लगा दी। संगीत के ज्ञाता होने के कारण कीर्तन-पद्धति में बहुत शीघ्र उन्होंने प्रवीणता प्राप्त कर ली। श्रीनाथ जी की भक्ति के प्रभाव स्वरूप उनके काव्य में भी रागात्मकता और तन्मयता का गुण उत्पन्न हो गया। काव्य और संगीत दोनों क्षेत्रों में उनकी विलक्षण प्रतिभा को देखकर सं॰ 1607 में श्री विट्ठल ने उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित कर लिया। वे इसके अंतिम सदस्य थे। उनका निवास गोवर्धन में मानसी गंगा के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे था। यहीं उनकी मृत्यु सं॰ 1640 में हुई। अष्टछाप कवियों की भाँति नंददास ने भी कीर्तन के अनेक पदों की रचना की। इसके अतिरिक्त भी अनेक ग्रंथों की रचना उन्होंने की है। कृष्ण भक्ति संप्रदाय में आने से पूर्व भी वे काव्य रचना करते रहे होंगे क्योंकि उनके श्रीराम और हनुमान विषयक पद भी मिलते हैं। दीक्षित होने के बाद उन्होंने कृष्णलीला का गायन प्रारंभ किया। नंददास ने रासलीला के सुंदरतम पदों की रचना की है परंतु उनका महत्व पद रचना की अपेक्षा ग्रंथ रचना की दृष्टि से है। नंददास के नाम से अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। उनके प्रामाणिक ग्रंथ 1. अनेकार्थ मंजरी, 2. मानमंजरी, (नाममंजरी, नाम माला, नामचिंतामणि) 3. रस मंजरी, 4. रूपमंजरी, 5. विरहमंजरी, 6. श्याम सगाई, 7. सुदामा चरित, 8. रुक्मिणी मंगल, 9. भ्रमरगीत, 10. रासपंचाध्यायी, 11. सिद्धांत पंचाध्यायी, 12. दशम स्कंध भाषा माने जाते हैं। इनमें भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुदामाचरित संदिग्ध रचना मानी जाती है। सूरदास की संगति के प्रभाव स्वरूप नंददास के कई पदों पर सूर का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सूरदास की सम्मति से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद पुनः ब्रज आने से पहले उन्होंने भाषा तथा साहित्य का विशद अध्ययन किया होगा। अनेकार्थ मंजरी और नाममाला जैसे कोशग्रंथ इसी समय लिखे गए होंगे। रूपमंजरी, रसमंजरी और विरहमंजरी चौपाई छंद में लिखी गई हैं। इस शैली पर उनका पूर्ण अधिकार दिखाई देता है। जायसी और तुलसी के बाद सरस चौपाई की संरचना करने वालों में नंददास का नाम लिया जाता है। रसमंजरी तथा रूपमंजरी में नायिका भेद तथा रस शास्त्र का निरूपण किया गया है। इस ग्रंथ का लक्ष्य पुष्टि संप्रदाय की माधुर्य भक्ति की स्थापना करना है परंतु लौकिक दृष्टि से यह शृंगार की प्रतिष्ठापना करने वाला सफल काव्य है। रसमंजरी में नायिका भेद का वर्णन है। भक्त कवि होते हुए भी इन ग्रंथों की रचना में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं है। आने वाली रीतिकालीन शैली की झलक इनमें मिल जाती है। श्याम सगाई में कृष्ण के साथ राधा की सगाई का वर्णन किया है। भागवत में यह कथा नहीं है। वल्लभ संप्रदाय में राधा को स्वकीया माना गया है इसी के अनुरूप इस ग्रंथ का कथा विस्तार किया गया है। सुदामा चरित और रुक्मिणी मंगल का उपजीव्य काव्य भागवत है। 'रुक्मिणी मंगल' नंददास की काव्य प्रतिभा को दर्शाने वाला ग्रंथ है और उनकी भावप्रवणता शक्ति को सिद्ध करता है। 'भ्रमरगीत' तथा 'रासपंचाध्यायी' उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ मानी जाती है। भ्रमरगीत में उद्धवगोपी संवाद की परंपरा का पालन करते हुए निर्गुण पर सगुण की विजय प्रतिपादित की गई है। योग तथा ज्ञान की अपेक्षा वल्लभाचार्य की प्रेमाभक्ति के महत्व को निरूपित किया गया है। अष्टछाप के सभी कवियों ने भ्रमर गीतों की रचना इन्हीं उद्देश्यों को लेकर की है परंतु उनमें विस्तार से ग्रंथ रूप में निर्माण सूरदास के बाद नंददास ने ही किया है। सूरदास के भावोद्‌गारों और भाव विह्वलता के साथ नंददास के भ्रमरगीत में तर्कशक्ति का सुंदर सामंजस्य किया गया है। इसकी छंद योजना में भी उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। रोला और दोहा के मिश्रित छंदों के अन्त में दस मात्रा की एक टेक देने से संगीतात्मकता के गुण में विशेष सौंदर्य उत्पन्न हो गया है। संगीत योजना की पूर्णता के साथ नाट्‌यतत्व का समावेश भी इसमें सफलतापूर्वक हो गया है। रासपंचाध्यायी में नंददास की कला का और भी निखरा हुआ रूप दिखाई देता है। कोमलकांत पदावली और श्रुति मधुर शैली की संयोजना के कारण यह ग्रंथ अनुपमेय है। जयदेव के गीतगोविंद के समान शब्दों का नाद सौंदर्य कवि की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। इस ग्रंथ की रचना भी उन्होंने अपने प्रिय छन्द रोला में की है। सिद्धान्त पंचाध्यायी में रास पंचाध्यायी की सैद्धान्तिक व्याख्या की गई है। दशम स्कंध भाषा में भागवत के दशम स्कंध के 29 अध्यायों का ब्रज भाषा में भावानुवाद किया गया है। नंददास की कृतियों के इस विवेचन से स्पष्ट है कि उनकी रचनाओं का आधार श्रीमद्‌भागवत्‌ है। अपनी कल्पना द्वारा उन्होंने भागवत में उपलब्ध सामग्री को रोचक व आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है।

अष्टछाप कवियों में सूरदास के बाद नंददास ने ही पद रचना के अतिरिक्त भिन्न शैली में दोहा, चौपाई, रोला में काव्य रचना की। सूरदास ने भी इस भिन्न शैली का सीमित प्रयोग किया है। नंददास ने इस शैली को अपनाने के साथ-साथ उनका सरस और सफल निर्वाह भी किया है। इस प्रकार काव्यात्मकता की दृष्टि से अष्टछाप में अपने विशिष्ट स्थान का निर्माण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया। नंददास की मौलिकता भाषा के सुंदरतम प्रयोग में है। भाव के साथ-साथ भाषा पर उनका यह अधिकार उन्हें अन्य कवियों से एकदम अलग कर देता है। शब्दों के माध्यम से वातावरण का सजीव वर्णन उनके काव्य की अपनी ही विशेषता है—

"चिरैया चुहचुहानी, सुनि चकई की बानी,
कहति जसोदा रानी, जागो मेरे लाला।
रवि की किरन जानी कुमुदिनी सकुचानी,
कमल विकसानी दधि मथै बाला।" [64]

प्रातःकाल की लालिमा के साथ मातृ-हृदय का सजीव वर्णन इन पंक्तियों में किया है। प्रेम, शृंगार और यौवन की विविध भंगिमाओं को उन्होंने इस प्रकार चित्रित किया है—

"कृष्ण नाम जब तें स्रवन सुन्यौ री आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैन चितहूं न परै चैन,
मुखहुँ न आवै बैन तन की दसा कुछ और भई री।
जेतक नेम धरम किए री मैं बहुबिधि
अंग अंग भई हौं तौं स्रवन भई री।
नंददास जाके नाम सुनत ऐसी गति,
माधुरी मूरति है धौं कैसी दई री।" [65]

पूर्वानुराग के कारण अंग-अंग के स्रवन हो जाने की कल्पना प्रेम की तीव्रता को अभिव्यक्त कर रही है। भ्रमरगीत में विरह की तीव्रता और तर्क का समन्वित रूप प्रस्तुत किया गया है। गोपियों की पीड़ा द्रष्टव्य है—

"इहि बिधि सुमिरि गोविन्द कहत ऊधौ प्रति गोपी,
भृंग संज्ञा करि कहत सकल कुल लज्या लोपी,
ता पीछे एक बार ही रोई सकल ब्रजनारि।
हा करूनामय नाथ हो, केसौ कृष्ण मुरारि।
फाटि हिय दृग चाल्यौ।" [66]

वात्सल्य और शांत रस में वे चाहे सूरदास और परमानंददास से भावाभिव्यक्ति में पीछे रह गए हों परंतु कलात्मकता और शब्द चयन में कुछ आगे ही ठहरते हैं। अष्टछाप की दार्शनिकता और विभिन्न विचार बिंदुओं का सफल निर्वाह उनके काव्य में मिल जाता है। लोक जीवन के साथ भी अपना संपर्क उन्होंने टूटने नहीं दिया है। भक्ति की प्रधानता के कारण लोक को लगभग उन्होंने भुलाए रखा है परंतु अवसर मिलते ही उसे अपने काव्य में समुचित प्रतिनिधित्व दिया है—

"ललहि उठाई, छती लपटाई। लै आई जहँ जसुमति माई।
ब्रज रानी अनेक धन वारति। पुनि पुनि राई नोन उतारति।
गोमूत्र लै ललहि नृवाई। गोरज गोमय अंग लगाई।" [67]

भाषा की सांगीतिकता, भावात्मकता और प्रवाहमयता नंददास के काव्य में देखते ही बनती है। कोमलकांत पदावली का प्रयोग शब्दों की सामर्थ्य को द्विगुणित कर देता है। भाषा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के इस गुण के आधार पर ही नंददास को जड़िया तथा अन्य कवियों को गढ़िया घोषित किया गया है—

"रंग रंग रली अली, छखि सों छिरकत छवि पुरगली,
कंठनि हीरा आनन बीरा, पाइन बाज मंजु मंजीरा।" [68]

होली के अवसर पर बजाए जाने वाले वाद्यों के साथ, शब्दों का चयन इस प्रकार किया गया है कि वाद्यों की ध्वनि अपने आप गूँजती हुई प्रतीत होती है। रास पंचाध्यायी में उन्होंने पुष्टिमार्गीय भक्ति के सिद्धांतों का, नवधा भक्ति का सुंदर निरूपण किया है।

अष्टछाप और अष्टछापी कवियों के काव्य के विश्लेषण से सिद्ध हो जाता है कि यह सभी कवि भक्ति को साध्य मानकर चले हैं। काव्य परिमाण की दृष्टि से सूरदास, नंददास और परमानंददास का स्थान महत्वपूर्ण है। अन्य कवियों ने कीर्तन पद्धति के अनुरूप पदों की रचना की है परंतु नंददास काव्य सौष्ठव और सौंदर्य तथा भावानुभूति के चित्रण द्वारा अपने महत्व को अष्टछाप में सुरक्षित रखा है। काव्य कला का यह समस्त सौंदर्य कृष्ण भक्ति की पृष्ठभूमि में निरूपित किया गया। कृष्णलीला के माध्यम से प्रत्येक भाव का निवर्हण करना उनकी कलात्मकता का प्रमाण है। अपनी पूर्ववर्ती काव्य परंपराओं और सिद्धांतों को भी समुचित स्थान उन्होंने दिया है और साथ ही अपनी मान्यताओं की पुष्टि भी करते चले हैं। सूरदास परमानंददास ने शांत, वात्सल्य, शृंगार और समकालीन संस्कृति का समग्र चित्र प्रस्तुत किया। एक-एक भाव की गहराई में जाकर उसके एक-एक कोण को काव्य भाषा में बाँध दिया। नंददास ने भाव के साथ भाषा का सर्वाधिक सजा-सँवरा रूप प्रस्तुत किया और आने वाले कवियों के लिए भाव तथा अभिव्यंजना के नए प्रतिमान स्थापित किए। कुंभनदास ने माधुर्य भाव के सुंदर चित्र खींचे तो कृष्णदास ने सामंती वैभव को कृष्णलीला के माध्यम से प्रदर्शित किया। संगीत तथा नाद सौंदर्य की दृष्टि से वे अष्टछाप में सर्वोत्तम माने गए। गोविंदस्वामी विख्यात संगीतज्ञ थे और उन्होंने संगीत की सूक्षमताओं को काव्य का विषय बनाया। चतुर्भुजदास ने भाव-संप्रेषण के गुण से, पहले से ही वर्णित भावों को एक नवीन रीति से अभिव्यक्त किया और अपने काव्य के आकर्षण को बनाए रखा। भक्ति, वात्सल्य, शृंगार तथा बाललीलाओं में उनकी इस शक्ति का परिचय मिल जाता है। छीत स्वामी ने सरल सौंदर्य से अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न किया। उनके काव्य का कला पक्ष चाहे अन्य कवियों की अपेक्षा प्रौढ़ न हो, भाव सौंदर्य उन्हीं की टक्कर का है। आचार्य वल्लभ ने पुष्टि संप्रदाय के प्रचार के लिए जिस पद्धति को प्रचलित किया गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा उसी को अष्टछाप के माध्यम से संर्वधित किया गया। अष्टछाप के कवियों, भक्तों और संगीतज्ञों ने उनके अनुमान और विश्वास को सत्य प्रमाणित कर दिया। गायन पद्धति द्वारा कृष्ण भक्तिधारा की लोकप्रियता में जो वृद्धि हुई उसने सगुण तथा निर्गुण भक्ति की धाराओं को भी अपने ही रूप में ढाल लिया। ब्रजभाषा के जिस मधुर और साहित्यिक रूप की प्रतिष्ठापना अष्टछाप के द्वारा की गई उसने दीर्घावधि तक कवियों में अपने लिए आकर्षण बनाए रखा। सेवाविधि के विस्तार की गोस्वामी विट्ठलनाथ की नीति द्वारा विभिन्न कलाओं को विकसित होने का अवसर मिला। संगीत कला चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। अष्टछापी काव्य इस कसौटी पर पूर्णत: उतरा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

उसमें निरूपित विभिन्न राग-रागिनियों तथा उनका सृजन करने वाले कवि अपने युग के प्रमुख

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकर्षण सिद्ध हुए। उनकी यह देन प्रत्येक जाति-संप्रदाय द्वारा स्वीकार की गई। अन्य कलाएँ भी पल्लवित होने लगीं। इस सबका विशद विवेचन आगे किया जा रहा है।

आचार्य वल्लभ की लोकोन्मुख दृष्टि तथा अष्टछापी काव्य

अष्टछाप के प्रेरक, संस्थापक तथा कवियों के संक्षिप्त परिचय के पश्चात् यह आवश्यक है कि इस बात की परख की जाए कि श्री वल्लभाचार्य जी के विचारों का प्रतिफलन अष्टछाप काव्य में किस प्रकार किया गया है। क्योंकि अष्टछाप की स्थापना का यही प्रमुख उद्देश्य था। आचार्य वल्लभ अपने युग के क्रांति दृष्टा आचार्य थे। उन्होंने समाज की विसंगतियों और राजनैतिक अत्याचारों का सामना करने के लिए लोकशक्ति का आह्वान आवश्यक समझा। भक्ति और दर्शन को लोक से परे न ले जाकर लोक से जोड़ने में ही लोक-कल्याण देखा। अतः अपने विचारों और सिद्धांतों से एक ऐसे मार्ग को प्रदर्शित किया जिसमें सभी राग-विराग अन्तर्हित हो जाते हैं। जनता का मनोबल ऊँचा करने के लिए उन्होंने उसे कृष्णभक्ति की ओर उन्मुख करके एक ऐसा लक्ष्य उनके सामने प्रस्तुत किया जो सहज सुलभ था। वर्णगत, जातिगत भेदों को मिटाकर केवल कृष्णभक्त वर्ग के निर्माण की नींव डालकर सामाजिक एकता का मार्ग प्रशस्त कर दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने आचार्य के इसी सूत्र को ग्रहण कर अपने संप्रदाय में लोक को और भी अधिक प्रतिनिधित्व देने के प्रयास के फलस्वरूप अष्टछाप की संरचना की और आचार्य वल्लभ की लोकोन्मुख दृष्टि से विस्तार दिया।

श्री वल्लभाचार्य जी लोक साधक थे। लोक के उद्धार की महद् भावना से प्रेरित होकर ही कृष्ण की शरणागति स्वीकार की और पुष्टिमार्ग की स्थापना द्वारा लोक को भी इसी मार्ग से चलकर कृष्ण की शरण में आने का आमंत्रण दिया। अपने देशाटन तथा विभिन्न यात्राओं द्वारा उन्होंने लोक को उद्बोधित करने का प्रयास किया। सहज और सरल भावाभिव्यक्ति द्वारा उनकी प्रेम भावना को कृष्ण की ओर मोड़ा। अपने पांडित्य तथा शास्त्र ज्ञान के आधार पर उन्होंने समाज के प्रतिभाशाली व्यक्तियों को अपनी विचारधारा की ओर मोड़ कर एक नवीन संस्कृति के निर्माण का संकल्प लिया। इस अभिनव संस्कृति ने लोकजीवन को एक नया दृष्टिकोण दिया। उपेक्षित साधारण से साधारण मनुष्य को भी उसकी गरिमा से अवगत कराया।

श्री वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण के अलौकिक और क्रांतिकारी व्यक्तित्व को अपनी विचारधाराओं का केंद्र बनाया। कृष्ण-कथा से लोकजीवन का संबंध स्थापित कर कृष्ण को सर्वसाधारण के लिए सुलभ कर दिया। अपनी भक्ति पद्धति द्वारा समाज के लिए एक ऐसी जीवन पद्धति का निर्माण किया जो आत्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ उसे भौतिक शांति भी प्रदान करती है। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की—

"सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिप।"[69]

अर्थात् भगवान सर्वदा सर्वभाव से भजनीय हैं। उनका मत था कि प्रेम, द्रोह, भाव या कुभाव किसी भी प्रकार से कृष्ण का ध्यान व्यक्ति के लिए कल्याणकारी होता है। लोक कल्याण की यह भावना ही कृष्ण कथा को लोक के साथ जोड़ने में समर्थ हो सकी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रीमद्‌भागवत में भी कहा गया है कि कृष्ण को समर्पित प्रत्येक भाव अपने लौकिक रूप को छोड़ ईश्वरीय हो जाता है।[70] नारद भक्ति सूत्र में भी कहा गया है कि "तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम।"[71]

इस सूत्र के अनुसार भी सभी लौकिक भावों को परमात्मा के प्रति निवेदित करना चाहिए। गीता में श्रीकृष्ण ने भी कहा है—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।"[72] यद्यपि सभी प्रकार के भावों से ईश्वर को भजने की बात कही गई है परंतु वल्लभाचार्य जी ने केवल प्रेम और प्रीति के भावों को ही चुना और उन्हीं को लोक से उठाकर कृष्ण के साथ लगाया।

प्रेम का यह सिद्धांत सामान्य जीवन के अनुकूल था। विद्याहीनता और बुद्धिहीनता के उस युग में उत्तरी भाग में जाति-पाँति के भेद से मुक्त सभी वर्ग के लोगों ने इस मार्ग को स्वीकार कर लिया। सरलता का यह सिद्धांत आचार्य वल्लभ ने सामान्य लोक को ध्यान में रखकर ही अपनाया। व्यावहारिकता की दृष्टि से पुष्टि मार्ग समाज को साथ लेकर चलने वाला सिद्ध हुआ। इस मार्ग में समर्पण की भावना को सर्वाधिक महत्व उन्होंने दिया। समर्पण का अर्थ है संसार की अहंता, ममता का त्याग कर श्रीकृष्ण के चरणों में आत्मनिवेदन कर उनका अनुग्रह प्राप्त करना। आत्म निवेदन की यह भावना मूलतः श्रीमद् भागवत में मिलती है जहाँ श्रीकृष्ण "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" का उपेदश देते हैं। वे स्पष्ट करते ये दारा दारागार पुत्राप्रप्राणन वित्तमिमं परं कहते हैं—

"हित्वामां शरणं यातः कथं तां स्तयुक्तुमुत्सहे।"

उपर्युक्त उक्ति का तात्पर्य यही निकलता है श्रीकृष्ण अपनी शरण में आए व्यक्ति का परित्याग कभी नहीं करते। वल्लभाचार्यजी ने 84 अक्षरों के 'गद्यमंत्र'[73] साथ-साथ "श्रीकृष्णः शरणं मम" के अष्टाक्षर, सामान्य दीक्षामंत्र की व्यवस्था भी की। इसे नाम मंत्र भी कहा। साधारण मनुष्य भी अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए इसका पालन कर सकता है।

श्री वल्लभाचार्य ने कहीं भी संसार को त्याग कर तपस्या करने का उपदेश नहीं दिया केवल सांसारिक विषयों के त्याग का उपदेश दिया। काम स्त्रीभाव में, क्रोध शत्रु भाव में और भय बधिक भाव में होता है। यदि यह सभी भाव प्रत्येक क्षण भगवान में ही लगे रहेंगे तो भगवन्मय हो जाएंगे। सर्वभाव से गोकुलाधीश श्रीकृष्ण की भक्ति ही जीवन का परमार्थ है। सुबोधिनी के छठे अध्याय फल प्रकरण की कारिका में उन्होंने कहा है—

"एवं रूप प्रपंचस्यस पंचधा रसवर्णनम्।
निरूप्य नामलीलातो रसार्थमिद मुच्यते ॥1॥
एवभद! भुतभक्तस्तु यद्यन्यं समुपासते।
दुःख भाजो भवन्त्ययेव मुच्यन्ते हरिणैव तु ॥2॥

प्रेम पर आधारित भक्ति का आस्वादन दो प्रकार से किया जाता है—प्रथम स्वरूपानंद, द्वितीय नाम लीला आनन्द। कृष्ण प्रेम की प्राप्ति के लिए उन्होंने नवधाभक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद, सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, और आत्मनिवेदन के साधना क्रम को अपनाने की आज्ञा दी। इस साधना द्वारा पूर्ण प्रेम की स्थिति आती है—

"साधनादिप्रकारेण नवधाभक्तिमार्गतः।
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant
प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्याः स्पंदभानाः प्रकीर्तिताः ॥10॥" जलभेद षोडश ग्रंथ

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेम से श्री वैराग्य आदि भगवद् धर्मों का प्रादुर्भाव होता है और फिर इन धर्मों से ईश्वर के कृपारूपी फल की अनुभूति भक्त को होती है। यह 'कृपा' ही वल्लभाचार्य जी के अनुसार साध्य है। प्रेमलक्षणा भक्ति ही वल्लभाचार्यजी लोक में प्रसारित करना चाहते थे और अपने शिष्यों द्वारा इस उद्देश्य में वे सफल भी हुए। उनके बाद अष्टछाप संप्रदाय द्वारा भक्ति के इस रूप को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया गया। भक्ति का यह मार्ग रसानुपूरित होने के कारण सामान्य प्रजावर्ग में अत्यंत लोकप्रिय सिद्ध हुआ।

भक्ति की प्रथम साधनावस्था में वल्लभाचार्य जी ने सभी मनुष्यों को गृहस्थाश्रम में रहकर धर्म-पालन करने का आदेश दिया है और गृहस्थी के कर्मों को कृष्ण की इच्छा मानकर निभाने का आदेश दिया है क्योंकि भगवान सब कुछ है उन्हीं का रूप सर्वत्र है और उन्हीं से सब कुछ उत्पन्न हुआ हैं।[74] इस प्रकार उन्होंने ज्ञान का संयोग भक्ति के साथ, भक्ति की साधनावस्था में कर दिया। उनके शिष्यों में गृहस्थ और संन्यासी दोनों ही वर्गों के लोग थे। अष्टछाप के चार कवि गोविंद सिंह, छीतस्वामी, कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए ही कृष्ण की आराधना की। सामान्य जीवन व्यतीत करते हुए भी ईश्वर कृपा की प्राप्ति उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

सामान्य लोक जीवन को केन्द्र में रखकर वल्लभाचार्य जी ने नवधा भक्ति का प्रचार किया। इसमें से प्रथम तीन श्रवण, कीर्तन और स्मरण भगवान के नाम और लीला से संबंधित है तथा पादसेवा, अर्चन और वन्दन उनके रूप से। दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन मानसिक स्थिति की द्योतक है। भगवान के यश, महत्ता, गुण नाम और लीलाओं को श्रद्धापूर्वक सुनना और सुनाना ही श्रवण भक्ति है। अष्टछाप साहित्य में सर्वत्र श्रवण के महत्व का गान किया गया है। सूरदास ने प्रत्येक लीलागान की समाप्ति पर उसके फल पर विचार किया है—

"जो यह लीला सुनै सुनावै सो हरिभक्ति पाई सुख पावै।"[75]
"जो पद स्तुति सुनै सुनावै सूर सो ज्ञान भक्ति को पावै।"[76]

उन्होंने लीला श्रवण के फ़ल के सम्मुख अष्टसिद्धियों और नव निधियों की प्राप्ति को भी कम आँका है। मन को कृष्ण अमृत रस मिलने के स्थान पर चलने को कहा, और श्रवणों का सार्थकता इस रस कथा को सुनने में मानी—

"रास रस लीला गाई सुनाऊँ।
अष्टसिद्धि नवनिधि सुख सम्पत्ति लघुता करि दरशाऊँ।"[77]
"सुवा चलि वा बन को रस लीजे।
जा बन कृष्ण नाम अमृत रस श्रवण पात्र भरि पीजै।"[78]
"श्रवनन की जु याहे अधिकाई सुनि रस कथा रस प्यावै।"[79]

परमानंद दास ने भी इसी प्रकार के विचार प्रगट किए हैं—

"यह माँगौ संकरषण बीर।
"स्रवन देउ तौ हरिकथारस ध्यान देहु तो स्याम सरीर।"[80]

कृष्णदास ने भी श्रवण की महिमा का गान किया है—

"रसिक कथा जु सुनी नहीं स्रवननि रह्यौ विषय रस में लपटानै।
सोच मिथ्यौ नहिं उर अंतर कौ समुझि समुझि लाग्यौ पछितानै।"[81]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नंददास ने रास पंचाध्यायी के अंत में श्रवण का महात्म्य प्रगट किया है—

"जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै।
प्रेमभक्ति सो पावै अरू सबके जिय भावै।"[82]

तथा "अमृत नाम अमी जहाँ कान्हर कथा मत्त रहत सब लोग"[83] कहकर श्रवण को अमृत रस के समान मस्त बना देने वाला कहा है।

कीर्तन की परिभाषा "नामलीला गुणादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्तनम्"[84] दी गई है जिसके अनुसार लीलाओं का ऊँचे स्वर में गान कीर्तन कहलाता है। वल्लभाचार्य जी ने कीर्तन को भी ईश्वर की कृपा प्राप्ति का साधन घोषित किया और सामान्य रास, रस गान को कृष्ण कथा से जोड़ा। ईश्वर के गुणगान को लौकिक मनुष्यों के गुणगान से श्रेयस्कर बताया। भगवान के गुणगान को अपनाने वाले नीच वर्ण के व्यक्ति को भी उन्होंने ब्राह्मणों से श्रेष्ठ बताया क्योंकि नाम-गान में सभी तीर्थों का समावेश अपने आप हो जाता है। कीर्तन का आधार गायन कला से वल्लभाचार्य ने जोड़ा और उनकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अष्टछाप साहित्य कीर्तन पद्धति का निरूपक साहित्य बन गया। वल्लभाचार्य के विचारों की प्रतिष्ठा करने के लिए भक्त कवियों ने कीर्तन की महिमा तथा उसमें अपनी लीनता का वर्णन किया है—

"जो सुख होत गुपालहिं गाएं।
सुख होत न जब कीन्हैं कोटिक तीर्थ न्हाऐं।"[85]
"माई हौं गिरिधर के गुन गाऊँ, मेरे तो प तप व्रत एई हैं
निसिदिन और नरूचि उपजाऊँ।"[86]
"हरि जू की लीला काहि न गावत।
रामकृष्ण गोविंद छांडि मन और बकै कहा पावत।"[87]
"श्री बल्लभ पदरज प्रताप तें गिरिधर जस कृष्णदास गायो।"[88]
"गाऊँ गुण गोपाल लाल के अष्ट व्याधि ते डरिये।"[89]
"हरि को विमल यश गावत निरंतर जा रे रसना।"[90]

लौकिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए भी ईश्वर का नाम स्मरण किया जा सकता है इस बात पर वल्लभाचार्य जी ने अत्यधिक बल दिया है। भक्ति के इस साधन में नाम जप का महत्व सर्वाधिक होता है। जिस प्रकार पनिहारिन अन्य कार्य करते हुए भी सर पर रखे घड़े का ध्यान रखती है वैसे ही मनुष्य को भी कृष्ण नाम में अनुरक्त रहना चाहिए। भक्ति शास्त्र के ग्रंथों का अनुकरण करते हुए वल्लभ संप्रदाय में सदा कृष्ण चिंतन का उपदेश दिया गया है। अष्टछाप में कवियों ने अपने साहित्य द्वारा स्मरण की महिमा का बखान किया है। सूरदास ने आधे पल की विस्मृति को भी अनुचित माना है—

"हरि हरि हरि सुमिरन करौ। आधे पल कहुं अनि विस्मरो।"[91]

परमानंददास ने अपने मन को निरंतर कृष्ण के साथ विचरण करते हुए बताया है—

"जहिं जहिं चरन कमल माधौ में तहीं तहीं मन मोर।
चिंतन करै जसोदा नंदन मुदित सांझ अरु भोर।"[92]

कृष्णदास ने नाम के स्मरण और जाप पर बल दिया है—

"श्रीकृष्ण श्री कृष्ण शरणं मम उच्चै र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रैनिनदिन नित्य प्रति सदा पल छिनु घरी,
करत विध्वस जन अखिल अघ परिहरै।"[93]

कुंभनदास, गोविंद स्वामी और छीतस्वामी ने कृष्ण की रूप स्मृति पर बल दिया है।

"कहा करौं? उह मूरति मेरे जिय तें न टरई,"[94]
"मोहन नैनन तें नहिं टरत।
बिनु देखे तलाबेली सी लागत देखत मन जुहरत।"[95]
"सुमिरि मन गोपाललाल सुंदर अति रूप जाल।"[96]

भक्ति की उपरोक्त तीनों विधियों में नाम जाप की महत्ता स्वयं सिद्ध है। नाम के बिना भाव प्रकाशन का कोई आधार नहीं रह जाता है। नाम-कीर्तन और नाम-जप दोनों ही साधक की वासनाओं को समाप्त कर ईश्वर कृपा का मार्ग प्रशस्त करते हैं। सूरदास ने भवसागर पार करने की नौका नाम को बताया तो परमानंद ने कल्पद्रुम—

"भव अंबोधि नाम निज नौका सूरहिं लेहु चढ़ाइ।"[97]
"भगत बछल ऐसो नाम कल्पद्रुम बरदायक परमानंद दास।"[98]

नंददास ने गोपियों की अनुभूति के माध्यम से नाम महिमा का वर्णन करते हुए कृष्ण के नाम उन्मत्त कर देने वाला, रूपमाधुरी की लालसा उत्पन्न करने वाला बताया है।

"कृष्ण नाम जबतै सुन्योरी आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि-भरि आवैं नैन चित्त हूं न परै चैन,
तन की दसा कछु औरै भई री।
नंददास जाके श्रवन सुनि ऐसी गति,
माधुरि मूरति कैंधों कैसी दई।"[99]

लोकसेवक की मनोवृत्ति को अपनाकर श्रद्धापूर्वक भगवान की सेवा-पाद सेवन है। प्रारंभ में मूर्तिपूजा, गुरुपूजा तथा भगवद्पूजा में पाद सेवन की अभिव्यक्ति होती है बाद में सेवा के अभ्यास से एकाग्रता आ जाने पर मानसिक जगत में अभौतिक चरणों की सेवा, साधक करता है। वल्लभाचार्य जी ने अर्चावतार श्रीनाथ जी के स्वरूप की पाद सेवा का प्रचलन किया। उनके शिष्यों ने स्वयं उन्हें तथा श्री विट्ठलनाथ को भगवान रूप मान कर चरण सेवा की। गुरु स्तुति व गुरु सेवा अष्टछाप साहित्य का अभिन्न अंग है। गुरु के अतिरिक्त भगवत्भक्तों को भी कवियों ने अपनी सेवा और श्रद्धा का पात्र बनाया। इस तत्व के द्वारा वल्लभाचार्य ने लोक को अपनी सीमा में समाविष्ट कर लिया। भक्ति के लिए किसी जाति की अनिवार्यता समाप्त करके भगवद्भक्तों को ही उच्चतम जाति में निबद्ध कर दिया। तत्कालीन समाज की धार्मिक स्थिति को देखते हुए यह निर्णय क्रांतिकारी था। स्वयं उन्होंने इस सिद्धांत का क्रियात्मक उपदेश दिया। वल्लभ दिग्विजय के अनुसार अंतर्साक्ष्यों के आधार पर संभवतः उन्होंने बलात् धर्म परिवर्तन से मुसलमान हुए व्यक्तियों को हिन्दू धर्म में लिया था। अपने प्रयासों से नष्ट होते हुए हिंदू धर्म को उन्होंने एक सशक्त आधार प्रदान किया।

श्री वल्लभाचार्य के शिष्यों ने भी उनके इस सिद्धांत का अनुमोदन किया। सूरदास ने [illegible] ब्राह्मण से बड़ा माना—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"श्वपच प्रसन्न होंइ बड़ सेवक बिनु गोपाल द्विज जन्म न भावै।"[100]

परमानंदास ने "माधौ के महल में करत फिरत टहल" की आकांक्षा व्यक्त की।[101] कृष्णदास ने चरणकमल की शरण लेकर नखमनि को देखने की इच्छा प्रगट की है—

"तेरे चरन की हौं सरन।
निरखि नखमनि ज्योति वैभव मुदित अन्तःकरन।"[102]

चरण सेवा की अभिलाषा प्रायः सभी कवियों ने की हैं—

"रहौं सदा चरनन के आगे महाप्रसाद उच्छिष्ट पाऊँ।
नंददास यह मांगत हौं श्री बल्लभ कुल को दास कहाऊँ।"[103]
"सदा सेवौं श्री बल्लभ नंदन कहा करौ जाइ कासी।"[104]

भक्ति वर्द्धिनी ग्रंथ में श्री वल्लभ ने कहा है—"अव्यावृतो भजेत्कृष्णं पूजया श्रृवणादिभिः"[105] अर्थात् भक्त को पूजा से तथा श्रवण कीर्तन आदि साधनों से भगवान का भजन करना चाहिए। यह पूजा ही अर्चन भक्ति कही जाती हैं। बाह्य रूप की स्थूल पूजा के लिए श्री आचार्य ने षोडशोपचार आवाहन, आसन, अर्ध्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभूषण, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, नैवेद्य, ताबूंल, परिक्रमा और वंदना की व्यवस्था की है। वल्लभ की इस विधि में सामान्य दैनिक जीवन के सभी अंगों का निरूपण कर दिया गया हैं। आठों पहर की सेवा के विधान से मन की चंचलता को बांधने का प्रयास उन्होंने किया है।

अष्टछाप काव्य में सूरदास, परमानंददास और छीतस्वामी ने ही अर्चन भक्ति का प्रतिपादन किया है। सूरदास ने नवम स्कंध में अंबरीष की अर्चनाविधि का वर्णन किया। दूसरे अध्याय में विश्वव्यापी विराट् भगवान की आरती की—

"हरिजू की आरती बनी।
अधआसन अनूप अति डांडी शेष फनी।
मही सराव सप्त सागर घृत बाती शैली धनी।
रवि शशि ज्योति जगत् परिपूरण हरत तिमिर रजनी।"[106]

परमानंददास ने भ्रम निशा के व्यतीत होने पर आरती का विधान किया है—

"मंगल आरती कर मन मोर भरम निसा बीती भयो भोर।
मंगल बाजत झालर ताल मंगल रूप उठे नंदलाल।
मंगल धूप दीप कर जोर मंगल सब गावत ओर
मंगल उठयो मंगल रस मंगल पल परमानंददास।"[107]

नंददास ने वरुण द्वारा कृष्ण की पूजा में अर्चन विधि का वर्णन किया है।[108] छीतस्वामी ने यशोदा द्वारा कृष्ण की आरती का उल्लेख किया है—

"दीप अद्‌भुत जोति प्रगट जगमग होति
वारि वारति फेरि अपने गुपाल को।"[109]
"आरति करति जसुमति रिखि ललन मुख अति ही आनन्द भरि प्रेम भारी।
कनक थारी जटित रत्न मुक्ता खचित दीप धरि हुलसि मन बारि वारी।"[110]

गोवर्द्धन पूजा के प्रसंग में प्रायः सभी कवियों ने अर्चना विधि के षोडशोपचार का वर्णन किया है। परमानंददास ने इस अवसर पर एक लंबा पद लिखा है।[111]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भगवान के स्वरूप की स्तुति उनके सन्मुख नतमस्तक होना ही उनकी वंदना करना है। प्रायः अर्चन और वंदन दोनों साथ-साथ होते हैं। वल्लभाचार्य जी ने अपने कई ग्रंथों का प्रारंभ हरि की वंदना से किया है। अष्टछाप के सभी कवियों ने वंदन का उल्लेख किया है। सूरसागर का प्रारंभ ही हरि की वंदना से हुआ—

"चरन कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे अंधे को सब कछु दरसाई।"[112]

नंददास ने अपने कई ग्रंथों में वंदना का निरूपण किया है—

"नमो नमो आनन्द घन सुंदर नंद कुमार
रसमय रस कारन रसिक जग जाके आधार।"[113]

कृष्णदास और कुंभनदास ने आलंकारिक शैली में कृष्ण की वंदना की है।

"नमो ब्रज-जुवति-मन सरसि राजहंसे
अस्तु में सुदृढ़ रति हरिदासवर्ये
सिर रत्न कर कमलकर कलित बंसे।"[114]
"जयति पट्ट पीत दामिनी रुचिर बर मृदुल अंग सांवल सजल जलद बरने।
कर अधर बेनु धरि गान कलत सुसब्द सहज ब्रज जुवति जन चित्त हरने।"[115]

परमानंददास ने मंगलाचरण के रूप में तथा छीत स्वामी ने कृष्ण को प्रसन्न करने के प्रयोजन से वंदना की है—

"चरन कमल बंदौं जगदीश जे गोधन संग धाए।
जे पद कमल धूरि लपटाने गोपिन उर लाए।"[116]
"नवाऊँ लालै। आयो सरन यह जो प्रयोजन।"[117]

श्री वल्लभाचार्य जी ने जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भावना प्रेम को कृष्ण प्रेम में परिवर्तित किया है। मानव जीवन में लौकिक प्रेमभावना के जितने भी रूप हो सकते हैं, उन सबका पर्यवसान कृष्ण में कर दिया है। कृष्ण को केंद्र बनाकर इन भावों का विस्तार उन्होंने किया है। आचार्यजी की लोकोन्मुख दृष्टि के परिणामस्वरूप कृष्ण से परे प्रेम का कोई भाव अस्तित्व में नहीं रहता। दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य प्रेम के चारों रूपों का प्रभाव और विस्तार उन्होंने कृष्ण प्रेम के संदर्भ में किया है परंतु स्वरूपों की सेवा बाल भाव से ही करने का विधान बनाया है। वात्सल्य भाव को उन्होंने प्रेम भक्ति की पहली सीढ़ी माना है। संतान के समान भगवान की सेवा और स्नेह प्रदर्शन उन्होंने आवश्यक माना है। सांसारिक जीवों के लिए यह कठिन भी नहीं था इसलिए सामान्य जनता ने हर्ष और उत्साह से उनके विधानों को स्वीकार कर लिया। वल्लभाचार्य ने कृष्ण की एकाकी पुरुष रूप तथा युगल रूप एकाकी उपासना को स्वीकार किया। अष्टछाप के कवियों ने भी कृष्ण और उनकी अभिन्न शक्ति राधा की स्तुति की। सूरदास, परमानंददास और कुंभनदास की वार्ताओं से स्पष्ट है कि अंत समय में उनकी वृत्ति युगल रूप में ही रमी और इस प्रकार वल्लभसंप्रदायी परमानंदमयी मोक्ष स्वरूप युगल ईश्वर की रासलीला में उन्हें प्रवेश मिला। प्रेम के विषय में श्री वल्लभ के इन्हीं विचारों का प्रत्याख्यान अष्टछाप साहित्य में हुआ है।

अन्तःकरण प्रबोध ग्रंथ में श्री वल्लभाचार्य ने कहा है कि श्रीकृष्ण को लौकिक स्वामी की तरह नहीं देखना चाहिए—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"पश्चाताप कथं तत्र सेव कोऽहं न चान्यथा।
लौकिक प्रभुवत्कृष्णों न द्रष्टव्यः कदाचन।
सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति।"[118]

इस प्रवचन द्वारा निष्काम भाव से कृष्ण की दास्य भक्ति को निष्पन्न करने का उपदेश दिया गया है। 'कृष्णाश्रय' ग्रंथ में दास्य भाव के साथ स्वदोष प्रकाशन, विनय, दैन्य आदि भावों द्वारा ईश्वर से शरण की याचना की गई है।[119] सूरदास तथा परमानंददास ने अपने को महापतित कहते हुए कृष्ण कृपा की लालसा प्रगट की है। अन्य कवियों ने इस विषय पर अधिक नहीं लिखा है—

"हरि हौं महापतित अभिमानी।"[120]
"ताते तुम्हरो मोहिं भरौसौ आवै।
दीनदयाला पतित पावन जस वेद-उपनिषद गावै।[121]

वल्लभाचार्य जी ने दैन्य धारण को हरि तुष्टि का सबसे बड़ा उपाय कहा है। आत्मनिवेदन में भक्त यदि अपने दोषों का बखान करता है तो दैन्य में अपनी अक्षमता का। दैन्यभाव से अहंकार का नाश हो जाता है और साधक पूरी तरह ईश्वराधीन हो जाता है जैसे अबोध बालक माता का सान्निध्य चाहता है परंतु अशक्त होने के कारण उस तक पहुंच नहीं सकता, रोकर माता को बुलाता है ठीक वैसे ही आर्तभाव से ईश्वर को पुकारने पर वह स्वयं आकर भक्त को स्वीकार कर लेते हैं। अष्टछाप साहित्य में श्री वल्लभ के इन विचारों का प्रकाशन विनय तथा विरह के पदों में हुआ है। प्रायः सभी कवियों ने दैन्य भाव को निरूपित किया है। सूरदास ने दैन्य भाव के साथ-साथ अपना उद्धार करने के लिए कृष्ण पर अपना अधिकार भी प्रदर्शित किया है—

"दीनानाथ अब बार तुम्हारी।
"पतित उधारन बिरद जानि के बिगरी लेहु संवारी।
अब या व्यथा दूरी कखै को और न समरथ कोई
सूरदास प्रभु करुणा सागर तुम ते होई सो होई।"[122]

परमानंददास ने भी आर्त होकर कृष्ण को पुकारा है तथा उनके चरणों में रहने की कामना प्रगट की है।

"कबहूं करि हौं द्यौ दया।
हस्त कमल की हमहू ऊपर फेरि जैहो छया।"[123]
"अपने चरन कमल को मधुकर हमहू काहे न करहू जू।
कृपावंत भगवंत गुसांई इहि विनती चित धरहू जू।"[124]

कृष्णदास ने श्रीकृष्ण में अपना अटूट विश्वास प्रगट किया है। वे अपने उद्धार के लिए पूरी तरह से उन पर निर्भर हैं—

"श्री गोवर्द्धनधारी राखेंगे।
जे हरि इंद्र कोप ब्रज राख्यौ सोई अपने जन राखेंगे।"[125]

नंददास ने श्री विटठ्ल के प्रति अपनी दास्य भावना का प्रकाशन किया है, कृष्ण के प्रति नहीं। अन्य कवियों ने दास्य भाव की भक्ति को स्वीकार नहीं किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सख्य भक्ति में लौकिक मित्रता के भाव को ही भगवान के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है। श्रीमद्‌भागवत् में—

> *"अहो भाग्यमहो भाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम्।*
> *यन्मित्रं परमानंद पूर्ण ब्रह्मसनातनम्।"*[126]

—के द्वारा ब्रजवासियों के सौभाग्य से ईर्ष्या प्रगट की गई है। जिन्हें पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण ने अपना मित्र माना। वल्लभाचार्य जी ने प्रेम के इस रूप को स्वीकार तो किया क्योंकि यह तत्कालीन समाज की आवश्यकता थी परंतु विस्तार से अपने मत प्रगट नहीं किए। बाद में इसी सूत्र का विकास अष्टछाप साहित्य में किया गया। अष्टछाप के आठों भक्त कवियों को कृष्ण के सखाओं के नाम दे दिए गए। मानसिक जगत् में सख्यभाव का अनुभव करने के प्रमाण इन कवियों के उपलब्ध जीवनी प्रसंगों से मिल जाते हैं। गोविंद स्वामी और चतुर्भुजदास की जीवनी में ऐसे कई प्रसंग, श्रीनाथ जी के साथ घोड़ा बनकर खेलना, कंकड़ी मारना, वन में गोचारण करना आदि वर्णित हैं।

सख्य भक्ति के प्रसंग में अष्टछाप साहित्य में किशोरों के पारस्परिक खेल, लड़ाई-झगड़े, मान-मनौवल का ही वर्णन है। सभी कवियों की रुचि इस विषय में रही है और उनके एक से एक सुंदर चित्र खींचे गए हैं। मित्रता में वर्गभेद को भुलाकर केवल खेल भावना पर ही बल दिया गया है। अप्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष को दूर करने का प्रयास किया गया है और मित्रों के समान निश्छल व निष्काम प्रेम के प्रसार द्वारा एकजुट होकर रहने की शिक्षा दी गई है।[127]

गोचारण प्रसंग में भी सहयोग और भेदभाव भुलाकर सहभोज की भावना को बढ़ावा दिया गया है।[128] तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति को देखते हुए यह नितांत आवश्यक था। आततताइयों का सामना एकजुट होकर ही किया जा सकता है। और इसके लिए एक समान खान-पान होना जरूरी है। सखाओं के सहयोग से ही कृष्ण वन-प्रसंग में आई विपत्तियों का सामना करते हैं। कृष्ण और उनके मित्रों के इस घनिष्ठ संबंध का वर्णन सभी कवियों ने किया है—

> *"जेंवत अरू गावत है सारंग की तान कान्ह,*
> *सखनि के मध्य छाक लेत कर छीन।"*[129]
> *"बांटत छाक गोवर्धन ऊपर बैठत नाना बहुविधि चौर।"*[130]
> *"पातनि पै धरत भात दधि सिखरन लिए हाथ*
> *नाचत मुसिकात जात सांवरों कन्हैया।"*[131]
> *"गोवर्धन गिरि स्निंग सिलन पर बैठेऽब छाक खात दधि ओदन।*
> *आस पास ब्रज बालमंडली मधिऽब हो बल मोहन,*
> *बैठऽब खावत प्रेम प्रमोदन।"*[132]

कृष्ण-सुदामा की मित्रता के वर्णन द्वारा भी अष्टछाप साहित्य में वर्ग-भेद भुलाकर भाव का सम्मान करने की रीति स्थापित करने का प्रयास किया गया है। सूरदास ने अर्जुन और सुग्रीव की मित्रता का वर्णन भी किया है।

श्रीनाथजी की सेवा-पद्धति में श्रीवल्लभाचार्यजी ने वात्सल्य भाव की सेवा को सर्वाधिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महत्व दिया है। इसके द्वारा लौकिक भावनाएं सरलता से मिट जाती हैं। और शीघ्र ही निरोध की स्थिति आ जाती है। वात्सल्य मानव जाति का व्यापक भाव है इसलिए सामान्य प्राणी भी इसें भली-भांति हृदयंगम कर सकता है। वल्लभाचार्यजी ने इसीलिए, स्वयं को यशोदा मानकर ईश्वर भक्ति करने का उपेदश दिया। यही एक ऐसा भाव है जिसमें आदान-प्रदान की आकांक्षा नहीं रहती है, मातृ हृदय की इसी विशिष्टता को उन्होंने महत्व दिया। अन्य संबंधों, यहां तक कि पिता की भी, उन्होंने उपेक्षा की है। अष्टछाप साहित्य में इस भाव का जितना विशद चित्रण हुआ है उतना उपजीव्य काव्य श्रीमद्भावगत में भी नहीं हुआ। वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में मातृहृदय की कोमल से कोमल भावनाओं का प्रस्फुटन सूरदास और परमानंददास के काव्य में हुआ है—

"मेरो नान्हरियां गोपाल बेगि बड़ो किनि होहि।
इहि मुख मधुरे वयन हंसि कबहूं जननि कहौगे मोहि।"[133]
"जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलौगे।
ता दिन अति आनन्द गिनोंरी माई रूनक ढुनक ब्रज गलिन में डोलैगो।"[134]

नंददास कृष्ण के किशोर रूप के उपासक थे इसलिए वात्सल्य भाव के चित्र उनके काव्य में कम हैं। सूर जैसी आंतरिकता का भी वहां अभाव है। यही स्थिति कुंभनदास, कृष्णदास, गोविन्द स्वामी तथा छीतस्वामी की भी है। चतुर्भुजदास ने अवश्य मधुर भाव से भक्ति करते हुए वात्सल्य के सुंदर चित्र खींचे हैं—

"माई लैन देहु जो मेरे लालहिं भावै।
दधि माखन चौगुनों देऊँगी या सुत के लेखे जाकौ जितौ आवै।
पलना झूलत कुलदेव अराध्यौ जतन जतन करि घुटुरून धावै।
सर्वसु वाहि देऊँगी जो मेरे नान्हरें गोविंद पां पां चलन सिखावै।"[135]

वियोग वात्सल्य का जैसा चित्रण सूरदास ने किया है,[136] वैसा किसी अन्य कवि ने नहीं किया। वल्लभाचार्य जी ने वियोग पर उतना बल नहीं दिया क्योंकि वे जनसाधारण में यही विश्वास बैठाना चाहते थे कि ईश्वर सदैव उनके साथ है।

लोक में प्रेम के जितने भी रूप हो सकते थे, वल्लभाचार्य जी ने सभी को कृष्ण के साथ जोड़ दिया है। सांसारिक दृष्टि से देखें तो कृष्ण को साधारण मानवों के समान प्रेम या काम में संलग्न दिखाकर उन्हीं को लोक के लिए सुलभ बना दिया है। संसार में लौकिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष से संबंधित प्रेम का प्रसार जितना अधिक है उतना और किसी भाव का नहीं। लोकानुभूत इस संबंध की व्यापकता के आधार पर ही काव्यशास्त्र में शृंगार को रसराज कहा गया है। सभी भावों का अन्तर्भाव एक सीमा तक रति भाव में हो जाता है। आत्मनिवेदन और आत्मविस्मृति के क्षण भी इस भाव में शीघ्र ही आ जाते हैं। इन्हीं सब कारणों को देखकर महाप्रभु वल्लभ ने माधुर्य भाव को प्रमुखता दी। आध्यात्मिक संबंध की अनुभूतियों को लौकिक शृंगार की भाषा में अभिव्यक्त कर उसे सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाया और अप्रत्यक्ष रूप से उनकी काम भावना को शुद्ध करने का प्रयास किया। उन्होंने सुबोधिनी में स्पष्ट कहा है—"कृष्ण के काम में काम की सब क्रियाएं हैं परंतु उनमें काम नहीं है। गोपियों के लौकिक काम का शमन और अलौकिक काम की पूर्ति निष्काम भाव द्वारा हुई थी। यदि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लौकिक काम से काम की पूर्ति होती तो उससे संसार उत्पन्न होता। परंतु यहां तो गोपी-कृष्ण दोनों में लौकिक काम का अभाव है और संसार से निवृत्ति है।"[136] रासलीला प्रकरण के अंत में भागवत में भी कहा गया है कि इस लीला को सुनने से काम रोग रूपी हृदयरोग का नाश होता है।[138]

अष्टछाप साहित्य में श्री वल्लभ के मतानुसार ही माधुर्य भाव की उपासना की गई है। अष्टछाप के कवियों ने स्त्रीभाव को अपना कर स्वकीया, परकीया तथा मातृप्रेम को अभिव्यक्त किया है। प्रायः सभी कवियों ने राधा को कृष्णप्रिया मान स्वकीया प्रेम का चित्रण किया है और इस प्रकार लोक-मर्यादा का उल्लघंन नहीं किया। जहां इसके उल्लंघन का उल्लेख है वहां भी अन्नयपूर्वा भाव का समावेश कर दिया गया है। स्वकीया भाव की चरम सीमा कृष्णदास के निम्न पद में व्यक्त की गई है—

"ज्यौं त्यौं राखौं रहूं जो देहु सौ खाऊँ तू ही मेरौ पति गति लैउ तेरो नाउं॥
मेरे जाने तजहु गिरिधरन जो तुमहिं छांडि प्रिय कौन पै जाउँ।
कृष्णदास कहै या त्रिभुवन में तेरे बिना हरि नाहिं कहुं ठाउं।"[139]

परकीया भाव के अंतर्गत भी कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ और एकान्तिक प्रेम का प्रकाशन किया गया है—

"मैं तो प्रीति स्याम सों कीनी।
कोउ निन्दो कोऊ बन्दो अब तों यह कर दीनी।
जो पातिव्रत तो या ढोटा सों इन्हें समर्प्यो देह।
जो व्यभिचार नंदनंदन सों बाढयो अधिक स्नेह॥"[140]

प्रेम में आसक्ति का चित्रण प्रत्येक कवि ने किया है और कृष्ण के आकर्षण में बंध जाने का प्रत्याख्यान किया है।

"मैं उन तन, उन मो तन चितयो तबहीं मैं उर हाथ बिकानी।
उदर धकधकी, टकटकी लागी तन व्याकुल मुख फुरतिन बानी।"[149]
"सांवरौ बदन देखि लुभानी..."[142]
"कृष्ण नाम जब तैं स्त्रवन सुन्योरी आली भली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैन चितहू न परै चैन, तन की दसा कछु औरै भई री।"[143]
"नंदसुवन कौ देखत रूप नैनति नृपति न होति।..."[144]
"निरखत रूप ठगौरी लागरी उत कौं डग भरि चल्यौ न जाइ।
छीत स्वामी गिरिधरन कृपा करि मो तन चितै मुरि मुसिकाई।"[145]
"चितवनि में कछु टोनों कीनों मोहन-मंत्र पढ़ाई।
विकल भई मन लीने डोलति बिनु देखे न रहाई।"[146]
"जाति हुती बन काज सखिनि संग रही ठगी धुनि सुनत कान।"[147]
"नैकु चिते चले री लालन सखी ले जुगए चित चोरि।
तब तै ही द्वारे ठाढ़ी चितवति ही प्रीतम की मुसिकानी मुख मोरि।"[148]

माधुर्यभाव की उत्कट अवस्था में लोक तथा वेद की मर्यादा उल्लंघन करने का वर्णन भी किया गया है। इस समय तक साधक लौकिक विधि निषेध की सीमा से ऊपर उठ जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप साहित्य में प्रेमलक्षणा भक्ति का यह रूप भक्त कवियों के आत्मिक चरमोत्कर्ष का सूचक है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भक्ति की प्रारंभिक अवस्था में लोक-मर्यादा को उन्होंने आवश्यक माना है। श्री वल्लभाचार्य जी ने वियोग को संयोग की उपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माना क्योंकि उसमें आत्मतल्लीनता, ठोस, मिलन की आकांक्षा अधिक तीव्र होती है। अष्टछाप साहित्य में भी विरह का काव्यशास्त्रीय तथा आध्यात्मिक चित्रण किया गया है। व्यावहारिक दृष्टि से सामान्य जन को अपनी प्रिय वस्तु के वियोग में, जो तत्कालीन परिस्थितियों के कारण प्रत्येक के लिए संभव थी, धैर्य धारण करने की शिक्षा दी है।

वल्लभाचार्य जी ने सेवा को तनुजा, वित्तजा तथा मनजा तीन प्रकार का बताया है। भक्त का शरीर भगवत्कार्य में लगे यह शारीरिक सेवा है, धन को अपना न समझकर भगवान का मानकर उन्हें अर्पित कर दे यह वित्तजा है और इन दोनों के अभ्यास से उत्पन्न होने वाले भाव आदि के द्वारा प्रभु की सेवा मनजा या मानसी सेवा है। सामान्य जीवन को दृष्टि में रखकर उन्होंने मनुष्य को कोई भी सेवाविधि अपनाने की आज्ञा दी है। पुष्टिमार्गीय सेवाविधि में उन्होंने दैनिक जीवन के सभी अंगों का समावेश कर लिया। श्रीकृष्ण के चरित्र में शरणागतवत्सलता और भक्तवत्सलता के गुणों के सन्निवेश द्वारा जनसाधारण को भगवान का अनन्याश्रय लेने को प्रेरित किया और पौराणिक उपाख्यानों द्वारा इसकी पुष्टि भी की।

भक्तिवर्धिनी में वल्लभाचार्य जी ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्य घर में रहते हुए भी अपने वर्ण और आश्रम के धर्म का पालन कर सकता है परंतु उसे तन, मन और धन से प्रभु की सेवा भी करते रहना चाहिए।[149] संन्यास निर्णय ग्रंथ में संन्यास को अनावश्यक बताया है।[150] संन्यास लेने पर भी संन्यासी के बाह्य वेश, दंड-कमंडल आदि धारण करना अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार अपने विचारों को सामान्य जीवन के अनुरूप उन्होंने प्रचारित किया। अष्टछाप के कवियों ने भी गृहस्थ के कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों को निभाते हुए भक्ति की साधना की।

श्री वल्लभाचार्य संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित थे, उनके लिखे अनेक ग्रंथ उपलब्ध है। इन ग्रंथों से उनका भाषा पर अधिकार और विद्वता प्रगट होती है। इतना होने पर भी ब्रज आने पर आचार्यजी ने जब श्रीनाथजी की स्थापना की तो कीर्त्तन व भजन का प्रबंध संस्कृत में न करके स्थानीय भाषा ब्रज में किया। ब्रजभाषा का यह सम्मान उन्हें लोक के निकट ले गया और साधारण जन ने उनके साथ अपनी अंतरंगता का अनुभव किया। श्रीनाथजी के मंदिर की नींव के साथ ही साहित्यिक ब्रजभाषा का शिलान्यास भी हो गया। ब्रजभाषा के विकास में आचार्य जी का यह महत्वपूर्ण योगदान है। वल्लभाचार्यजी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान जीवन की सामान्य कलाओं को चरमोत्कर्ष तक पहुंचाना है। इस्लामी शासन में वातावरण के विरुद्ध इस कार्य को संपादित करना उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। अपने जीवन काल में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कृष्ण कथा में अनेकों कलाओं की संभावनाएं उन्होंने उत्पन्न कर दीं। पुष्टिमार्गीय सेवाविधि द्वारा इन कलाओं को धर्म के साथ जोड़ दिया। उनके सुयोग्य पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी ने सांप्रदायिक उत्तरदायित्व संभालते ही सबसे पहले पुष्टिमार्गीय सेवाविधि का विस्तार करने का आयोजन किया। ठाकुरजी के नित्योत्सवों तथा वर्षोत्सवों को भव्य तथा कलात्मक रूप से मनाए जाने की परंपरा को प्रचलित किया। उनमें उनके द्वारा स्थापित क्रम आज तक वल्लभ संप्रदायी मंदिरों में प्रचलित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। श्रृंगार, भोग और राग को सेवाविधि के साथ जोड़कर विभिन्न कलाओं का विकास किया गया। श्रृंगार, भोग के माध्यम से वस्त्र तथा आभूषण निर्माण-कला को विकसित किया गया। वल्लभाचार्यजी ने पाग और मुकुट श्रीनाथ के सिर के आभूषण माने थे। विठ्ठलनाथजी ने दो के स्थान पर आठ उपकरणों मुकुट, सेहरा, टिपारा, कुल्हा, पाग, दुमाला, फेंटा और ग्वालपगा का उल्लेख कर उनके निर्माण में सूक्ष्म कला का सन्निवेश अनिवार्य माना। राधा तत्व की संयोजना द्वारा उन्होंने स्वामिनी जी के विभिन्न आभूषणों को निर्मित कराया। सिर के अतिरिक्त मस्तक, मुख, कटि, हस्त, चरण आदि के भी अनेकों आभूषणों को सम्मिलित किया। आभूषणों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का निर्माण भी करवाया जो नित्य, पर्वोत्सव तथा ऋतु के अनुसार बदलते रहते थे। इससे भी बढ़कर वस्त्राभूषणों को कलात्मक ढंग से धारण करने की कला का भी विकास किया। मुकुट की लट किस ओर हो तथा रंग संयोजना कैसी हो इसकी विधि का विकास भी उन्होंने किया। मंदिरों के निर्माण द्वारा स्थापत्य तथा मूर्तिकला का विकास किया। मंदिरों की बाह्य साज-सज्जा के स्थान पर आंतरिक साज-सज्जा पर बल दिया जिसके फलस्वरूप चित्रकला आदि के द्वारा चित्रकारों की कल्पना व सृजन शक्ति सामने आ सकी। श्रीनाथ जी के मंदिर में पहले दिन से ही कीर्तन की व्यवस्था उन्होंने की। कुंभनदास को सबसे पहला कीर्तनकार नियुक्त किया और कालांतर में सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास आदि अष्टछाप के कवियों द्वारा कीर्तन पद्धति का विकास किया। आठों झांकियों और ऋतु के आधार पर विभिन्न रागों के गायन का क्रम सुनिश्चित किया। इस प्रकार गायन, वादन तथा नृत्य व अभिनय की कलाएं अपने शीर्ष पर पहुंच गई। भोग के माध्यम से विविध पदार्थों को सुंदर व स्वादिष्ट रूप में श्रीनाथ जी को समर्पित करने का नियम बनाया और पाकशास्त्र को पाककला के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। अन्नकूट को उत्सव रूप में मनाने की प्रथा प्रारंभ की। विठ्ठलनाथ जी ने छप्पन भोग की परंपरा भी संप्रदाय में शुरू की। सं० 1950 में गोकुल में उन्होंने एक वृहद् छप्पन भोग का आयोजन किया। जिसमें गोकुल और गोपालपुर के सभी सेव्य स्वरूप पधराए गए थे।

वल्लभाचार्य जी और विठ्ठलनाथजी का उद्देश्य विभिन्न कलाओं के उत्कर्ष द्वारा सामान्य लोक कला साधकों को आजीविका के सुअवसर प्रदान करना था। ब्रज में जो कलाकार मुसलमानी शासन में स्वयं को उपेक्षित अनुभव कर रहे थे, सृजनात्मकता का अवसर पाकर अपनी कलाओं की उत्कृष्टता प्रमाणित करने में संलग्न हो गए। वल्लभाचार्य की इस लोकोन्मुखी दृष्टि के फलस्वरूप रंगाई, छपाई, वाद्ययंत्र बनाने वाले, पुष्पसज्जा करने वाले माली आदि अनेक छोटे कलाकारों को भी प्रोत्साहन मिला। धर्म को लौकिक जीवन से जोड़कर उन्होंने कर्मशील समाज की नींव डाली। अपने सिद्धांतों द्वारा ब्रज के लोकमानव को निर्भयता, परिश्रम तथा सहयोग और साहचर्य जैसे गुणों से पूरित किया। अपनी भाषा की उन्नति कर उस पर गर्व करना सिखाया और इस प्रकार एक पूरी जाति का खोया हुआ विश्वास वापस लाने का प्रयास किया। समाज में स्त्रियों, बालकों के प्रति अपार आदर व प्रेम का प्रसार किया और अपने भक्तिसिद्धांतों द्वारा मनुष्य हृदयगत रागों को दूर करने का प्रयास किया।

अष्टछाप कवियों ने इस लोकोन्मुखी दृष्टि-रूप को आत्मसात करके अपने काव्य में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सदैव के लिए जीवन्त बना दिया। लोक प्रतिनिधित्व के जिस उद्देश्य के लिए अष्टछाप की रचना की गई उसका सफल निर्वाह करके उन्होंने अपनी कुशलता और निष्ठा का प्रमाण दिया। सामान्य जनजीवन को केंद्र में रखकर रचा गया उनका काव्य भावात्मकता और कलात्मकता को संतुलित अनुपात में व्यक्त करने वाला काव्य बन गया। अपने युग को प्रतिबिंबित करने के कारण इस काव्य का ऐतिहासिक महत्व भी आने वाली पीढ़ियों के लिए स्थापित हो गया। लोक संस्कृति और लोकोन्मुखी दृष्टि को अपनाने के कारण अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक महत्व किसी भी काव्य के लिए ईर्ष्या का विषय है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रज-लोक-संस्कृति का विकासात्मक अध्ययन

संस्कृति का स्वरूप

संस्कृति समाज सापेक्ष है। समाज को लेकर ही उसकी सार्थकता है। अंतःसलिला की भांति प्रत्येक राष्ट्र और जाति के जीवन में यह प्रवाहित होती रहती है। संस्कृति का मूल संबंध बुद्धि से है जैसे-जैसे मनुष्य के ज्ञान और क्रिया शक्ति का विकास होता है वैसे-वैसे संस्कृति का भी विकास होता है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन एक विशिष्ट आचार-विचार, रीति, व्यवहार और धर्म से जुड़ा होता है, ये तत्व ही उसका संस्कार करते हैं—संसार के अन्य प्राणियों से अलग एक विशिष्टता प्रदान करते हैं। इस प्रकार संस्कृति का प्रारंभ मनुष्य के शिक्षण और संस्कार से होता है। सुसंस्कृत व्यक्ति न केवल अपने लिए अपितु समाज के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार "सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (ञ) धातु के योग से संस्कृति शब्द बनता है जिसका अर्थ परिष्कृत करना है।"[1] एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार, "सम् उपसर्ग कृ धातु से भूषण आ्थ में सुट् का आगम करके किन् प्रत्यय लगाने से संस्कृति शब्द बनता है इसका अर्थ है भूषण कृत सम्यक् कृति।"[2] डॉ. प्रसन्न कुमार के अनुसार, "इसमें परिमार्जन या आविष्कार के अतिरिक्त शिष्टता एवं सौजन्य के भावों का भी समावेश आ जाता है।"[3]

संसार के सभी प्राणियों में पशु, पक्षी, कीट, पतंगों आदि में जीव की चेष्टाएं स्वाभाविक होती हैं। उनमें सम्यक् और असम्यक् का भेद नहीं किया जा सकता। मनुष्य ही समस्त प्राणियों में कर्म करने के लिए स्वतंत्र है। वह सम्यक् तथा असम्यक् दोनों कर्म कर सकता है। इसलिए सम्यक् चेष्टा या कृति, अर्थात् संस्कृति का संबंध मनुष्य से ही है। भूषणभूत सम्यक् चेष्टाएं वे हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करता हुआ सुख-शांति प्राप्त करता है। संस्कृति को किसी काल-विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। यह देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार निरंतर विकसित होती है। यह मनुष्य की संपूर्ण जीवन-शक्तियों और प्रगतिशील साधनाओं का सामूहिक प्रतिफलन है। लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक या सामाजिक अभ्युदय से प्रभावित होकर मन, बुद्धि आदि जो प्रभाव ग्रहण करते हैं वही संस्कार संस्कृति का निर्माण करते हैं। संस्कृति में व्यक्तिगत संस्कार का भाव प्रधान है। व्यक्तिगत संस्कारों की परंपराएं समाज तथा देशों के निजी वैशिष्ट्य का निर्माण करती हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यक्तित्व के विकास में संस्कार सोपान के समान हैं जो उसे निरंतर ऊँचा उठाते जाते हैं। इसलिए 'संस्कृति' के विकास में संस्कार भी अपने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

हिन्दी साहित्य में संस्कृति शब्द का प्रयोग, अंग्रेजी भाषा के कल्चर शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। अंग्रेजी साहित्य में कल्चर शब्द का प्रयोग कृषि तथा पशुपालन के अर्थ में दिया गया है।[4] ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में कल्चर शब्द का अर्थ Tilege of the Soil. भी दे रखा है इसलिए कृषि से भी इसका संबंध जोड़ा जाता है। कल्चर की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा की धातु Colere से निष्पन्न Cultura शब्द से हुई है जो संक्षेप में पूजा करना तथा कृषि संबंधी कार्यों का बोधक है। कल्चर तथा कल्टिवेशन के साम्य के आधार पर संस्कृति की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए डॉ० प्रसन्नकुमार आचार्य ने लिखा है, "कल्टिवेशन का अर्थ कृषि है। भूमि की प्राकृतिक अवस्था को परिष्कृत करना ही कृषि का उद्देश्य है। कृषि की विभिन्न पद्धतियों द्वारा भूमि का परिष्कार किया जाता है। रोड़े, कूड़ा-करकट और घास-तिनके हटाकर भूमि शुद्ध की जाती है। जिससे भूमि उर्वरा बनती है। भूमि की भांति मनुष्य की मानसिक और सामाजिक अवस्थाएं भी विकसित हुआ करती हैं। संस्कृति अथवा कल्चर मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, नैसर्गिक शक्तियों तथा उनके परिष्कार का द्योतक है। जीवन का चरमोत्कर्प प्राप्त करना इस विकास का परिणाम है।"[5] तात्पर्य यह कि जैसे कृषि कर्म द्वारा धरती की निहित उर्वरा शक्ति की वृद्धि द्वारा उसके सौंदर्य में वृद्धि की जाती है। वैसे ही संस्कृति द्वारा मनुष्य की उदात्त भावनाओं तथा उसके मानवीय गुणों का विकास किया जाता है, उसे संस्कारवान बनाया जाता है।

कोलर शब्द के दोनों अर्थों में से पूजा संबंधी अर्थ की अपेक्षा व्यवहार में कृषि संबंधी तात्पर्य को प्रधानता दी गई, एक लंबे समय तक कल्चर तथा सिविलाइजेशन दोनों शब्द एक दूसरे के समानार्थक माने गए पर धीरे-धीरे 19वीं शती के प्रारंभ में यह क्रमशः संस्कृति और सभ्यता के बोधक स्वीकार कर लिए गए। यह दोनों एक-दूसरे से संबद्ध होते हुए भी एक दूसरे से नितांत भिन्न हैं। सभ्यता सहज अनुकरणीय है। जबकि संस्कृति को आत्मसात करने में देर लगती है। संस्कृति का स्वरूप मनुष्य के चिंतन तथा परंपरागत संस्कारों के आधार पर निर्मित होता है। उसका उद्देश्य भौतिक उन्नति के स्थान पर आत्मिक उन्नति है। संस्कृति व्यक्ति तथा समाज का आंतरिक परिष्कार करती है। वह अमूर्त्त विचारों, आदर्शों एवं भावनाओं को विविध रूपों में मूर्त्त स्वरूप देती हुई उन्हें प्रगट करती हैं।

संस्कृति शब्द की व्यापकता निर्विवाद है उसके अंतर्गत किसी भी समाज व देश के आचार-विचार, लोकविश्वास, परंपराएं तथा परिस्थितियां समाविष्ट हो जाती हैं। इसी व्यापकता के आधार पर विद्वानों ने संस्कृति की अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं। श्री महादेव दिवेकर ने सम्यक् कृतियों और परंपरा से प्राप्त संस्कारों की समष्टि को संस्कृति कहा है।[6]

डॉ० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार, "जीवन व्यापारों अथवा सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उच्च आदर्शों की समष्टि ही संस्कृति है। 'कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्नजीवनव्यापारेषु सामाजिक संबंधेषु वा मानवीयत्व दृष्ट्या प्रेरणाप्रदानां तदुदादर्शानां समष्टि रेव संस्कृतिः।'"[7]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र के अनुसार, "संस्कृति मानव जीवन की वह क्रिया तथा स्थिति है

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिससे समूचा जीवन सज उठता है। मांजी संवारी जीवन वृत्ति तथा जीवनचर्या का ही नाम संस्कृति है।"[8]

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने व्यक्ति और समाज दोनों के ही दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए संस्कृति की व्यापक परिभाषा प्रस्तुत की है—"संस्कृति शब्द किसी व्यक्ति के पक्ष में बहुधा उसकी शिष्टता, सौजन्यता अथवा मानवता का बोधक होता है और इन गुणों द्वारा उसकी किसी ऐसी स्थायी मनोवृति का, ऐसे शील का पता चलता है जिसके कारण वह समाज में स्वभावतः उच्च कोटि का गिना जाता है। इसी प्रकार यही शब्द किसी समाज विशेष के पक्ष में उसके उन गुणों का भी द्योतक माना जाता है जो न केवल उसके उदात्त उद्देश्य उसकी ज्ञान-गरिमा, उसके कला-चातुर्य, उसकी भाव प्रवणता तथा उसके विचार स्वातन्त्र्य को प्रकट करते हैं। प्रत्युत जिनके आधार पर उसके सदस्यों में भ्रातृभाव, सहानुभूति एवं सहयोगिता जैसी हार्दिकता भी लक्षित हुआ करती है।"[9]

इस प्रकार संस्कृति मनुष्य के जीवन का अविभाज्य अंग है, जन्म से ही माता-पिता के संस्कार मनुष्य को अपने पाश में आबद्ध कर लेते हैं और धीरे-धीरे उसका शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा भावात्मक विकास करते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति का निर्माण धीरे-धीरे ही होता है। डॉ० मुंशीराम शर्मा ने संस्कृति की विवेचना करते हुए कहा है, "जब हम किसी देश, प्रदेश अथवा प्रांत की संस्कृति की चर्चा करते हैं तब हमारा उद्देश्य उस प्रदेश के विकसित आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, संस्कार, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, पूजा आदि के विधि विधान एवं अनुक्रम का ही उल्लेख करना होता है। एक व्यक्ति और समग्र समाज का भी विकसित एवं संस्कृत जीवन इन्हीं रूपों में प्रगट होता है।"[10]

डॉ० हरवंशलाल शर्मा ने सभी मूलभूत तत्वों का समावेश करने का प्रयास करते हुए संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी है।—"किसी विशिष्ट समाज द्वारा दीर्घ सामाजिक अनुभवों के आधार पर साधु आचरण के जो मापदण्ड स्थिर कर दिए जाते हैं। वे जब सूक्ष्म भावनात्मक रूप में परिणित होकर समाज के दैनिक जीवन में अनायास ही व्यवहार होने लगते हैं तो 'संस्कृति' का नाम पाते हैं।"[11]

उपर्युक्त सभी विद्वानों के विचारों के अनुसार संस्कृति किसी भी जाति अथवा देश में प्राणतत्व की भांति व्याप्त उच्च आदर्शों की अभिव्यक्ति है। इसका प्रगटन, परंपरा के रूप में विकसित होने वाले आचार-विचार, धर्म-दर्शन, सामाजिक रीति-रिवाज, ललित तथा उपयोगी कलाओं के माध्यम से होता है। फिर भी संस्कृति की अंतिम या एकमात्र परिभाषा संभव नहीं है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "अब भी मनुष्य इसके संपूर्ण और व्यापक रूप को नहीं देख सका है। संसार के सभी महान तत्व इसी प्रकार मानव चित्त में अस्पष्ट रूप से आभासित होते हैं। उनका आभासित होना ही उनकी सत्ता का प्रमाण है। मनुष्य की श्रेष्ठतर मान्यताएं केवल अनुभूत होकर ही अपनी महिमा सूचित करती हैं। उनको स्पष्ट और सुव्यवस्थित परिभाषा में बांधना सब समय संभव नहीं होता केवल नेति-नेति कहकर ही मनुष्य ने उस अनुभूति को प्रकाशित किया है।"[12]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

किसी भी देश की संस्कृति का निर्माण उसके धर्म, विश्वास, भौगोलिक परिस्थिति,

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दार्शनिक विचारधारा तथा कलाओं की सृजनशीलता द्वारा होता है और सांस्कृतिक मूल्यों की यही प्रतिष्ठा उस विशिष्ठ देश, जाति या समाज को उन्नति या अवनति की ओर अग्रसर करती है। संस्कृति में लोकमानव की अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण है क्योंकि उसी के द्वारा गतिशील अथवा रूढ़िबद्ध विचारधाराओं का पता चलता है। संस्कृति से संबंधित प्रत्येक तत्व लोक जीवन के माध्यम से ही अभिव्यक्त होता है।

संस्कृति लोकव्यापी तत्व है संसार में ऐसा कोई भी देश नहीं है जिसकी अपनी कोई संस्कृति नहीं है। और न ही ऐसी कोई जाति है जिसके पास अपनी कोई सांस्कृतिक धरोहर न हो। इसी संस्कृति के आधार पर प्रत्येक देश, जाति की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। राजनैतिक उथल-पुथल अथवचा पारस्परिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप यह विभिन्न संस्कृतियां एक दूसरे के निकट आती हैं। और एक-दूसरे पर अपनी छाप या प्रभाव छोड़ती हैं। इस प्रभाव के कारण ही सांस्कृतिक अवधारणाओं में अन्तर आता है। यह परिवर्तन ही संस्कृति को नया जीवन तथा नया स्वरूप प्रदान करता है। उसकी व्यापकता को बढ़ाता है। व्यापकता ही किसी संस्कृति को विश्वजनीन या सार्वजनीन स्वरूप प्रदान करने में समर्थ है। इस दृष्टि से विभिन्न संस्कृति के बीच का स्थान महत्वपूर्ण है। क्योंकि वह समस्त विश्व की कल्याण भावना को आधार बनाकर संकुचित उद्देश्यों की उपेक्षा करके विकसित हुई है राजनैतिक रूप से भारत चाहे पराजित होता रहा है और आक्रान्ताओं द्वारा कुचला जाता रहा है परंतु सांस्कृतिक रूप से उसने उदार मन से इन विदेशी संस्कृतियों को आत्मसात कर लिया है। परिणामस्वरूप उनका पृथक अस्तित्व कहीं नहीं रह गया है। विदेशी रस्मो-रिवाज भारतीय लोक जीवन में घुलमिलकर यहीं के हो गए हैं। यही नहीं भारतीय संस्कृति की धाराएं विभिन्न देशों में आज भी प्रवाहित हो रही हैं। यह सार्वदेशिकता, सार्वजनीनता और सार्वकालिकता भारतीय संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। इसी संस्कृति का अंग होने के कारण ब्रज संस्कृति में भी यह सब गुण स्वतः ही आ गए हैं। इस पर विस्तार से चर्चा आगे की जाएगी, संप्रति लोक संस्कृति से परिचित होना आवश्यक है।

लोक संस्कृति

लोक शब्द का प्रयोग वेदों में भी मिलता है। ऋग्वेद में 'देहि लोकम्'[13] का प्रयोग हुआ है वहां यह शब्द स्थानवाची है। इस प्रकार लोक शब्द भारतीय संस्कृति में वेद शब्द के समान ही प्राचीन सिद्ध किया गया है। ऋगवेद तथा अथर्ववेद में दिव्य और पार्थिव दो अर्थों में लोक शब्द का प्रयोग किया गया है, परन्तु ब्राह्मण ग्रंथों, वृहदारण्यक उपनिषद एवं वाजसनेयी संहिता में लोक के संबंध में इस प्रकार के भेद नहीं किए गए हैं। प्रारंभ में लोक शब्द अपने संकुचित अर्थ वेदेतर या वेद विरोधी में अवश्य प्रयुक्त हुआ था परन्तु कालान्तर में उसने व्यापक अर्थ ग्रहण किया और वह परंपरा का रक्षक, उसे संभालकर रखने वाला और अनुभूति का संवाहक माना जाने लगा। किसी समय लोक का अभिप्रायः सामान्य जीवन से लिया गया था। श्रुति की वैदिकी और तांत्रिकी दो धाराओं का संकेत करते हुए वैदिक और लौकिक परंपरा का भेद स्पष्ट किया गया है। फिर परिस्थितियों के कारण जो धारा प्रबल हुई उसने दूसरी को आत्मसात करने का प्रयत्न किया।[14] विद्वानों ने ऋग्वेद और अथर्ववेद को क्रमशः शिष्ट संस्कृति का द्योतक माना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। ऋग्वेद का आधार विशिष्ट जन-जीवन है तो अथर्ववेद में सामान्य जीवन की धारणाओं का चित्रण किया गया है। लोक शब्द की व्यापकता पर विचार प्रगट करते हुए डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है—"लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन, उस जन की संस्कृति इन तीनों क्षेत्रों में लोक पूरे ज्ञान का अंतर्भाव होता है।"[15]

इस प्रकार संस्कृति का लोक से अभिन्न संबंध प्राचीन काल से ही एक स्थापित सत्य है। गीता में लोकशास्त्र और लौकिक आचारों की महत्ता स्वीकार की गई है। अशोक के शिलालेख लोक के लिए हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश में 'लोक जना' तथा 'लोकप्पवाय' आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्व सिद्ध करते हैं। 'गाथा', 'आख्यान कथा' और 'लोक' जैसे शब्दों का प्रयोग वैदिक काल से हो रहा है और उनका लिखित साहित्यिक रूप भी उपलब्ध है परंतु इन शब्दों के अर्थ विस्तार अथवा संकोच की संभावना के कारण यह आवश्यक नहीं है कि यह शब्द उस समय इसी अर्थ का द्योतन करा रहे होंगे जिस अर्थ में वे आज प्रयुक्त हो रहे हैं। संस्कृत, प्राकृति और अपभ्रंश में प्रचलित लोक के अध्ययन की परंपरा आज हिंदी में भी विकासशील हैं।

लोक शब्द हिन्दी में फोक (FOLK) शब्द का व्यापक रूप प्रस्तुत करता है। फोक की उत्पत्ति एंग्लो सैक्सन शब्द फोक (Folk) से हुई जिसे जर्मन में (Volk) लिखा जाता है। अंग्रेजी भाषा में फोक का प्रयोग अनपढ़, असंस्कृत और मूढ़ समाज के लिए होता रहा है। परंतु अब सर्वसाधारण के रूप में इसका प्रयोग हो रहा है। फोक शब्द हिन्दी के लोक का पर्यायवाची कहा जा सकता है। यद्यपि 'जन' या 'ग्राम' भी इस 'फोक' के अर्थ में आते हैं। परंतु मूलतः दोनों में सूक्ष्म अंतर है। 'जन' प्राचीन शब्द है और इसका अर्थ मानव समाज से है इस आधार पर तो इसे पर्यायवाची मान सकते हैं किंतु प्रयोग तथा परम्परा के आधार पर लोक शब्द फोक से अधिक प्राचीन तथा व्यापक धरातल पर अवस्थित है।

लोक शब्द संस्कृति की लोकृ दर्शने धातु में से घञ् प्रत्यय लगाने से बनता है जिसका अर्थ देखना होता है। लट्लकार के अन्य पुरुष एकवचन का रूप लोकते हैं इसलिए लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार वह समस्त जन समुदाय जो इस देख कार्य (क्रिया) को करता है लोक कहलाएगा।[16] लोक के संबंध में विचार प्रगट करते हुए डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं—"लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों में फैली वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृति समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।"[17]

वस्तुतः साधारण जन समाज ही लोक है। इस शब्द में नागरिक व ग्रामीण दोनों ही संस्कृतियों का समन्वय है। जिस लोक संस्कृति व साहित्य को कुछ समय पहले तक उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा था आज वही आधुनिक परिवेश में परंपराओं का संवाहक माना जा रहा है। लोक-संस्कृति शब्द अंग्रेजी के फोकलोर के समानार्थी के रूप में माना जा रहा है। इस अर्थ के लिए प्रमुख बल डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने दिया है।[18]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" और "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" के अनुरूप 'लोकवार्ता' को ही फोकलोर का समानार्थी माना है। डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० श्याम परमार, डॉ० त्रिलोचन पांडेय आदि ने इसका समर्थन किया है। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने लोकयान शब्द को अधिक उपयुक्त माना है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसके स्थानापन्न, लोकशास्त्र, लोकप्रभाव, लोकविज्ञान, लोकपथ, लोकविधान, लोकायन शब्दों की ओर संकेत करते हुए डॉ० भोलानाथ तिवारी ने लोकायन शब्द पर बल दिया है। व्यवहार की दृष्टि से लोक-संस्कृति शब्द ही अधिक प्रचलित है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार, "लोक-संस्कृति चिर-परिचित शब्द है इसके उच्चारण मात्र से ही जन जीवन का चित्र, उसकी संस्कृति की झांकी हमारी आंखों के सामने उपस्थित हो जाती है।"[19] अतः लोक-संस्कृति शब्द को स्वीकार करना ही उचित होगा।

सामान्य लोकजीवन द्वारा स्वीकार की गई जीवन पद्धति को लोक-संस्कृति की संज्ञा दी गई है। लोक-संस्कृति के क्षेत्र को लेकर विद्वानों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग की विचारधारा के अनुसार लोक संस्कृति, लोक की कला, उसका विश्वास, परंपरा, व्रतादि, अनुष्ठान तथा पर्वों की उद्बोधिका है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने इसी मत का अनुसरण करते हुए लिखा है—"जिन उपनिषदों में आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत्, ब्रह्म आदि का वर्णन है, वे अभिजात संस्कृति के ग्रंथ हैं परन्तु जिनमें लोकजीवन का विवरण है। लोक विश्वास तथा लोक परंपराओं का उल्लेख है उनका संबंध लोक-संस्कृति से है। गृह्य सूत्रों को यदि लोक-संस्कृति का विश्वकोश कहें तो अत्युक्ति न होगी।"[20]

डॉ० सत्येन्द्र ने लोक साहित्य तथा लोक वार्ता पर विचार प्रगट करते हुए लोक वार्ता में तीन मुख्य विषय माने हैं। प्रथम विश्वास तथा आचरण, अभ्यास का संबंध, पृथ्वी, आकाश, वनस्पति जगत, पशु जगत, मानव, मानव निर्मित वस्तुओं, आत्मा तथा दूसरे जीवन, परामानवी शक्तियों, शकुनों, अपशकुनों, भविष्यवाणी, आकाशवाणी, जादू-टोनों, रोगों तथा स्थानों की कलाओं से माना है। द्वितीय रीति-रिवाज के अंतर्गत सामाजिक संस्थाएं व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय धन्धों तथा उद्योग, तिथियों, व्रत तथा त्यौहार, खेलकूद तथा मनोरंजन को सम्मिलित किया है। तृतीय क्षेत्र में कहानियों, गीत तथा कहावतों का अभिन्न संबंध लोक संस्कृति से माना है। कहानियों में सत्य तथा काल्पनिक और मनोरंजन प्रदान करने वाली सभी प्रकार की कहानियों का अ्तर्भाव है। इसी प्रकार गीत के अन्तर्गत विभिन्न अवसरों पर विभिन्न भावों को प्रगट तथा प्रदीप्त करने वाले गीत आते हैं। और कहावतों में पहेलियां, पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय विशेष कहावतें आती हैं। लोक संस्कृति के क्षेत्र की यह परिभाषा पूर्वोक्त संकुचित अर्थ का निराकरण करके लोक संस्कृति को एक व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। यह अभिजात्य तथा ग्राम्य के भेद को समाविष्ट करके चलती है।

लोक-संस्कृति का विस्तार लोक के समान ही माना गया है। लोक में बसने वाला जन, उसकी भूमि और भौतिक जीवन तथा उसके संस्कार सभी का अन्तर्भाव लोक-संस्कृति में हो जाता है। वैदिक काल में अभिजात्य और ग्राम्य अथवा लोक-संस्कृति का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के सूक्त तथा यज्ञादि के वर्णन अभिजात्य संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। तो अथर्ववेद में मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, अंधविश्वास आदि सामान्य लोक संस्कृति के इस स्वरूप को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वीकार नहीं करते। वे मानव की मानसिक संपन्नता के अंतर्गत आने वाली प्रत्येक वस्तु को लोक-संस्कृति के क्षेत्र में मानते हैं। श्रीमती शार्लेट सोफिया बर्न के अनुसार, "यह (लोक वार्ता) एक जातिबोधक शब्द की भांति प्रतिष्ठित है इसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट, विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियां, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़-जगत के संबंध में मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत पदार्थों के विषय में जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य, व्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों के रीतिरिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएं, अवदान (लीजेंड) लोक-कहानियां, साके (बैलेड्स), गीत, किवदंतियां, पहेलियां तथा लोरियां भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में है।[21]

लोक-संस्कृति की व्यापकता इस बात से भी प्रमाणित है कि लोकजीवन प्रत्येक काल में निरंतर परिवर्तनशली तथा प्रवाहमान रहा है इसलिए लोक-संस्कृति किसी विशेष युग अथवा समय की संस्कृति को अपने क्रोड़ में आविष्ठ करके आगे बढ़ती चली जाती है। वैदिक युग की संस्कृति आज प्रचलित नहीं है परंतु लोक-संस्कृति में उसके कोई न कोई तत्व अवश्य मिल जाएंगे। भारतीय संस्कृति में अन्तर्भूत होकर वह जन-जीवन से एकाकार हो गई है। उसकी छाप भारतीय संस्कृति को प्राचीनतम सिद्ध करने में सहायक है। लोक-संस्कृति किसी एक स्थान विशेष से बंधी रहने वाली संस्कृति नहीं है। उसका निर्माण लोक द्वारा हुआ इसलिए इसमें विभिन्न स्थान के निवासियों के विश्वास, रीति-रिवाज सभी प्रतिबिंबित होते हैं। एक-दूसरे के निकट आकर विचारों का यह आदान-प्रदान लोक-संस्कृति के चमकीलेपन को दर्शाता है। भारतीय संस्कृति में, पौराणिक कथाओं, संस्कार, व्रत, अनुष्ठान, संस्कार, रीति-रिवाजों आदि को जों महत्व प्रदान किया गया है। उसमें लोक-संस्कृति का बहुत बड़ा हाथ है। इन्हीं के आधार पर भारतीय संस्कृति विशद, व्यापक तथा विभिन्न स्थानों की संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करने वाली बन सकी है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि लोक-संस्कृति समय-समय पर विभिन्न संस्कृतियों का रूप ग्रहण करती रही है। इस दृष्टि से लोक-संस्कृति एक निश्चित पथ पर विशिष्टता की उपेक्षा कर लोक के साथ आज तक चलती रही है। श्री रामनाथ सुमन ने लोक-संस्कृति की इसी विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

"शिक्षित वर्ग जब हमारी संस्कृति की धारा को छोड़कर पथभ्रष्ट हो गया है, जब वह धारा से कटकर दूर चला गया है। और जीवन की गुलकारियां उसके आत्म-ओज पर छा गई हैं तब भी अशिक्षित सामान्य जनता ने अपने युग-युग के संचित आदर्शों को अपने हृदय के रक्त से सींचकर जीवित रखा है। मस्तिष्क के अहंकार में जब संपन्न एवं सभ्य वर्गों के पांव डगमग हो गए तब शताब्दियों की अमृत ज्योति को देश के अगणित जनपदों में फैले अदृश्य हृदयों की स्नेह धारा प्राप्त हुई है। जीवन की बाती इस अटपटे वैन में उनकी अकृत्रिम वाणी में, उनकी व्यथा एवं अनुभूति में, उनके रोने और गाने में, उनके जीवन क्रम में सिमट-सिमट कर फिर जा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उठी है, जब साहित्य राजप्रासादों के विलास कक्ष में बंद हो गया तब प्रणय का पावनकारी मुक्तिनाद ग्रामवधूटियां एवं ग्राम तरुणों के कंठों से अमराइयों के बीच फूटा तब साहित्य की सरस्वती सहस्रधा होकर लोककंठ पर तरंगित हुई तब संस्कृति अतर्क्य विश्वासों एवं प्रेरणाओं का आधार लेकर मीरा की भक्ति के चरणों में घुंघरू बन गई तब वह लक्ष-लक्ष ग्राम निवासों की दीवारों पर शिल्प बन कर उभरी, तब सहस्रशः शिलाओं को जीवित अगणित तरंगों में बहा, अगणित वाद्यों में बजा और आणित गीतों में फूट उठा यही सब समष्टिगत आत्मप्रकाश लोक-संस्कृति है। इसमें हृदय का उद्रेक अतः स्वाभाविकता अधिक है इसमें मानव हृदय का अमृत अकृत्रिम रूप में विद्यमान है।"[22]

लोक संस्कृति ही इस प्रकार किसी भी देश व समाज की संस्कृति का संस्ककार करती है। जैसे भारतीय संस्कृति का जो परिष्कृत रूप दृष्टिगोचर हो रहा है उसके मूल में कृत्रिमता से दूर पर्वतों-जंगलों और गांवों में फैली हुई लोक-संस्कृति ही है इसका पोषक वह सामान्य वर्ग है जिसे अनपढ़, असभ्य या मूर्ख कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। ग्रामीण तथा जनसाधारण द्वारा प्रत्येक अवसर पर गाए जाने वाले गीतों में चौपालों की लावनियों, कजरी, ध्रुपद, होली तथा ख्यालों में स्वाभाविक माधुर्य है। इसके रसास्वादन के लिए किसी विशेष शास्त्र का अनुशीलन करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए किसी भी संस्कृति को अच्छी तरह समझने के लिए उसके साहित्यिक स्वरूप के स्थान पर लोक स्वरूप का पर्यवेक्षण करना होगा क्योंकि वही सभ्यता और जीवन के शाश्वत मूल्यों का दर्शन होगा। लोक संस्कृति के दर्शन के लिए समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार ही पर्याप्त है उदाहरणार्थ एक भारतीय घर अपनी संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर सकता है। डॉ० सत्येंद्र के शब्दों में "भारतीय घर की ही भांति समस्त समाज का रूप बनता है। भारतीय घर की इन पर्तों पर दृष्टि डालें तो पहला स्तर टोने-टोटके का मिलेगा। किसी भी प्रकार का अनुष्ठान हो, कोई संस्कार हो, उत्सव हो, एक न एक टोना-टोटका उसके साथ लगा हुआ होगा। दूसरे स्तर पर दई-देवताओं की भावना है। इन दई-देवताओं में पितरों की मृतात्माएं, मसान, विविध देवियां तथा अनेकों अन्य देवता सम्मिलित हैं। इनके ऊपर सामान्यतया धार्मिकता का वातावरण रहता है। तब शास्त्रीय धार्मिक अनुष्ठानिकता का सत्कार होता है। इसके ऊपर एक ही घर में, वह जागरूक धार्मिक मतवाद मिलेगा जो दार्शनिक सिद्धान्तों को ग्रहण करता है। इसी से संघर्ष करता हुआ सुधावृत्ति का संस्कार भी पनपा दिखाई पड़ेगा जो प्राचीन मान्यताओं और विश्वासों के मूल तात्पर्य और रूप की तो रक्षा करेगा पर उसे पोशाक समय की प्रवृत्ति के अनुकूल पहना देगा।"[23]

अतः लोक संस्कृति की व्यापक विषय वस्तु के अंतर्गत, विभिन्न लोकाचार, विश्वास तथा मान्यताएं, संस्कार, स्थानीय कलाएं और मनोरंजन के विविध साधन तथा व्यक्ति से संबंधित सभी विषय आ जाते हैं। अपने इस रूप में लोक-संस्कृति जन-परंपराओं की, साधारण से साधारण मानव की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। प्राचीनता और नवीनता दोनों के बीच संतुलन रखने वाली धुरी है। विकसित होकर आगे बढ़ती है और इसके लिए देशगत सीमाओं को भी लांघ जाती है—अपने में मनुष्य की प्रत्येक भावनाओं तथा सामाजिक समस्याओं को समाविष्ट किए हुए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रज लोक

ब्रज की लोक-संस्कृति एक प्रांत विशेष की संस्कृति होते हुए भारतीय संस्कृति की लगभग समस्त विशेषताओं को प्रतिबिम्बित करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी विवेचना करें तो हम पाते हैं कि यह संस्कृति प्रारंभ से संघर्षशील, समन्वयकारी और अपनी विशिष्टताओं, लोक परंपराओं के कारण, राष्ट्रीय संस्कृति की पथ प्रदर्शिका; क्षेत्रीय होते हुए भी सार्वभौमिक, निरंतर गतिशील, अपराजेय तथा उदात्त आदर्शों से पूर्ण रही है। इन्हीं विशिष्टताओं के कारण यह संस्कृति संपूर्ण राष्ट्र के आकर्षण का क्षेत्र रही है। इसकी मान्यताओं और विचारधाराओं का आदर सर्वत्र हो रहा है। ब्रज लोक संस्कृति में वह सभी रीतिरिवाज, परंपराएं, वेशभूषा, उत्सव, पर्व, कर्मकांड आदि सम्मिलित हैं जिनसे उसकी एक अलग पहचान बनती है। ब्रज की इस लोक संस्कृति की विशेषताओं पर विचार करने से पहले यह आवश्यक है कि ब्रज क्षेत्र का जहां यह संस्कृति पनपी और पल्लवित हो रही है, सम्यक् परिचय प्राप्त कर लिया जाए। ब्रज लोक-संस्कृति के विकासात्मक अध्ययन से पूर्व ब्रजलोक का विकासात्मक अध्ययन करना आवश्यक है।

ब्रजलोक अथवा ब्रज क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण तीन प्रकार से किया जा सकता है (1) ऐतिहासिक-पौराणिक दृष्टिकोण से, (2) ब्रजभाषा के क्षेत्र की दृष्टि से, (3) अष्टछाप काव्य में उदधृत प्रमाणों की दृष्टि से। इन तीनों ही दृष्टिकोणों के विवेचन के उपरांत ब्रज की जिस लोक संस्कृति के दर्शन हमें होते हैं वह अपने आप में अत्यंत गरिमायुक्त तथा अन्य सभी क्षेत्रीय संस्कृतियों को प्रभावित करने वाली सिद्ध होती है।

वेदों से पूर्व ब्रज शब्द का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। ब्रज शब्द वेदों में क्षेत्रवाची नहीं था। वहां व्रज शब्द का प्रयोग किया गया है, ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली में संस्कृत का व्रज ही ब्रज हो गया है। वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत हिन्दी कोश में ब्रज का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—जाना, चलना, प्रगति करना (नाविनीत व्रजेद धुर्यः), पधारना, पहुंचना, दर्शन करना (मामेकं शरणं व्रज), विदा होना, सेवा से निवृत्त होना, पीछे हटना, समय का बीतना (इयम् व्रजति यामिनी त्यज नरेन्द्र निद्रारसम्) इस प्रकार गम् या धा धातु के समान ही इसका प्रयोग होता है। उपसर्गों के योग से भी कई विभिन्न अर्थों की अभिव्यक्ति होती है जैसे अनु (व्रज) बाद में जाना, अनुगमन करना, संपन्न करना, सहारा लेना, आ (व्रज) आना, पहुंचना, परि (व्रज) भिक्षु व साधु के रूप में इधर-उधर घूमना, संन्यासी या परिव्राजक हो जाना, प्र (व्रज) निर्वासित होना, सांसारिक वासनाओं को छोड़ देना, चौथे आश्रम में प्रविष्ट होना, अर्थात् संन्यासी हो जाना।

व्रज शब्द विसर्ग से युक्त होकर जब व्रजः बन जाता है तो इसके अर्थ होते हैं—समुच्चय, संग्रह, रेवड़, समूह (नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तास्मिन् विहाय सर्वान्नृपर्तीन्निपेतुः), ग्वालों के रहने का स्थान, गोष्ठ, गोशाला, आवास, विश्राम स्थल, सड़क मार्ग, बादल, मथुरा जनपद।

परब्रह्म के निःश्वास स्वरूप चारों वेदों में व्रज शब्द का प्रयोग तथा उसके माहात्म्य का उल्लेख किया गया है। "ऋग्वेद में ब्रज के स्वरूप एवं उसके भौगोलिक निर्धारण के साथ-साथ भगवान श्रीकृष्ण और श्रीराधा जी के परस्पर संबंधों एवं व्यवहारों पर भी प्रकाश डाला गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वेदों में कृष्ण को 'राधानां पतेः' कहा है। और वृषभानु नंदिनी की महिमा का गान भी यथा

"त्वां नु चक्षा वृषभानुपूर्वीः।
कृष्णः सवने अरूणो विभाहि॥" (ऋ. 311/3)[24]

वेदों में गोष्ठ के अर्थ में प्रयुक्त व्रज ही (स्रवने गाव उष्णमिव व्रज। ऋक् 10.4.2) आगे चलकर पुराणकाल में भू-भूमिवाचक बन गया। डॉ० सत्येंद्र ने 'व्रज का नामकरण' लेख में लिखा है—

"वैदिक काल और बौद्धकाल के बीच इसका नाम ब्रह्मर्षि ब्रह्मवर्त[25] रहा। इसका और भी छोटा भाग शूरसेन प्रदेश था, यह भी नीचे दिए गए श्लोक से विदित होता है। बौद्ध काल में यह प्रदेश एक विशाल भू-भाग के रूप में मज्झिम देश या मध्य देश कहलाता था। इस विशाल मज्झिम देश में नौ महाजनपद थे। इसी के अन्तर्गत मत्स्य और शूरसेन जनपद, कुरु तथा पांचाल इन चार महाजनपदों से बना भू-भाग ब्रह्मर्षि देश कहलाता था। जैसा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने बताया है। मनु के इस ब्रह्मर्षि देश का क्षेत्र वही है जो आज भी प्रायः ब्रज भाषा का क्षेत्र है। इसमें शूरसेन[26] नाम का जनपद कुछ-कुछ ब्रज की सीमाओं से साम्य रखता है।"[27]

डॉ० सत्येंद्र ने ब्रज के नामकरण के संदर्भ में बिरजा की पौराणिक गाथा का उल्लेख किया है। बिरजा राधा की सखी थी और उनकी अनुपस्थिति में कृष्ण के साथ विहार करने लगी। राधा के आने की आहट सुनकर जहां कृष्ण अन्तर्धान हो गए वहीं बिरजा भय से सरिता रूप में परिणत हो गई। यह बिरजा ही यमुना है और उसका क्षेत्र बिरज अथवा ब्रज है।

हरिवंश पुराण तक आते-आते इस शब्द का प्रयोग कृष्ण के पिता नंद के निवास गोकुल (मथुरा के निकटस्थ) ब्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष की भूमि के लिए होने लगा तथा प्रकारान्तर से गोकुल के पर्याय रूप में ब्रज का प्रयोग किया जाने लगा।

क्षेम्यं प्रचार बहुलं हृष्ट पुष्ट जनावृतं,
दामनी प्राय बहुलं गर्गरोद्गार निःस्वनं।
तक्रनिःस्रावबहुलं दधि मण्डार्द्रभूतिकं,
मन्थानवलयोद्गारैर्गोपीनां जनितस्वन।[28]

श्रीमद्‌भागवत में श्रीकृष्ण के संदर्भ में ब्रज का प्रयोग मिलता है।

"कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् ब्रज गतः।"[29]

इसके अतिरिक्त "नन्दाआ ये व्रज गोपा[30] तथा गच्छ देवि व्रजं भद्रे"[31] के रूप में भी ब्रज शब्द का प्रयोग भागवत् में किया गया है। ब्रज क्षेत्र को चौरासी कोस तक विस्तीर्ण माना गया और उसका केंद्र मथुरा नगरी को स्वीकार किया गया।

"पूर्वात्तिस्यवनं नाम पश्चिम स्यापहारिकं,
दक्षिणे जहु संज्ञाकं भुवनाख्यं तथोतरे।"[32]

अर्थात् पूर्व में हास्यवन, पश्चिम में उपहारवन, दक्षिण दिशा में जहुवन तथा उत्तर में भुवनवन। यह सभी स्थान मथुरा से इक्कीस-इक्कीस कोस की दूरी पर स्थित हैं। इसी सीमा का प्रचलन मध्यकाल तक आते-आते ब्रजभाषा में भी स्वीकार कर लिया गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"इत बरहद उत सोन हद, उत सूरसेन का गांव।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मंडल मांह।"

पुराणों का हास्यवन, वनहद, उपहारवन सोन (गुड़गांव), जहु शूरसेन का गांव (बटेसर) और भुवनगढ़ शेरगढ़ के समीप भूखनवन है। वनोपवन वाले इस मथुरामंडल का स्वरूप आधुनिक ब्रजमंडल से मिलता-जुलता है। गाउस के वनयात्रा रेखाचित्र के अनुसार ब्रज के वनों के नाम मधुवन, तालवन, कुमुदवन, वहुलावन, कामवन, खिदरवन, भद्रवन, मांडीरवन, वेलवन, लोहवन, महावन और वृंदावन हैं, चौबीस उपवन गोकुल, गोवर्धन, बरसाना, नंदगांव, संकेत, परमाद्र, उड़ीग, शेषसाई, मांड, ऊंचा गांव, खेलवन, श्रीकुंड, गंधर्ववन, परासौली, बिच्छू, बच्छवन, आदिबदरी, करहला, अजनोंख, पियासा, कोकिला वन, दधिगांव, कोटवन और राव हैं। मत्स्य पुराण में वनों-उपवनों से घिरी यही कृष्ण की लीला भूमि ब्रजमंडल कही गई है। परंतु उस समय ब्रजमंडल के स्थान पर मथुरा मंडल का प्रचलन ही अधिक रहा। 15वीं-16वीं शताब्दी में, वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान के साथ ब्रज शब्द का प्रयोग बहुलता से हुआ और तब से राजनैतिक क्षेत्र में विभिन्न नाम रखते हुए भी धार्मिक ब्रजलोक चौरासी कोस की सीमा में अवश्य बंधा रह गया परंतु ब्रज भाषा और ब्रज संस्कृति की सुगंध दूर-दूर तक फैलने लगी। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रज की सीमा निर्धारण करते हुए डॉ० सत्येंद्र ने डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी को उदधृत करते हुए लिखा है—

"कनिंघम के अनुसार तत्कालीन मथुरा राज्य में वर्तमान वैराट और अतिरंजी खेड़ा के बीच का सारा प्रदेश ही नहीं, अपितु आगरा के दक्षिण में नरवर और शिवपुरी तक का तथा पूर्व में काली सिंध नदी तक का भू-भाग रहा होगा। इस प्रकार इस राज्य में मथुरा, आगरा जिलों के अतिरिक्त भरतपुर, करौली और धौलपुर तथा ग्वालियर राज्य के उत्तर का आधा भाग शामिल रहा होगा। पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जुझौती तथा दक्षिण में मालवा की सीमा से मिलती रही होगी।"[33]

ब्रज भाषा के क्षेत्र की दृष्टि से ब्रज लोक या ब्रज प्रदेश एक विस्तृत भू-भाग है। शूरसेन जनपद जिसकी राजधानी मथुरा थी, प्राचीन भारत का महत्वपूर्ण जनपद था। शौरसेनी प्राकृत यहीं बोली जाने भाषा थी। कालांतर में ब्रजमंडल की यह भाषा जिस-जिस प्रदेश में फैली वह समस्त भू-भाग ही ब्रजमंडल कहलाने लगा। इस प्रकार राजनैतिक सीमा से भी अधिक भाषा की सीमा हो गई। वर्तमान काल में ग्रियर्सन आदि विद्वानों के अनुसार ब्रजभाषा क्षेत्र इस प्रकार माना जा सकता है—

"जिला मथुरा, राजस्थान का जिला भरतपुर तथा करौली का उत्तरी भाग, धौलपुर जिला, मध्यप्रदेश के मुरैना और भिंड नामक जिले एवं ग्वालियर का लगभग 26 अंक्षाश से ऊपर का भाग, पूरा आगरा जिला, इटावा जिले का अधिकांश, जिला मैनपुरी, जिला एटा (पूर्व के कुछ भागों को छोड़कर जो फर्रूखाबाद जिले की सीमा से मिलते हैं), जिला अलीगढ़ (उत्तर में पूर्व में गंगा नदी की सीमा तक), बुलंदशहर जिले का लगभग आधा दक्षिणी भाग (पूर्व में अनूपशहर की सीध से लेकर), गुड़गांव जिले का दक्षिणी भाग (पलवल की सीध से) तथा अलवर जिले का पूर्वी भाग जो गुड़गांव जिले की दक्षिणी सीमा तक तथा भरतपुर की पश्चिमी सीमा से मिला-जुला है।"[34]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने कन्नौजी को भी ब्रजभाषा के अंतर्गत मानकर उसके क्षेत्र का अत्यंत विस्तार कर दिया है। परंतु अधिकांश विद्वान कन्नौजी को अवधी से प्रभावित अलग भाषा मानते हैं। प्राचीन काल से ही मध्यप्रदेश ब्रजमंडल की भाषा ने शिष्टजनों की वाणी पर आधिपत्य जमाया है। यही भारतीय आर्यभाषा क्रमशः वैदिक संस्कृत, पालि, शौरसेनी, प्राकृत और अपभ्रंश के रूपों में परिवर्तित होते हुए ब्रजभाषा के रूप में ढली और संस्कृति की संवाहिका बन गई। ब्रज भाषा के काव्य भाषा बन जाने पर उसमें उत्तम कोटि की काव्य रचना हुई। सामान्य ब्रज भाषा क्षेत्र की भू-सीमाओं का उल्लंघन करके ब्रजभाषा शैली का वृहत्तर क्षेत्र बना। ब्रजभाषा शैली अनेक भाषाओं से समन्वित थी। सोलहवीं शती के मध्य तक ब्रज भाषा की मिश्रित शैली सारे मध्यप्रदेश की काव्य भाषा बन गई थी। व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो देश के जिस भाग में कृष्ण कथा का प्रसार, प्रचार हुआ वहां-वहां ब्रज भाषा पहुंच गई। निकटवर्ती राजस्थान ही नहीं, सुदूर आंध्र और केरल प्रदेशों में भी ब्रज भाषा का साहित्य रचा और पढ़ा जाने लगा। प्रत्येक भारतीय भाषा पर भी ब्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। ब्रज भाषा के लिए यह गौरव का विषय है परंतु ब्रजभाषा के क्षेत्र के अन्तर्गत केवल उसी भू-भाग को स्वीकृत किया जाएगा जहां ब्रज बोली जा रही है अर्थात् जहां वह लोक संपर्क भाषा और साहित्यिक भाषा दोनों ही रूप में विद्यमान हो। इस दृष्टि से श्री ग्रियर्सन का विवरण ही मान्य है।

ब्रज क्षेत्र की साहित्यिक रूपरेखा भी अष्टछाप काव्य द्वारा निर्मित की गई है। वल्लभ संप्रदायी ग्रंथों के अनुसार सं० 1549 फाल्गुन शुक्ला 11 को महाप्रभु वल्लभाचार्य ब्रज में आ गए। यहां उन्होंने श्रीनाथ जी का दर्शन और पाटोत्सव किया।[35] उन्होंने ब्रज के जिन स्थानों पर ठहर कर श्रीमद्भागवत का पारायण किया वह बैठक कहलाते हैं। संपूर्ण भारत में कुल चौरासी बैठकें हैं, इनमें से ब्रज की प्रमुख बैठकें, तीन गोकुल तथा एक-एक वृंदावन तथा मथुरा में विश्राम घाट पर हैं। वल्लभाचार्य ने ब्रज के विभिन्न स्थलों पर जाकर भागवत् का पारायण किया यह सभी क्षेत्र ब्रज की सीमा निर्धारित कर देते हैं। वल्लभाचार्य की यात्राओं से पवित्र ब्रज क्षेत्र इस प्रकार है—मधुवन, तालवन, कमोदवन, बहुलावन, राधाकुंड, कृष्णकुंड, मानसी गंगा, परासौली, आन्योर, गोविंद कुंड, सुंदर शिला (गिरिराज यहीं वल्लभाचार्य श्रीनाथ जी का दीपावली और अन्नकूट का उत्सव किया।) गिरिराज (यह बैठक प्रकट नहीं है) कामवन, महावन, बरसाना, संकेत वन, नंदगांव, कोकिलावन, भांडरीवन, मानसरोवर।

यह सभी यात्रा ब्रज के उन्हीं बारह वनों में स्थित हैं जिन का उल्लेख नारद पुराण में मिलता है।[36] इसमें लोहवन का उल्लेख नहीं है, महावन का नाम भी गोकुल दिया गया है। वर्तमान महावन को ही प्रचीन गोकुल कहते हैं। सूरदास ने सूरसारावली में बारह वनों का उल्लेख करते हुए इसी गोकुल का वर्णन किया है।

"यहि विधि क्रीड़त गोकुल में हरि निज वृंदावन धाम।
मधुवन और कुमुदवन सुंदर बहुलावन अभिराम।
नंदगांव संकेत खिदरवन और कामवन धाम।
लोहवन माठ वेलवन सुंदर भद्र वृहदवन ग्राम।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"चौरासी ब्रज कोस निरंतर खेलत हैं बल मोहन।
सामवेद रिगवेद यजुर में कहेउ चरित ब्रज मोहन॥"[37]

गाउस महोदय ने मथुरा मेमॉयर में इन्हीं बारह वनों का उल्लेख किया है।[38] सूरसागर में "द्वादस वन रतनारे"[39] कहकर बारह वनों का उल्लेख किया गया है, नाम नहीं गिनाए हैं। वृंदावन का उल्लेख सभी कवियों ने किया है क्योंकि यह कृष्ण की क्रीड़ास्थली भी है।[40] इसके अतिरिक्त अन्य वनों के वर्णन में उन्होंने अधिक रुचि नहीं ली है। साहित्य की दृष्टि से सूरदास, परमानंददास और नंददास की रचनाओं का महत्व अधिक है इसलिए ब्रजक्षेत्र के अन्य वनों का उल्लेख भी उनके काव्य में मिल जाता है। सूर द्वारा वनों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है, परमानंददास ने कुमुदवन, कोकिलावन और तालवन का उल्लेख करते हुए कृष्ण के साथ रहने का, राधा तथा उसकी सखियों के खेलने, यमुना-जल पीने का वर्णन किया है तो नंददास ने कदम्ब की डार पर झूलने का—

"बहुत दिवस हम रहे कुमुदवन कृष्ण तुम्हारे साथ
"सात पांच मिलि खेलन निकसीं कोकिलावन की डगर।
"चलहु भैया हो जइए तालवन पी जमुना को पान्यौं।"[41]
"मधुवन साधम कंदब की डारैं झूलन झूमत गोपालैं।"[42]

नंददास ने दावानल का वर्णन करते हुए मुजारण्य का उल्लेख किया है जो उपरोक्त बारह वनों में वर्णित नहीं है। "मुजारन्य नाम है। जहां अति गहवर सुधि परत न तहां।"[43]

ब्रजलोक के वर्तमान उपवनों का साहित्यिक उल्लेख नगण्य है। केवल परमानंद सागर में ही सामान्य रूप से नंदगांव, वेणु प्रसंग में परासौली और दानलीला प्रसंग में मधुवन का उल्लेख मिलता है—

"जो तू नंदगांव दिसि जैहै।"[44]
"बेनु मधुर सुनि चली री चपल त्रिय परसोली तें परे।"[45]
"रोकत घाट बाट मधुवन को ढोरत माट करत हो बुराई॥"[46]

अष्टछाप साहित्य में ब्रजक्षेत्र के चार पर्वत बतलाए गए हैं। गोवर्द्धन का उल्लेख सभी कवियों ने किया है क्योंकि कृष्ण लीलाओं में गोवर्द्धन धारण का विशेष महत्व है। मथुरा के निकट गोवर्द्धन गांव तथा टीला आज भी विद्यमान है।[47] दूसरा पर्वत नंदीश्वर है जिसका उल्लेख श्याम की सगाई के संदर्भ में नंद यशोदा को निमंत्रित करते हुए किया गया है—

"नंदीस्वर में नंद जसोदा गोपिन न्यौंति बुलाए।
पहुंचे जाइ नंदीस्वर को वृषभान पठायो करन सगाई।"[48]

तीसरा पर्वत (टीला) बरसाना है जहां वृषभानु घोष का निवास था। कृष्ण की सगाई यहीं होती है।

"चलै कुंवर लै बरसाने को प्रफुलित मन ब्रज राज।"[49]
"बरसाने वृषभान गोप के लाल की भई सगैया।"[50]

चरण पहारी चौथा पर्वत है जिसका उल्लेख केवल परमानंददास ने कृष्ण के आंख-मिचौनी खेलते समय किया है, "लुकि-लुकि खेलत आंख मिचौनी चरन पहारी ऊपर।"[51]

ब्रज लोक को सिंचित करने वाली प्रमुख नदी यमुना का वर्णन प्रत्येक अष्टछाप कवि ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया है। इसे कालिंदी, तरिणनंदिनी, सूर सूता, सूरजा, तरनि, तनया, भानुतनया आदि नामों से भी वर्णित किया गया है। यमुना और यमुना तट कृष्ण कथा के अभिन्न हैं। यमुना की भक्ति करने की प्रेरणा चतुर्भुज ने दी है।[52] प्रायः सभी कवियों ने इसे पतित उद्धारिणी माना है।[53]

चतुर्भुजदास ने गोवर्द्धन पूजा के संदर्भ में मानसी गंगा में स्नान का वर्णन किया है। यह वास्तव में ब्रज का एक सरोवर है जिसे गंगा के नाम से जुड़े होने के कारण संभवतः नदी कह दिया जाता होगा। इस सरोवर का निर्माण राजा मानसिंह ने करवाया था--

"मानसी गंगा न्हवाइ नख सिख तें पाछे दूध धौरी को नावत।" [54]

साहित्य में उल्लिखित इस ब्रज क्षेत्र की सीमाएं संप्रदायों के आधार पर समय-समय पर बदलती रही हैं। पुराणों का ब्रज क्षेत्र मध्य युग तक आते-आते यत्किंचित परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार भौगोलिक तथा प्राकृतिक परिवर्तनों के फलस्वरूप भी सीमाओं में संकुचन तथा प्रसार होने लगा। वनों का आकार घटने लगा। उदाहरण के लिए भागवत में जिस वृंदावन का वर्णन है वह मथुरा से काफी दूर था। सघन छिपने योग्य वनों के बीच था और गोवर्द्धन पर्वत उसी के अन्तर्गत अथवा उसके सन्निकट था। आज का वृंदावन उस वृत्तर वृंदावन का महत्वपूर्ण भाग मात्र है इस प्रकार आज का गोकुल पौराणिक गोकुल से स्वरूप आधार पर नितांत भिन्न है। आज वह सघन वन कुंज गोकुल में नहीं हैं। जहां रहकर नौ लाख गोधन के स्वामी अपने परिवार पशुधन और अनुयायियों के साथ अत्याचारी कंस की क्रूर दृष्टि से बच सकें।

इस प्रकार राजनैतिक अथवा भौगोलिक तथा साहित्यिक दृष्टि से उल्लिखित क्षेत्र ही वास्तव में ब्रजलोक है। यहीं के निवासियों की मान्यताएं, परंपराएं ब्रजभाषा तथा काव्य साहित्य द्वारा दूर-दूर तक ले जाई गईं। इसलिए ब्रजलोक संस्कृति का नाम लेने से हमारा तात्पर्य ब्रजभूमि की क्षेत्रीय परंपराओं; ब्रज भाषा तथा काव्य साहित्य द्वारा तात्पर्य ब्रज भूमि की क्षेत्रीय परंपराओं, सामाजिक मार्यादाओं, लोकविश्वासों तथा पर्वों-उत्सवों को प्रतिबिंबित करने वाली संस्कृति से है। ब्रज की इस लोकसंस्कृति से आकृष्ट होकर ही महान विचारक और दार्शनिक धुर दक्षिण से आकर यहां बसे और अपने प्रयासों से इसे भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधि संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया।

ब्रज लोक संस्कृति का स्वरूप विकास

ऐतिहासिक विकास क्रम की दृष्टि से देखने पर ब्रज संस्कृति प्राचीनतम संस्कृति प्रतीत होती है। ब्रजभूमि वनों-उपवनों से संकुल होने के कारण तपस्वियों-मनीषियों की साधना का केंद्र रही। इन्हीं लोगों ने ब्रज की तपोवन संस्कृति को जन्म दिया। सृष्टि के प्रारंभ में बराह अवतार का क्रीड़ा क्षेत्र यही ब्रज रहा है। इसके अतिरिक्त ध्रुव और पाराशर की तपोभूमि, शांतनु सत्यवती की भेंट की साक्षी के केंद्र में यह तपोभूमि विद्यमान रही है। वेदों में ब्रज शब्द जैसा कि पहले देख चुके हैं—'गोष्ठ' या चारागाह के अर्थ में आया है इसलिए ब्रज का गाय तथा पशुधन से अभिन्न संबंध है। पुराण काल तक आते-आते यह भौगोलिक स्थिरता को प्राप्त करके स्थान विशेष का सूचक बन गया। इस प्रकार ब्रज क्षेत्र की लोक संस्कृति का प्राचीनतम रूप आभीर संस्कृति था जो आज भी विद्यमान है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आभीर पशुधन के स्वामी, वीर, स्वच्छंद विचरण करनेवाले और स्त्री स्वातन्त्र्य के समर्थक थे। वैदिक संस्कृति के प्रतिकूल वे यज्ञ विरोधी थे इसलिए वैदिक ऋषियों की आलोचना के पात्र भी थे। पुराणों ने मथुरा के संस्थापक मधु को धर्मात्मा तथा उसके उत्तराधिकारी लवण को राक्षस कहा है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार लवण के ब्राह्मण विरोधी कृत्यों का वर्णन ऋषियों से सुनकर श्रीराम ने शत्रुघ्न को मथुरा विजय के लिए भेजा। वह युद्ध दो विभिन्न संस्कृतियों का युद्ध सिद्ध हुआ। वैदिक तथा आभीर संस्कृति के साथ-साथ शासक लवण द्वारा अपनाई गई शैव संस्कृति भी उस समय फलफूल रही थी। ब्रज की भूमि पर इसी कारण सर्वत्र विभिन्न शिवलिंग तथा शिवोपासना विद्यमान है। शत्रुघ्न द्वारा लवण को छल से पराजित अवश्य किया गया पर सूर्यवंशियों का शासन वहां स्थायी न हो सका। श्रीकृष्ण से पूर्व ही यदुवंशियों का साम्राज्य फिर से ब्रजमंडल पर स्थापित हो गया। शत्रुघ्न की विजय के साथ नागरिक संस्कृति का जो प्रसार शुरू हो गया था, वह यादवों की विजय से रुक गया। ब्रज में फिर वहीं की लोक-संस्कृति—वन्य तथा आभीर संस्कृति—प्रबल हो गई। यादव आभीरों के संबंधी थे। पौराणिक वंशावली से ज्ञात होता है कि यदुवंशी नरेश शूरसेन (जो मथुरा के शासक थे) और आभीर प्रमुख नंद देव मीढ़ या देवबाहु की क्रमशः क्षत्रिय तथा वैश्य पत्नियों से उत्पन्न पुत्र थे। शूरसेन के पुत्र ही श्रीकृष्ण के पिता वासुदेव थे।

श्रीकृष्ण ने ब्रज में आभीर संस्कृति की स्थापना की। वे ब्रज संस्कृति की धुरी बन गए। यज्ञ संस्कृति के स्थान पर लोक देवताओं की उपासना प्रारंभ की। वनों और पर्वतों को देवता घोषित किया। पशुधन को सर्वोपरि माना। हरिवंश पुराण में वैदिक संस्कृति का निराकरण करते हुए वे कहते हैं—

"वनंवनचरा गोपाः सदागोधन जीवितः"
गोवाऽस्माद्वैवतं विद्धि गिरियश्च वनानि च।
कर्षकाजां कृषिवृयेत्ति पण्यं विपणि जीविनाम्।
गावोऽस्माकं परावृत्ति रेतत्वेविद्यामृत्यते।"[55]

हरिवंशपुराण के ही नवम् अध्याय में उन्होंने स्पष्ट रूप से अपनी असहमति इस यज्ञ-संस्कृति में से व्यक्त की है।

"मंत्रयज्ञ परा विप्राः सीतायज्ञ कर्षकाः।
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माकिनर्गिरिखनैः।"[56]

कृष्ण और बलराम द्वारा कृष्णकाल में इसी संस्कृति को संवर्धित किया गया। कृष्ण ने गोपालन, दही-दूध और मक्खन के महत्व को स्थापित किया तो बलराम ने हल-मूसल को प्रधान अस्त्र के रूप में अपनाकर कृषि संस्कृति को अपनाया। यह दोनों ही संस्कृतियां एक-दूसरे की पृथक रहीं। इन्हीं से जुड़े व्यवसायों को भी आर्थिक संपन्नता के हेतु विकसित किया। आज भी भारत एक कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है और यहां के सामान्य नागरिक की आर्थिक संपन्नता कृषि, पशुपालन तथा उससे जुड़े व्यवसायों पर निर्भर करती है।

कृष्ण इस संस्कृति के आधार पर एक नवीन भारतीय संस्कृति का निर्माण करना चाहते थे जिसमें विभिन्न संस्कृतियां एक होकर आगे बढ़ें। आर्य-अनार्य, वैदिक तथा आभीर या रक्ष का भेद समाप्त हो जाए तथा उसमें समस्त मानवों के कल्याण की कामना या प्रयास ही मुखर हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाभारत के युद्ध द्वारा भी कृष्ण ने संभवतः हठी तथा अभिमानी आर्य संस्कृति के कट्टर समर्थकों का विनाश किया। उनकी मान्यताओं और विचारधाराओं का समर्थन करने वाला एक वर्ग तत्कालीन समाज में उत्पन्न हो गया और महाभारत के बाद उसी वर्ग द्वारा संस्कृति का वहन किया गया। अपने प्रयासों (शांति के) और कल्याणकारी भावनाओं के कारण ही कृष्ण को सोलह कलाओं से युक्त पूर्णावतार के रूप में स्वीकार किया गया। कृष्ण के समय में ही ब्रज में कई और संस्कृतियां भी विकसित थीं। जिनके प्रमाण ब्रज के लोक-जीवन पर आज भी देखे जा सकते हैं। ब्रज के सांस्कृतिक विकास में इन संस्कृतियों का महत्वपूर्ण योगदान है, ब्रज के लोकमानस के यह अभिन्न अंग हैं।

ब्रज लोक संस्कृति के प्रेरक स्रोत

असुर संस्कृति

शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा का निर्माण असुर मधु ने किया था और पुराणों में उसे धर्मात्मा, दानवेन्द्र तथा दैत्यराज कहा गया है। इक्ष्वाकु वंशी हर्यश्व जब भाई द्वारा राज्य से हटाए जाने पर पत्नी की सलाह से मधु के पास आए तो उसने मधुवन के अतिरिक्त अपना सारा राज्य जो धन-धान्य से युक्त, आभीरों की बस्तियों से घिरा तथा वनों के सौंदर्य से युक्त था उसे दे दिया। इसी हर्यश्व तथा मधुपुत्री के पुत्र यदु से यादव वंश आगे चला। इस प्रकार प्रारंभ से ही यादव, आभीर और असुर संस्कृतियां एक-दूसरे के साथ रहकर विकसित हुईं।

कृष्ण के उदय से पूर्व कंस ने यादव गणतंत्र के प्रधान अपने पिता उग्रसेन को बंदी बनाकर निरंकुश एकतंत्र की स्थापना की। यादवों तथा आभीरों को शक्तिहीन करने के लिए अनेक असुरों को अपने राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर स्थापित किया। आतंक फैलाने के लिए यह असुर प्रजा पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते थे। इन्हीं के अत्याचारों से बचने के लिए नंदादि गोपों ने गहन वनों में शरण ली थी। ब्रज भूमि में कंस की, दहिता क्षेत्र में दन्तवक्र की, खेंचरी में पूतना की, अरोड़ में अरिष्टासुर की तथा कामवन में व्योमासुर की सेनाओं का निवास था। अपने बाल्यकाल में कृष्ण ने इन राक्षसों का विनाश किया। थोड़ा बड़े होने पर आभीर युवकों को संगठित करके कंस के अत्याचारों का सामना किया। कंस के वध के पश्चात् असुरों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। संभवतः ये ब्रज छोड़कर चले गए थे।

नाग संस्कृति

सामान्यतः नाग और सर्प को पर्यायवाची माना जाता है परंतु ये दोनों भिन्न हैं। पद्म पुराण के सृष्टि खंड के अंतर्गत नागों की उत्पत्ति कश्यप ऋषि की पत्नी कद्रू से और सर्पों की सुरसा से हुई थी। इस नाग जाति में सभ्य व असभ्य दोनों प्रकार के नाग थे इसलिए उन्हें आर्य या अनार्य सिद्ध करना कठिन है। इतिहास में सभ्य व सुसंस्कृत भारशिव नागों का उल्लेख है। उनके शक्तिशाली राज्यों में मथुरा भी एक है। असंस्कृत नाग बीहड़ वनों, गिरि-कंदराओं तथा नदी के एकांत तट पर निवास करते थे। लोक द्वारा उन्हें देव कोटि का माना जाता था। वे जल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के देवता और धन-संपत्ति के स्वामी स्वीकार किए गए हैं। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार विष्णु नाग शैया पर आसीन माने जाते हैं। और भयंकर नागों को आभूषण की भांति धारण करते हैं। बलराम को शेषनाग का अवतार माना गया है। प्रमुख नागों में अनंत (शेष), वासुकि, तक्षक, कर्कोटक और एलापत्र हैं। छंदशास्त्र के प्रणेता आचार्य पिंगल को भी नाग जाति का माना गया है।

कृष्ण के समय में अनंत, कालिय तथा तक्षक प्रमुख थे। गोकुल ले जाते समय शेषनाग ने ही बालकृष्ण पर छाया की थी। यह संभवतः सभ्य जाति के नाग थे जो आर्यों के साथ मित्रता रखते थे, वहीं दूसरी ओर असभ्य जाति के कालिय नाग का उल्लेख मिलता है जो आर्य आभीर विरोधी था और अपनी हिंसक प्रकृति द्वारा जनसाधारण के लिए संकट उत्पन्न करता रहता था। कृष्ण ने बाल्यावस्था में ही पराजित किया था। बलराम संभवतः नाग जाति को अपना मित्र मानते होंगे इसलिए उन्हें नाग-अवतार के रूप में वर्णित किया गया है। ब्रज में लोक धर्म के रूप में, नागों की पूजा के लिए देवालयों की स्थापना सरोवर, ताल, कूपादि के निकट की गई। नागपंचमी के पर्व के रूप में नागोपासना आज भी ब्रजलोक संस्कृति का अभिन्न अंग है।

शाक्त संस्कृति

इसका वर्तमान रूप है मातृ उपासना। भारत में मातृ उपासना की प्राचीन परंपरा है। वैदिक वाङ्मय के 'श्री सूक्त' और 'देवी सूक्त' से इसका प्रमाण भी मिल जाता है। प्राचीन ब्रज में भी इसका पर्याप्त प्रचार था। कृष्ण जन्म के समय उनकी रक्षा करने वाली देवी योगमाया ही थी। आज भी द्वारिकाधीश के शिखर पर देवी की प्रतिमा स्थापित की गई है। ब्रज की गोप कन्याओं ने श्रीकृष्ण को वर के रूप में प्राप्त करने के लिए कात्यायिनी देवी की उपासना की थी। इसी प्रकार रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण से विवाह की इच्छा पूरी करने के लिए पार्वती की पूजा का विधान किया था। योगमाया या शक्ति देवी के रूप माने गए हैं, पहला सौम्य रूप जो एकानंशा नाम से कृष्ण की बड़ी बहन के रूप में भागवत धर्म में पूज्य हुआ और दूसरा रौद्र रूप जो विंध्यवासिनी, दुर्गा और भद्रकाली के नामों से शाक्तों में मान्य हुआ। शाक्त मत के अंतर्गत प्रचलित तंत्र साधना का प्रमुक केंद्र भी ब्रज रहा है। यहाँ के तांत्रिक दूर-दूर तक प्रसिद्ध रहे हैं।

यक्ष संस्कृति

यक्षोपासना भारत का प्राचीनतम लोक धर्म है। इसका संबंध प्रत्येक धर्म से है फिर भी जैन धर्म से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ संबंध है। क्योंकि इसको 24 तीर्थंकरों के साथ 24 यक्षों और 28 याक्षियों की भी मान्यता रही है। प्राचीनकाल में प्रत्येक ग्राम का एक लोक देवता यक्ष होता था जिसे ब्रह्मा अथवा वीर कहते थे। जैन तथा बौद्ध धर्म में यक्ष चैत्यों के अभाव में प्रतीक रूप में चत्वर (चौरा) या स्थान (थान) बनाए जाते थे। वहाँ मूर्तियों के स्थान पर पाषाण प्रतीक पिंडी रखे जाते हैं। चत्वरों और पिंडियों की तरह प्रत्येक ग्राम में शिवालय और शिवलिंग भी रखे जाते हैं। मथुरा में आज भी ग्रामों में चौरा और थान पिंडी के साथ मिलते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बौद्ध जैन संस्कृति

पौराणिक धर्म के क्षीण पड़ने के साथ ब्रज में बौद्ध तथा जैन धर्मों के प्रचलन से बौद्ध और जैन संस्कृतियों का विकास हुआ। शताब्दी में जैन धर्म ने ब्रज लोक-संस्कृति को प्रभावित किया। जैन धर्म के बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ब्रज के शौरिपुर राज्य के राजकुमार तथा श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। अपने विवाह के अवसर पर बारात के भोजन के लिए पकड़े गए पशुओं को देखकर विचलित होकर उन्होंने जीव-हिंसा रोकने की दृष्टि से तप करने की ठान ली। ब्रज की संस्कृति पर इस कृत्य की प्रतिक्रिया हुई और उसने भी निरामिष तथा सात्विक भोजन को अपना लिया। ब्रजमंडल में आज भी प्याज यहाँ तक कि टमाटर भी वर्जित हैं। मथुरा व शौरिपुर दोनों जगह जैन संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव है। बटेश्वर में आल्हा द्वारा स्थापित तीर्थंकर की दिव्य प्रतिमा आकर्षण का विषय है। कंकाली टीले पर जैन धर्म व संस्कृति का प्रधान केंद्र स्थापित था। वहाँ का विशाल जैन स्तूप देव निर्मित माना जाता है। इसी को लेकर बौद्धों के साथ जैनियों का संघर्ष भी हुआ था। मथुरा के प्रमुख निवासी ब्राह्मण थे परंतु उनसे जैनों के संघर्ष का कोई सूत्र उपलब्ध नहीं है।

मथुरा मंडल बौद्ध धर्म का भी प्रधान केंद्र कई वर्षों तक रहा। बुद्ध के समय मथुरा पर यक्षों का आतंक था जिसे उन्होंने समाप्त कर दिया। फाह्यानसांग तथा ह्वेनत्सांग के वर्णन से बौद्ध संस्कृति का प्रभाव ब्रज पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मथुरा में ही भिक्षु उपगुप्त का जन्म हुआ। जिन्होंने सम्राट अशोक को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। ब्रज में बनीं बुद्ध की विशाल मूर्तियाँ, विहार तथा संघाराम विदेशियों के लिए आकर्षण का विषय हैं।

ब्रज की विकासात्मक संस्कृति में गतिरोध तुर्कों के आक्रमण के साथ प्रारंभ हुआ। महमूद गजनवी ने अपने 17वें आक्रमण में मथुरा तथा ब्रज के प्रसिद्ध स्थानों को जी भरकर लूटा। देव प्रासादों को नष्ट किया और अथाह संपत्ति तथा गुलाम अपने साथ ले गया। ब्रजवासियों ने महावन के शासक कुलचन्द्र के नेतृत्व में उसकी प्रतिरोध किया परंतु पराजित हुए। यह पराजय हूणों के आक्रमण से कहीं अधिक विनाशकारी सिद्ध हुई। हूणों ने धन तो अथाह लूटा पर देवालयों को नुकसान नहीं पहुँचाया। महमूद ने अपने धर्मोन्माद में संस्कृति और कला के प्रतीक जिन मंदिरों और भवनों को तोड़ा वह ब्रज की प्राचीन संस्कृति की धरोहर थे। बारहवीं-तेरहवीं शती के पूर्वार्द्ध में कन्नौज के राजा गोविंदचंद्र ने फिर से ब्रज में सांस्कृतिक अवशेषों को समेटना शुरू किया। उसके पुत्र विजयचंद्र ने श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर गजनवी के तोड़े हुए मंदिर के ध्वंसावशेषों पर नए मंदिर का निर्माण किया। लेकिन ब्रज संस्कृति का वैभव पुनः उत्कर्ष पर नहीं पहुँच पाया। मुहम्मद गोरी ने गजनवी का अनुकरण करते हुए भारत पर आक्रमण किया और राजाओं के पारस्परिक द्वेष का लाभ उठाकर पृथ्वीराज को पराजित करने के बाद कन्नौज के जयचंद को भी हराकर मुस्लिम राज्य की नींव डाली। उसके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन ऐबक तथा उसके वंशजों के शासन काल में ब्रज का सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध हो गया। सुल्तानी शासन के समय में भी ब्रज संस्कृति विनष्ट होती रही और सामान्य जनता विधर्मी शासकों को झेलती रही।

सुल्तानी शासन के अंतिम काल में ब्रज संस्कृति का पुनरुत्थान प्रारंभ हुआ। श्री

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निम्बाकाचार्य ने दक्षिण से ब्रज आकर गोवर्धन क्षेत्र के निम्ब गाँव को अपना स्थायी निवास बनाया। उन्होंने ही कृष्ण के साथ राधा को जोड़कर माधुर्य भक्ति का प्रारंभ किया। ब्रज की यह भक्ति संस्कृति समस्त देश को प्रभावित करने में समर्थ हुई। आज ब्रज संस्कृति का जो रूप दृष्टिगोचर होता है वह 15वीं शताब्दी के धर्माचार्यों की देन है। इस समय तक मथुरा मंडल जैसी राजनैतिक इकाई का गौरव नष्ट हो चुका था अतः धर्माचार्यों ने जिस मथुरामंडल का निर्माण किया वह कृष्ण कथा से जुड़कर ब्रजमंडल अथवा ब्रज प्रदेश कहा जाने लगा।

ब्रज में बौद्ध धर्म के क्षीण होने पर शैवों का प्रभाव स्थापित हुआ होगा। ब्रज की लोक संस्कृति में इसीलिए शिव मंदिरों और शिव पूजा का नियमित विधान है। लकुलीश संप्रदाय शैवों की संघ संस्कृति का प्रतीक था और उसका अस्तित्व मथुरा में था, शैवों के पश्चात् शाक्त संस्कृति का प्राबल्य रहा क्योंकि वार्त्ता-साहित्य में वैष्णव संप्रदायों का शाक्तों से धर्म क्षेत्र छीनने का उल्लेख है।

भक्ति आंदोलन के फलस्वरूप विभिन्न संप्रदाय वैष्णव धर्म में प्रचलित हुए और ब्रज वैष्णव संस्कृति का प्रधान केंद्र बन गया। वैष्णव संस्कृति की कई परंपराएँ ब्रज की लोक भूमि में आकर कृष्णमय हो गईं, निम्बार्क, गौड़ीय, राधावल्लभी, हरिदासी, वल्लभ और शुक सभी संप्रदायों में राधा-कृष्ण को सामान्य रूप से भक्ति का आलंबन बनाया गया। दार्शनिक क्षेत्र के सभी वाद ब्रज की कृष्ण संस्कृति में घुलमिल गए। ब्रज की इस संस्कृति को ही धर्माचार्यों ने उन तत्वों से युक्त किया जिनके कारण वह सर्वप्रिय हो सकी। कृष्ण को केंद्र में रखकर ब्रज की लोक संस्कृति भारतीयता की प्रतिनिधि संस्कृति बन सकी।

ब्रज लोक संस्कृति की विशेषताएँ

ब्रज संस्कृति के विकासात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि यह मध्यदेश की अत्यंत प्राचीन और प्रभावशालिनी संस्कृति है। क्षेत्रीय होते हुए भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्वों से युक्त है। यही नहीं, भारतीय संस्कृति के स्वरूप निर्धारण में भी इस संस्कृति की उल्लेखनीय और अनुपेक्षणीय महत्ता है।

ब्रज संस्कृति का मूलाधार कृष्ण हैं। प्राचीन काल से लेकर आज तक कृष्ण की विद्यमानता ही इस संस्कृति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। संस्कृति के अनेक पक्षों के प्रेरक ही नहीं उन्हें शीर्ष पर पहुँचाने वाले भी कृष्ण हैं। इसलिए इस कृष्णमय संस्कृति का मूल तत्व अमर्यादित प्रेम है। इसका कारण यह है कि वैदिक कालीन कृष्ण और इंद्र का विरोध लोकमानस में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता चला आया और उसी के फलस्वरूप वेद-मर्यादा भंग करने की प्रवृत्ति प्रचलित हुई। कृष्ण ने वैदिक इंद्र के स्थान पर स्थानीय देवताओं की पूजा का विधान किया, इंद्र को परास्त किया, अपनी संस्कृति को नया जीवन प्रदान किया और जन साधारण को अन्याय के विरोध के लिए संगठित किया। इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप लोकमानस में वेद और मर्यादा का अतिक्रमण करके एकमात्र कृष्ण प्रेम उभरकर आया, जिसकी प्राप्ति सर्वसमर्पण भाव द्वारा ही संभव है। गोपियाँ जनसाधारण की इसी भक्ति की पराकाष्ठा हैं। प्रेम के इस तत्व ने भक्ति के शास्त्रीय स्वरूप को लोकधर्म के साथ मिलाकर एक कर दिया। आचार्य वल्लभाचार्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ने इसी अमर्यादित प्रेम को कृष्ण भक्ति के साथ संश्लिष्ट करके ब्रज संस्कृति का जो कायाकल्प किया, उससे लोक समुदाय विदेशी संस्कृति की चकाचौंध और प्रलोभनों को भूलकर अपनी ही संस्कृति से जुड़ा रहा। यही नहीं रसखान, रहीम, ताजबीबी जैसे यवन संस्कृति में पले और बढ़े अनेक व्यक्तियों को भी ब्रज संस्कृति की गरिमा अपनाने के लिए विवश कर दिया। शक, हूण तथा तुर्कों द्वारा कुचली हुई नष्टप्राय भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान में इस कृष्ण प्रेम ने तथा ब्रज की पावन धूल ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ब्रज संस्कृति की दूसरी विशेषता इसमें गौ का महत्व है। ब्रज के कृष्ण गोपालक हैं। गोकुल और गोवर्द्धन ब्रज के ही गौ के महत्व को व्याख्यायित कर रहे हैं। उस जाति की संस्कृति की ओर संकेत कर रहे हैं जो गौ को पालने वाली तथा उसका संवर्द्धन करने वाली है। गोकुल वह है जहाँ गायों का कुल निवास करता है, और गोवर्द्धन वह है जहाँ के उन्मुक्त प्राकृतिक वातावरण और विशाल चारागाहों के द्वारा इस कुल की वृद्धि होती है। समस्त प्राणियों में गौ के समान परोपकारी और कोई प्राणी नहीं है। उसका सब कुछ समाज के लिए उपयोगी है। उसी का अनुकरण करते हुए गोपालक ब्रजवासी भी निश्छल और कल्याण भावना से युक्त स्वभाव वाले हैं।

दूसरी मान्यता ब्रजवासियों की विशिष्ट विचारधारा को ओर संकेत कर रही है। गोकुलवासी गोवर्द्धन की पूजा पद्धति का प्रारंभ करके परंपरा से चलती चली आई इंद्रपूजा का विरोध करते हैं। "गोकुल कौं कुलदेवता गिरि गोवर्धननाथ" की उद्घोषणा शक्तिशाली अहंकारी सम्राट इंद्र के विरुद्ध साधारण जनसमुदाय की नई चेतना की, अपनी शक्तियों को पहचान लेने तथा एक साथ मिलकर समस्याओं से जूझने की क्षमता की प्रतिष्ठा है।

ब्रज संस्कृति में कृष्ण यदि गोपालक हैं तो उनके बड़े भाई बलराम हल और मूसल को आयुध के रूप में स्वीकार वाले, कृषि संस्कृति के प्रणेता हैं। इन दोनों के ही समन्वित प्रयासों के फलस्वरूप ब्रजवासी आर्थिक संपन्नता की ओर अग्रसर होते हैं। इस दृष्टि से ब्रज संस्कृति, आत्मनिर्भर, श्रम को ही आराध्य मानने वाले श्रमजीवी व्यक्तियों की संस्कृति है इसी विशेषता के कारण साम्राज्यवादी नागरिक संस्कृति की तुलना में यह लोकोन्मुखी संस्कृति बन सकी है ऐसी संस्कृति जिसमें साधारण प्राणी भी अपनी उपस्थिति का अनुभव कर सकता है।

ब्रज संस्कृति स्त्रियों को एक स्वतंत्र और निजी व्यक्तित्व से युक्त समाज के लिए उपयोगी अंग मानकर चलती है। संस्कृति के विकास में नारी का योगदान यहाँ घर की चारदीवारी तक ही सीमित नहीं है अपितु वह पुरुषों के समान ही उसके निर्माण में सहायक भी बनती है। 'कत विधि सृजी नारि जग मांही, पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं' की धारणा के विरुद्ध ब्रज की गोपियाँ पिता, पति व पुत्र के संरक्षण से मुक्त अपनी जाति के व्यवसाय में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। निःशंक और निर्द्वंद्व होकर आत्मविश्वास से भरकर वे मथुरा जैसे नगर में दूध, दही और मक्खन बेचने जाती हैं।

ब्रज की प्राकृतिक सुषमा प्रलोभनीय है। वनों और उपवनों से आच्छादित यह प्रदेश ऐसी वन्य संस्कृति का पोषक था जिसमें प्रकृति का प्रत्येक तत्व पूजनीय था। कृष्ण ने यहाँ घूम-घूमकर गोचारण किया था। इसलिए ब्रज रज अत्यंत पवित्र मानी गई है। कृष्ण ने वनों के सांस्कृतिक महत्व को भी निरूपित किया। उनका विनाश करने के स्थान पर उन्हें संवर्धित करने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का उपदेश दिया। करील के कुंजों के वन्य सौंदर्य पर इसीलिए कोटिन कलधौत के धाम न्यौछावर किए गए हैं। प्राकृतिक उपादनों की पूजा ब्रज संस्कृति का प्राण है और वैदिक काल से चलती चली आई परंपरा का निर्वाह भी। भगवान कृष्ण ने स्वयं गिरि गोवर्द्धन की पूजा का सूत्रपात किया और उसे समस्त कृष्णभक्तों का इष्टदेव बना दिया। ब्रज में गोवर्द्धन को विष्णु रूप, बरसाने के वृहत्सानु पर्वत को ब्रह्मा रूप तथा नंदगाँव के पर्वत को शिव रूप मानकर परिक्रमा करने का विधान है। चौरासी कोस की परिक्रमा तो सामूहिक रूप से की जाती है। जिसमें देश भर के एकत्र हुए हजारों यात्री भाग लेते हैं। इसी प्रकार गोपाष्टमी पर गौ-पूजन, नागपंचमी पर नाग-पूजन और वृहस्पतिवार को केले के वृक्ष की पूजा की जाती है। पुत्र जन्म पर यमुना पूजन तथा वट सावित्री पर्व पर बड़ के पूजन की विधि ब्रज लोक-संस्कृति का अंग है। इस प्रकार ब्रज संस्कृति लोक भूमि के प्रत्येक तत्व के प्रति सम्मान भावना अभिव्यक्त करती है। उनमें अलौकिकत्व और देवत्व की प्रतिष्ठापना करती है।

ब्रज संस्कृति समन्वय और सहिष्णुता की संस्कृति है। नाग, यक्ष, आभीर, असुर, जैन, बौद्ध सभी संस्कृतियों के तत्वों को इसने ग्रहण कर लिया है। श्रीकृष्ण द्वारा प्रचारित भागवत धर्म ब्रज संस्कृति की आधारशिला है। इन विभिन्न संस्कृतियों के प्रभावस्वरूप ब्रज के हृदय में गड़े कृष्ण के अतिरिक्त, अन्य देवी-देवताओं की उपासना का भी विधान है। विष्णु के अन्य अवतारों में श्रीराम तथा उनके भक्त हनुमान की पूजा प्रचलित है। शैवधर्म के प्रभाव स्वरूप शिव की पूजा की जाती है। नंदगाँव में श्रीकृष्ण के मंदिर के बाहर नंदेश्वर नाम से शिव की स्थापना की गई है। वृंदावन में गोपेश्वर महादेव का नित्यप्रति गोपी रूप में शृंगार होता है क्योंकि वहाँ एकमात्र पुरुष श्रीकृष्ण ही हैं। इसके अतिरिक्त भी लगभग प्रत्येक गाँव में शिव मंदिर पाए जाते हैं और शिवलिंग तथा शिवपिंडी की पूजा की जाती है। देवी पूजा मातृ पूजा के प्रभावस्वरूप की जाती है, इन्हें योगमाया का रूप तथा कृष्ण की संरक्षिका माना जाता है। शाक्त संप्रदाय की कई देवियों को यहाँ ब्रजरानी श्रीराधा की सखी के रूप में मान लिया गया है। बलराम के शेषावतार होने के कारण तथा नाग संस्कृति के प्रभाव के कारण नागों की पूजा भी की जाती है। "गाँव गाँव को ठाकुर गाँव गाँव को वीर" की मान्यता के अनुसार वीर अथवा यक्ष पूजा का प्रचलन भी ब्रज संस्कृति की विशेषता है। गिरिमह, इंद्रमह और नदीमह के रूप में गोवर्द्धन, इंद्र और यमुना की पूजा का विधान है। संक्षेप में वैदिक काल से लेकर आज तक जितने भी देवता विभिन्न संस्कृतियों के माध्यम से ब्रज में आए यहीं के होकर रह गए। यवन संस्कृति के पीर और फकीरों की मजारें तथा सैयदों के थान भी ब्रजवासियों द्वारा पूजनीय हैं। धर्म तथा अध्यात्म की दृष्टि से यह संघ संस्कृति अथवा सह अस्तित्व की संस्कृति है। उपरोक्त देवी-देवताओं के अतिरिक्त ब्रज की लोक-संस्कृति में बाराह, गणेश, सरस्वती आदि पथवारी, शीतला माता, भैंरों, भूमियाँ, जाहर पीर, जखैया, मैंकासुर, भूत-प्रेत तथा हवाओं आदि की पूजा व अनुष्ठान लोक देवताओं की पूजा के रूप में किए जाते हैं।

ब्रज संस्कृति में भारतीय संस्कृति में वर्णित सभी संस्कारों को स्वीकार किया गया। पुंसवन, जन्म, नाल छेदन, नामकरण, कर्णछेदन, नामकरण, उपनयन, विवाहादि संस्कार तथा इन अवसरों पर अपनाई जाने वाली प्रथाएँ भी संस्कृति का अभिन्न अंग बनी हुई हैं। "सात वार नौ त्योहार" वाले ब्रज में उल्लास की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न उत्सवों, त्यौहारों और पर्वों का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विधान किया है। इनके द्वारा कठिन-से-कठिन समय तथा विपत्ति को झेलने की प्रवृत्ति का निरूपण किया गया है। ब्रज की लोक संस्कृति में विविध पर्व तथा त्यौहारों के लिए तिथियाँ पौराणिक तथा ऐतिहासिक आधार पर निश्चित कर दी गई हैं। और आज भी उनका पालन किया जा रहा है।—उदाहरणार्थ प्रमुख उत्सवों की तिथियों का उल्लेख किया जा रहा है—

	उत्सव या पर्व	तिथि
1.	गणगौर	बालिकाओं द्वारा चैत्र शुक्ल तृतीया को गौरीपूजन किया जाता है।
2.	अक्षय तृतीया	वैशाख शुक्ल तृतीया (इसे आखा तीज भी कहते हैं)
3.	रथयात्रा	आषाढ़ शुक्ल द्वितीय को।
4.	नवरात्रि	आश्विन शुक्ल 1 से 9 तक।
5.	नागपंचमी	श्रावण कृष्ण पंचमी को (नागों की पूजा का विधान है।)
6.	पवित्रा	श्रावण शुक्ल एकादशी को (श्री वल्लभाचार्य द्वारा इसका प्रारंभ किया गया)
7.	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को।
8.	राधाष्टमी	भाद्रपद शुक्ल अष्टमी।
9.	दानोत्सव	भाद्रपद शुक्ल एकादशी।
10.	साँझी	भाद्रपद की पूर्णिमा को।
11.	रासोत्सव	आश्विन की पूर्णिमा को।
12.	अन्नकूट	कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को। इसी दिन गोवर्द्धन पूजा भी होती है।
13.	गोपाष्टमी	कार्तिक शुक्ल अष्टमी।
14.	व्रतचर्या	मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी को।

इन सबके अतिरिक्त महीने भर तक चलने वाले कार्तिक स्नान, मकर संक्रांति, संकटा चौथ, करवा चौथ, अनंत चतुर्दशी, स्याहूँ जैसे अनेकों पर्वों द्वारा ब्रज संस्कृति का उल्लासपूर्ण पक्ष प्रगट होता है। ऋतुओं के आधार पर डोल (बसंत), फूल मंडनी (ग्रीष्म), हिंडोरा (वर्षा), रास (शरद), जागरण (हेमंत), होली (शिशिर+वसंत) आदि उत्सव मनाए जाते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रमुख पर्व रक्षाबंधन, विजयादशमी, दीपावली आदि भी पूरे विधि-विधान से संपन्न किए जाते हैं। रास, रसिया, फाग, आल्हा, जिकड़ी के भजन ब्रज लोक संस्कृति की विशिष्टता है। स्वांग, भगत व रास संपूर्ण उत्तर भारत में लोकप्रिय हैं। अनेकों लोक विश्वास जैसे शकुन-अपशकुन विचारना, टोने-टोटके, मंत्र-तंत्र, लोक प्रथाएँ, वरदान, भोज, घूरा पूजना, कंकण मोचन, गारी देना, न्यौछावर, विदाई दहेज; लोककथाएँ, व्रत से संबंधित कथाएँ जो प्रत्येक पर्व के साथ जुड़ी हुई हैं; लोकगाथाएँ ढोला, राँझा, जाहर पीर; लोकगीत, सोहर, बधावा, देवी के गीत, रतजगा, भी ब्रज संस्कृति की पहचान हैं। लोकोक्तियों के अनेक प्रकार जैसे अनमिल्ला, भेरि, अच्का, औठपाव, गहगड्डु औलना खुसी भी यहाँ पाए जाते हैं। अनेक प्रकार की पहेलियाँ अनुभव के आधार पर गढ़ी गई हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अतिथि सत्कार तथा शिष्टाचार को ब्रज संस्कृति में विशेष स्थान दिया गया है। विभिन्न प्रकार के प्रत्येक वर्ग के मनोरंजन के साधन भी ब्रज में अन्य प्रदेशों के समान ही पाए जाते हैं। कुश्ती अखाड़े ब्रज की विशेषता हैं। ब्रज के मल्ल सारे भारत में विख्यात थे। प्राचीन काल में मल्ल विद्या का विकास कला के रूप में हुआ था। इसी प्रकार आखेट, जल-विहार, चौगान आदि खेलों द्वारा भी मनोविनोद किया जाता था। बाजीगरी, नटों के खेल, चौपड़, जुआ, चाँचरि आदि भी लोक संस्कृति में व्याप्त खेल हैं। बच्चों तथा युवकों के खेलों में कबड्डी, हेल, मल्लक्रीड़ा, स्वांग आदि प्रमुक हैं। बच्चों की दौड़, आँख मिचौनी, गंद भौंरा, चकडोरी आदि खेल प्रचलित हैं। इनसे अभिजात्य तथा ग्रामीण दोनों ही प्रकार के वर्गों में प्रचलित खेलों का निदर्शन हुआ है। इस प्रकार ब्रज संस्कृति में सादगी और सरलता महत्वपूर्ण स्थान रखती है जो लोक मानस की निश्छलता का प्रतीक है।

ब्रज संस्कृति कलात्मकता की अभिव्यक्ति है। ललित तथा उपयोगी दोनों ही प्रकार की कलाएँ प्राचीन काल से ही ब्रज में विद्यमान रही हैं। कभी उन्नत रूप में, कभी सामान्य रूप में और कभी अवनत रूप में। ब्रज संस्कृति को विशिष्टता प्रदान करने में भी कलाओं का बहुत बड़ा हाथ है। यह कलाएँ प्रायः धर्म से जुड़ी हुई हैं। और ब्रज संस्कृति में विभिन्न धर्मों की संस्कृतियाँ विकसित और विनष्ट हुई हैं। इसलिए प्रत्येक धर्म की धार्मिक भावनाओं के अनुरूप, अभिव्यक्त यह कलाएँ उस विशिष्ट धर्म की स्थिति के अनुसार उत्कर्ष और ह्रास को प्राप्त होती रहीं। धर्म पर आश्रित होने के कारण यह कलाएँ 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की भावना से ओतप्रोत हैं।

श्रीकृष्ण ब्रज की कलाओं के आदर्श, उनके प्रेरणा स्रोत तथा उन्हें उन्नति तक पहुँचाने वाले हैं। पौराणिक साहित्य में कृष्ण का यह योगदान प्रामाणिक रूप से उपलब्ध होता है। कृष्ण और राधा को साकार करने के लिए स्थापत्य और मूर्तिकला अपने शिखर पर पहुँच गई। मथुरा शैली एक लम्बे समय तक कला के क्षेत्र पर छायी रही और अपनी परवर्ती कला पर प्रभाव छोड़ने में समर्थ हुई। इन्हीं की साज-सज्जा के लिए चित्रकला का जन्म हुआ और मध्यकाल तक आते-आते वह चरम विकास पर पहुँच गई। ब्रज के वास्तुकला, मूर्ति तथा चित्रकला के अधिकांश चिह्न आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिए गए परंतु जो अवशेष मिलते हैं उनसे उनकी उत्कृष्टता का परिचय मिल जाता है। आचार्य वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग की सेवा विधि में विभिन्न कलाओं को स्थान दिया गया है। कृष्ण प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए भजन-कीर्तन पद्धति का प्रारंभ किया गया और इसके माध्यम से संगीत के वादन, नर्तन तथा गायन को उन्नत किया गया। विभिन्न पर्वों तथा अवसरों पर कृष्णलीला के मंचन द्वारा नाट्य कला को प्रोत्साहित किया गया। कृष्ण की ध्यान अवधारणा के लिए मूर्तियों तथा चित्रों के निर्माण के माध्यम से मूर्तिकला और चित्रकला का विकास किया गया। श्रीकृष्ण के शृंगार के लिए विभिन्न वस्त्रों तथा आभूषणों को तैयार करने की विशिष्ट कला का विकास किया। मुकुट, शृंगार की यह कला ब्रज की प्रतिनिधि कला बन गई। भोग के लिए पाक कला का विकास किया गया। ऋतु तथा पर्वों के अनुसार भोज्य पदार्थों में नवीनता का समावेश किया जाने लगा। कला की उन्नति में स्त्रियों ने भी अपना योगदान दिया। चित्र गान, वाद्य तथा नाट्य कलाओं में उनके द्वारा रसात्मक अभिव्यक्ति की गई। घर की सजावट, पर्यंक सज्जा, प्रसाधन, केश विन्यास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फूलमाला, कताई, बुनाई, कढ़ाई, कसीदाकारी, कारचोबी, जरदोजी, मेंहदी, भित्ति चित्र, मांगलिक प्रसंगों पर चौक पूरना, थापे लेपना, अल्पना, साँझी आदि लोक कलाओं में ब्रजनारियाँ निष्णात हैं। ब्रज संस्कृति सभी प्रकार की कलाओं की प्रतिनिधि संस्कृति बन गई।

भारतीय संस्कृति की समस्त विशेषताओं—समन्वय भावना, साहिष्णुता, व्यापकता, जनकल्याण की भावना, आदि गुणों को ब्रज संस्कृति ने आत्मसात कर लिया है। कृष्ण ने ब्रज संस्कृति में सहकारिता और समाजवाद के विचारों को पोषित किया। उसे लोक की ओर उन्मुख किया और इस प्रकार उसमें समस्त विश्व को आकृष्ट कर लेने वाला तत्व जोड़ा। कृष्ण और उनके विचार ब्रज संस्कृति की अक्षय-निधि हैं और उन्हीं के कारण ब्रज की यह कृष्ण संस्कृति भारत की मेधावी संस्कृति बन सकी है। जिसमें वैदिक और लौकिक परंपराओं के श्रेष्ठ विचारों का सार संग्रहीत है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप काव्य की लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति—सामाजिक परिप्रेक्ष्य

अष्टछाप साहित्य ब्रज लोक संस्कृति का व्याख्याता है। संस्कृति, समाज और साहित्य तीनों एक-दूसरे के ऊपर निर्भर हैं। संस्कृति यदि किसी समाज के आचार-विचार, रीति-रिवाज, जीवन-पद्धति को प्रदर्शित करती है तो साहित्य संस्कृति को निरूपित करता है। समाज शास्त्रीय अध्ययन के अनुसार समाज कई मनुष्यों का समूह है जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपनी व्यक्तिगत उन्नति का प्रयास करते हुए भी एक व्यवस्था में रहता है। संस्कृति इसी सामूहिक जीवन व्यवस्था की अभिव्यक्ति है इसीलिए प्रत्येक जाति या समाज के साहित्य में वहाँ की संस्कृति उभरकर सामने आती है। वैदिक, पौराणिक तथा लौकिक साहित्य में लोक-संस्कृति के आधारभूत सिद्धांतों के साथ-साथ मानवीय उदात्त-गुणों का समन्वित रूप मिलता है।. अष्टछाप-काव्य में भी भारतीय परंपरा के अनुरूप संस्कृति के चित्रण को प्रधानता दी गई है। यह काव्य वास्तव में तत्कालीन ब्रजलोक का प्रतिबिंब है और इसी कारण लोकप्रिय तथा कालजयी है। इसके अनुशीलन से तत्कालीन ब्रज-समाज की संरचना, वर्ग-व्यवस्था, पारिवारिक जीवन संस्कार तथा पर्वों के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस संबंध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अष्टछाप के भक्त कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से कहीं भी इन विषयों की चर्चा नहीं की है। उनका लक्ष्य अपने आराध्य का लीला गान है और यह विषय स्वयमेव उनकी रचनाओं में सम्मिलित हो गए हैं। विभिन्न कथा प्रसंगों में यथास्थान इनका स्पष्ट विवरण प्राप्त हो जाता है।

अष्टछापी कवियों के अनुसार ब्रज लोक की सामाजिक संरचना

अष्टछापी काव्य में तत्कालीन ब्रज लोक और उसकी मान्यताओं का स्पष्ट उल्लेख मिल जाता है। ब्रज लोक की संरचना के दो मूल तत्व—वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था पर अष्टछापी कवियों ने अधिक बल दिया है। भारतीय वर्ण व्यवस्था को उन्होंने सामाजिक जीवन की आधारशिला माना है। वर्ण व्यवस्था का प्रारंभ ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से हुआ जिसमें विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति मानी गई है।[1] यह वर्गीकरण कर्म के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आधार पर था जो समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए किया गया था पर धीरे-धीरे यह जन्मजात हो गया। पहले ब्राह्मण का कार्य अध्ययन, क्षत्रिय का देश-रक्षा व पोषण, वैश्यों का व्यवसाय तथा शूद्रों का सेवा था परंतु सामाजिक मान्यताएँ बदलते ही 'मूर्ख' व्यक्ति भी जन्म के आधार पर ब्राह्मण कहलाने लगा और कायर तथा अत्याचारी क्षत्रिय। पशुपालन और कृषि करने वाले वैश्य हीन माने जाने लगे और शूद्रों को तीनों ही वर्ण हेय दृष्टि से देखने लगे।

अष्टछाप के समय ब्रज में यह चारों वर्ण विद्यमान थे। राजनीतिक उथल-पुथल और जाति व्यवस्था के कठोर बंधनों के कारण एक ऐसे वर्ग का उदय भी हो रहा था जो हिंदू-मुसलमान दोनों के लिए अस्पृश्य था। मुसलमान वह होना नहीं चाहता था और हिंदू उसे अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं थे। अष्टछाप के कवियों ने इन सब परिवर्तनों की ओर दृष्टिपात नहीं किया। उनका लक्ष्य कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रतिष्ठापना है, लोकवेद की मर्यादा स्थापना नहीं। उन्होंने न तो वर्ण व्यवस्था के पुनर्गठन की बात कही और न ही किसी की आलोचना की। कलियुग में जाति-पाँति और कुल-मर्यादा के उल्लंघन का वर्णन किया है तो केवल युग चित्रण के लिए, किसी आदर्श की स्थापना के लिए नहीं।

अष्टछाप-कवि भक्त पहले थे और भक्ति में वर्ण व्यवस्था का कोई स्थान नहीं था। पुष्टि मार्ग में कृष्ण प्रेम को ही वेद, गीता, पुराणादि का सार कहा गया है इसलिए भक्त के लिए जाति भेद, कुलभेद सभी को वहाँ नगण्य माना गया—

"जाति गोत्र कुल नाम गतन नहिं, रंक होई के रानि।"[2]

"जाति पाँति कुल कानि न मारवे वेद पुरान न साखे।"[3]

जाति-भेद का निराकरण करते हुए भी अष्टछाप साहित्य में कृष्ण के चरित्र में समाजोपयोगी उदात्त गुणों का समावेश किया गया। भक्तवत्सलता, करुणा, पतितपावनता आदि ऐसे ही गुण हैं जिनका वर्णन वेदों में भी हुआ है—

दीन दयाल पतित पावन, जस वेद बखानत चारों।[4]

इतना व्यापक दृष्टिकोण होने पर भी वर्णाश्रम धर्म स्पष्ट रूप से अष्टछाप काव्य में विद्यमान है। ब्राह्मण का आदर चारों वर्णों में सबसे अधिक है। वे धर्म व्यवस्था के अंग हैं इसलिए प्रत्येक शुभ कार्य में उनकी उपस्थिति अपरिहार्य मानी गई है लेकिन इससे अधिक महत्ता उन्हें नहीं दी गई न ही उनका गुणगान किया गया है। कृष्ण के जन्म, नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगाँठ आदि सभी शुभ अवसरों पर वेदों के सुकंठ गायकों द्वारा शुभ कार्य संपन्न कराए जाते हैं—

"द्वार ठाढ़े हैं द्विज-बावन।
चारों वेद पढ़त सुख आगर, अति सुकंठ सूर गावन।"[5]
"बोले ब्रज के द्विज बड़भागी जिनके दुती यहै लौ लागी।
स्वच्छ सुगंध सलिलि अन्हवाए विप्रन कंचन तिलक बनाए।"[6]

ब्राह्मणों को पुरोहित भी कहा जाता था। जिसके पधारने पर राजा भी उसका सम्मान करते थे—

"पुरोहित आयो नृप के द्वारे।
पिता सदन कुल प्रोहित मानत दोउ कर चरन पखारे।"[7]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्राह्मण का मुख्य कार्य वेद पाठ करना है—

"गोप वधू दधि मंथन लागीं बिप्र पढ़न लागे बेद।" [8]

ब्राह्मणों द्वारा किसी का पका न खाने का उल्लेख भी किया गया। कृष्ण द्वारा 'सिद्ध पाक' झूठा करने के प्रसंग में इसी बाह्याचार का वर्णन हुआ है।[9] तत्कालीन सामाजिक मान्यता के अनुसार ब्राह्मण अवध्य थे। कृष्ण को मारने आया हुआ कंस का दरबारी श्रीधर ब्राह्मण इसीलिए निंदित व नीच कर्म करने के बाद भी अवध्य ठहराया जाता है। सामाजिक वर्ण व्यवस्था में यह प्रसंग ब्राह्मणों के आधिपत्य को सूचित करता है—

"श्रीधर बाँमन करम कसाई, कहयौ कंस सौं बचन सुनाई।" [10]
बाँमन मारे नहीं भलाई अंग भंग याको मैं देउ नसाई।" [11]

क्षत्रिय के लिए 'छत्री' व ठाकुर का प्रयोग हुआ है। क्षत्रियों का प्रधान धर्म प्रजा पालन विशेष रूप से गाय, ब्राह्मण और दोनों की रक्षा है। अष्टछाप काव्य में इन गुणों का संकेत मात्र हुआ है। कंस के रूप में अत्याचारी और अभिमानी क्षत्रिय राजा का वर्णन किया गया है। पृथु के माध्यम से प्रजापालक, दयालु व निरभिमानी क्षत्रिय के गुणों का बखान किया गया है जो प्रजा के प्रत्येक जन को जीविका देने के लिए कृत संकल्प है—

"सूर रिषिनि नृपति पुनि पृथी दोहन करि, अपनी जीविका सबनि पाई।" [12]

सूरदास की गोपियों ने उद्धव से वार्तालाप में कृष्ण के लिए 'ठाकुर' शब्द का प्रयोग किया है जो तत्कालीन समाज में क्षत्रियों अथवा छोटे राजाओं के लिए तथा आजकल भी जाति विशेष के लिए प्रयुक्त हो रहा है—

"सुनी-नुनि ऊधौ आवति हाँसी
कहँ वै ब्रह्मादिक के ठाकुर कहाँ कंस की दासी।" [13]

परमानंददास ने गाँव के जमींदार अथवा राजा के लिए 'ठाकुर' शब्द का प्रयोग किया है—

"कहा भयौ जो गाउँ कौ ठाकुर, इहि कैसी लरिकाई।" [14]

वैश्यों का वर्णन जाति विशेष के रूप में अष्टछाप में नहीं किया गया है। तत्कालीन समाज के वाणिज्य व्यापार के वर्णन में अप्रत्यक्ष रूप से वैश्यों का उल्लेख हुआ है। 'बनिज' शब्द का अनेकशः प्रयोग यह प्रमाणित कर देता है कि वाणिज्य करने वाले वैश्य भी समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। बनिज शब्द माल खरीदने और बेचने के अतिरिक्त व्यापारी के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है जैसे "आयो घोष बड़ौ व्यौपारी।" गोपियों से भी कृष्ण बन में बनिज करने और अपने महसूल वसूल करने का उल्लेख करते हैं—

"या बन में तुम बनिज करति हो—नहिं जानति मो कों घटवारो।
सूर बनिज तुम करति सदाई, लेखौं करिहौं आजु तिहारो।" [15]

वाणिज्य केवल मेवादि और मसालों का होता था इसलिए गोपियाँ कर देने से मना कर देती हैं। व्यापार में बराबर का लेन-देन होता था। विनय के पद में इस आधारभूत सिद्धांत का उल्लेख किया गया है—

"लिये दियौ चाहै सब कौऊ सुनि समरथ जदुराई।
देत लेत व्यापार परस्पर ज्यों पसु दूध चराई।" [16]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप के समय तक अहीर या आभीर जाति बनिज को जीविका का एक साधन मानकर चलती थी। पशुपालन के अतिरिक्त दूध, दही, माखन का व्यापार भी वे लोग करते थे और वैश्य वर्ग में निम्नस्तरीय ही सही परिगणित होते थे। वैश्य शब्द का प्रयोग न करते हुए भी उनके प्रमुख व्यवसाय 'महाजनी' का उल्लेख अष्टछाप में किया गया है। सर्राफ, साहूकार, महाजनी इसी वर्ग में आते हैं। रुपए-पैसे का लेन-देन, हुंडियाँ लेना और उनका भुगतान करना, ऋण को कठोरता से वसूल करने का उल्लेख भी अष्टछाप में हुआ है। वास्तव में वैश्य वर्ग समाज की आर्थिक संपन्नता की धुरी होता है इसलिए उसका वर्णन अवश्यंभावी है। भक्ति साहित्य होने के कारण अष्टछाप में यह उल्लेख अप्रत्यक्ष तथा प्रतीक रूप में ही उपलब्ध है।

भक्ति के क्षेत्र में सभी को बराबर भक्ति का अधिकारी माना गया है इसलिए अष्टछाप में शूद्रों का विशेष उल्लेख नहीं किया गया है फिर भी सामाजिक मान्यताओं की झलक उनके काव्य में मिल ही जाती है। सूर की गोपियाँ, कृष्ण और कुब्जा के साथ को, हंस और कौए, कपूर और लहसुन, कंचन और कांच, सिंदूर और गेरू के समान बताते हुए व्यंग्य से कहती हैं—

"भोजन साथ सूद्र बाम्हन के, तैसो उनकौ साथ।"[17]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण और शूद्र का भेद तत्कालीन समाज में विद्यमान था और इन दोनों वर्णों में परस्पर खान-पान नहीं था। श्वपच आदि शूद्र जातियों का उल्लेख कृष्ण भक्ति प्राप्ति के संदर्भ में हुआ है—

"स्वपचहु श्रेष्ठ होत पद सेवत, बिन गोपाल द्विज जनम न भावै।"[18]

इस पंक्ति द्वारा कृष्ण कृपा प्राप्त श्वपच जन्म को, कृष्ण कृपा से रहित द्विज जन्म की अपेक्षा श्रेयस्कर बताया गया है।

इनके अतिरिक्त कुछ अनिर्वासित या उपजातियों का उल्लेख भी अष्टछाप साहित्य में मिल जाता है। कृष्ण के विविध संस्कारों के प्रसंग में इन जातियों का उल्लेख किया गया है। कृष्ण जन्म के प्रसंग में 'मालिन' के तोरण बाँधने, 'सुतहार' के पालना गढ़ने का उल्लेख है। 'सुनारिन', 'दर्जिन', 'गंधिनि', 'ढाढिनी', 'दाई' और नाइन भी बधावा देने आने वाली स्त्रियाँ हैं। बालकृष्ण की चौकी तथा पालने में मणि माणिक आदि जड़ने वाले जरैया का उल्लेख भी है। विवाह प्रसंग में भी इन जातियों का उल्लेख किया गया है। यह जातियाँ अस्पृश्य नहीं मानी जाती थीं, परंतु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के समान उच्च कुल में भी सम्मिलित नहीं की जाती थीं। इनके साथ खान-पान का संबंध भी नहीं था। यह लोग यथासंभव अपने छोटे-मोटे जीविका साधनों द्वारा उच्चवर्ग की सेवा करते थे और प्रत्येक शुभ अवसरों पर 'नेग' या दान आदि प्राप्त करते थे।

अहीर या आभीर जाति का स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप साहित्य में है परंतु उन्हें किस वर्ण के रूप में मान्यता प्राप्त थी, इसका संकेत स्पष्ट रूप से नहीं दिया गया है। इन्हें यादव वंशी कहा गया है (नंद को पौराणिक वंशावली के अनुसार वसुदेव का भाई माना गया है। वसुदेव क्षत्रिय पत्नी से तथा नंद वैश्य पत्नी से उत्पन्न हैं) गौपालन, पशुपालन, और उन्हीं के दूध, दही, मक्खन का व्यवसाय उनकी जीविका का साधन है। प्रारंभ में यह जाति घुमक्कड़ जाति रही होगी ऐसा निष्कर्ष वैदिक साहित्य के आधार पर निकाला जा सकता है। गोपाल कृष्ण के आविर्भाव से कृषि को भी इस जाति का व्यवसाय स्वीकार किया गया ... और गोकुल (ब्रज) में इनका स्थायी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निवास बना। वनों, पशुओं पर ही इनकी जीविका निर्भर थी। सरलता, निश्छलता और दृढ़ता इनके प्रधान गुण थे। अष्टछाप के सूर ने कई बार इन्हें गँवार कहा है। गोपियाँ स्वयं अपने लिए कहती हैं—

हम तो अहिर गँवार नारि हैं, तुम हौ सारंग पानी।"[19]

वर्ण व्यवस्था के क्रम में संभवतः तत्कालीन समाज में अहीरों को सम्मानीय स्थान प्राप्त नहीं था इसीलिए गोवर्द्धन पूजा प्रसंग में इंद्र द्वारा उन्हें 'ओछा' और निम्न जाति का बताया गया है—

"अहिर जाति ओछी मति कीन्ही, अपनी जाति प्रकट करि दीन्ही।"[20]

आत्मगौरव और आत्माभिमान अहीर जाति में कूट-कूटकर भरा हुआ है इसलिए अष्टछाप में कहीं भी वे अपने को हेय नहीं समझते हैं। समाज की इकाई व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक विकास के लिए तथा उसकी जीवन पद्धति को नियमित करने के लिए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चारों आश्रमों की व्यवस्था की गई है। ब्राह्मण के लिए चारों आश्रम अनिवार्य थे, शेष तीनों वर्णों के लिए संन्यास कों छोड़कर तीन आश्रम थे। अष्टछाप में कृष्ण कथा के संबंध में ब्रह्मचर्य का, कृष्ण के गुरुकुल में पढ़ने का वर्णन किया गया है—

"गुरु गृह हम जब बन कौं जात।
तोरत हमरे बदलैं लकरी सहि सब दुख गात।"[21]

कृष्ण के गुरुदक्षिणा देने का वर्णन भी किया गया है। पौराणिक कथाओं, जैसे प्रह्लाद की कथा में भी गुरुकुल में अध्ययन की बात कही गई है। गृहस्थाश्रम की चर्चा अधिक नहीं है केवल सूरदास ने ही श्रीकृष्ण के गृहस्थ जीवन का चित्रण किया है। संन्यास और वानप्रस्थ की भी यही स्थिति है। इनका केवल नामोल्लेख मात्र हुआ है विस्तार से वर्णन नहीं—

"आपुहिं बानप्रस्थ ब्रह्मचारी।"[22]
स्याम राम को संगी यह अलि, कीजत कह संन्यास।"[23]

अष्टछाप में सामाजिक संरचना का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि अष्टछाप कवियों का लक्ष्य समानता पर आधारित एक मानवतावादी समाज की संरचना करना है। इस समाज का मूलाधार प्रेम है। साहित्य में वर्णित इस समाज में जातिगत और वर्गगत भेद समाप्त प्रायः हैं। कृष्ण इस समाज की नींव डालने वाले हैं। लोक को अपने साथ लेकर चलने वाले लोकनायक हैं। ब्रज मंडल में जनपदीय चेतना का मंत्र फूँकने वाले हैं। परंपरा से चली आ रही प्रथाओं को बदलकर समाज का परिष्कार करने वाले हैं। ब्रजवासियों को अपनी शक्ति की पहचान कराने वाले हैं। वे नीच और निम्न कही जाने वाली जातियों के भक्तों के रक्षक हैं। भारतीय वर्ण व्यवस्था में दासी पुत्र अथवा वर्ण संकर संतान को हेय दृष्टि से देखा जाता था। कौरव पक्ष में विदुर महान् ज्ञानी होते हुए भी इस अपमान और व्यंग्य-उपहास के भागी थे। कृष्ण इसी विदुर का आतिथ्य स्वीकार करके दुर्योधन के व्यंग्य का पात्र बनते हैं—

"क्यौं दासी सुत कैं पग धारे जदूकुल लाजनि मारे।"[24]

राजा बनने के बाद भी कृष्ण लोक के इस सामान्य जन को नहीं भूलते। सेवक के खानपान वस्त्रादि तक का ध्यान रखते हैं, शरणागत की रक्षा के लिए कृत संकल्प हैं। इस प्रकार, कृष्ण अर्थ, जाति, वर्ग सभी प्रकार की असमानताओं को दूर करने के लिए कृत संकल्प हैं।[25]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप का साहित्य भी कृष्ण प्रेम की परिधि में सभी प्रकार की ऊँच-नीच को समाप्त करने का प्रयास करता है।

अष्टछाप कवियों के अनुसार सामाजिक वर्ग-व्यवस्था

आश्रम और वर्णव्यवस्था द्वारा समाज को व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक अंग को उसका कार्यक्षेत्र और सीमा बता दी जाती है परंतु समाज का स्वरूप उसमें रहने वाले व्यक्तियों, परिवारों से गठित होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग मान्यताओं, विश्वास और जीवन प्रणाली का स्वामी होता है। इसलिए किसी भी समाज में अनेक मान्यताएँ, अनेक विश्वास तथा अनेक जीवन प्रणालियाँ पाई जाती हैं। इन्हीं बिखरी हुई व्यक्तिगत विविधताओं को एकत्र करके एक वर्ग का निर्माण किया जाता है और विभिन्न वर्ग ही समाज को एक स्वरूप या आकार प्रदान करते हैं। प्रारंभ में जब वर्णव्यवस्था जन्मगत नहीं थी, कार्यक्षेत्र की दृष्टि से चार भागों में ही समाज को विभाजित किया गया था परंतु धीरे-धीरे यह वर्ग संकुचित होते गए और अपनी विशिष्ट जीवन पद्धति निर्मित करने लगे। और उनके द्वारा छोड़े गए व्यवसायों को ग्रहण कर नए वर्ग पनपने लगे। इस तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अतिरिक्त समाज में नए वर्गों का अस्तित्व प्रकाश में आया। कार्य क्षेत्रों का विकास तो हुआ परंतु जटिलताएँ बढ़ती गईं। समाज का आकार और स्वरूप भी बढ़ता गया।

समाज में आकार लेते हुए यह वर्ग विभिन्न प्रकार के थे। किसी न किसी रूप में समाज की उन्नति में इनका योगदान रूढ़िगत वर्णों से अधिक था। इनमें से कुछ वर्ग धन तथा सत्ता की दृष्टि से हीन थे परंतु अपने बुद्धि-वैभव के कारण समस्त समाज द्वारा सम्मानीय गिने जाते थे। वे एक अपरिहार्य आवश्यक अंग थे। विभिन्न विषयों और कलाओं की शिक्षा देने वाले आचार्य, इस वर्ग के अंतर्गत परिगणित किए जा सकते हैं। समाज के छोटे-छोटे कार्यों को संपन्न करने वाले दरजी, बढ़ई, केवट, नाई आदि वर्ग समाज के साधारण वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। यह सब समाज के उपयोगी वर्ग की श्रेणी में आते थे। उच्चवर्ग के विलास और वैभव प्रदर्शन में यह लोग नींव के पत्थर की भूमिका निभाते थे। इनके बिना समाज के कार्य संचालन में व्यवधान उपस्थित हो जाता था। सामाजिक दृष्टि से हीन समझे जाते हुए भी महत्व की दृष्टि से इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इनसे भी, आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से हेय समझे जाने वाले वर्ग में बाजीगर, नट, गायिका आदि आते थे जो समाज में मनोरंजन के अंग माने जाते थे। अपने परिश्रम के बदले में पर्याप्त धन यह कभी नहीं पाते थे लेकिन परंपरा से चलते आए पैतृक व्यवसाय को छोड़ भी नहीं पाते थे। समाज के इन सभी वर्गों का उल्लेख अष्टछाप साहित्य में विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से हुआ है।

तत्कालीन समाज में आचार्य अथवा गुरु की महिमा विद्यमान थी। शास्त्रों की शिक्षा देने वाले आचार्य अधिकतर ब्राह्मण होते थे परंतु शस्त्र कलाओं तथा औषधि-ज्योतिष आदि के लिए अन्य वर्ण भी अपना योगदान देते थे। शिक्षा प्रणाली का वर्णन अधिक विस्तार से नहीं किया गया है परंतु संकेतों से यही ज्ञात होता है कि संभवतः गुरुकुल प्रणाली ही प्रचलित रही होगी। कृष्ण-सुदामा के गुरुकुल में साथ रहने का उल्लेख किया गया है। सामान्य प्रजा में शिक्षा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनिवार्य नहीं थी। राजनैतिक अव्यवस्था के कारण भी शास्त्र से अधिक शस्त्र की शिक्षा का प्रचार था। सामान्य वर्ग इसी कारण शास्त्र के प्रति उपेक्षा का भाव रखता था। कृष्ण-कथा तथा प्रह्लाद की कथा का वर्णन करते हुए अष्टछाप के कवियों ने शिक्षा के विषय में संकेत मात्र दिए हैं। प्रह्लाद की कथा में सूरदास ने आचार्य को राजा द्वारा बुलाने तथा उसके साथ ही प्रह्लाद को गुरुकुल भेजने का उल्लेख किया है—

"पाँच बरस की भई जब आइ। संडामर्कहिं लियौ बुलाइ।
तिनके संग चत्सार पठायौ। रामनाम सो तिन चित लायौ।"[26]

आसुरी राज्य में आचार्यों की सामाजिक स्थिति का उल्लेख भी इन पंक्तियों में हो जाता है। अभिमानी राजा तथा धनी वर्ग प्राचीन परिपाटी के अनुसार अपने पुत्रों को गुरुकुल भेजने के लिए भी गुरुकुल के आचार्य को ही अपने पास बुलाते थे। ऐसे आचार्य भी थे जो विवश होकर इस वर्ग की अहमन्यता को सहन करते थे। उनकी जीविका का साधन इसी धनी वर्ग की कृपा दृष्टि थी। सूरदास द्वारा निरूपित यह तथ्य आज की शिक्षा प्रणाली का सत्य बन चुका है। दूसरी ओर ऐसे आचार्य भी थे जो आर्थिक अभाव को सहते हुए भी अपने स्वाभिमान को अक्षुण्ण रखते थे। सारावली में सूर ने कृष्ण के अवंति के गुरुकुल में विद्या हेतु जाने का उल्लेख किया है—

"गर्ग बुलाय बेद विधि कीन्हीं सुभ उपबीत करायो।
बिद्या पढ़न काज गुरु गृह दोउ पुरी अवंति पठायो।"[27]

गुरुकुल में धनी वर्ग तथा सामान्य वर्ग के विद्यार्थी समान भाव से शिक्षा पाते थे। कृष्ण और सुदामा की कथा के माध्यम से इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है—

"संदीपन के हम अरू सुदामा पढ़े एक चटसार।"[28]

आचार्य वर्ग की जीविका का साधन राजकृपा के साथ-साथ गुरु दक्षिणा भी था, कृष्ण द्वारा गुरु पत्नी को दक्षिणा स्वरूप यमलोक से उनके मृतक पुत्र को लाने का उल्लेख किया गया है।[29] समाज में गुरु व आचार्य को पूज्य समझा जाता था। महाभारत के प्रसंगों में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य का अपमान करने का हेतु युधिष्ठिर स्वयं को जानकर दुखी होते हैं—

"गुरुकुल हत्या मोतें भई अब थौं कैसी करिहै दई।"[30]

शिक्षा देने वाले आचार्यों के अतिरिक्त एक वर्ग ऐसा भी था जो बही-खाते (हिसाब-किताब) लिखकर जीविकोपार्जन करता था। यह वर्ग लिखिया कहलाता था। "साँचों सो लिखहार कहावै"[31] द्वारा इसी वर्ग की ओर संकेत किया गया है। "अहंकार पटवारी कपटी झूठी लिखत बही"[32] में भी लिखिया की ओर संकेत किया गया है। लिखने के उपकरणों के रूप में 'कागद', 'लेखनी' और मसि का उल्लेख भी किया गया है—

"कागद गरे मेघ मसि खूटी सर दव लागि जरे।[33]
लेखनि काम-बान कै चाप.... ।"[34]

लेखाकारों की शक्ति और सामर्थ्य का परिचय भी लगान व्यवस्था के संदर्भ में दिया गया है। सामान्य प्रजा को किस तरह यह परेशान करते थे इसकी झलक भी इस विवरण में मिल जाती है। पुरोहितों तथा शास्त्र विधि से यज्ञादि करवाने वाले धर्माचार्यों की चर्चा भी अष्टछाप काव्य में की गई है। अपने ज्ञान के कारण ही यह लोग लोक में पूजनीय थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समाज के स्वास्थ्य की देखभाल करने वाले औषधि-विशेषज्ञ आचार्य वैद्य की चर्चा भी अष्टछाप में की गई है। रोग का उपचार व निदान करना तथा इस तथ्य से संबंधित ज्ञान का प्रसार करना इनका कर्त्तव्य था। वैद्यकी की शिक्षा देते हुए किसी आचार्य का वर्णन नहीं किया गया है परंतु वैद्य के रूप में उपचार से रोगियों को स्वस्थ करने का उल्लेख किया गया है। सूरसागर में अश्विनीकुमार तथा सुषेण वैद्य का उल्लेख च्यवन ऋषि के नेत्रों और लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने के प्रसंगों में किया है—

"अस्विनिसुत इहि अवसर आए¨ ।
कहयौ दृगनि कौ करो उपाय तुरत नेत्र तिन दिए बनाई।"[35]
"दौनागिरि पर आदि सँजीवनि बैद सुषेन बताई।"[36]

सूरसागर में कई प्रकार के रोगों का भी वर्णन किया गया है। सामान्य प्रजा इनसे अच्छी तरह परिचित थी। विभिन्न रोगों के इस विवरण से प्रमाणित हो जाता है कि इन रोगों को दूर करने वाले विशेषज्ञ आचार्य भी तत्कालीन समाज में आदर और श्रद्धा के पात्र रहे होंगे। उद्धव गोपी संवाद में वात, पित्त, कफ के त्रिदोष का वर्णन है, साथ ही ग्रामीण अँचल में उचित भेषजों तथा वैद्यों की कमी की ओर भी संकेत किया गया है—

"समुझि न परति तिहारी ऊधौ।
ज्यौं त्रिदोष उपजै जक लागत, बौलत वचन न सूधौ।
बड़ो रोग उपज्यौ है तुमकौं भवन सबारै लेहु,
त्याँ भेषज नाना भाँतिनि के अरू मधु-रिपु से बैद।"[37]

'पथ्य' और 'कुपथ्य' का ज्ञान भी साधारण अशिक्षित मनुष्य को वैद्यों द्वारा दी गई शिक्षा के कारण ही था—

"परमारथ उपचार कहत हौ बिरह ब्यथा जाहि।
जाकौं राजरोग कफ ब्यापन दह्यौ खवावत ताहि।"[38]

ज्वर जैसे साधारण रोग और उसके लक्षणों का उल्लेख[39] तथा 'सुभेषज' खाने से मूर्च्छा के दूर होने का वर्णन भी किया गया है—

"सूर मिटै अज्ञान-मूरछा ज्ञान सुभेषज खाएँ।"[40]

रसायनी वैद्य द्वारा भस्म के माध्यम से उपचार की चर्चा की गई है—

"जैसे हाटक लै रसाइनी पारहिं आगि दई।
जब मन लग्यौ दृष्टि तब बोल्यौ सीसी फूटि गई।"[41]

शास्त्रों और आयुर्वेद के ज्ञाताओं के अतिरिक्त विज्ञान से संबंधित गणित ज्योतिष विषयों की शिक्षा देने वाले ज्योतिषाचार्य भी समाज का प्रमुख अंग थे। भौतिक, रसायन, वनस्पति प्राणी, ज्योतिष, भूगर्भ शास्त्र विज्ञान के अंग कहे गए हैं। इनमें ज्योतिष के ज्ञाता आचार्य की आवश्यकता, प्रत्येक शुभ अवसर पर, तथा प्रत्येक कार्य को प्रारंभ करते समय होती थी इसलिए इस विषय की शिक्षा का प्रचार विज्ञान के अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक था। नंददास ने ज्योतिष विज्ञान को अतीन्द्रिय ज्ञान कहा है—

"ज्योतिष सास्त्र जु अतीन्द्रिय ज्ञान ताके तुम ही बीज निधान।"[42]

ज्योतिषी का प्रमुख कार्य ग्रह लग्नों के शुभ-अशुभ परिणाम पर विचार करना था। कृष्ण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जन्म के अवसर पर 'आदि ज्योतिषी' द्वारा तिथि, वार, पक्ष और घड़ी की गणना प्रस्तुत की गई है—

"बृष है लग्न उच्च कै निसिपति तनहिं बहुत सुख पैहें।
चौथे सिंह रासि के दिनकर जीति सकल महि लैहें।
पंचए बुध, कन्या को जौ है पुत्रानि बहुत बैठे हैं।
छठऐं सुक्र तुला के सन जुत सत्रु रहन नहिं पैहें।
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं सतऐं राहु परें हैं।
भाग्य भवन मैं मकर महीसुत बहु ऐश्वर्य बढ़ै हैं।
लाभ-भवन मैं मीन वृहस्पति नवनिधि घर मैं ऐहें।
कर्म भवन के ईस सनीचर स्याम बरन तन है हैं।"[43]

चतुर्भुजदास ने कृष्ण जन्म के अवसर पर तथा परमानंददास ने कर्णवेध संस्कार पर ज्योतिषाचार्यों का उल्लेख किया है। परमानंददास ने हाथ देखकर फल बताने वाले ज्योतिषी का वर्णन भी किया है—

"बदि भादौं आयौ जुग द्वापर अर्धरात्रि बुधवार।
बालव करन अरू नछत्र रोहनी जनमे जगदाधार।
द्वादस लगन सुभग नवग्रह उदिन आपत मिति देख।"[44]
"गुरुबल तिथिबल नच्छत्र बार बलि सुभ घरी बिचार लीजै।
गनिक निपुन द्वै चारि बैठि कै मतों बिचारयौ नीको।"[45]
"सुनो हो जसोदा आज कहूँ ते गोकुल में इक पंडित आयौ।
अपने सुत को हाथ दिखावो वह कहै जो बिधि निरमायौ।"[46]

जन्माष्टमी

ज्योतिष विद्या का प्रचार समाज के प्रत्येक वर्ग में था इसलिए 'ज्योतिषी' भी समाज के सम्मानीय आचार्यों की श्रेणी में गिने जाते थे। मध्यकालीन युग युद्धों से भरा हुआ था इसलिए युद्ध कला की शिक्षा देने वाले आचार्यों का महत्व भी समाज में बहुत अधिक था—

"ठौर-ठौर अभ्यास महाबल, करत केतु असिबान"[47] द्वारा समाज में युद्ध कला और उसके बढ़े हुए प्रभाव की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। पौराणिक प्रसंगों में राम, कृष्ण, जरासंध आदि की सेनाओं के वर्णन द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें शिक्षा देने वाले आचार्यों का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। द्रोणाचार्य एक सफल योद्धा ही नहीं सर्वश्रेष्ठ आचार्य भी थे। अस्त्र-शस्त्र के अतिरिक्त मंत्राभिषिक्त आयुधों की शिक्षा भी विशेषज्ञ आचार्यों द्वारा दी जाती थी। रथ संचालन की शिक्षा भी महत्वपूर्ण थी और उसी के आधार पर योद्धाओं को अतिरथी, महारथी या रथी की संज्ञा से अभिषिक्त किया जाता था। संगीत शास्त्र के आचार्य भी इसी वर्ग के आचार्य हैं। विभिन्न कलाओं का बहुमुखी विकास आचार्यों की श्रेष्ठता का प्रमाण है। आचार्य वर्ग का कार्य समाज का बौद्धिक विकास करना था इसलिए उनकी गणना विशिष्ट तथा सम्मानीय वर्ग में की गई है।

सामान्य वर्ग के अंतर्गत वे वर्ग आते हैं जो अपने हस्त कौशल, श्रम तथा सेवा के द्वारा समाज का अपरिहार्य अंग बन जाते हैं। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम वे आचार्य या विशेषज्ञ आते हैं जिनकी शिक्षा या विद्या का ज्ञान समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए आवश्यक नहीं होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तत्कालीन ब्रज समाज कला की दृष्टि से उन्नति कर रहा था इसलिए विभिन्न कलाओं की शिक्षा देने वाले आचार्य भी समाज में विद्यमान थे। चित्रकार, मूर्तिकार तथा वास्तुकार अपने विषयों की शिक्षा द्वारा समाज के लिए उपयोगी और स्थायी प्रतीकों की रचना करते और करवाते थे। "पाहन की पूतरी"[48] और "चित्र की पूतरी"[49] द्वारा मूर्ति तथा चित्रकला की ओर संकेत किया गया है। भवन, आवास-स्थान तथा दुर्ग, राजमहल आदि के निर्माण के उल्लेख द्वारा वास्तु तथा स्थापत्य के कलाकारों के विशिष्ट ज्ञान का परिचय मिलता है। इन विषयों की शिक्षा सीमित व्यक्तियों द्वारा ग्रहण किए जाने के कारण यह शिक्षक सामान्य वर्ग के अंतर्गत आते हैं। शारीरिक श्रम अधिक होने के कारण भी इस वर्ग को सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

विभिन्न कलाओं से संबंधित इसी वर्ग के अंतर्गत स्वर्णकार (सुनार), रंगरेज़, धोबी आदि आते हैं। वस्त्राभूषण की कला के विकास के लिए इनकी उपस्थिति समाज में अनिवार्य थी। आभूषणों को गढ़ने तथा विविध रत्नों, मणि-माणिक से जड़ने के लिए कुशल स्वर्णकार की आवश्यकता थी।[50] विभिन्न आभूषणों के कलात्मक निर्माण में इनका चातुर्य देखा जा सकता है। वस्त्रों की रँगाई और छपाई का कार्य भी चतुर रंगरेज़ द्वारा संपन्न किया जाता था। रंगरेज की स्त्री रंगरेज़िन का उल्लेख भी किया गया है—

"जावक सौं कहें पाग रंगाई रंगरेज़िनी मिली कोउ बाल।"[51]

वस्त्रों को विभिन्न प्रकार का आकार देने वाले दरज़ी भी समाज का अभिन्न अंग थे। सौंदर्य की दृष्टि से परिधान व्यक्तित्व को निखारने में सहायक थे। कृष्ण के मथुरा पहुँचने पर उनकी नाप के वस्त्र सिलने का वर्णन है—

"आई दरजी गयौ बोलि ताकौं लयौ सुभग अंग साजि उन बिनय कीन्हे।"[52]

वस्त्रों पर विभिन्न प्रकार से ज़री मोती आदि भी जड़े जाते थे। वस्त्रों की धुलाई करने वाला धोबी कहलाता था—

"रजक मारि हरि प्रथम ही नृप बसन लुटाए।
रंग-रंग बहु भांति के गोपनि पहिराए।"[53]

कृष्ण जन्म के अवसर पर पालना बनाकर लाने वाले बढ़ई का उल्लेख भी किया गया है। पालने के अतिरिक्त खिलौने, चौकी आदि भी लकड़ी के बनाए जाते थे।[54]

पाक विद्या और मल्ल विद्या के प्रशिक्षक भी तत्कालीन समाज के सामान्य वर्ग में परिगणित होते। कंस के कारण कृष्ण कथा में मल्ल विद्या को महत्व मिला हुआ था। संभवतः तत्कालीन समाज में भी आत्मरक्षा के लिए मल्ल विद्या का प्रचार अधिक था। इन सभी कलाकारों की आवश्यकता समाज के विभिन्न उत्सवों के संदर्भ में होती थी।

समाज के कार्य को समुचित रूप से चलाने के लिए भी विभिन्न सेवा-कार्यों को विभिन्न वर्गों में बाँट दिया गया था। यह लोग शूद्र या अस्पृश्य नहीं थे परंतु इनकी गणना उच्चवर्ग में भी नहीं होती थी। इनकी सेवाएँ समाज के दैनिक तथा विशेष अवसरों पर अपरिहार्य थीं। पालकी ढोने वाले कहार, नौका चलाने वाले केवट, मछली पकड़ने वाले धीवर, नाई, बारी, माली, दाई, धाय आदि इसी वर्ग के अंतर्गत आते थे। कहार पानी भरने, बेहँगी या 'काँवरि' उठाने का कार्य करते थे। आज भी इस रूप में उनका कार्य शेष सीमित है। सूरदास ने जड़ भरत की कथा में सुखासन लेकर चलने का उल्लेख किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"चढ़ि सुख-आसन नृपति सिधायौ, तहाँ कहार एक दुख पायौ।"[55]

केवट का प्रमुख कार्य नौका चलाना और 'उतराई' ग्रहण करना था। परमानंद दास ने श्रीकृष्ण द्वारा नाव खेने का उल्लेख किया है। पारिश्रमिक के रूप में उतराई लेने का वर्णन भी किया गया है—

"बैठे घन स्याम सुंदर खेवत हैं नाव
पथिक हम खेवट तुम लीजिए उतराई।"
"खेबटियारे बीरन, अब मोंहि क्यों न उतारै पार।
परमानंद प्रभुसों मिलाय तोहि देहुँ गरे का हार।"[56]

विनय के पदों में अपनी असहायता प्रगट करके ईश्वर को 'खेवट' के रूप में वर्णित किया गया है जो भवसागर से पार उतारने की क्षमता रखता है—

"खेवन हार न खेवट मेरैं अब मो नाव अरी।"[57]
"अब कै नाथ मोहि उधारि।
मगन हौं भव अंबुनिधि मैं, कृपा सिंधु मुरारि।"[58]

'खेवट' सामान्य जीवन का महत्वपूर्ण अंग था क्योंकि मध्यकाल में नाव यातायात का एक प्रमुख साधन थी। व्यापार में तथा दैनिक व्यवहार आवागमन में इसका प्रयोग होता था। इस कारण नाव खेने के व्यवसाय को अपनाने वाला एक बड़ा वर्ग समाज में विद्यमान था।

भारतीय जीवन में नाई का विशिष्ट स्थान है यह मुख्य रूप से बाल काटकर जीविका यापन करते हैं। इसका स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप में नहीं है परंतु विविध संस्कारों आदि के वर्णन में इसकी उपस्थिति महसूस की जा सकती है। नाई की स्त्री 'नाईन' का विशेष उल्लेख इस काव्य में हुआ है। श्रृंगार प्रसाधन में नाईन महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। केश सज्जा से लेकर 'महावर' लगाने तक का कार्य नाईन के ऊपर है—

"नाइनिं बोलहु नवरंगी ल्याउ महावर बेग।"[59]

नाईन का प्रमुख कार्य धनी वर्ग की स्त्रियों की सेवा करना है। आज भी ब्रज समाज में प्रसाधन व मुंडन के लिए नाईन को बुलाया जाता है। विशेष अवसर पर गीत-संगीत के लिए एकत्र होने का निमंत्रण भी नाईन द्वारा दिया जाता है।

ब्रज लोक समाज उत्सव और उत्साह से भरा हुआ है। प्रत्येक उत्सव का समापन स्वादिष्ट भोजन के साथ होता है। इस भोजन को प्रायः पत्तों के बने दोने व पत्तलों में परोसा जाता था। इन दोने व पत्तलों को बनाने वाले 'बारी' कहलाते थे। 'बारी' की स्त्री 'बारिनि' का उल्लेख भी कृष्ण जन्मोत्सव पर बंदनवार बनाते हुए किया गया है—"बारिनि बंदनवार बँधाई।"[60] ग्राम्य परिवेश में इनकी उपस्थिति समाज में अपरिहार्य है। पुष्पों का व्यवसाय करने वाले माली की उपस्थिति भी समाज में अनिवार्य है। नगर तथा ग्राम्य दोनों स्थानों को विभिन्न वाटिकाओं और उपवनों द्वारा सजाने का कार्य माली द्वारा किया जाता है। राजभवनों में माली का महत्व और बढ़ जाता है। कृष्ण के मथुरा आगमन पर माली द्वारा उनकी अभ्यर्थना का वर्णन किया गया है—

"बीच माली मिल्यौ दौरि चरननि परयौ।"[61]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

सारावली में "आगे मिल्यो सुदामा माली—फूल माल पहिराई"[62] कहकर इस माली का

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाम सुदामा बताया गया है। माली की स्त्री मालिन कहलाती थी और वह भी 'बारिनि' की तरह शुभ अवसरों पर तोरण आदि बाँधकर गृह को पुष्पों से सज्जित करती थी—"मालिनि बाँधें तोरना।"[63] ब्रज की लोक संस्कृति में पुष्पों का विविध प्रयोग मिलता है। सजावट में, आभूषण के रूप में तथा प्रत्येक शुभ अवसर पर विभिन्न पुष्पों का वर्णन किया गया है। ब्रजभूमि में इन पुष्पों को उत्पन्न करना और उनका संवर्धन करना चतुर माली द्वारा ही संभव हो सकता है। वन विहार के एक पद में कृष्णदास ने विभिन्न पुष्पों का उल्लेख किया है—

"देखौ राधा-माधौ बन-बिहार, तहाँ प्रफुलित हैं केसू अपार।
चंपा चमेली राइबेलि, मोगरा मालती माधवी झेलि।
तहाँ हमरूवा केवदौ रह्यौ छाई, सेवती सौनजुदी फूली आई।
गुलाब गुलाबास रह्यौ फूल, केतकी कमल फूले जमुना कूल।
कुंभी कोइल बकुल जाई, सेवती गुलाब देखे गई भुलाई।
मौलसिरी मरूवौ महकाई, राइबेलि मिली बहुत भाई।"[64]

कुशल माली द्वारा सजाए गए उपवनों तथा विहार स्थलों का यह वर्णन ब्रजवासियों के पुष्प प्रेम का परिचायक है।

'दाई' और 'धाय' का कार्य करने वाली स्त्रियों का महत्व भी समाज में अनुपेक्षणीय था। एक यदि, शिशु के जन्म के समय उपस्थित रहकर 'नार-छेदन' आदि का कार्य करती थी तो दूसरी मातृहीन शिशु को पालती थी। राजन्य वर्ग की स्त्रियाँ प्रथानुसार स्वयं शिशु को न पालकर, धाय द्वारा उनकी देखभाल करवाती थीं। कृष्ण जन्म के समय दाई के उपस्थित होने तथा नेग में आभूषण आदि माँगने का उल्लेख प्रायः सभी कवियों ने किया है—

"अपने मन कौ भायौ लैहौं मोतिनि थार भराई।"[65]

महत्वपूर्ण होते हुए भी 'दाई' का कार्य समाज में सम्मानीय नहीं माना जाता था। स्त्री समाज में इन्हें पर्याप्त आदर प्राप्त था। धाय के कार्य का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं है। एक स्थान पर यशोदा स्वयं को कृष्ण की धाय कहती हैं—

"संदेसौ देवकी सौं कहियौ।
हौं तौ धाई तिहारे सुत की दया करत ही रहियौ।"[66]

धाय के इस उल्लेख से मध्यकालीन समाज में प्रचलित आभिजात्य संस्कृति का स्वयं माता द्वारा, शिशुपालन का उत्तरदायित्व न निभाने की प्रथा का परिचय दिया गया है। संभवतः यह प्रथा विदेशी संस्कृति के प्रभावस्वरूप ब्रज लोक में प्रचलित हुई होगी जहाँ धाय द्वारा राजपुत्रों का लालन-पालन किया जाता था।

सामान्य जनों के अतिरिक्त विशिष्ट जनों की सेवा द्वारा जीविका उपार्जित करने वाले वर्ग में सारथी और महावत का उल्लेख अष्टछाप काव्य में हुआ है। सारथी का संबंध रथ संचालन और महावत का गजपालन तथा संचालन से है। इन दोनों का महत्व राजन्य संस्कृति में ही था। साधारण प्रजा के बीच इनका अस्तित्व नगण्य था। सैनिक तथा युद्ध के दृष्टिकोण से दोनों ही कलाओं में चतुर व्यक्ति राज्य के प्रमुख अंग थे। कृष्ण के स्वयं रथ हाँकने के अतिरिक्त युद्ध के प्रसंगों में ही सारथी का उल्लेख हुआ है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"पारथ के सारथी हरि आप भए हैं।"[67]

"आपने बान सौं काटि ध्वज रूक्मकौ अस्व अरू सारथी तुरत मारे।"[68]

'महावत' का उल्लेख मथुरा प्रसंग में कंस के कुवलयापीड़ हाथी के पालक के रूप में हुआ है। एकाध स्थलों पर उपमान रूप में भी 'महावत' शब्द का प्रयोग किया गया है—

"महावत मत करही हाथी हातो।"[69]

"रूकत न पवन महावत हूँ पै मुरत न अंकुस मोरे।"[70]

इस संक्षिप्त उल्लेख का कारण यही है कि अष्टछापी कवियों की रुचि गोकुल वृंदावन के ग्राम्य परिवेश के चित्रण में अधिक थी, नागरिक संस्कृति के चित्रण में कम। मथुरा के राजभवनों के सौंदर्य का वर्णन इसी कारण उनके काव्य में कम हुआ है। प्रायः सभी भक्त कवि अपने आराध्य की क्रीड़ास्थली में ही रमे रहे।

भारतीय समाज में अनेकों लोक विश्वास प्रचलित हैं। स्थान भेद से यह विश्वास भी परिवर्तित होते रहते हैं परंतु कुछ ऐसे भी हैं जो प्रायः प्रत्येक स्थान पर एक से रहते हैं। मंत्र द्वारा सर्प विष उतारने का विश्वास ऐसा ही है। लोक समाज कई रोगों तथा अनिष्ट निवारण के लिए तंत्र-मंत्र में विश्वास रखता है इसलिए समाज में एक वर्ग ऐसा भी पाया जाता है जो इन विश्वासों के सहारे जीविका यापन करता है। इनके द्वारा कई प्रकार के जादू-टोने और झाड़-फूँक की विधियाँ स्थानीय जनता को संतुष्ट करने के लिए अपनाई जाती थीं। आज भी वैज्ञानिक प्रगति और तर्क शक्ति के विकास के साथ-साथ सामान्य प्रजावर्ग में जादू-टोने मंत्र-तंत्र में विश्वास समानांतर धारा के रूप में प्रवाहित हो रहा है। अष्टछाप काव्य में सर्वाधिक उल्लेख नाग विष उतारने का हुआ। मंत्र-तंत्र द्वारा उपचार करने वाले व्यक्ति को 'गारूड़ी' कहा जाता था। सूरदास तथा नंददास ने कृष्ण को गारूड़ी रूप प्रस्तुत करके ब्रज लोक समाज के इस वर्ग की ओर संकेत किया है। गारूड़ी व गुणी मंत्र-तंत्र के माध्यम से रोगी का उपचार करते थे। सूरदास ने काले नाग द्वारा मंत्र पढ़कर विष उतारने का वर्णन किया है—

"स्याम भुअंग डस्यौ हम देखत ल्यावहु गुनी बुलाई।"

"औरै दसा भई छिन भीतर बोले गुनी नगर तैं।
सूर गारूड़ी गुन करि थाके, मंत्र न नागर थर तै।"

"महरि गारूड़ी कुँवर कन्हाई... ।"

"जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम सूरस्याम बनवारि।"

"कछु पढ़ि पढ़िकर अंग परस करि विष अपनौ लियौ झारि।
सूरदास प्रभु बड़े गारूड़ी सिर पर डारी गारि।"[71]

नंददास ने इस प्रसंग में अपनी कल्पना द्वारा वैभिन्न्य प्रदर्शित किया है। उनके कृष्ण पारिश्रमिक के रूप में साधारण गारूड़ी की तरह 'अर्थ द्रव्य' या 'पान-पात' न माँगकर अपनी ही शर्त रखते हैं—

"वह राजा बृषभान एक ही डोल गढ़ावै।
मोहि राधे बैठारि सखिनि पै झोंटा धावै।
अरथ द्रव्य इच्छा नहीं पान पात नहिं लैऊँ।
जो इतनौ कारज करै कुँवरि भलौ करि दैउ।"[72]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंत्र-तंत्र द्वारा अन्य किसी रोग के उपचार की विधि का वर्णन इस काव्य में नहीं हुआ है परंतु यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि तत्कालीन लोक संस्कृति में इस वर्ग के द्वारा अन्य रोगों अथवा अनिष्ट का निवारण अवश्य किया जाता होगा।

अष्टछाप के समय समाज में एक वर्ग ऐसा भी था जो अपनी कला के प्रदर्शन द्वारा निर्वाह करता था। कला की ऊँचाइयों को छूना इनका उद्देश्य नहीं था। यह केवल कला के द्वारा व्यक्तियों का मनोरंजन करके अर्थोपार्जन करते थे। इसी कारण शिल्पी, चित्रकार और संगीतकार की अपेक्षा इन्हें हीन समझा जाता था। नट, बाजीगर और रूपजीवाएँ इसी वर्ग में आते हैं। नृत्य तथा शारीरिक अभ्यास और संतुलन द्वारा अपनी कलाओं का प्रदर्शन यह सार्वजनिक रूप से करते थे। नट और नटी का प्रमुख व्यवसाय नृत्य था। सूरदास ने कुब्जा, माया और मृत्यु को नटी के रूप में वर्णित किया है—

"नटिनी लौं कर लिए लकुटिया कपि ज्यौं नाच नचावै।"
"माया नटी लकुटि कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै।"
"ताकैं मूढ़ चढ़ी नाचति है मीचऽति नीच नटी।"[73]

नट और बाजीगर एक-दूसरे के सहयोग से कला का प्रदर्शन करते थे—

"कै कहूँ रंक कहूँ ईस्वरता नट बाजीगर जैसे।"[74]

रूपजीवाओं का उल्लेख अपनी कला द्वारा पुरुषों को रिझाने वाली स्त्रियों के रूप में प्रत्येक समाज में मिल जाता है। अष्टछापी ब्रज समाज भी इसका अपवाद नहीं है। उनकी उपस्थिति का आभास अष्टछापी काव्य में मिल जाता है। शरीर का व्यापार करने वाली गणिका और उसके पुत्र की हीन सामाजिक अवस्था का परिचय देकर अष्टछाप के कवियों ने इस ओर अपनी उदासीनता ही प्रदर्शित की है—

"गनिका सुत सोभा नहिं पावत, जाके कुल कोऊ न पितारी।"[75]

होली के प्रसंग में गणिकाओं के निर्लज्ज स्वभाव का वर्णन किया गया है।[76] इसके अतिरिक्त पौराणिक प्रसंग में गणिकोद्धार की ओर संकेत किया गया है—

"कौन नृपति की हुती कुलबधू गनिका को कहा पवित्र हियो।"[77]

इस वर्ग का संक्षिप्त विवरण अष्टछापी कवियों की इनके प्रति अरुचि को प्रदर्शित करता है। इनके समान ही चारण, भाट, बंदीजन आदि का भी संक्षिप्त उल्लेख किया गया है जो अपने स्वामी की प्रशस्ति गाकर जीवन निर्वाह करते थे। प्रत्येक शुभ अवसर पर इन्हें आशीषों के बदले विपुल धन की प्राप्ति होती थी—

"मागध सत भाट धन लेत जुरावन रे।"
"गुनी गनक बंदीज मागध पायो अपनो लाग।"[78]

भिक्षा के ऊपर जीवित रहने वाले वर्ग के अंतर्गत भिखारी 'जगा' और 'ढाढ़ी' का उल्लेख भी अष्टछाप काव्य में हुआ है। यह लोग भी शुभ अवसरों पर बधाइयाँ और असीसें देकर धन-द्रव्य की प्राप्ति करते हैं। कृष्ण जन्म तथा रामजन्म के उपलक्ष्य में "ढाढ़ीन मेरी नाचे गावै हौंहू ढाढ़े बजाऊँ" ढाढ़ी और ढाढ़िन का उल्लेख किया गया है—

"बाढ़िन मेरी नाचे गावै हौं हूं ढाढ़ बजाऊँ।
हमरी चीत्यौ भयौ तुम्हारें जो मांगौं सो पाऊँ।"[79]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"करि सिंगार ढाढ़ी अरू ढाढ़िनि श्री ब्रजपति ग्रह गयौ।"[80]

सूरदास, कृष्णदास और नंददास ने स्वयं को नंद राय का ढाढ़ी बताया है—

"हौं तौ तेरे घर कौ ढाढ़ी सूरदास मोहि नाउँ।"[81]

"नंद बड़ो जिजमान हमारौ नंद बड़ौ जिजमान।
तुम्हरे बाल गौपालै दरसों औरू न मन में आन।"[82]

"नंददास नंदराय को ढाढ़ी भयो अजाचिक ढोली।"[83]

कृष्ण दास ने वृषभानु गोप के यहाँ से ढाढ़ी के आने का उल्लेख किया है—

"हौं ढाढ़ी वृषभानु गोप कौं लैन बधाई आयो जू।
तुम तौ परम उदार नंदजू! देत हौ रतन भँडार जू।"[84]

सूरदास ने भी वृषभानु के 'जगा' का नंद के घर आकर बधाई गाने का उल्लेख किया है—

"नंद उदौ सुनि आयौ हो बृषभानु कौ जगा।
नाचै फूल्यौ अँगनाइ सूर बकसीस पाई, माथे कै चढ़ाइ लीनो लाल की पगा।"[85]

भिखारी का उल्लेख कृष्ण जन्म के अवसर पर याचकों के रूप में हुआ है। यह हर्षित होकर शुभ अवसरों पर ही याचना करते हैं—

"बंदीजन अरू भिच्छुक सुनि सुनि दूरि-दूरि तैं आए।"[86]

भिखारियों का दूसरा वर्ग सामान्य भिखारियों का है जो भिक्षावृत्ति को ही एकमात्र जीविका का साधन मानकर चलते थे—

"जो राजा सुत होई भिखारी लाज परे ते जाई बिकाने।"[87]

स्पष्ट है कि प्रथम वर्ग के याचकगण समाज में भिक्षुकों से ऊँचे समझे जाते थे। भिक्षुक में समाज निंदनीय माने जाते थे। समाज के द्वारा तिरष्कृत वर्ग में बटमारी, ठग, चोर, उचक्के, गांठिकटा और लठबाँसी आते थे जिनका काम दूसरे का धन हड़पना, ठगना, चुराना, छीनना था। सूरदास और परमानंद दास ने ही इनका उल्लेख किया है—

"प्रभु जू हौं तो महा अधर्मी।
बटपारी ठग चोर उचक्का गाँठिकटा लठबाँसी।"[88]

दान लीला प्रसंग में कृष्ण ने गोपियों को ठगिनी आदि कहा है—

"ठगति फिरति ठगिनी तुम नारि।
फँसि हानिनि बटमरिनि हम भई आपुन भए सुधर्मा भारि।"[89]

ठगों के मुख्य व्यापार, विषलड्डू खिलाकर लूटने का विशद वर्णन किया गया है—

"विष लडू दरसावति लै पुनि देह दसा सधि बिसरत ज्यौं।
ता पाछैं फंदा गर, डारति इनि भांतिनि करि मारति हौ।"[90]

ठगों को पकड़ना मुश्किल था परंतु चोर प्रायः पकड़ में आ जाते थे और फिर उन्हें दंडित किया जाता था। माखन-चोरी पर कृष्ण को ऊखल से बँधने का दंड मिलता है इसके अतिरिक्त एक गोपी द्वारा मन-माखन चुराने पर उन्हें विशेष रूप से दंडित किया जाता है जिससे वह चोरी करने का नाम भूल से भी न लें—

"बाँधौं कंचन खंभ कलेवर उभय भुजा दृढ़ डोरी।
चाँपौं कठिन कुलिस कुच अंतर सकै कौन धौ छोरी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खंडौ अधर भूलि रस गोरस हरैं काहू कौ री।
दंडौं काम दंड पर घर कौ नाउँ न लेई बहोरी।"[91]

परमानंददास ने बटमारी के लिए बटकुटन शब्द का प्रयोग किया है और उन्हें अपने कार्यों के कारण लोक में अपयश का भागी बताकर उनकी निंदा की है—

"बिरह बिहल सकल गोपीजन अभरन मनहुँ बटकुटन लूटे।"
"बाट मरि घर मूसि बिरानो पेट भरै अपराधी।
जेहि परलोक जाय अपकीरति सोई अविद्या साधी।"[92]

समाज के इन विभिन्न वर्गों के निरूपण से तत्कालीन समाज का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक बात जो उभरकर सामने आती है वह यह है कि अष्टछाप काव्य में ग्राम्य परिवेश का चित्रण अधिक हुआ है। इन वर्गों के अतिरिक्त भी एक ही कला या व्यवसाय से जुड़े अनेकों वर्ग रहे होंगे परंतु उन सबका चित्रण विषय से दूर हो जाने की संभावना के कारण नहीं हुआ है। उपरोक्त वर्गों का निरूपण भी लीलागान की पृष्ठभूमि तथा प्रासंगिकता को देखते हुए किया गया है।

अष्टछाप काव्य में पारिवारिक जीवन

समाज की मूलभूत इकाई परिवार है और परिवार की धुरी दाम्पत्य जीवन है। परिवार ही संस्कृति की बेल को आगे बढ़ाने वाला है। भारतीय संस्कृति की विशेषता संयुक्त परिवार है और तत्कालीन ब्रज समाज ने भी इस विशेषता को अपनाया हुआ था, यह तथ्य अष्टछाप काव्य के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है। परिवार की परिकल्पना और उसके उत्तरदायित्वों का वहन करने के कारण ही मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ माना गया है। संसार के अन्य प्राणियों में परिवार की संकल्पना लगभग नहीं है। साहचर्य की भावना भी उसमें क्षणिक होती है, तथा संबंधों का भी मर्यादपूर्ण निर्वाह नहीं होता। मनुष्य अपने विशिष्ट गुणों के कारण संबंधों का निर्वाह एक लंबे समय तक कर सकता है। संयुक्त परिवार की प्रथा के मूल में यही प्रवृत्ति विद्यमान है। संयुक्त परिवार में एक छोटे से समाज के दर्शन मिल जाते हैं। आज की व्यक्तिवादी संस्कृति से संयुक्त परिवार की प्रथा समाप्त हो रही है और परिवार की सीमा केवल दम्पत्ति और उनकी संतति तक सीमित रह गई है। इसके दुष्परिणाम भी धीरे-धीरे सामने आ रहे हैं। तत्कालीन ब्रज लोक में सामान्य रूप से संयुक्त परिवार की ही प्रथा प्रचलित थी।

अष्टछाप साहित्य में दशरथ के संयुक्त परिवार, श्रीकृष्ण के विशालकाय परिवार और नंद के स्वतंत्र परिवार का चित्रण है। इनके अतिरिक्त कथा प्रसंगों में आए वृषभानु सुदामा, कौरव पांडवों के परिवारों की चर्चा की गई है। इन उल्लेखों से समाज में प्रचलित सभी प्रकार के संबंधों का, जो तत्कालीन समाज में प्रचलित थे, परिचय मिल जाता है। कौरव, पांडवों तथा श्रीकृष्ण के परिवार द्वारा सामान्यतः तीन पीढ़ियों का वर्णन किया गया है।

पितामह के रूप में केवल भीष्म पितामह का उल्लेख किया गया है। वे अपने परिवार को भरसक एक सूत्र में रखने का प्रयत्न करते हैं परंतु गृह-युद्ध की विभीषिका से बचा नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाते। अंतिम समय में युधिष्ठिर से प्रसन्न होकर मृत्यु शय्या पर उसे राजधर्म तथा भाग्य की प्रबलता के विषय में बताते हैं—

"राजधर्म तब भीषम गायौ दानापद पुनि मोक्ष सुनायौ।
धर्मपुत्र तू देखि बिचार, कारन करनहार करतार।
नर के किए कछू नहिं होइ। करता हरता आपुहिं सोइ।"[93]

परमानंद दास ने भी मंगलाचरण में 'मन्मथ राज' के सिंहासन पर बैठने और पितामह के तिलक देने का उल्लेख किया है—

"जे पद कमल पितामह भीषम भारत में देखन पाए।"[94]
"मन्मथ राज सिंघासन बैठे तिलक पितामह दीनों।"[95]

मातृपक्ष में पितामह के समानांतर ही मातामह या नाना का वर्णन हुआ है। श्रीकृष्ण के अपने मातामह उग्रसेन के प्रति आदरयुक्त व्यवहार का उल्लेख मात्र है पर उनका कृष्ण के प्रति स्नेह-व्यवहार का अंकन नहीं। दादी का उल्लेख इस साहित्य में नहीं है। कृष्णदास ने 'पटिला' नाम की नानी का उल्लेख किया है—

"पटिला नाम लाल की नानी तिनि सारी जरतारी, दिन्ही सरस पचलरी माला।"[96]

माता-पिता का उल्लेख अष्टछाप साहित्य में सर्वत्र हुआ है। माँ के लिए जननी, महतारी, माँ, माई, माता, मातु, माय और मैया शब्द का प्रयोग हुआ है—

"अपनी जननी के जानु लागि पय पीवत नवल असाढ़े।"[97]
"जननि जसोदा करति आरती मोतिनि भरि-भरि थाल।"[98]
"कहि जाको ऐसो सुत बिछुरै सो जीवै महतारी।"[99]
"मा कहै मेरौ पितु कहै मेरौ मो लयौसु कहै मो चेरौ।"[100]
"माइ तेरो कान्ह, कौन अब ढंग लाग्यौ।"[101]
"मात पिता भैया सुनैं साँझ परत बन माँहि।"[102]
"सुची माता के गोद बैठि कै मूँदि स्त्रवन मन करखे।"[103]
"बाल रूदन जब करन लग्यो रोहिनी मातु लै भागी।"[104]
"मैया मोहि माखन मिसरी भावै।"[105]

माँ के यह सभी संबोधन आज भी समाज में प्रचलित हैं। इसमें कई बोलियों के प्रभाव स्वरूप भी आए हैं जैसे महतारी शब्द अवधी भाषा के प्रभाव स्वरूप अष्टछाप की ब्रज भाषा में आया है। वल्लभ सम्प्रदाय में इष्टदेव बालकृष्ण हैं और बालक का संबंध माता से सबसे अधिक होता है इसलिए माता को विभिन्न आदरसूचक शब्दों से संबोधित किया गया है। माता की तुलना में पिता के लिए कम संबोधनों का प्रयोग है। पिता, पितु, बाप, तात, गोसाईं शब्द ही अष्टछाप काव्य में प्रयुक्त हैं। इनमें से 'गोसाईं' शब्द (गुसाई) यद्यपि आदरसूचक था परंतु उस समय भी और आज भी समाज में अप्रचलित है। बाप शब्द का प्रयोग भी अपेक्षाकृत कम हुआ है—

"कहौ पितु मोसौं सोई सतिभाव।"[106]
"द्वै बाप सबै कोऊ जानै जाहि बेद पुरान बखानै।"[107]
"आवो हो तात रिसात मात अब कहा चित्त में ठानी।"[108]
देहु बिदा घर जाहु गोसाईं माने रोहेयौ नात।"[109]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माता-पिता के अतिरिक्त अष्टछाप साहित्य में सास, मामी, काकी, फूफी और मौसी शब्द का प्रयोग भी मिलता है जो समाज में माता के समान ही आदरणीय संबंध थे। मामा के लिए 'मातुल' शब्द का प्रयोग है। मौसा और फूफा का उल्लेख नहीं किया गया है। ससुर का उल्लेख मिलता है—

"सासु ननद अरू पास परौसिनी, हँसि बहुबार कह्यौ।" 110
"नेमा रेमा और सुरेमा भाभी अति सुखदाई।
तिनि दियौ हार सरस मोतिन कौ··· ।" 111
"काकी भाभी बहिनी फूफी निज निज लै उर धार।" 112
"कहा कथत मौसी के आगैं जानत नानी नानन।" 113
"मातुल भारि बहुत ऊँच कीन्हें कहँ लौं करौं बड़ाई।" 114
"मागध जरासंध बलअंध तासौं जाहि ससुर संबंध।" 115

परिवार में भाई का संबंध भी अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। तत्कालीन समाज में बहुविवाह की प्रथा थी इसलिए विभिन्न माताओं से उत्पन्न भाई को भी सहोदर भाई के समकक्ष ही सम्मानीय समझा जाता था। भाई के लिए बंधु, भाई, भैया, बलराम के लिए ददा या दादा शब्द का प्रयोग किया है—

"भाई बंधु कुटंब सहोदर सब मिलि यहै बिचारयौ।" 116
"सकल सिंगार बिचित्र बिराजत संग सोभित बल भैया।" 117
"काके तात-मात अरू भ्राता को पत नेह नवेली।" 118
"यह माँगौ संकरषन वीर।" 119
"बूझि देखि बलभद्र ददा सौ कैसी मैं टेरि बुलाई।" 120

राधा की विदा के प्रसंग में भाई की पत्नी 'भाभी' शब्द का प्रयोग किया गया है—

"काकी भाभी बहिनी फूफा निज निज लै उरधार।" 121

रामकथा के प्रसंग में सीता के लक्ष्मण देवर का उल्लेख हुआ है पति के भाई के रूप मे परंतु भाभी या भावज शब्द का प्रयोग सीता के लिए नहीं हुआ है।

भाई के अतिरिक्त बहन-बहनोई का संबंध भी पारिवारिक संबंधों की महत्वपूर्ण कड़ी है अष्टछाप साहित्य में बहन के लिए बहिन, भंगिनी, भैनी, सखि, स्वसा या सुसा शब्दों का प्रयोग हुआ है। छोटी बहन को अनुजा कहा गया है। बहन के पति को बहनोई या भगिनी भर्त्ता कहा गया है। नंददास ने बहन की बेटी के लिए भनेंजी शब्द का प्रयोग किया है जो आज भी भानजी के रूप में व्यवहृत हो रहा है। बहन-बहनोई का संबंध कृष्ण कथा में विशेष स्थान रखता है। कंस द्वारा अपने बहन-बहनोई देवकी वसुदेव को बंदी बनाने का वर्णन कवियों ने किया है—

"बहिन देवकी बसुदेव सुजन उनको दीनों त्रास।" 122
"भगीनी रथ कौ सारथी भयौ···· ।" 123
"सुनहु सूर नाते की भैनी कहति बात हरषात।" 124
"सखि कहा कहौं तब रूप की निकाई।" 125
"जिहिं बिस्वास सुसा के नाते ··· कीनी घात।" 126

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"याहि न मारि देखि दिसि मेरी, हौं अनुजा मनुजाधिप तेरी।" [127]
"अहो भगीनी, अहो भगीनी भर्त्ता मो सम नाहिन पाप कौ कर्त्ता।" [128]
"भैया न डारि भनैजी भई।" [129]

पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी का संबंध सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्हीं के द्वारा संतति के रूप में परिवार आगे बढ़ता है। पति का स्थान परिवार में पत्नी की अपेक्षा ऊँचा था। पति को कंत, पति, गृह पति, पिय, प्रानपति, प्रीतम आदि शब्दों से संबोधित किया जाता था। सूरदास और परमानंददास ने विदेशी भाषा के प्रभाव स्वरूप 'खसम' शब्द का प्रयोग भी किया। इन सब शब्दों के प्रयोग इस प्रकार हैं—

"कमला कंत दियौ हुंकारौ जमुना पार दयौ।" [130]
"सास रिसाउ मातु गृह—त्रासौ हौं पति सों मानहुँ घट फोरयौ।" [131]
"पिय सनमुख गवनित गजगामिनी।" [132]
"अब तो काज सकल बिसराए, गृहपति तें नाहिन सकुचाति।" [133]
"तब तें मोहिं कछु न सुहाई प्रान-पति जोये परै कल ना।" [134]
"प्रीतम प्रीति तें बस कीनो।" [135]
"सूरदास प्रभु झगरौ सीख्यौ ज्यौं घर खसम गुसैया।" [136]

पत्नी परिवार की धुरी है वह गृहस्वामिनी है और गृह की आंतरिक व्यवस्था संभालती है। इसलिए उसे धरनी, स्वामिनी कहा गया है। पति के साथ रहकर परिवार का दायित्व वहन करती है इसलिए अर्धांगिनी भी कहा गया है। स्त्री तथा पत्नी के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं उनमें प्रमुख हैं—पत्नी, भाखिनी, तिया, तिरिया, बाम, बामा, बनिता, दाराम, घरनी, अर्धंगी, त्रिय, सजनी, स्वामिनी आदि—

"मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी प्यौसार, पठाई।" [137]
"गहि पद सुरदास कहै भामिनी राज विभीषन पायौ।" [138]
"इहि बिधि ब्रज-तिय सुख विस्तरै।" [139]
"तिरिया रैनि घटै सचु पावै।" [140]
"सूरदास प्रभु रूप चकित भए, पंथ चलत नर-बाम।" [141]
"सुत संतान स्वजन बनिता रति घनसमान उनई।" [142]
"पर दारा कैं जाई आपु कत लज्जा हारे।" [143]
"तरूवर मूल अमेली ठाढ़ी दुखित राम की धरनी।" [144]
"अधंगी पूछत मोहन सौं कैसे हितू तुम्हारे।" [145]
"ऐसी कृपा करी नहिं, जबत्रिय नगन समयस पत राखी।" [146]
"कुसुम बीजना ब्यार ठोरै सजनी परमानंद।" [147]
"कौसल्या सों कहति सुमित्रा जनि स्वामिनि दुख पावै।" [148]

पत्नी (स्त्री) के दृष्टिकोण से परिवार में पति के भाई के लिए 'देवर' शब्द का प्रयोग अष्टछाप में हुआ है पर उसकी पत्नी के रूप में प्रचलित देवरानी शब्द का नहीं—

"गौर बदन मेरे देवर सखि पिय मम स्याम सरीर।" [149]

लोक में पति की बहन व उसके पति को ननदी (ननद) ननदोई कहा गया है। अष्टछाप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के कवियों ने ननदोई शब्द का प्रयोग नहीं किया है। सास के साथ ननदी शब्द का प्रयोग प्रायः सभी ने किया है—

"जाने सास ननद बैरिनि सब बन में आज भटकौ।" 150

पुत्र के लिए बहुतायत से संबोधनों का प्रयोग किया गया है। अष्टछाप कवियों के आराध्य बालकृष्ण हैं इसलिए सुतविषयक रति उनका प्रिय विषय है। वात्सल्य को प्रगट करने का माध्यम भी पुत्र प्रेम है। इन सब संबोधनों में से अधिकांश का प्रयोग आजकल की स्थानीय बोलियों में भी हो रहा है। पुत्र के संबोधन इस प्रकार हैं—ढोंटा, छोहरा, नंदन, तनय, बालक, छोटा, लरिका, (लाल) लला, सुत, छोरा, डिंभ, पुत्र, पूत, कुँवर, लालन।

"नंदराई गृह ढोटा जायो दधि लै छिरकत करन बधाई।" 151
"अरी वह नंद महर कौ छौहरा बरजो नहीं भानै।" 152
"ठाढ़ी निरख निकट तन मन सों नंद नंदन की प्रीत न थोरी।" 153
"नंद परम आनंदहिं पाइ लीनो तनय कंठ लपटाइ।" 154
"देखो या बालक की लीला कोटिक बिघन न साए।" 155
"तुम अक्रूर बड़े के बेटा अति कुलीन अतिधीर।" 156
"लरिका जूथ संग मनमोहन बालक तनक तनक।" 157
"बलि गई नंद के लला।" 158
"प्रमुदित मन सुत के गुन गावति, राग विभास सरस मृदबानी।" 159
"काहू की ते माने नाहीं कौन को है छोरा।" 160
"गहि मनि खंभ डिंभ डग डोलैं कल बल बचन तोतरैं बोलैं।" 161
"नंद महर के पुत्र भयो है आनंद मंगल गाई।" 162
"बाप देत कर कंस रजा को पूत सँगाती डोलत मैंडें।" 163
"नंदराई को कुँवर लाडिलो सुरपति गर्व प्रहारी।" 164
"हमारी लली, तुम्हारी लालन यह जग जाए परम अनूप।" 165

"पुत्र वधू के लिए, वधू या बहुरिया शब्दों का प्रयोग हुआ है।" 166

पुत्री के लिए कुँवरी, तनया, नंदिनी, बिटिया, बेटी, लली, सुता आदि संबोधनों का प्रयोग किया गया है तथा उसके पति को जामाता कहा गया है। जामाता ससुराल में आदर सम्मान का पात्र होता है—

"प्रगटीं कुँवरि श्री राधा जाकें आनंदनिधि सुखदाई।" 167
"तरनि-तनया तीर मरकत मनि जु स्याम तमाल।" 168
"दृष्टि परे वृषभान नंदिनी अरूझे नयन निखार न जाई।" 169
"बड़ी बार की उठी बहु बिटिया कोउ है भोरी कोउ है सयानी।" 170
"तू वृषभान गोप की बेटी मोहन लाल भव तें भेटी।" 171
"बरस गाँठि वृषभान लली की बहुरि कुसल सों आई।" 172
"कीरति सुता बदन बिधु देख्यौ निरखि निरखि सुख पाई।" 173
"तनया जामातनि कौं समदन नैन नीर भरि आए।" 174

विवाह प्रथा को लेकर कुछ और संबंध भी ... के संदर्भ में वर्णित किए गए हैं जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समधी, समधन और सौति। वर और कन्या पक्ष के माता-पिता तथा अन्य संबंध परस्पर समधी-समधन कहलाते हैं इसलिए इन शब्दों का उल्लेख विवाहादि के प्रसंग में किया गया है—

"ताल पखावज चले बजावत समधी सोभा कौ।" [175]
"इहि भाँति चतुर सुजान समधिनि सकति राति सब सौ करै।" [176]

सपत्नी या सौत शब्द का प्रयोग भी मिलता बहुविवाह के कारण पर केवल उन्हीं सपत्नियों को सौक्त कहा गया है जो पारिवारिक सुख-शांति को भंग करती थीं। सीता ने कैकेयी के लिए और गोपियों ने कुब्जा के लिए इसी कारण 'सौति' शब्द का प्रयोग किया है—

"सासु की सौति सुहागिनी सो सखि अति ही पिय प्यारी।" [177]
"सिर पर सौति हमारै कुबिजा चाम के दाम चलावै।" [178]

तात शब्द का प्रयोग कई संबंधों का अभिव्यक्त करने के लिए हुआ है। पिता, पुत्र तथां स्वामी को संबोधन करते समय इसका प्रयोग किया जाता था, जैसे—

"चौदह बरस तात की आज्ञा मोपै न जाई।" [179] *(पिता)*
"अब अपने जिय सोच करति कत, जाके त्रिभुवन पति से तात।" [180] *(पुत्र)*
"मो सौं पतित उधारौ प्रभु जौ तौ मानी हौ निज तात।" [181] *(स्वामी)*

परिवार की सीमा में ही दास-दासी तथा सेवक भृत्यों का उल्लेख किया गया है। संबंधों के आधार पर स्थान विशेष का नाम भी रख दिया जाता था जैसे नानी के घर को ननसार या ननिहाल, लड़की के ससुर के घर को ससुराल या पतिग्रह और माता के घर को मायका या प्यौसार कहा गया है।

"हौं ननसार गई ही न्योतैं बार-बार बूझत ब्रज बालैं।" [182]
"पतिगृह काज सबै बिसराए नंदनंदन दूत के छोर।" [183]
"बरसानौ प्यौसार हमारो अपजस तैं कछहूँ न डरौरी।" [184]
"वृषित हैं सब दरस कारन चतुर चातक दास।" [185]
"प्रेम मत्त फिरत भृत्य गुनत गन तिहारे।" [186]

परिवार के सभी सदस्य मिल-जुलकर परिवार के विभिन्न कार्यों को संपादित करते थे। श्रीकृष्ण राजपुत्र होकर भी गोकुल में आभीरों के बीच रहे इसलिए अष्टछाप साहित्य में आभीर-जन जातियों के क्रिया-कलापों का वर्णन है। पशु पालन और दूध-दही का व्यवसाय इस जाति की जीविका का साधन था इसलिए इन व्यवसायों से जुड़े सभी कार्यों का निर्वाह स्त्री-पुरुष मिल-जुलकर करते थे। पुरुषों का प्रमुख कार्य गायों को सानी पानी करके, खरिक में ले जाकर उन्हें दुहना था। यह काम सुबह-शाम दोनों समय होता था। गोपों के प्रधान होते हुए भी नंद यह काम स्वयं करते थे और कृष्ण को भी वैसा करना सिखाते हैं—

"तात मोहि सिखवन कह्यौ दुहन धौरी गैया।
धार अटपटी देखि कै ब्रजपति हँस दीनो।" [187]
"गाइ दुहन समयौ भयौ रही रैन अब थोर।" [188]
"संध्या समै खरिक वीथिन में इत उत झाँकती डोलति दौरी।" [189]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

गायों को चराने का काम ग्वाल-बाल का था। कृष्ण भी अन्य बालकों के साथ वनों में

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोचारण के लिए जाते हैं। प्रथम गोचारण को एक पारिवारिक उत्सव के रूप में मनाया जाता था। इस समय से बालक परिवार के उत्तरदायित्व निभाने में सहयोगी बन जाता था—

"मैं, अपनी गाय चरै हौं।"[190]
"प्रथम गोचारन चले कन्हाई।"[191]

स्त्रियों का कार्यक्षेत्र पुरुषों से कहीं अधिक फैला हुआ था। दूध को संभालना, जमाना, दही से मक्खन बिलोना और उसके बाद दही-मक्खन-छाछ को बेचने जाना, आदि कार्य गोपियों के हिस्से में आते थे और इस सबका वर्णन अष्टछाप में है। दान-लीला का प्रसंग दही बेचने जाती गोपियों से संबंधित है। घर के कार्य करने में यशोदा जैसी धनी स्त्रियों को भी कोई झिझक या लज्जा नहीं थी। इस दृष्टि से आभीर जाति कर्म के प्रति आदर भाव रखने वाली थी। इसी संस्कृति में पले-बढ़े कृष्ण, कर्मयोग की स्थापना करने में समर्थ हो सके—

"गोप वधू दधि-मन्थन लागी हरि जू की लीला रस पागी।"[192]
"प्रात समय अब नाहिन सुनियत घर-घर चलत रई।"[193]
"गोरस बेचन जात मधुपुरी लाभ होय मारग पाऊँ सुख।"[194]
"होत अबार, दधि बेचन कों मारग मों ठान्यौ झगरौ।"[195]

व्यापार के अतिरिक्त घर में बच्चों की देखभाल करना, भोजन का प्रबंध व रसोई करना, तथा नदी से पानी भरकर लाने का काम भी स्त्रियों के जिम्मे था—

"तुम तो ठाले फिरत हो निसि दिन हम गृहकाज करें।"[196]
"द्रुम के ओट रहे हरि आपुन जमुना तट गई बाम।"
"जल हलोरि, गागरि भरि नागरि, जबहीं सीस उठायौ।"[197]
"कन्हैया माई 'पनघट' बाट रोके रहतु।"[198]

घर की चारदीवारी के बाहर के सभी काम जैसे दूध-दही बेचना, पानी भर कर लाना आदि स्त्रियां समूह के रूप में करती थीं। गोपस्त्रियां इसलिए घर तथा बाहर के जीवन की केंद्रबिंदु थीं। गृहस्वामिनी और गृहलक्ष्मी होते हुए भी वह पुरुषों के समान ही परिवार की आजीविका में समान सहयोगी थीं। गोपियों के कार्यों का ही वर्णन अष्टछाप काव्य में अधिक हुआ है। आज भी मात्र पशु-पालन को व्यवसाय मानने वाली घुमंतू जातियों में स्त्रियों का ही वर्चस्व कायम है।

अष्टछाप काव्य के अनुशीलन से यह लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है कि उस समय परिवार में नारी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। सूरदास ने नारी जीवन का आदर्श परम्परागत पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह निश्चित किया है। सैद्धांतिक रूप से वे नारी धर्म और लोक मर्यादा को स्वीकार करते हैं और उनका उल्लंघन करने वाली नारी को कुलीन नहीं मानते।

"लोक लाज कुलकानि भुलानी लुब्धी स्याम सुंदर कौ।"[199]
"तजि भरतार और जो भजिए सो कुलीन नहिं होइ।"[200]

स्त्री-पुरुष के पौराणिक मूल्यों को भी सूर ने स्वीकार किया है। जिसके अनुसार पति ही स्त्री की एकमात्र गति है। महारास के समय कुल मर्यादा के नाम पर पति द्वारा रोकी गई गोपी के माध्यम से इसी तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"लेहु सँभार देह पिय अपनी बिनु प्रानिनि सब सौज धरी।"[201]

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परमानंद दास ने भी पारिवारिक जीवन में अनुशासन के नियमों में जकड़ी नारी की विवशता का चित्रण किया है। कुमारी रूप में माता-पिता का भय उस पर छाया रहता है तो विवाह के पश्चात् सास-ननद के ताने तथा डाँट-फटकार उसे चैन नहीं लेने देते—

"माई रिसाई बाप घर मारै हँसै बटाऊ लोग री।" [202]
"कै तोहि मात पिता घर त्रासैं कै कोऊ कछु तोसों कह्यो।" [203]
"घर मेरी सास त्रासेगी हौं कहा उतर दैहौं जाई।" [204]
"द्यौस बढ़यौ घर सास रिसै है चल न सकत एक चाल।" [205]

बहुविवाह में अनमेल विवाह आदि प्रथाएँ भी नारी की विवशता की ओर संकेत करती हैं।

नारी का यह परंपरागत स्वरूप अष्टछाप काव्य में प्रसंगवश कहीं-कहीं दिखाई देता है। अन्यथा वहाँ नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। आभीर संस्कृति की नारी पुरुष की सहधर्मिणी के रूप में चित्रित की गई है। वह अकेले कहीं भी आने-जाने में तथा अपनी रक्षा करने में समर्थ है। गोपियों के रूप में यह नारी परिवार के उत्तरदायित्व को पुरुषों के बराबर वहन करती है। उन्हीं के समान कठोर जीवन व्यतीत करती है। और हर क्षेत्र में उनसे एक कदम आगे रहती है। गृहलक्ष्मी के रूप में विविध मांगलिक अनुष्ठानों को संपन्न करती है और स्वयं को आदर्श पत्नी तथा आदर्श माता के रूप में प्रतिष्ठापित करती है। कृष्ण को सर्वस्व मानकर यही नारी एकांतिक प्रेम की पराकाष्ठा निर्धारित करती है। भ्रमरगीत की गोपियों के रूप में अपने निश्छल प्रेम और भावुक तर्कों से ज्ञानी उद्धव को निरुत्तर कर देती है। जीवन के कठोर सत्यों को पहचान कर उनके अनुरूप स्वयं को ढालकर चलती है। परंपरागत रूप की अपेक्षा नारी के इस समर्थ रूप की स्थापना करना अष्टछाप काव्य का उद्देश्य है। अष्टछापी कवियों का आग्रह भी एक स्वतंत्र और सशक्त नारी समाज की संरचना के प्रति है। सामान्य रूप से उनकी नारी की पारिवारिक स्थिति सुदृढ़ और सम्मानीय है।

पारिवारिक मर्यादा और शिष्टाचार का निर्वाह प्रत्यक्ष रूप से अष्टछाप काव्य में नहीं हुआ है। इसका प्रमुख कारण इस काव्य का गीति काव्य होना है। प्रबंध काव्य में इस विषय का निर्वाह सरलता से किया जा सकता है। भक्ति के मार्ग में औपचारिकताओं का निर्वाह न होने के कारण भी इस विषय का सम्यक् प्रतिपादन नहीं हो पाया है। परोक्ष या अपरोक्ष रूप से इस विषय के सर्वाधिक उदाहरण सूरदास के काव्य में ही उपलब्ध होते हैं।

परिवार की नींव प्रेम है और संबंधों के अनुसार प्रेम के स्वरूप में अंतर आता रहता है। इस बदलते हुए रूप को ही शिष्टाचार की संज्ञा दी जाती है। गुरुजनों के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए 'पालागन', 'प्रनाम', 'जुहार' तथा दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करने का उल्लेख हुआ है। पालागन चरणस्पर्श के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है पर दूरस्थ व्यक्ति के लिए इसमें चरणों को छूना आवश्यक नहीं था। जैसे श्रीकृष्ण उद्धव के द्वारा नंद और यशोदा को 'पालागन' कहलाते हैं या गोपियाँ उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण के 'पाय' लगने की बात कहलवाती हैं—

"बाबा नन्दहिं पालागन कहि पुनि पुनि चरण गहौगे।" [206]
"ता पाछैं मेरो पालागन कहियौ जसुमति माई सौं।" [207]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

ब्राह्मण समाज में आदर के पात्र थे इसलिए उनके लिए भी पालागन शब्द का प्रयोग

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया गया है। कृष्ण को संदेश-पत्र भेजने से पहले रुक्मिणी पत्रवाहक ब्राह्मण को पालागन कहलाती हैं—

"पालागौं तुम जाहु द्वारिका नंदनंदन के धामहि।" 208

आमने-सामने अभिवादन करने पर पालागन का अर्थ चरणों का स्पर्श करना था। भावावेश की स्थिति में चरणों को पकड़े रहने और चरणों से लिपट जाने का वर्णन भी किया गया है—

"पकरि चरन कुंती के पुनि-पुनि सब गहि कंठ लगाए।" 209
"देखि दरस चरननि लपटाने गदगद कंठन कछुकहि जाइ।" 210

प्रणाम भी आदरसूचक शब्द था और पालागन के स्थान पर बड़ों के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता था—

"पहिलै प्रनाम नंद राई सौं।" 211

'जुहार' भी प्रणाम के अर्थ में प्रयुक्त होता था। अष्टछाप में इसका प्रयोग कम है। वस्तुतः प्रजाजनों द्वारा अपने राजा का अभिवादन इसके द्वारा किया जाता था। सूर ने देवकी के लिए इसका प्रयोग करवाया है—

"तुमको महर जुहार कह्यौ है, पालागन नंदरानी।" 212

हाथ जोड़कर विनय प्रदर्शित करना भी शिष्टाचार का एक अंग है।[213] अभिवादन के प्रत्युत्तर में गुरुजनों द्वारा आशीर्वाद दिया जाना था। समवयस्कों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम प्रगट करने के लिए आलिंगन करने की रीति प्रचलित थी।

"गोप ग्वाल सखनि कौं हिनि-मिलन कंठ लगाइ।" 214

पत्र लिखते समय प्रीति जताने का उल्लेख किया जाता है। पत्र लिखते समय इस प्रकार के शिष्टाचार का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता । श्रीकृष्ण के मथुरा प्रवास के समय उद्धव द्वारा भेजी गई पाती ही भ्रमरगीत का आधार बन गई है।

पारिवारिक षोडश संस्कार

मानव के व्यक्तिगत विकास में समाज और संस्कृति दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उसका आचार-व्यवहार सामाजिक परिवेश और राजनीतिक परिवेश, भावनात्मक तथा परंपरागत संस्कारों पर निर्भर करता है। मनुष्य अपने व्यक्तिगत धरातल पर, इन संस्कारों को परिवर्तित करता हुआ समाज के लिए नए तथा उन्नत आदर्शों की प्रतिष्ठा करता है। मानसिक संकल्पों और विचारों का विकास करने की दृष्टि से संस्कारों का विशेष महत्व है। विभिन्न गुह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न है। गौतम गुह्यसूत्र में यह चालीस तक पहुँच गई है। परंतु आधुनिक काल में सोलह संस्कार ही स्वीकार किए गए हैं। गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास तथा अन्त्येष्टि।[215]

इनमें से गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, वानप्रस्थ तथा संन्यास साधारण लोकजीवन में अपना अस्तित्व लगभग खो चुके हैं और 'गौना' द्विरागमन संस्कार के रूप में सम्मिलित हो चुका है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसलिए अब बारह संस्कार ही मुख्यतः सामाजिक उत्सव के रूप में मनाए जाते हैं।[216]

अष्टछाप साहित्य में ब्रज-लोक में स्वीकृत सभी संस्कारों का वर्णन किया गया है। बारह संस्कारों में से भी, 'गौना' तथा समावर्त्तन का उल्लेख अष्टछाप में नहीं है। शेष दस में से भी प्रत्येक संस्कार का विस्तृत वर्णन प्रत्येक कवि ने नहीं किया है। सूरदास इसके अपवाद हैं। डा० मायारानी टंडन के अनुसार—

"इन संस्कारों का सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। परमानंददास के काव्य में भी अन्त्येष्टि को छोड़कर शेष संस्कार वर्णित हैं, केवल निष्क्रमण संस्कार का उल्लेख उन्होंने भूमि-उपवेशन के रूप में किया है। अष्टछाप के शेष कवियों ने दो-एक संस्कारों का ही वर्णन किया है। जिनमें राधा और कृष्ण अथवा किसी एक के जन्म संस्कार का वर्णन तो सभी के काव्यों में मिलता है। छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास ने केवल जन्म-संस्कार का ही वर्णन किया है। कुंभनदास ने जन्म के साथ सगाई अथवा विवाह-संस्कार की चर्चा संक्षेप में की है। नंददास के काव्य में जातकर्म, नामकरण, विवाह और अन्त्येष्टि चार संस्कारों का उल्लेख हुआ है। गोविन्द स्वामी ने केवल जन्म के अवसर पर बधाई और 'सोहिले' गाए हैं।"[217]

शास्त्रोक्त उपर्युक्त संस्कारों के अतिरिक्त अष्टछाप साहित्य में छठी और वर्षगांठ जैसे पारिवारिक उत्सवों का भी वर्णन किया गया है। छठी जन्म के छठे दिन और वर्षगांठ एक साल की आयु पूर्ण करने पर प्रतिवर्ष मनाई जाती थी। यह ब्रज की लोक संस्कृति का प्रभाव है क्योंकि इसमें शास्त्रीय कर्मकांड के स्थान पर लौकिक आचार-विचार (प्रमुखतः स्त्रियों द्वारा संपादित) का पालन किया जाता था। आज भी यह उत्सव एक संस्कार के रूप में लोकजीवन में मनाए जा रहे हैं। अष्टछाप साहित्य में वर्णित इन संस्कारों का वर्णन क्रमानुसार किया जा रहा है।

"जातकर्म (पुत्र जन्म) संस्कार

जातकर्म से पूर्व सूरदास ने सोहिले गाने के प्रसंग में देवकी और यशोदा की गर्भावस्था का वर्णन किया है। इसमें लोक प्रचलित रीतियों जैसे आठ मास तक चंदन और नौवें मास में कपूर पीने का उल्लेख है। इसी प्रकार गर्भाधान होते ही देवकी के शरीर के उजले (पीला पड़ना) होने, और आलस्यपूर्ण स्वभाव का वर्णन किया गया है। नंददास ने भी देवकी की गर्भावस्था का वर्णन किया है—

"हरि के गर्भ बास जननी को बदन उजारौ लाग्यौ।
कछु दिन गए गर्भ कौ आलस उर देवकी जनायौ।"[218]
"आठ मास चंदन पियौ (हो) नवएँ पियो कपूर।
दसएँ मास मोहन भयो (हो) आंगन बाजे तूर।"[219]
"सप्तम गर्भ विष्णु कौ धाम।
देवकि तहाँ अतिव परकासी हर्ष सोक दोऊ मिली भासी।"[220]

श्रीकृष्ण के जन्म के उल्लासमय वातावरण का चित्रण सूर के साथ सभी कवियों ने किया है। दम्पत्ति की चरम कामना पुत्रप्राप्ति के रूप में अभिव्यक्त होती है। 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' सिद्धांत के अनुसार पुत्र की साध प्रत्येक भारतीय दम्पत्ति में रहती है। शास्त्रों के अनुसार भी पुत्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्पन्न करके ही व्यक्ति पितृऋण से मुक्त माना जाता है। इसलिए प्रौढ़ावस्था में, पूर्वजन्म की तपस्या के फलस्वरूप पुत्र-रत्न को प्राप्त करके राजा नंद और उनके बांधवों का उत्साह छलकना स्वाभाविक ही था। उत्साह का अतिरेक, परस्पर बधाई देने, 'दूध-दही छिरकने' दधि गोरोचन दूध सिर पर रखने से व्यक्त होता है। यह आनंदसूचक क्रियाएँ ब्रज लोक-संस्कृति की विशिष्टता हैं—

"एक फिरत दधि दूब धरत सिर, एक रहत गहि पाई।
एक परस्पर देत बधाई एक उठत हसि गाइ।"[221]

संयमित पुरुषवर्ग ही अब आनंद को छिपाने में असमर्थ है तो स्त्रियों की तो बात ही कुछ और है। अत्यधिक प्रसन्नता और हर्ष के कारण अपने वस्त्रों की सुध भी उन्हें नहीं रहती। खबर सुनते ही नंद के घर की ओर दौड़ी चली आती हैं—

"आनंद उर अंचल न सम्हारति सीस सुमन बरसावति।"[222]

पुरुषों के समान ही वे भी हल्दी-दही का छिड़काव करती हैं और नंद राय से वस्त्राभूषण प्राप्त करती हैं—

"छिरके हरद दही पय बर तिय अति ही सोभा देत।
होलत लोलत डोलत बोलत-समय भए सहेत।
अंबर भूषण दिव्य राजून दिये सबै मँगाई।
जैसो जाको मन कौ मान्यौ लेत हिय सचु पाई।[223]

ब्रज के प्रत्येक कोने से बंधावे लाने वाले गोपों के हरदी, दही, तेल के छिड़काव से सरिता-सी बहने लगती है। नंद के भवन के कंचन कलशों पर बंदनवार बाँधी जाती है—

"गाम-गाम ते जाति आपनी घर घर तै सब आई।"[224]
"उड़त नवनीत दूध दधि हरद तेल बहि चली आतुर सिंधु सरिता सबै।"[225]
"कंचन कलस चरचि केसरि के बाँधति बंदनवार।"[225]

कृष्ण जन्मोत्सव में ब्रज के लोकाचारों का विशद वर्णन किया गया है। हल्दी, दही, दूब छिड़कने व सिर पर रखने के अतिरिक्त सोहर गाने, करूए में (मिट्टी के छोटे घड़े में) पानी औटाने, नए घड़े पर स्वस्तिक तथा चक्र का चिह्न बनाने, करूए पर चित्रकारी करने, उसमें औषधियाँ डालकर जल उबालने और सतिए रखने की लोकप्रथाओं का उल्लेख किया गया है। जन्म लेते ही सबसे पहला 'नेग' दाई माँगती है। वह यशोदा के गले से रत्नजटित हार लिए बिना 'नार-छेदन' के लिए तैयार नहीं है। प्रणय-कुपित यशोदा उसे हार के साथ-साथ स्वर्ण आभूषण देकर विदा करती है—

"जसुदा नार न छेदन दैहौ।
मनिमय जरित हार ग्रीवा कौ वहै आजु हौं ले हौं।"[226]
"सूरदास कंचन के अभरन लै झगरिनि पहिराई।"[228]

इस अवसर पर परमानंददास ने आंगन लीपने और चौक पूरने का वर्णन किया है। 'चौक पूरना' ब्रज की लोककला, भूमि चित्रण का एक प्रकार है—

"आंगन लीपौ चौक पुरावौ बिप्र पढ़न लागे बेद।"[229]

मालिन के तोरण बाँधने का उल्लेख भी इस अवसर पर किया गया है। आम की पत्तियों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

या अशोक की पत्तियों से बना तोरण प्रत्येक शुभ अवसर पर हर्ष की सूचना देने के लिए बाँधा जाता है—

"मालिन बाँधे तोरना (रे) आंगन रोपे केरि।" [230]

पूज्य पितरों का पूजन और ब्राह्मणों द्वारा आशीर्वाद देना, स्वस्ति वचन कहना जातकर्म कहलाता है। नंद भी विधि-विधान से इस संस्कार को सम्पन्न करते हैं। वे आदर सहित ब्राह्मणों को बुलाते हैं जो वेद पाठ करते हैं तथा पितरों की पूजा करवाते हैं—

बिप्र बुलाय वेद धुनि कीन्ही, स्वस्ती बचन पढ़ायौ।
जात कर्म करि पूजि पितर, सुरपूजन बिप्र करायौ। [231]

इसी समय गर्गाचार्य श्रीकृष्ण की जन्म कुंडली लिखते हैं ।नंद नहाकर हाथ में कुश लेकर पितरों को पूजते हैं और विप्रों का तिलक कर उनके चरण छूते हैं—

"ग्रह-लगन नखत पल सोधि कीन्ही बेद धुनि। [232]
"गर्ग आचारज पाँव धारिए लिखि जनम की पाँति। [233]
"तब न्हाइ नंद भए ठाढ़े अरू कुस हाथ धरे।"
नांदी मुखपितर पुजाई अंतर सोच हरे।
घिसि चंदन चारू मँगाई बिप्रन तिलक करे।
द्विज गुरुजन कौ पहिराई सबके पाइ परे। [234]

पूजन के पश्चात् दान का क्रम चलता है। शुभ अवसर पर नंद जी खोलकर दान देते हैं, आभूषण लुटाते हैं, इष्ट मित्रों को बुलाकर 'मृगमद चंदन कपूर' का तिलक लगाते हैं—ब्राह्मणों को 'खुर ताँबे रूपैं प्रीठि सोनैं सींग मढ़ी' अगणित गाएँ दान करके आसीस प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, द्वार पर एकत्र जाति बंधुओं, प्रजाजन, याचक, बंदीजन सभी को 'अजाचक' कर देते हैं। ग्राम वधुओं को सुरंग की साड़ी देते हैं—

"एकनि कौं गो दान समर्पत, एकनि कौं पहिरावत चीर।
एकनि कौं भूषण पाटंधर एकनि कौं जुदेत नग हीर।
एकनि को पहुमनि की माला एकनि कौं चंदन घिसि हीर।
एकनि माथैं दूब रोचना, एकनि को बोधत दै धीर।" [235]
"गाई दई गिनती नहीं जिनकी ठाठ चहूँ दिसि छाए।" [236]

राधा जन्म पर भी वृषभानु द्वारा मागध, सूत, बंदीजनों को दान देने का उल्लेख किया गया है।

"देत दान वृषभानु भवन में जाचक बहुनिधि पाई।
मनि कंचन मुकुता पट हीरा अरू नाना विधि गाई।" [237]

ब्रज में शुभ अवसरों पर 'गाली' गाने की प्रथा है। अष्टछाप में भी इसका वर्णन मिलता है—

"निर्भर अभय निसान बजावत देति महरि कौं गारी।" [238]

पुत्र जन्म के अवसर पर सोहिले गाने ढाढ़िनि के 'बधवा गाने' और 'बख्सीस' प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। भारतीय परंपरा के अनुसार शुभ अवसरों पर ब्राह्मण, मागध, सूत तथा ढाढ़िनी (नाचने वाली) इष्ट-मित्रों तथा संबंधियों को वस्त्राभूषण देने की प्रथा का उल्लेख

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया गया है। घोष कुमारियों द्वारा चंदन से लिपे आंगन पर चौक बनाने, आरती सजाने तथा द्वार पर 'साथिएँ' रखने का वर्णन भी मिलता है—

"बैठे नंद सभा सोभा भरि ढाढ़ी तहाँ मन भाए।
कनक बसन कंचन के भूषण श्रीब्रजपति पहिराए।"[239]
"द्वार सथिया देत स्यामा सात सींक बनाई।"[240]
"लै ढाढ़िनि कंचन मनिमुक्ता नाना बसन अनूप।"[241]

संगीत भारतीय संस्कृति का प्राण है। दुःख व सुख दोनों ही में इसकी उपस्थिति अनिवार्य मानी गई है। ब्रज में भी शुभ अवसरों पर हर्षसूचक वाद्यों को बजाकर नृत्य-गान सम्पन्न किया जाता था। परमानंददास ने विस्तार से इसका वर्णन किया है। नंददास तथा अन्य कवियों ने भी परंपरागत रूप से वाद्यों का वर्णन किया है—

"बाजत ताल मृदंग बाँसुरी ढोल दमामा भेरी।"[242]
"धुरत निसान सबद सहनाई बाजत है जो बधाई।"[243]
"दुंदुभी देव बजावहिं (हो) चहुँ दिसि धुरे निसान।
बहुबिधि बाजे बाजुही (हो) करत सप्त सुर गान।"[244]

कृष्ण जन्म के अवसर पर देवगण भी वाद्य और पुष्प-वर्षा द्वारा अपने उल्लास को व्यक्त करते हैं—

"जैजैकार करत ब्रह्मादिक इंद्र निसान बजाई।
पुहुप वृष्टि सब करत देवता ब्रज पर वरषा लाई।"[245]

इतना ही नहीं कृष्ण के साथ विश्व का समस्त वैभव ऐश्वर्य नंद के आंगन में सिमट आता है। तब अष्ट सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व तथा ईशित्व) और नौ निधियां (पद्म, महापद्म, शंख, नंद, मकर, कच्छप, कुंद, नील और खर्व) नंद का आंगन बुहार कर 'साथिएँ' रखती हैं—

"द्वार बुहारति फिरति अष्ट सिद्धि, कौरनि सथिया
चीतति नवनिधि।"[246]
"भीर भई है नंदजू के द्वारे अष्ट महासिद्धि आई।"[247]

जन्मोत्सव के वर्णन में अभिजात्य और लोक संस्कृति दोनों को विभिन्न विशिष्टताओं का चित्रण किया गया है। दोनों के समन्वित रूप से तत्कालीन समाज की प्रमुख प्रथाओं का परिचय मिल जाता है। अधिकांश आज भी अपने मूल रूप में विद्यमान हैं।

छठी (षष्ठी पूजन)

बच्चे के जन्म के छठे दिन यह उत्सव मनाया जाता है। इसमें ब्राह्मणों, पंडितों की आवश्यकता नहीं होती। स्त्रियाँ स्वयं ही सारे आचार-विचार संपन्न कराती हैं। सुबह माँ बच्चे को स्नान कराकर सारे घर की लिपाई की जाती है। 'सूतिकाग्रह' या 'सोबर' की स्वच्छता ही इसका उद्देश्य है। छठी पूजन के बाद से और लोग भी सूतिका गृह में प्रवेश कर सकते हैं।

ब्रज में इसी दिन संध्या को तीर साधने का उत्सव होता है। चौक पर बच्चे के साथ माँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बैठती है और मंगल आचारों के साथ देवर को सींग से बने तीर साधने को बुलाया जाता है।[248] एक सीमित प्रदेश में तीर साधने के स्थान पर 'केवका लिखाई' की रस्म संपन्न करवाई जाती है जिसमें 'जच्चा' के लिए मँगाई जाने वाली मेवा की सूची देवर से तैयार (लिखवाई) करवायी जाती है। इस लोकोत्सव में परंपरा से षष्ठी देवी की पूजा की जाती है। मूल प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न होने के कारण ये षष्ठी देवी कहलाती हैं इन्हें विष्णुमाया और बालदा भी कहा जाता है। मातृकाओं में ये 'देवसेना' के नाम से जानी जाती हैं और स्वामी कार्त्तिकेय की पत्नी होने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त है। ऐसी मान्यता है कि ये सिद्धयोगिनी देवी अपने योग एवं प्रभाव से बच्चों के पास सदा विराजमान रहती है। लोक में इनके नाम बिहाई माता और बैमाता भी प्रसिद्ध हैं। ऐसी मान्यता है कि सवा महीने तक नवजात शिशु सोते में इन्हीं को देखकर मुस्कराता है और न देख पाने पर रोता है। छठी पूजन का आचार सोहर के गायन से प्रारंभ होता है। सूरदास के सोहर में लोकगीतों की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इसमें छठी के अवसर पर किए जाने वाले विधि-विधानों का भी वर्णन है—

"गौरि गनेस्वर बीनउँ (हो) देवी सारद तोहिं।
गावौं हरि कौ सोहिलौ (हो) मन आखर दै मोहि।" [249]

बधावे में हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति की गई है। घर के बाहर मागध और सूत जाचक बनकर खड़े हैं। भेरी तथा अन्य वाद्य 'गढ़े गढ़े' बज रहे हैं, मालिन तोरण बाँध रही है, आंगन में केले के पत्ते रोपे जा रहे हैं, चतुर सुनार 'ढोलना' गढ़ कर लाता है। 'दधिकाँदो' का उत्सव बच्चे की आरती के साथ होता है। नाईन महावर लगाती है, लाख का झुमका और साड़ी नेग में प्राप्त करती है। विश्वकर्मा शिशु के लिए अगर-चंदन का पालना और डोलना लेकर आता है, कोरे कपड़े निकाले जाते हैं, जाति-पाँति की पहिरावनी करके छत्तीसों पवन को संतुष्ट किया जाता है फिर 'काजर रोरी' शिशु को लगाकर 'छठी' का आचार संपन्न किया जाता है—

छठी के आचार में हर्ष उल्लास के अतिरिक्त विभिन्न 'नेगों' का वर्णन किया गया है। गुरुजनों के साथ-साथ विशेष नेग बच्चे की बुआ को दिया जाता है। वही सूतिका गृह के द्वार को गोबर से लीप कर 'सतिया' रखती है। बच्चे व उसकी माँ के काजल डालती है और बच्चे को नए पीले वस्त्र पहनाती है। ननद जोर-शोर से 'बधावा' (बच्चे के वस्त्र, खिलौने, मेवे-मिठाई, फल) लेकर आती है। डॉ० सत्येंद्र के अनुसार, "जब ननद बच्चे के लिए कुरता-टोपी लाती है उस समय ब्रज में गाया जाने वाला एक प्रसिद्ध गीत 'जगमोहन लुगरा' गाया जाता है। इसमें ननद अपनी भाभी से नेग में 'जगमोहन' नामक साड़ी और 'लुगरा' नामक लहँगा माँगती है।"[250]

कुंभनदास तथा कृष्णदास ने छठी के स्थान पर श्रीराधा के जन्म पर रावलि में और कृष्ण के जन्म पर नंद महर के यहाँ बधाइयाँ गाने का उल्लेख किया है।

"अरी माई प्रकटी है आनन्द कंद ललीजू को सोहिलो।" [251]
"श्री वृषभानु राइजू के आंगन बाजत आजू बधाई।" [252]

परमानंददास ने छठी के उत्सव का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने 'मंडप रचाने', 'घृतदीप जलाने' और अंबादेवी के सामने 'मंगलदीप' तथा 'लेखनी मसिदान' रखने का वर्णन किया है। एक पद में [illegible] का पूजन [illegible] दान कराने का उल्लेख भी किया है।[253] उत्सव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के अंत में यशोदा कृष्ण के साथ कुलदेवी की पूजा करती हैं और विविध व्यंजनों का भोग लगाती हैं। स्त्रियों द्वारा इस अवसर पर रात्रि में चहरका नामक गीत गाया जाता है—

"कुँवर न्हवाय जसोदा रानी कुलदेवी को पाँय परायौ।
"बहुप्रकार बिंजतन धरि भोगन' सब बिधि मलौ मनायौ।"[254]
"गोपी गावति चहर के...."[255]

इसी अवसर पर गर्ग मुनि शिशु की उच्च गृह स्थिति की ओर संकेत करते हैं—

"लगन सोधि सब ज्योतिष गनि कै चाहत तुम्हहि सुनायौ।"[256]

जन्मोत्सव और छठी के इस वर्णन में भारतीय संस्कृति की पूर्ण झलक मिलती है। डॉ॰ वासुदेव शरण अग्रवाल के हर्षचरित के सांस्कृतिक अध्ययन में उपर्युक्त आचारों का विवरण मिल जाता है।[257] इससे प्रमाणित होता है कि ब्रज लोक-संस्कृति ने अपने सभी आचार-विचार परंपरा से ग्रहण किए और अष्टछाप साहित्य में उन्हें यथास्थान अभिव्यक्त किया गया। आचारों में तथा सोहर और चहर के गीतों में लोक तत्व को प्रमुख स्थान दिया गया है। उत्सवों के माध्यम से सामाजिक वर्ग भेद की समाप्ति तथा सभी वर्गों के परस्पर सौहार्दपूर्ण वातावरण की ओर संकेत किया गया है।

नामकरण

जन्म के दसवें या बारहवें दिन यह संस्कार संपन्न किया जाता है। इसी आधार पर लोक भाषा में इसे 'दष्ठौन' और 'बरही' कहते हैं। 'निष्क्रमण' संस्कार का अन्तर्भाव आजकल नामकरण में हो गया है। इस दिन माँ बच्चे के साथ सूतिका गृह से बाहर आती है। इस प्रकार नवजात शिशु का बाह्य संसार से परिचय होता है। नामकरण द्वारा बालक को एक पृथक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। इसलिए यह संस्कार बालक के स्वतंत्र अस्तित्व स्थापना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पूजा के लिए माता-पिता गाँठ बाँधकर पूजास्थल पर बैठते हैं। इसे 'तगा बाँधना' कहा जाता है। वस्त्राभूषण तथा अनेकों उपहार बंधु-बांधवों द्वारा दिए जाना तथा विभिन्न 'नेगों' उपहारों को देना (बच्चे के पिता-माता द्वारा) और आनन्द मनाना अन्य उत्सवों की भाँति ही होता है।

इस संस्कार को संपन्न करने के लिए शुभ मुहुर्त, तिथि और वार निकलवाया जाता है। पर अष्टछाप में नंद के घर पुत्र जन्म की बात सुनकर आदि ज्योतिषी गर्गाचार्य स्वयं नंद के घर आकर कृष्ण, बलराम का नामकरण संस्कार संपन्न कराते हैं। कंस के भय से वे चुपचाप 'स्वस्ति वाचन' और 'अग्नि होत्र' कराना चाहते हैं पर गोकुल में उत्सव का-सा वातावरण बन जाता है।

"नंद गृह आयो गर्ग बिधि जानी।
रामकृस्न के नामकरण हित अहुकुलं में सनमानी।"[258]
"तनक स्वस्ति वाचन करि लाजै लरिकन कछू नाँव धरि दीजै।
गर्गहिं अरग गये लै नंद अगिनि होत्र करि नंदहिनंद।"[259]

परमानंददास ने इस अवसर पर गज मोतियों से चौक पूरने का उल्लेख किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"गज मोतिनि के चौक पुराए नामकरण बिधि नीकी।"[260]

गर्ग मुनि कृष्ण बलराम के अनेकों नामों का वर्णन करते हैं[261] और ज्योतिष गणना करके कृष्ण के भावी लक्षण नंद को सुनाते हुए कहते हैं।

"आदि सनातन परब्रह्म प्रभु घट घट अन्तरजामी।
सो तुम्हरे अवतरे आनि कै सूरदास कै स्वामी।"[262]

इसके पश्चात् यशोदा-नंद को ऐसे पुत्र होने पर बधाई दी जाती है। विप्र और चारण नंद के घर आते हैं। हर्षित होकर दूब-हल्दी अपने सिर पर बाँधते हैं और कृष्ण के गुणों को सुनकर आनन्दित होते हैं।[263]

अन्नप्राशन

लोक में यह संस्कार 'पसनी' नाम से प्रचलित है। पाँच से आठ माह की आयु में यह संपन्न किया जाता है। प्रारंभ में पौष्टिक और सुपाच्य पदार्थों जैसे घृत, शहद, दही-भात का सेवन नाममात्र को कराया जाता है फिर धीरे-धीरे इनकी मात्रा में वृद्धि की जाती है। नृत्य-गान और दान इस संस्कार के भी प्रमुख अंग हैं।

छह महीने से कुछ कम आयु रहने पर सूरसागर में इस संस्कार को संपन्न किया गया है। कृष्ण को अन्नप्राशन के योग्य जान कर हर्षित नंद विप्र को बुलाते हैं—

"कान्ह कुँवर की करहु पासनी कछु दिन घटि षट मास वासे।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनुप्रासन जोग भये।"[264]

ब्राह्मणों द्वारा शुभ मुहुर्त्त निश्चित हो जाने पर यशोदा सखियों को बुलाती हैं, मंगल-गान कराती हैं। वे नंद का नाम लेकर यशोदा को गारी देने वाले गीत गाती हैं—

"आछौ दिन सुनि महरि जसोदा सखिनि बोलि सुभ गान करयौ।
जुवति महरि कौं गारी गावति, और महर कौ नाम लिए।"[265]

कृष्ण के अन्नप्राशन की सुनकर सजातीय स्त्रियाँ षटरस व्यंजन और अनेक प्रकार के मिष्ठान्न तथा पकवान बनाने में व्यस्त हो जाती हैं। नंद सभी सगोत्रों को निमंत्रित करते हैं। यशोदा उबटन लगाकर कृष्ण को स्नान कराती हैं, वस्त्राभूषण पहनाती हैं। अन्नप्राशन के शुभ अवसर पर नंद कृष्ण को गोद में लेकर बैठते हैं। स्वर्णथाल में घृत-शहद से युक्त खीर रखी जाती है और कृष्ण को समस्त प्रकार के व्यंजन चटाए जाते हैं—पसनी के लोकगीत गाए जाते हैं—

"आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।
मनि कंचन के थार भराए भाँति-भाँति के बासन।
जसुमति उबटि न्हवाई कान्ह कौं पटभूषन पहिराइ।
षटरास के परकार जहाँ लागी लै लै अ अधर छुवावन।
महर गोप सबही मिली बैठे पनवारे परसाए।
भोजन करत अधिक रुचि उपजी जो जाके मन भाए।"[266]

परमानंददास ने भी इस संस्कार का और यशोदा के उत्साह का विशद वर्णन किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"अनप्रासन दिनन नंद लाल कौर करत जसोदा माय।
ब्राह्मण देव पूजि कुलदेवी बहोत दच्छिना पाय।
'कुटुम जिमाय' पटंबर दीने भवन आपुने आय।
मागध भाट सूत सनमाने सब हित हरख बढ़ाय।" 267

अन्नप्राशन में सूर द्वारा प्रत्येक विधि-विधान का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है। इसी कारण तत्कालीन समाज में प्रचलित प्रथाओं का परिचय भी मिल पाया है। इन प्रथाओं का अनुकरण आज भी केवल ब्रज में ही नहीं ब्रज से बाहर भी किया जा रहा है।

वर्षगाँठ

प्रत्येक वर्ष बालक के जन्म दिवस पर किए जाने वाले संस्कार को वर्षगाँठ की संज्ञा दी गई है। इस उत्सव का वर्णन प्रायः सभी अष्टछाप कवियों ने किया है। शुभ घड़ी में चौक पूर कर विप्र द्वारा नवग्रहों की शांति कराई जाती है। तूर्य आदि बजाए जाते हैं। शुभ घड़ी में अक्षत दूर्वादल रखकर रेशम की डोर में गाँठ बाँधी जाती है। प्रत्येक गाँठ आयु के एक वर्ष का प्रतीक मानी जाती है। इस अवसर पर नए वस्त्र धारण किए जाते हैं। यशोदा का उल्लास दर्शनीय है—

"फूली फिरति जसोदा तन मन उबरि कान्ह अन्हवाइ अमोल।
सिर चौंतनी डिठौना दीन्हौ आंखि पहिराइ निचोल।
ब्रजजन मोहन बरस गाँठ को डोरा खोल।" 267

सूरसागर में वर्षगाँठ के तीन पद उपलब्ध हैं जिनमें यशोदा के हर्ष, वर्षगाँठ के रीति-रिवाजों के साथ-साथ नारी समाज के हार्दिक उल्लास का चित्र भी खींचा गया है। वर्षगाँठ का आधुनिककाल में भी अत्यंत महत्व है और समाज के एक वर्ग में पाश्चात्य सभ्यता के आचार-विचार के साथ इसे मनाया जा रहा है। पारिवारिकता की सुगंध और संबंधों की प्रगाढ़ता के स्थान पर प्रदर्शन की भावना इस संस्कार में अधिक बलवती हो गई है।

चूड़ाकर्म

एक वर्ष से पहले या फिर तीन वर्ष के पहले यह संस्कार संपन्न किया जाता है। बच्चे के सिर के सारे बाल एक साथ उतरवा दिए जाते हैं। अष्टछाप साहित्य में चूड़ाकर्म संस्कार का वर्णन नहीं है उसके स्थान पर गमुआरे, घूंघरवारे, झँडूले बालों का उल्लेख है—

"गमुआरे सिर केस हैं बर घूँघरवारे।" 269
"उर बधनहाँ कंठ कठुला झँडूलेबार,
बेनी लटकन मसि बुन्दा मुनि मल हर।" 270

कर्णवेध (कनछेदन)

बालक के तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष में यह संस्कार किया जाता है। आजकल मुंडन, कनछेदन प्रायः एक साथ ही करा दिए जाते हैं। किसी तीर्थस्थान या देवस्थान में यह संस्कार किया जाता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। सोने अथवा पीतल के तार से या शलाका से दोनों कान बेधे जाते हैं फिर उसमें सोने-चाँदी या पीतल की बाली पहना दी जाती है। बालक को दर्द भुलाने के लिए, मिष्ठान आदि देकर बहलाया जाता है। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी जाती है तथा भोजन कराया जाता है। आधुनिक समाज में पुरुष कानों में आभूषण धारण नहीं करते फिर भी उनके बचपन में कर्णवेधन अवश्य होता है। बस बाली नहीं पहनाई जाती जिससे 'सुराख' बड़े होने पर दिखाई नहीं देता है। लड़कियों के कानों में बाली पहना दी जाती है।

अष्टछाप साहित्य में विस्तार से इसका वर्णन किया गया है। कृष्ण के कष्ट की आशंका से यशोदा के हृदय में धुकधुकी होती रहती है वे 'सोहारी'(पूड़ी) और गुड़ की भेली उनके हाथ में पकड़ा कर गोद में लेकर बैठ जाती हैं—सींक से 'रोचन' का चिह्न लगाकर चतुर नाई सोने की सुई से कान छेद देता है तब कानों में 'दुर' (आभूषण) पहनाए जाते हैं। कष्ट से बालक की आँखों में और बालक के कष्ट से माता की आँखों में आँसू आ जाते हैं वे 'नौआ' को 'धुरकी' देकर बालक को प्रसन्न करती हैं—

"कान्ह कुँवर का कन छेदन है, हाथ सोहारी भेली गुर की।
बिधि बिहँसत, हरि हँसत हेरि हरि, जसुमति की धुकधुकी सुउर की।
कंचन के द्वै दुर मँगाइ लिए कहौं कहा छेदनि आतुर की!
लोचन भरि भरि दोऊ माता, कन छेदन देखत जिय मुरकी।
रोवत देखि 'जननि अकुलानि दियौ तुरत नौआ को धुरकी।"[271]
"कनक सूचि लै स्त्रवन कों दीनी बेधत बार न लागी "[272]
"आयो करन वेध दिन नीको, गुर की भेली हाथ दिवाई कियौ रोचन को टीकौ।" [273]

इस प्रसंग से मणि-मुक्ताएँ लुटाने के माध्यम से नंद के वैभव और ऐश्वर्य द्वारा राजन्य संस्कृति का तथा सुहारी और गुड़ की भेली से लोक-संस्कृति का समन्वित रूप प्रस्तुत किया गया है।

उपनयन

इसे यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार भी कहते हैं। बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास हो जाने पर गुरु के पास ले जाकर विद्यार्थी बनाने की प्रक्रिया को उपनयन कहते हैं। यह अत्यंत पवित्र हिंदू संस्कारों में परिगणित होता है और किसी शुभ मुहूर्त में किया जाता है। प्राचीन काल में ब्राह्मण का उपनयन आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष मे और वैश्य का बारहवें वर्ष में होता था। ऋतु के अनुसार ब्राह्मण का बसंत ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म ऋतु में तथा वैश्य का शरद ऋतु में होता था। शूद्रों का उपनयन वर्जित था। घर पर ही यज्ञोपवीत पहनाकर बालक को गुरु के पास ले जाते थे जो गायत्री मंत्र की दीक्षा देकर विद्या का प्रारंभ करता था। इस अवसर पर तीन प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती थीं—ब्रह्मचारी रहना तथा रात्रि में ही शयन करना, नित्य समिधा लाकर हवन करना और भिक्षा माँगकर जीवन निर्वाह करना। वेदारम्भ संस्कार भी यज्ञोपवीत के साथ ही संपन्न कर दिया जाता है।

यज्ञोपवीत से एक दिन पहले कच्चे धागे का सूत जिसे गोबर जनेऊ कहते थे 'बरुआ'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(बालक) को पहनाया जाता था। जनेऊ धारण करने पर 'कौपीन' तथा पलाश के दंड के साथ बालक को भिक्षा माँगनी पड़ती थी। गुरुकुल से वापस आने पर समावर्तन संस्कार उत्सव के रूप में मनाया जाता था। आजकल गुरुकुल न होने के कारण तीनों संस्कारों को एक कर दिया गया है।

श्रीकृष्ण का यह संस्कार उचित समय पर नहीं हो सका था। परमानंददास ने इस ओर संकेत किया है—

"पाँच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नाँगो।
परमानंद दास को ठाकुर काँधे पर्‌यौ न तागो।" [274]

मथुरा में यह संस्कार संपन्न हुआ। वसुदेवजी ने कृष्ण, बलराम को जनेऊ धारण करवाए। गर्ग मुनि ने गायत्री मंत्र की दीक्षा दी और वसुदेव तथा देवकी ने गायें तथा विभिन्न वस्तुएँ दान में दीं। राजपुत्र का जनेऊ होने के कारण विभिन्न प्रदेशों से 'टीका' भी आता है—

"हरि हलधर कौं दियौ जनेऊ करि षट रस ज्यौनार!
जाके स्वाँस-उसाँस लेत मैं प्रगट भए स्रुति चार!
तिन गायत्री सुनी गर्ग सौं प्रभु गति अगम अपार
बिधि सौं धेनु दई बहु बिप्रति सहित सर्वलंकार।" [276]
"हरि पर पाटंकर न्यौछावरि करत रतन पटसारी।
बाजत ढोल निसान संख रव होत कुलाहल भारी।
लोक लोक को टीकौ आयौ मुदित सकल नर नारी।" [277]

यज्ञोपवीत के अवसर पर भिक्षा माँगने का उल्लेख अष्टछाप साहित्य में विशेष नहीं है केवल सारावली में भिक्षा की रीति का उल्लेख मात्र है—

"जज्ञोपवीत विधोक्त कियो विधि सुर भिक्षा दीन्ही।" [278]

सारावली में ही यज्ञोपवीत के बाद विद्याध्ययन के लिए कृष्ण के अवंति जाने का उल्लेख किया गया है।[279] अन्य कवियों ने इस विषय पर मौन साध रखा है।

विवाह संस्कार

सोलह संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विवाह संस्कार है। इसे पाणिग्रहण संस्कार भी कहते हैं। भारतीय संस्कृति में विवाह द्वारा मनुष्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है तथा संतानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण से मुक्त होता है। इसलिए विवाह द्वारा 'काम' तथा 'अर्थ' की साधना के साथ-साथ अपने कर्त्तव्य का निर्वाह भी करता है। विवाह भाग्य तथा जन्म-जन्मान्तर के संबंधों का परिणाम माना जाता है। आज भी विवाह संस्कार परंपरानुसार संपन्न किया जा रहा है। विदेशी प्रभाव स्वरूप शादी शब्द भी प्रचलित हो गया है पर अष्टछाप साहित्य में इसका प्रयोग नहीं है। विवाह से संबंधित मंगल कार्य तथा आचारों की संख्या चालीस से ऊपर मानी गई है। संस्कार मयूख के संस्कार कांड में स्मृतियों तथा विवाह पद्धतियों पर आधारित वैवाहिक कृत्यों की विस्तृत सूची इस प्रकार है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"वर वधू गुण परीक्षा, वर प्रेक्षण (कन्या को देखने जाना) वाग्दान, मंडपकरण, पुण्याहवाचन तथा नांदी श्राद्ध, वधूगृहागमन (कन्या पक्ष के घर वर पक्ष का जाना), मधुपर्क, विष्टरादान (वर को बैठने के लिए आसन देना), गौरी हर पूजा, स्नापन, परिधापन तथा संनहन, समंजन (वर-वधू के अंगराग लगाना), प्रतिसार बंध (कन्या के हाथ में कवच बाँधना), वधू-वर निष्क्रमण, परस्पर समीक्षण, कन्यादान, अक्षतरोपण, कंकण-बंधन (वधू की कलाई में कंकण बाँधना), आर्द्रकाक्षत रोपण, तिलक करण, अष्ट फलिदान, मंगलसूत्र बंधन, गणपति पूजा, वधूवर योत्तरीय-प्रांत-बंधन (वधू और वर की चादरों का छोर बाँधना), लक्ष्मी पार्वती-शची पूजा, बापन दान, अग्निस्थापन तथा होम, पाणिग्रहण, लाजाहोम, अग्नि परिणयन, अश्मारोहण गाथागान, सप्तपदी, मूर्द्धाभिषेक, सूर्योदीक्षण, हृदय स्पर्श, सिंदूरदान (सिंदूर लगाना—सुमंगली), प्रेक्षकानुमंत्रण, दक्षिणादान, गृह प्रवेश, गृहप्रवेशनीय होम, ध्रुवारुंधती दर्शन, आग्नेय स्थालीपाक, त्रिशत्रव्रत, चतुर्थी कर्म, देवकोस्थान तथा भंडपोद्वासन।"[280]

विवाह संस्कार दाम्पत्य जीवन की नींव है। भारतीय संस्कृति में संतानोत्पत्ति तथा संयम, नियम और सदाचार की स्थापना के लिए विवाह-संस्था का निर्माण किया गया। विवाह संस्था से अनुप्रेरित परिवार ही समाज को उन्नति के पथ पर ले जा सकते हैं। मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाह को स्वीकृति दी गई है[273]—'ब्राह्म—(वस्त्राभूषण से सज्जित कन्या सुयोग्य वर को सौंपना), दैव (वस्त्राभूषण से सज्जित कन्या ऋत्विक को सौंपना), आर्ष (एक या दो गो-मिथुन लेकर यथाविधि कन्या देना), प्राजापत्य (दोनों साथ-साथ धर्माचरण करो कहकर कन्या सौंपना) आसुर (धनादि देकर कन्या प्राप्त करना), गांधर्व (बलपूर्वक वर कन्या का इच्छानुसार संयोग), राक्षस (बलपूर्वक कन्या का हरण), पैशाच (केवल मैथुन के लिए सुप्त या प्रमत्त कन्या से संबंध)।[281]

अष्टछाप काव्य में प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर सीता तथा लक्ष्मणा के विवाह ब्राह्म रीति से कराए गए हैं। राधा और कृष्ण के गांधर्व और ब्राह्म दोनों विधियों से विवाह का वर्णन किया गया है। अर्जुन-सुभद्रा तथा रुक्मिणी का विवाह राक्षस विवाह के रूप में संपन्न किया गया है। अन्य विवाहों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता परंतु अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज में वे प्रचलित रहे होंगे। अष्टछाप में वर्णित सभी विवाह, 'वय प्राप्त' होने पर संपन्न हुए हैं इसलिए इससे यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि तत्कालीन समाज में बाल विवाह की प्रथा नहीं थी। बहु विवाह की प्रथा विद्यमान थी और उसे बुरा नहीं समझा जाता था। राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह प्रथा अनिवार्य थी। कृष्ण के विभिन्न विवाहों से भी अप्रत्यक्ष निष्कर्ष ही निकाला जा सकता है क्योंकि कृष्ण के अनेक विवाहों में से किसी न किसी विवाह में आयु का अंतर अवश्य रहा होगा। अष्टछाप कवियों ने इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया है। कुब्जा के प्रसंग द्वारा वेश्या विवाह की ओर संकेत किया गया है क्योंकि गोपियाँ सपत्नी ईर्ष्या से उसे 'चाम का दाम' चलाने वाली कहती हैं किंतु इसे प्रमाण नहीं माना जा सकता है। अविवाह की प्रथा भी तत्कालीन समाज में विद्यमान रही होगी क्योंकि कृष्ण के द्वारिका चले जाने पर गोपियों के किसी विवाह का उल्लेख नहीं किया गया है। कुरुक्षेत्र में राधा और गोपियों के पुनः उल्लेख में भी उनका सौभाग्यवती होना वर्णित नहीं किया गया है। राधा-कृष्ण के दाम्पत्य जीवन का चित्रण भी कृष्ण के मथुरा चले

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाने के बाद से नहीं किया गया है। उपर्युक्त विवेचन का सार यही निकलता है कि अष्टछाप कवियों ने भौतिक तथा सांसारिक दृष्टि से विवाह का संबंध न मानकर आध्यात्मिक तथा वल्लभ संप्रदायी दृष्टि से ही विभिन्न विवाहों का वर्णन किया है।

जन्मोत्सव के पश्चात् विवाह के अवसर पर ही लोक-संस्कृति का व्यापक चित्र खींचा गया है। ब्रजलोक में प्रचलित सभी आचारों-विचारों, रीति-रिवाजों का परिचय विवाह वर्णन में मिल जाता है। लोक संस्कृति के अनेक तत्व जैसे कंकण मोचन, गारी, गौना, दहेज, विदा तथा उसके बाद वरपक्ष में आनंदोत्सव ,विस्तृत रूप में वर्णित किए गए हैं। इस प्रकार शास्त्रीय तथा लोक-आचारों, दोनों को महत्व दिया गया है।

अष्टछाप काव्य में सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास और नंददास ने विवाह संस्कार का विस्तार से वर्णन किया है। अन्य कवियों में यह विस्तार नहीं पाया जाता है परंतु फिर भी लोक में प्रचलित विवाह से संबंधित छोटी से छोटी जानकारी इस काव्य के अनुशीलन से हो जाती है। नंददास ने रूपमंजरी, देवकी, राधा, रुक्मिणी के विवाहों का और कुभनदास ने केवल राधा-कृष्ण की सगाई का वर्णन किया है। परमानंद दास ने लोक प्रचलित आचारों—वाग्दान, सगाई टीका के साथ-साथ राधा-कृष्ण के विवाह का उल्लेख किया है। सबसे अधिक सूक्ष्मता सं सूरदास ने विवाह संस्कार का वर्णन किया है। सूरसागर में वर्णित विवाह इस प्रकार हैं—चतुर्थस्कंध में शिव-पार्वती, नवमस्कंध में हलधर-रेवती और राम-सीता, दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध में वसुदेव-देवकी और राधा-कृष्ण के, तथा उत्तरार्द्ध में श्रीकृष्ण के साथ—रुक्मिणी, जाम्बवंती, सत्यभामा, पंच पटरानी (कालिंदी, मित्राविंदा) सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा के, प्रद्युम्न, रति के—रति का नाम नहीं वर्णित किया गया है पर पौराणिक मान्यता के अनुसार पूर्व जन्म में शंकर शाप से दग्ध कामदेव ने ही प्रद्युम्न के रूप में अवतार लिया था, अनिरुद्ध, उषा के, सांब-लक्ष्मणा के तथा अर्जुन-सुभद्रा के विवाहों का वर्णन किया गया है। इन सब में से सीता, सत्या का विवाह प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर (धनुषभंग तथा सात बैलों को एक साथ नाथने की) तथा रुक्मिणी, लक्ष्मणा का विवाह श्रीकृष्ण द्वारा उनका हरण करने के बाद हुआ। सांब ने दुर्योधन पुत्री और अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण करके विवाह किया। सभी विवाह विवाह योग्य आयु प्राप्त कर लेने पर किए गए हैं।

इन सभी विवाहों में से अष्टछाप कवियों की रुचि राधा, रुक्मिणी के विवाह प्रसंगों में रही है। श्रीकृष्ण के अन्य विवाहों में उनकी तन्मयता का सर्वथा अभाव है। अष्टछाप में वर्णित विवाह संस्कार की रीतियाँ ही आज के समाज में अपनाई जा रही हैं। प्रमुख रीतियाँ इस प्रकार हैं।—

वर प्रेक्षण

कुंभनदास ने 'स्याम सगाई' में इसका वर्णन किया है। वृषभानु द्वारा नंद यशोदा को निमंत्रण भेजा जाता है—

"नंदीस्वर से नंद जसोदा गोपनि न्योति बुलाए।
हमरी लली तुम्हारे लालन यह जग जाए अनूप।" 282

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

वाग्दान का तात्पर्य है विवाह संबंध का पक्का हो जाना। लोक में इसे गोद भरना भी

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहा जाता है। इसके बाद 'सगुन' या 'साया' नाम से संपन्न किए जाने वाले उत्सव में वधू के हाथ में लग्न पत्रिका रखकर बाद में भेंटों के साथ वर पक्ष तक पहुँचाई जाती है, यह एक प्रकार का आमंत्रण होता है। प्रायः यह दोनों उत्सव एक साथ कर दिए जाते हैं। नंददास ने रूपमंजरी में सगाई तय कराने वाले ब्राह्मणों का उल्लेख किया है जो धन के लोभ से अनमेल विवाह भी करवा देते थे।[283] परंतु स्यामसगाई में उन्होंने ब्राह्मणी को यशोदा के पास सगाई संदेशा लेकर भेजा है। यशोदा उत्तर में कहती है।—

"जाइ कहयौ वृष भानु सौ बहु भनुहारि।
यह कन्या मैं स्याम कौ माँगो गोद पसारि।" [284]

कुंभनदास ने राधा की माता द्वारा राधा को जसोदा की गोद में बैठाकर सगाई की रस्म पूरी कराई है—

"इतनी सुनत कीरति कुँवरि को जसुमति गोद बैठाई।
जसुमति लालन कीर्ति गोद दै कुँवरि मुदित खिलाई।" [285]

वाग्दान में 'टीका' आने का वर्णन किया गया है। ब्राह्मण टीका लगाकर संबंध करता है—

"जसुमति सुत की करत सगाई।
कान्ह उबटि न्हवाई जसोदा रतनजटित भूषण पहिराई।
मोतिनि चौक पुराई स्याम का लै प्रोहित डिंग आई।
भाल कस्यौ कुंकुम कौ टीकौ पुष्पमाल गर में पहिराई।" [286]
"बिप्र प्रवीन तिलक कर मस्तक अच्छत चोप लियो अपनाई।" [287]

निमंत्रण का विधिवत वर्णन अष्टछाप में नहीं है परंतु बारातियों की संख्या 'छप्पन कोटि'[288] तक बताने से स्पष्ट है कि संबंधितों, को परिचितों को विवाह में आमंत्रित किया जाता था। श्रीकृष्ण के गंधर्व विवाह में मुरली द्वारा निमंत्रण भेजा गया है।[289]

मंडप

इसे लोक में 'मँडवा' या 'मढ़ा' भी कहते हैं। इसी के नीचे विवाह की रस्में पूरी की जाती हैं। कदली खंभों के मंडप में वेदी बनाई जाती है। राधा-कृष्ण के विवाह में मंडप का उल्लेख है। वृषभानु के घर पर रुक्मिणी विवाह में द्वारिका में मंडप का वर्णन किया गया है—

"कदली जूथ अनूप किसलय दल सुरंग सुमन लैमंडप छावहु।" [290]
"मंडप छायों देखि बरसाने बैठे नंद उदार।" [291]
"आए नाथ द्वारिका नीके रच्यो माँडवो छाय।" [292]

हल्दी-तेल चढ़ाना

विवाह से पहले वर-वधू को हल्दी-तेल चढ़ाने की प्रथा लोक में प्रचलित थी और आज भी है इसके पश्चात् स्नान करवाया जाता है, इसी समय मढ़े के नीचे कंकना भी बाँधा जाता है। कृष्ण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दास ने इसका उल्लेख किया है जो मणि-मोतियों का है—

"कंकन कुंवर कन्हैया के कर देखि री आजुभई छवि भारी
रतनजटित मनि मोतिनि जगमग द्विजवर पढ़ि बाँधत हितकारी।
हरद चढ़ावैं हदै लगावैं उबरि न्हवावें सब ब्रज नारी।"[293]

'तेल चढ़ाने' की रसम सात सुहागिनों द्वारा की जाती है। इसके बाद उबटन स्नान कराकर नए वस्त्राभूषण पहनाए जाते हैं। वैवाहिक वस्त्र मूल्यवान जरी आदि के होते हैं, मणिमोतियों तथा रत्नों से जटित सेहरा बाँधा जाता है। राजकुल के वर 'मौर' के स्थान पर मुकुट धारण करते हैं। सेहरा फूलों तथा मोतियों दोनों का होता है। वर का वाहन घोड़ी-घोड़ा अथवा रथ होता है—

"दूल्हौ आजु वन्यौ।
रतन जटित कौ सीस सेहरौ, मोतियनि लै लै घन्यौ।
सोहत लाला छपेरी बागौ सुरंग तास कौ फेंटा गन्यौ।
गरे बैजंतीमाल बिराजति स्रवननि कुंडल कन्यौ।"[294]
"मुकुट कुंडल जरति हीरा लाल, सोभा अति बनी।
पन्ना पिरोजा लगे बिच बिच चहूँ दिसि लटकत मनी।
सेहरा सिर मुकुट लटकत कंठमाला राजई।"[296]
"तुरी ताजी बिना ताजन चपल चपला श्रीहरी।
जीन जरित ज़राव पाखरि लगी सब मुक्ता लरी।"[297]

विवाह से पूर्व और बाद में देवी-पूजन की प्रथा प्रत्येक भारतीय परिवार में प्रचलित है। रुक्मिणी का तो हरण ही देवी-पूजन के लिए मंदिर जाने से हुआ था। नंददास ने इस विधान का विस्तृत वर्णन किया है।[298]

बारात के वधू गृह आने का भी उत्साहपूर्ण वर्णन किया गया है। वधू पक्ष की स्त्रियाँ मंगलगान गाती हैं, गज-मोतियों के चौक पूरती हैं।[299] बारात का स्वागत मधुपर्क से किया जाता है—

"अधर मधु मधुपरक करिकै करत आनन हास।"[300]

विवाह

वेद विधि के अनुसार श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह का उल्लेख किया गया है। सारावली में राम-सीता के विवाह पर होम हवन के साथ द्विज गणपति सूर्य और महेश की पूजा का वर्णन है—

"बेद-बिधि कियो ब्याह बिधी बसुदेव मन उपजी रली।"[301]
"बेद-सास्त्र मथि करी ब्याह बिधि सोइ कीन्ही नृपराय।
होम हवन द्विज पूजा गनपति सूरज सक्र महेस।"[302]

पाणिग्रहण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant
इसके द्वारा आजन्म साथ निभाने की प्रतिज्ञा की जाती है। नंददास ने पाणिग्रहण के स्थान पर

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोक भाषा में प्रचलित 'हथलेवा' शब्द का प्रयोग किया है—

"पानिग्रहन रघुबर बर कीन्हौ जनकसुता सुखदीन।"[303]

"पठत बैद चहुँ दिसि बिप्र जन भये सबन मन भाये।
हथलेवा करि हरि राधा संग मंगलाचार पढ़ाए।"[304]

पाणिग्रहण के पश्चात् वर-वधू के उत्तरीय में गाँठ लगाने को गठबंधन कहते हैं। इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इसके पश्चात् 'अग्नि प्रदक्षिणा की जाती है जिसे भाँवर पड़ना' भी कहते हैं—

"भाँभर लेत प्रिया और प्रीतम तनमन दीजै वार।"[305]

कंकण मोचन

विवाह से पूर्व बाँधा गया कंकण विवाह के पश्चात् मंडप के नीचे खोला जाता है। कंकनचार में सखियों की या समवयस्क वधू पक्ष की स्त्रियों की प्रमुख भूमिका होती थी इसलिए अष्टछाप में वर द्वारा कंकण खोलते समय का हास-परिहास युक्त वर्णन अधिक है—

"कर कंपै कंकन नहिं छूटैं।
राम सिया कर परसि मगन भए कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।"[306]

"बड़े हुओ तौ छोरि लेहु जौ सकल घोष के राइ।
कै, कर जोरि करौ बिनती कै छुवौ राधिका पाइ।
यह न होई गिरि कौ धरिबौ हो सुनहु कुँवर ब्रजनाथ
आपुन कौं तुम बड़े कहावत काँपन लागे हाथ।"[307]

कंकण मोचन के पश्चात् सोने की कुंडी में हल्दी पूँगीफल मिश्रित जल में वर-वधू के जुआ खेलने का भी वर्णन है—.

"पूँगीफल जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुंडी जो कनक की।
खेलत जूप सकल जुवतिनी मैं हारे रघुपति जिती जनक की।"[308]

विवाह के 'नेग' और 'आचारों' के बीच गाली देने की प्रथा का उल्लेख भी किया गया है। सूरदास ने विभिन्न प्रकार की गालियों का एक लंबे पद में वर्णन किया है।[309] विवाह के पश्चात् 'न्यौछावर' या 'भूर' दीन जनों में बाँटी जाती है। सूर ने न्यौछावरी में भक्ति-मुक्ति पाने का उल्लेख किया है—

"भक्ति मुक्ति न्योछावरी पाई सूर सुजान।"[310]

विदा

विवाह के पश्चात् कन्या की विदा का प्रसंग सर्वाधिक मार्मिक होता है। कालिदास ने पालिता कन्या शकुंतला की विदा पर मुनि कण्व के विचलित होने का वर्णन किया है—[311] तो गृहस्थ जनों का विचलित होना तो स्वाभाविक ही है। लोकगीतों का यह प्रिय विषय है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसलिए प्रत्येक सहृदय कवि ने इस प्रसंग का मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है। अष्टछाप के कवि इसका अपवाद हैं। विदा का वर्णन वहाँ औपचारिकता मात्र है। विषय का विस्तार उन्होंने नहीं दिया है। कृष्णदास ने केवल विदा होती हुई राधा का चित्र खींचा है जो अपनी मामी, फूफी, भाभी, बहन से मिलकर रोती है और वृषभानु शीघ्र ही भाई को भेजकर उसे बुला लेने का आश्वासन देते हैं—

"मिलि वृषभानु कहयौ मेरी बछनी जिन रोवै सुकुमारि।
बिबस भई तन की सुधि बिसरीं नैननि जिन जल बूँद निडारि।
लैहो बेगि बुलाइ लडैती पिता कह्यौ पुचकारि।
दैहो बेगि पठाइ भैया को यों कहि रथ बैठारि।
यह सोभा यह प्रेम बिबस बस यह ब्रज कौ त्यौहार।"[312]

दहेज

विवाह के साथ-साथ कन्या को दहेज देने की परंपरा प्राचीन काल से ही चलती चली आ रही है। पौराणिक ग्रंथों में भी धन-संपत्ति, वस्त्राभूषण आदि का दहेज रूप में देने का उल्लेख है। अष्टछाप में इसका स्पष्ट उल्लेख है। वसुदेव के विवाह के समय कंस द्वारा 'हयगय रतन हेम पाटंबर' का दायज रूप में देने का उल्लेख है—

"दई विवाहि कंस बसुदेवहिं दुख भंजन सुख माला।
हय गय रतन हेम पाटंबर आनंद मंगलचारा।"[313]

नंददास ने देवकी के पिता देवक द्वारा दहेज देने का उल्लेख किया है—

"षट सत रथ कंचन के नए गजसत चारि मत्त छवि छाए।
पंद्रह सहस सुमग किंस्यान कनक भरे नग जरे पलान।
बर बरनीं तरुनी रंगभीनी दासी बीनि दोइ सत दीनी।"[314]

राजन्य संस्कृति के अनुरूप यहाँ दासी और तरुणियों को भी दहेज रूप में देने का उल्लेख हुआ है। कृष्ण दास ने वृषभानु द्वारा दिए गए राधा के दहेज का वर्णन किया है—

"गोपनि के गोधन अति नीकी दीन्हीं हैं लख चार।
झूमरि झूम झूम मखतूनि प्यारी धैरी धेनु सिंगार।
जगमग सोने सींग सबनि के गरे घंटनि बड प्यार।
मोतिनि हार फवी पग पैंजनी चलत चपल झनकार।"[315]

गोधन का यह दहेज आभीर संस्कृति के अनुरूप समृद्धि का प्रतीक था। सत्यभामा, सत्या और ऊषा के पिताओं द्वारा भी विभिन्न रत्न-मणि वस्तुओं के दहेज रूप में देने का उल्लेख है।[316] विवाह के पश्चात् वर के घर में आने पर गृह प्रवेश, रीति का वर्णन किया गया है। वर की बहनें वर-वधू की आरती उतारती हैं व माता पानी उतारकर पीती है और वधू को पहले घर में लेती है—

"बहुरि निज मंदिर सिधारे करि सुभद्रा आरती।
देवकी पीजियौ वारि पानी दै असीस [illegible]।"[317]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप में कहीं भी वधू के अवगुंठन का उल्लेख नहीं है। इससे प्रमाणित होता है कि घूँघट की प्रथा उस समय तक भारतीय समाज में प्रचलित नहीं हुई थी। यद्यपि वह युग संघर्ष और विदेशी आक्रमणों का था परंतु नारी को केवल दर्शनीय वस्तु नहीं माना गया था। आभीर संस्कृति के गढ़ ब्रज में तो बिल्कुल ही नहीं। इसके स्थान पर उन्हें पुरुषों से अधिक सुदृढ़ और चतुर व्यक्तित्व की स्वामिनी ही माना गया है। सामान्य नारी अभिजात्य वर्ग की नारी से कहीं अधिक कर्मठ और निडर थी।

सूरदास ने राधा और कृष्ण के गांधर्व विवाह का वर्णन भी विस्तार से सूरसागर के पूर्वार्द्ध में किया है। श्रीकृष्ण और राधा का आकर्षण परस्पर स्थापित हो चुका था और राधा किसी न किसी बहाने कृष्ण के पास जाने लगीं। एक दिन यशोदा ने उन्हें रोककर उनकी चोटी कर नई फरिया पहनाकर बताशे मेवा और तिल से राधा की गोद भर दी।[318] घर वापस आने पर माता कीरति के पूछने पर राधा ने सविस्तार घटना का वर्णन किया जिसका अभिप्रायः समझकर दम्पत्ति आनंदित हुए।[319]

विवाह की भूमिका बन जाने पर गुरु द्वारा शोधी गई शरद पूर्णिमा को गांधर्व विवाह संपन्न हुआ। इस विवाह में गांधर्व होते हुए भी ब्राह्म विवाह के सभी विधानों का पालन किया गया है। राधा को उबटन लगाकर 'खौर' से सिंगार कर चौरी (वेदी) के निकट लाकर बैठाया गया, कृष्ण भी गौर धारण करके पीताम्बर और कुंडलादि धारण करके आ गए। मुरली की ध्वनि से आमंत्रित गोपियों ने आकर मंगल गीत गाए। विभिन्न फूलों से बने मंडप में गोपियों के मंगल गान गूँजने लगे। 'गारी' गाई जाने लगी और—

"मिली मन वै सुख आसन वैसे चितवनि वारि किए सब तैसे।
ता परि पानि ग्रहण विधि कीन्हीं तब मण्डप भ्रमि भाँवरि दीन्हीं।"[320]

कामदेव के सैनिक पुष्पों के वृक्ष इस विवाह में बाराती बने और देवता बंदीजन। विवाह के पश्चात् कंकन गौचन की रीति आनंद और उल्लास के साथ संपन्न हुई। यह गांधर्व विवाह रासलीला के मध्य संपन्न होता है। सूरदास इस 'अविचल जोरी' की बलैया लेते हुए सूचना देते हैं—

"ब्रज की सब रीति भई बरसाने ब्याह।"[321]

उल्लेखनीय बात यह है कि इस विवाह में लोक जीवन का चित्रण अत्यंत सूक्ष्मता के साथ किया गया है। कन्या के घर दूल्हा देखने के लिए आई उत्सुक पुरबालाओं का वर्णन सूर ने किया है। इसी अवसर पर मालिन, तँबोलिन, चोलिन, सुनारिन, दर्जिन, जंघिन आदि दूल्हा कृष्ण को देखने आती हैं।[322] विवाह के अवसर पर राधा का विशिष्ट साज-सज्जा, रथ पर बैठे राधा-कृष्ण के सम्मुख ताल पखावज झालर बजाते हुए नटिनी का लयपूर्ण नृत्य, संयोगावस्था में राधा द्वारा कृष्ण का यश उन्हीं को दोहा, छंद, ध्रुपद में गाकर सुनाना, और प्रथम समागम के समय लज्जा आदि मनोभावों का चित्रण किया गया है।[324] इस प्रकार, विवाह संस्कार, के वर्णन में विभिन्न प्रथाओं द्वारा राजन्य, लोक संस्कृति का वैभव प्रदर्शित किया गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंत्येष्टि संस्कार

मनुष्य जीवन का अंतिम संस्कार है जो उसके जीवन के पश्चात् संपन्न किया जाता है। अधिकांश गृह्य सूत्रों में अंत्येष्टि को संस्कारों में परिगणित नहीं किया गया है। एक तो शुभ संस्कारों के साथ इस अशुभ संस्कार को जोड़ना उचित नहीं समझा गया, दूसरे यह संस्कार जीवन के समाप्त होने पर किया जाता है और इसके द्वारा जीवन का परिष्कार नहीं होता परंतु आश्वलायन, पाराशर और बौधायन गुह्य सूत्रों में इसका समावेश संस्कारों में ही किया गया है। प्राचीन काल से ही यह संस्कार मानव संस्कृति का विशिष्ट अंग बना हुआ है। मृतक के प्रति सम्मान प्रदर्शित करके जीवित मनुष्य एक उदात्त परंपरा का पालन करते हैं। समाज के कल्याण के लिए भी यह 'उत्तर क्रिया' अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में उत्तरदायित्वहीनता की प्रवृत्ति बढ़ सकती थी। प्राकृतिक वातावरण और प्रकृति संतुलन में भी गड़बड़ी तथा अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती थी। अग्नि द्वारा दग्ध कर दिए जाने से मनुष्य का शरीर राख बनकर पंचभूतों में ही मिल जाता है! शव के आधे जल जाने पर कपाल क्रिया की जाती है जिसका उद्देश्य मज्जादि द्वारा शव को पूर्णतः जलाने में सहायता प्रदान करना था। मृत्यु के पश्चात् तेरह दिन तक सूतक माना जाता है जिसमें कोई भी शुभ कार्य वर्जित है। भारतीय मान्यता के अनुसार उचित रीति से संस्कार होने पर व्यक्ति का परलोक सँवर जाता है। दशरथ मरण के प्रसंग में वशिष्ठ मुनि भरत से कहते हैं—

"राजा कौं परलोक सँवारो जुग जुग यह चलि आयौ।"[324]

सूरदास ने मृतक के तीन प्रकार के संस्कारों का वर्णन किया है—

"या देही कौर गरब न करियै स्यार काग गिध खैहें।
तीन नि में तन कृमि कै बिष्टा कै है खाक उडै है।[325]

इसी पद में संस्कार में देर होने से मृत प्राणी के भूत बन जाने के लोक-विश्वास की ओर संकेत किया गया है। 'क्रिया' शब्द का प्रयोग श्राद्ध आदि के लिए किया गया है। अन्त्येष्टि के अवसर पर सिर मुँडाने की प्रथा तथा दाह-संस्कार के अवसर पर कपाल-क्रिया का उल्लेख किया गया है—

"जिन पुत्रनहिं बहुत प्रतिपाल्यौ देवी देव मनैहैं।
लेई लै खोपरी बाँस दे सीस फोरि बिखरैहैं।"[326]

इस संस्कार का वर्णन रामकथा के प्रसंग में किया गया है। जटायु के मरने पर उसे अपना सेवक जानकर राम अपने हाथ से जलाते हैं और शबरी के मरने पर उसे तिलांजलि देते हैं—

"श्री रघुनाथ जानि जन अपनौ अपने कर करि ताहि जरायौ।"[327]
"सूरज प्रभु अति कसना भई, निज कर करि तिल अंजलि दई।"[328]

महाराज दशरथ की मृत्यु के पश्चात् उनका अंत्येष्टि संस्कार, भरत द्वारा किया जाता है। दशरथ का शव विमान में सरयू के किनारे ले जाया जाता है वहाँ चंदन की चिता पर सुगंधित द्रव्य डालकर आग लगाई जाती है, अंत में तिलांजलि दी जाती है—

"चंदन अगर सुगंध घृत, बिधि करि चिता बनायौ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चले 'विमान' संग गुरु पुरजन तापर नृप पौढ़ायौ।
भस्म अंत तिल-अंजलि दीन्हीं देव विमान चढ़ायौ।"[329]

भरत ही दाह संस्कार सिर मुँडवाकर करते हैं। दस दिन तक वे ही जल से पूर्ण घट श्मशान घाट पर टाँगते हैं, उस पर दीपक जलाकर दीपदान करते हैं—ग्यारहवें दिन ब्राह्मणों को भोजन तथा दान से संतुष्ट करते हैं—

"दिन दस लौं जल कुंभ सुचि दीपदान करवायौ।
जानि एकादस बिप्र बुलाए भोजन बहुत करायौ।
दीन्हौ दान बहुत नाना बिधि इहिं बिधि कर्म पुजायौ।"[330]

इस प्रसंग की समाप्ति चित्रकूट में होती है जहाँ भरत को 'मुंडित केस-सीस' रूप में देखकर राम किसी परिजन की मृत्यु की आशंका करते हैं तथा पिता का मरण सुनकर विह्वल होकर मूर्छित हो जाते हैं। सीता भी धरती पर गिरकर बिलखने लगती है—

"मुंडित केस सीस विह्वल दोउ उमगि कंठ लपटाने।
तात मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाई।
लोटत धरनि परी सुनि सीता समुझति नहिं समुझाई।"[331]

सारावली में सूर ने मृत्यु के पश्चात् मृतक की आत्मा की शांति के लिए पिंडदान, श्राद्ध तर्पण और ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा देने का उल्लेख किया है।[332]

जन्म से लेकर मृत्यु के बाद तक के इन संस्कारों के वर्णन द्वारा अष्टछाप साहित्य ब्रज की लोकोन्मुखी संस्कृति का पर्याय बन गया है। कवियों ने प्रत्येक संस्कार की शास्त्रीय पद्धति के आधार पर लोक प्रचलित आचार-विचारों पर अधिक बल दिया है। शास्त्रोक्त परंपराओं का निर्वाह अवश्य किया गया है परंतु उसे मुख्य प्रमुखता नहीं दी गई। उसके स्थान पर, प्रत्येक संस्कार पर, मानव मन के छलकते हुए उल्लास और आनंद का ही उन्मुक्त वर्णन किया गया है। इस तरह यह काव्य राजन्य या अभिजात्य वर्ग के स्थान पर साधारण मनुष्य के निश्छल हृदय की अभिव्यक्ति बन गया। लोक के द्वारा इसे अपनाया गया और फलस्वरूप अष्टछाप में वर्णित संस्कृति ही प्रतिनिधि संस्कृति बन गई। उल्लेखनीय बात यह है कि मुक्तक काव्य रचना की सीमाओं में बँधकर सूरदास आदि कवियों ने प्रबंध काव्य के विषय को निरूपित किया है। सूत्र रूप में जो संकेत उन्होंने दिए हैं वे तत्कालीन परिवार का अंकन करने में समर्थ हैं। यह उनकी सजगता और अभिव्यक्ति कौशल का प्रमाण है। इन संस्कारों के उल्लासमय वातावरण वर्णन द्वारा ब्रज संस्कृति की सहकारिता और सामाजिकता की ओर भी संकेत किया गया है। आधुनिक ब्रज समाज में अष्टछापी कवियों द्वारा निर्धारित मानदण्डों का ही पालन किया जा रहा है। आधुनिकता के कारण प्रायः रीति-रिवाज विलुप्त होते जा रहे हैं परंतु जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कारों में आज भी प्राचीन परिपाटी का अनुसरण किया जा रहा है।

पर्वोत्सव

विभिन्न पर्व तथा उत्सव भारतीय संस्कृति का प्राण हैं। पर्वों द्वारा सामाजिक आनंद और उल्लास की अभिव्यक्ति होती है। ब्रज की लोक-संस्कृति में भारतीय संस्कृति के पर्व-उत्सवों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तथा प्रादेशिक पर्वों का समावेश भी हुआ है। इन विविध पर्वों के लिए तिथियाँ निश्चित हैं और आज भी उन्हीं तिथियों, परंपराओं तथा रीति-रिवाजों का पालन हो रहा है। अष्टछाप साहित्य, लोक को अपने साथ लेकर चलने वाला साहित्य है इसलिए इसमें ब्रज प्रदेश के सभी पर्वों की झलक है। सामाजिक-ऐतिहासिक दृष्टि से तो पर्व अत्यंत महत्वपूर्ण हैं ही, आध्यात्मिक दृष्टि से भी इनकी महत्ता अनुपेक्षणीय है। प्रत्येक पर्व किसी न किसी धार्मिक विश्वास के साथ जुड़ा हुआ है इसलिए परंपरा के रूप में इन्हें मनाने में व्यक्ति धर्म का पालन करता हुआ पुण्य अर्जित करता है। लौकिक तथा सामाजिक जीवन की सुख-समृद्धि की अभिव्यक्ति भी पर्वों के माध्यम से होती है। सामाजिक रूप से आनंद मनाने के कारण मनुष्य समाज से जुड़ता है उसके प्रति अपने उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। अपने जीवन की एकरसता को पर्वों के माध्यम से भंग करता है और तरो-ताजा होकर फिर अपने कर्म में रत हो जाता है।

अष्टछाप साहित्य में भारतीय संस्कृति में मान्य और ब्रजप्रदेश में प्रचलित सभी पर्वों का वर्णन किया गया है। ब्रज की लोक संस्कृति में प्रचलित गणगौर, अक्षय तृतीय, साँझी आदि उत्सव भी अनिवार्य रूप से वर्णित किए गए हैं। वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण सभी कवियों ने पुष्टि संप्रदाय में प्रचलित विशिष्ट पर्वों का निरूपण भी किया है। वास्तव में इन विभिन्न वर्णनों द्वारा इस साहित्य ने पुष्टिमार्गीय भक्ति को लोक संस्कृति से जोड़ दिया है। इस गठबंधन के कारण ही वल्लभ संप्रदाय का आधार भारतीय समाज में पुष्ट हुआ। प्रत्येक ब्रजवासी को कृष्ण अपने समान ही प्रत्येक उत्सव पर्व में भागीदारी करते हुए दिखाई देते हैं इसलिए अष्टछाप का साहित्य भारतीय संस्कृति के साथ-साथ ब्रज की लोक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य है।

पुष्टिमार्ग लोक-संस्कृति में व्याप्त पर्व एवं उत्सवों पर आधारित है। पुष्टि मार्ग के अनुसार जन्माष्टमी, अन्नकूट, होरी, हिडोरा, रासलीला आदि का उत्सव श्रीकृष्ण के जीवन से संबद्ध करके मनाना ही उचित है। वल्लभाचार्य जी की इस मान्यता के कारण ही अष्टछाप साहित्य में पर्वों का महत्व बहुत है। वल्लभ संप्रदाय की अष्टयाम सेवा के माध्यम से विभिन्न कलाओं और कलाकारों का तथा ब्रज के सांस्कृतिक वैभव का पुनरुत्थान किया गया। अष्टछाप साहित्य में दोनों सेवा पद्धति के अनुसार विभिन्न पर्वों की संयोजना की गई है। इन पर्वों को ऋतु के आधार पर, अवतारी लीलाओं के आधार पर, तथा लोक प्रचलित पर्वों के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। ऋतुओं के आधार पर अष्टछाप में छह उत्सव प्रचलित है, ग्रीष्म में 'फूलमंडली', वर्षा में 'हिंडोरा', शरद में 'रास', हेमंत में 'देव प्रबोधिनी', बसंत में 'डोल' और हेमंत में 'होली'।

फूलमंडली

ग्रीष्म ऋतु में 'फूलमंडली' का आयोजन मंदिरों में किया जाता है। राधा-कृष्ण और उनकी सखियाँ इस अवसर पर, उत्साह से भरकर फूलों का शृंगार करती हैं। होलिकोत्सव से उत्पन्न श्रम की निवृत्ति हेतु श्रीकृष्ण का 'दोलाधिरोहण' किया जाता है। यही 'दोलोत्सव' है। दोलोत्सव ही ब्रज भाषा में फूल डोलोत्सव बन गया है। फूलडोल का आयोजन चैत्र मास में ही प्रतिपादित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होता है। स्कंद पुराण के 'उत्कल खंड' के बयालीसवें अध्याय में इसे मनाने की विधि दी गई है। वृंदावन में इसका आयोजन उत्कल देश के राजा इंद्रद्युम्न् ने किया था। पुष्टिमार्ग में वल्लभाचार्य ने इसे फूलमंडली नाम देकर महत्वपूर्ण पर्व बना दिया। आज भी ब्रज में स्थान-स्थान पर मंदिरों में फूल डोल सजाए जाते हैं। मंदिरों में विशेष आयोजन किए जाते हैं। इस अवसर पर फूल-पत्तियों और केले के बक्कलों से बने 'फूल बँगले' में ठाकुर जी को 'पधराया' जाता है। अष्टछाप साहित्य में सभी कवियों द्वारा इस उत्सव का विशद एवं कलात्मक वर्णन किया गया है। राधा-कृष्ण फूलों के वस्त्राभूषण धारण करते हैं—

"फूलनि की चोली, फूलनि के चोलना"[333]
"फूलनि की सारी पहिरे तन।
फूलनि की कंचुकी फूलनि की ओढ़नी अंग फूल-फूलें ललना के मन।
फूलनि के हार, फूलन का माल, फलाने के आभरन सीस, गूँथे फूल घन ॥[334]
"फूलनि के फोंदा रचि गूँथे फूलनि ही की माल बनाई।
फूलनि के कंकन बिजाइठे फूलनि की चौकी ढुरकाई।[335]
"फूल सिंगार प्यारी तन सोहत, मदन गोपाल रीझिबे काज। [336]

कृष्ण दास ने फूलों के वस्त्र धारण किए कृष्ण का चित्र भी खींचा—

"फूलनि को टिपारो बन्यौ फूलनि कौ चोलना।
फूलनि कौ हार उर फूले-फूले करत बात।
फूलनि कौ उपरना फूलनि पचरंग आन आन भाँत,
फूलनि के कुंडल छवि अति सुहात।
फूलनि की बेनी सिर फूलनि के बाजूबंद
फूलनि की कटि किंकिनी सोभा सरसात।"[336]

पुष्पाभारणों से सुसजित राधाकृष्ण पुष्प निर्मित बंगलों में विहार करते हैं। जिनमें वास्तुकला का चातुर्य प्रकट हो रहा है—

फूलनि के छाजे झरोखा अरू फलानि की सजी अटारी।[338]

कृष्णदास ने फूलमंडली की कलात्मकता का वर्णन विविध पदों में किया हैं—

"फूलनि के बने बिबिध बिछौना फूलनि बिबिध बितान तनीरी।
फूलनि मोर चकोर चातक फूलनि की कोकिला बनी री।"[339]
"राइबेली के छाजे छाजैं पंचरंग लर लटकति फुँदना री।
चाँदनी चौक फूलनि के बिछौना बने फूलनि के परदा री।
फूलनि सेज रची विधि नाना, भूषण बसन फूल की सारी।
फूलनि के सिघासन गादी फूलन के सोहत तकिया री।"[340]

हिंडोरा

वर्षा के आगमन के साथ 'हिंडोरा' का पर्व संपन्न किया जाता है। लोक जीवन में भी पेड़ों की शाखों पर हिंडोरे डालकर झूलने की प्रथा प्राचीन काल से चलती चली आ रही है। अष्टछाप के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवियों ने राधा-कृष्ण का गोप तथा गोपियों के साथ 'हिंडोरे' झूलने का उल्लेख किया है। 'हिंडोरे' का निर्माण भी कलात्मक ढंग से किया जाता है। परमानंद दास ने प्रवाल जड़ित हिंडोरे के खंभों और सजी-धजी गोपियों संग झूलते कृष्ण का चित्र खींचा है—

"रत्न जटित के खंभ दोउ लागे प्रवालहिं लाल।
कंचन को मरूपा बन्यो पटुली जु परम रसाल।
तन कुसुंभी चीर पहिनें आई सब ब्रज लाल।"[341]

चतुर्भुजदास ने भी चार खंभों वाले झूले और सोने की पटरी का उल्लेख किया है—

"डाँडी चारि सुदेस सुहाई चौकी हेम जराए।"[342]

कुंभन दास ने सावन के हरियाले वातावरण में झूलते राधा-कृष्ण का चित्र खींचा है—

"सावन मास फुही थोरी थेरी तैसिये भूमि हहियारी।
नवल किसोर बाम अंग सोभित नववृषभानु दुलारी
कंचन खंभ मनि जटिर पेटला डांडी सुभग सँवारी॥"[343]

कृष्णदास ने कुंजो तथा प्रकृति की गोद के स्थान पर, नंद के भवन में ही राजसी हिंडोरने का वर्णन किया है—

"रूप्यौ हिंडोरौ नंदगृह सुमुहूर्त्त सुभ घरी देखि,
विसवकर्मा रुचि रच्यौ हाटक रत्न बिसेखि।"[344]
"कनक के द्वै खंत्र राजत डाँडी चारि हीरा जरी।
पटुली पिरेजा साँचि मोती बिस्वकर्मा ए घरी।"[345]

हिंडोरा झूलते समय झुक-झुककर झोंरे देने का, तथा झूलते समय उल्लास को प्रगट करने वाले मधुर गान का उल्लेख किया गया है—

"झुकि झुकि झोंटा देता सुहावनी नारि हो,
रमकति झमकति धमकि रहयो रँग भारी हो।"[346]
"झूलत रँगीलों लाल संग सुकुमारी बाल,
आस पास सुधर ग्वाल झोंटा देता थोरे।
गावत गीत रसाल बाजत मृदं गताल,
सरिगम गत चाल मिलें तान तोरें।"[347]

"सावन के उनयै गरजते घन" के साथ तीज पर मल्हार गाते हुए झूलने का दृश्य आज भी ब्रज प्रदेश में देखने को मिलता है। हिंडोरे के उत्सव पर राधा-कृष्ण के शृंगार तथा गोपियों का उत्साह दर्शनीय है—

"अति सुंरग पहिरें सारी प्यारी सु·ब्रकारी भारी
गिरिधारी बाँधे पाग सिर अमोलना।
नवरंग चोलना की चटक कुंचित भृकुटी की मटक—
चंचल लोचन बिसाल चित्त के चोरना।"[348]
"जुरि जुरि आई सुहार्दमन भाई बेज सुंदरि सब—
सावन ऋतु मनभावन गिरिवरधर पिय पास।"[349]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

हिंडोरा उत्सव में भाग लेने वाली ब्रजनारियों की साज सज्जा का वर्णन सूरदास ने भी

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया है—

"पहिरे चीर सुरंग सारी चुह चुह चूनरि बहु रंगौ।
नील लहँगा लाल चोली कसि केसरि अंग सुरंगनौ।
नवसत साजि सिंगार नागरी मनिमय भूषण मंगनौ।"[350]

रास

अष्टछाप साहित्य में सर्वाधिक विशदता से रासं का वर्णन किया गया है। आध्यात्मिक, कलात्मक, साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से 'रास' का महत्व प्रतिपादित किया गया है। शरद ऋतु में मनाए जाने वाले इस पर्व में उल्लास तथा संगीत के तीनों अंग अपनी चरम सीमा पर हैं। अष्टछाप के प्रत्येक कवि ने इसका वर्णन किया है। 'रास' ब्रज का प्राचीनतम लोक नृत्य है। शूरसेन जनपद के लोक नृत्य के रूप में उसका प्रादुर्भाव हुआ इसका प्रचार आभीरों तथा यादवों में था। बाल्यकाल में श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ इस नृत्य को किया और उनके द्वारिका चले जाने पर उनकी पुत्रवधू ऊषा ने लास्य नृत्य के आधार पर इसे कलात्मक रूप प्रदान करके मथुरा से द्वारिका तक के विस्तृत भूभाग में इसे लोकप्रिय बना दिया। श्रीकृष्ण नृत्य तथा नाट्य कला के प्रेरणा स्रोत थे और इसी कारण उन्हें नृत्य गोपाल, नटनागर, नटवर आदि नामों से पुकारा जाता है। अष्टछाप में वर्णित कृष्ण नृत्य में भी निपुण हैं और 'रास' के माध्यम से गोपियों के साथ-साथ भक्तों को भी आनंद देने वाले हैं। सूरदास ने 'रास' संबंधी सर्वाधिक पदों की रचना की। उनके काव्य में रास नृत्य तथा रास नृत्य-नाट्य अर्थात् अभिनय के अंश भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। नृत्य में लीन राधा-कृष्ण तथा गोपियों के हावभाव, लय-ताल और गति के सूक्ष्म चित्र सूर ने प्रस्तुत किए हैं—

"अरुझी कुंडल लट बेसरि सों पीतपट बनमाल बीच आनि उनझे हैं दोउ जन।
प्राननि सौं प्रान नैन नैननि अटक रहैं चटकीली छवि देख लपटात स्याम घन।
होड़ा होड़ी नृत्य करैं रीझि रीझि अंक भरै ता ता थेई थेई उघटन हैं हरषि मन।
सूरदास प्रभुप्यारी, मंडली जुवति भारी, नारि कौ अंचल लै लै पोंछत हैं स्त्रम्भकन।"[351]

परमानंददास ने 'रासनृत्य' के समय विभिन्न वाद्य यंत्रों का उल्लेख किया है—

"बाजत बेतु रबावकिन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि सोरी।
ततथेई ततथेई सब्द उघटत पिय भले बिहारी। बिहरत जोरी।"[352]

गोविंद स्वामी ने भी नृत्य के समय 'तालमृदंग झाँझ अरू झालिरि"[353] कहकर विभिन्न वाद्यों का उल्लेख किया है।

चतुर्भुजदास ने नृत्य के समय हाथ की मुद्राओं की ओर संकेत किया है—

"निर्तत सुलप लेत नूपुर सच बहुविधि हस्तक भेद दिखावै।"[354].

कृष्णदास ने रासमंडल के बीच मुरली बजाते हुए कृष्ण तथा विभिन्न वाद्य यंत्रों के साथ नृत्य का उल्लेख किया है—

"नागर नागरी उरप लेत षड़जादिक स्व हिं देत
च च च च च च चपुटि बर उपंगिनी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गिडि गिडि थोंग थोंग तितिकट तालावली,
दों दों दों दुननि दुननि ताल मृदांगिनी।
धी धी धी धी धी धी थिकिट थिकटि धि धि धि धि धि धि थोंग थोंग
उरप तिरप लाग डाट अलग लंगिनी।"[355]

रास के महत्व को देखते हुए नंददास ने रासपंचाध्यायी ग्रंथ की रचना की और रासनृत्य के सुंदर चित्र खींचे—

"मृदुल मधुर टंकार ताल झंकार मिली धुनि
मधुर जन्त्र की तार भँवर गुंजार रली पुनि।
तैसिय मृदुपद पटकनि चटकनि करतारनि की,
लटकनि मटकनि झलकनि कलकुडल हारनि की।"[356]

ब्रज संस्कृति में रास को आज भी सर्वाधिक महत्व प्राप्त है। रास के माध्यम से कृष्ण का लोकरंजक व्यक्तित्व प्रतिष्ठित किया गया। अष्टछापी कवियों द्वारा, रास के रूप में ब्रज समाज में व्याप्त आनंदोल्लास की भावना का चित्रण किया गया और भक्ति तथा अपने साहित्य को लोक की पृष्ठभूमि में स्थापित किया।

देव प्रबोधिनी

दीपावली के पश्चात् एकादशी को यह उत्सव मनाया जाता है। लोक में इसे 'देव उठान एकादशी' भी कहते हैं। इस दिन सोए हुए देवों को उठाया जाता है। विवाहादि शुभ कार्यों के लग्न इस दिन से फिर से प्रारंभ हो जाते हैं जो वर्षा में तथा श्राद्धों में संपन्न नहीं होते। देवों को प्रबोधित करने के लिए उत्सव तथा रात में जागरण किया जाता है। सूरदास ने इसका वर्णन नहीं किया केवल नंद द्वारा एकादशी का व्रत रखने तथा दान आदि देने का उल्लेख किया है। उसे सामान्य एकादशी व्रत के अंतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। अन्य कवियों में से कृष्णदास और परमानंद दास को छोड़कर किसी ने भी इस उत्सव का वर्णन नहीं किया है। कृष्णदास ने प्रबोधिनी व्रत का—माहात्म्य तथा तुलसी की महिमा का वर्णन किया है।

"प्रबोधिनी ब्रज कीजै नीकौ।"
"जागे देव जगत हित कारन सबै ब्रतनि कौ टीकौ।"[357]
"जा घर तुलसी करति निवास सो घर सदा कृष्ण कौ वास।"[358]

परमानंददास की यशोदा इस अवसर पर कृष्ण-बलराम को नहलाती तथा वस्त्राभूषण धारण कराती है।[359] देवों को जगाने के लिए इक्षुदंड का मंडप और पुष्पों का चौक बनाकर उसके चारों ओर दीवा रखकर ताल परवावज आदि बजाते गाते हुए जागरण करती हैं—

"देव जगावत जसोदा रानी बहु उपहार पूजा कै करि कै।
इच्छुदंड मंडप पोहपन के चौक चहुँ दिसी दीवा धरि कै।
ताल पखावज भेरि संख धुनि गावत निसि मिलि जागरन करि कै।
धूप दीप करि भोग लगावति दै पोहपावलि अंजलि भरिकै।"[360]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डोल

डोल का उत्सव वसंत ऋतु में मनाया जाता है। संस्कृत दोलोत्सव का ही यह रूप परिवर्तन है। 'फूलमंडली' की तरह इसमें आज भी राधा-कृष्ण को 'डोल' में स्थापित किया जाता। फूल मंडली की तरह फूलों को प्राथमिकता ही नहीं दी जाती है शृंगार के लिए फूलों का प्रयोग भी किया जाता है। अष्टछाप के कवियों में से परमानंद, कृष्णदास, सूरदास ने अत्यंत उत्साह के साथ इसका वर्णन किया है। हिंडोरा की तरह यह भी प्रकृति की गोद में मनाया जाने वाला उत्सव है। परमानंद ने 'चंदन के डोल' में झूलने का तथा इस अवसर पर भी गानवाद्य के समारोह का वर्णन किया है—

"डोल चंदन को झूलत हलधर बीर। स्त्री वृंदारन में 'कालिंदी के तीर'।"[361]
"बाजत ताल मृदंग मुरज डफ रंज मुरज बहु भाँत,
अति अनुराग भरे मिलि गावत अति आनंद किलकात।
चोवा चंदन बूका बंदन उड़त गुलाल अबीर।"[362]

कृष्ण दास ने भी इस अवसर पर हर्ष और उल्लास को अभिव्यक्त किया है—

"झूलत स्याम झूलावति नारी, हँसि हँसि देति परसपर गारी।
गावति गीत दै दै करतारी। बाजत बेनु परम रुचिकारी।"[363]

कुंभनदास ने 'कंचन डोल' में ललिता आदि सखियों द्वारा राधा को झुलाने का उल्लेख किया है—

"ललिता विसाखा झुलवति ठाढ़ी कर गहि कंचन डोल।
निरखि-निरखि प्रीतम पिय प्यारी बिहँसि कहति हँसि बोल।
उड़त गुलाल कुमकुमा चंदन परसत चारू कपोल।"[364]

सूरदास ने राधा-कृष्ण के युगल रूप में 'डोल' झूलने का उल्लेख किया है—

"गोकुलनाथ बिराजत डोल।
संग लिए वृषभानु नंदिनी पहिरै नील निचोल
कंचन खचित लाल मति मोती हीरा जटिर अमोल।
झुलवहिं जूथ मिलै बेज सुंरि हरषित करति कलोल।"[365]

ऋतु के अनुसार मनाए जाने वाले होलिकोत्सव का विशद वर्णन आगे किया जाएगा। वल्लभ संप्रदाय में भिन्न अवतारों के आधार पर भी लीलोत्सव मनाए जाते हैं इनकी संख्या नौ है। संप्रदाय में इन्हें सम्मिलित करने का उद्देश्य लोक समाज में प्रचलित धार्मिक विश्वासों का आदर करना है। विष्णु के प्रसिद्ध अवतारों राम, नृसिंह और वामन के अतिरिक्त आराध्य कृष्ण तथा उनकी प्रिया राधा का जन्म और कृष्ण लीलाओं से यह उत्सव जुड़े हुए हैं।

रामनवमी

विष्णु के इस अवतार की पूजा तत्कालीन ब्रज में धूमधाम से की जा रही थी। रामनवमी चैत्र शुक्ल नवमी को श्रीराम के जन्म लेने पर मनाई जाती है। सूरदास ने जन भावनाओं का आदर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते हुए रामकथा का विशद वर्णन किया है। आचार्य वल्लभ ने ही श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की तरह रामनवमी को भी हर्षोल्लास के साथ मनाने की प्रथा प्रारंभ की और उन्हीं के शिष्यों ने आदर के साथ अपने साहित्य में इस पर्व को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया। सूरदास ने रामजन्म की सूचना इस प्रकार दी है—

"अयोध्या बाजति आजु बधाई।
भौमवार नौमी तिथि नीकी चौदह भुवन बड़ाई।"[366]

रामनवमी के पर्व पर गोविंद स्वामी ने कुछ ही पद लिखें हैं जिसमें राम के जन्म पर दशरथ समेत अयोध्या के हर्ष का वर्णन किया गया है परंतु 'रामनवमी' शब्द का प्रयोग नहीं किया, जैसे—

"वधावो श्री दसरथ राई के श्रीपति सिसु भए आए।
मरजादा पुरुषोत्तम प्रगटे बपु लहिन रघुबीर।"[368]

शेष कवियों ने इस विषय में अधिक रुचि नहीं ली।

नृसिंह जयंती

नृसिंह भी विष्णु के अवतार हैं जो भक्तों की रक्षा करने वाले तथा अन्याय और अधर्म को नष्ट करने वाले हैं। ब्रज की राजनैतिक स्थितिं को देखते हुए श्री वल्लभाचार्य ने इस अवतार की पूजा का विधान अपने संप्रदाय में किया। जनसाधारण को भी नृसिंह की कथा के माध्यम से शक्तिशाली व अन्यायी का प्रतिरोध करने की प्रेरणा दी। सूरदास ने सातवें स्कंध में नृसिंह कथा का वर्णन करते हुए उनकी भक्तवत्सलता पर बल दिया और अप्रत्यक्ष रूप से मुस्लिम अत्याचारों से त्रस्त प्रजा को आशा की किरण दिखाई—

"ऐसी को सकै करि बिनु मुरारी।
कहत प्रह्लाद के, धारि नरसिंह आए तुरंत खंभ फारी।"[369]

परमानंद दास ने भी नृसिंह जयंती के उपलक्ष में छह पद लिखे हैं और समय के अनुरूप उनके भक्त रक्षा के गुण को ही उभारा है—

"जाको तुम अंगीकार कियो।
तिन के कोटि बिघन हरि टारे अभयदान भगतन दियो।
बहु सनमान दियो प्रह्लादै सब ही निसंक जियो।
निकसे खंभ फारके नरहरि आपुन राखि लियो।"[370]

नृसिंह जयंती के समारोह का उद्देश्य लोक समाज में आत्मविश्वास की वृद्धि करना है। आज भी ब्रज में नृसिंह नृत्य लोक नृत्य के रूप में प्रचलित है।

वामन जयंती

विष्णु के अवतार 'वामन' द्वारा भी वल्लभ संप्रदाय ने लोक मानस को पुष्ट करने का प्रयास किया। आयु में बल में कम होते हुए भी वामन ने राजा बलि जैसे समर्थ राजा को भी झुकने के लिए बाध्य कर दिया। उसी के अनुकरण पर बलहीन कुचला हुआ ब्रज समाज अपने से कई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुना शक्तिशाली सुल्तानों का प्रतिरोध करने की क्षमता प्राप्त करे—यही इस पर्व को मनाने का उद्देश्य था। वास्तव में वल्लभाचार्य जी इन पर्वों के माध्यम से ब्रजसमाज को अपनी छिपी हुई शक्ति को पहचानने का संदेश देना चाहते थे। अष्टछाप काव्य में वामनावतार के वर्णन में पौराणिक कथा प्रसंग का अनुकरण किया गया है उसे अप्रत्यक्ष रूप से ही तत्कालीन समाज की स्थिति से जोड़ा गया है। सूरदास परमानंददास तथा गोविंद स्वामी ने ही इस जयंती का वर्णन करते हुए वामन के बलि के द्वार पर आने, देवकाज के लिए भादों की द्वादशी को वामनावतार होने और वामन के घनश्याम रूप का वर्णन किया है—

"द्वार ठाढ़े है द्विज बावन।
चारौ बेद पढ़त मुख आगर अति सुकंठ सुर गावन।"[371]
"कस्यप पिता अदिति माता प्रगटे बामन रूप।
भादों मास सुभग सुदी द्वादसी लीनो रूप अनूप।
सुर तैंतीसौ हरखन लागे होहिं हमारे काम।
बहु सुरूप धरि दीयो आये बलि के धाम।"[372]
"प्रगटे श्री बामन अवतार।
तन घन स्याम पीत पट राजत सोभित हैं भुज चार।
कुंडल मकराकर, कौस्तुभ मनि उर मृगु रेखा सार।"[373]

वामन-जयंती का विशद वर्णन अष्टछाप काव्य में नहीं किया गया है।

रथयात्रा

यह उत्सव आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को मनाया जाता है। सूर के समय में रथ यात्रा को उत्सव का रूप प्राप्त हो गया था। आज भी ग्रामीण महिलाएँ परंपरागत पोशाकों में मल्हार गाती हुई और गाँवों से आए लोग अलगोजा बजाते हुए ब्रज के रथोत्सव में भाग लेते हैं। ब्रज संस्कृति से मिलती-जुलती रथ यात्रा पुरी में जगन्नाथ जी की निकाली जाती है। दोनों यात्राओं में आराध्यदेव की ही नहीं हर्ष और उल्लास की भी समानता है। अष्टछाप साहित्य में कृष्ण की रथयात्रा का सुंदर वर्णन किया गया है। सूरनिर्णय में रथयात्रा से संबंधित कई पद दिए गए हैं। कृष्ण के सोने के रथ पवन वेग से भी अधिक वेगवान घोड़ों और कृष्ण के अनूठे शृंगार का वर्णन इनमें किया गया है—

"देखौ माई रथ बैठे गिरिधारी।
छतरी अनुपम हाटक जराय की, झूमक लर मुक्तारी।
गादी सुरंग ताफना सुंदर फेरबाज छवि न्यारी।
डोरी दिव्य पाट पंचरंग की कर गहे कुंज बिहारी।
लाल पाग सिर लाल छविकर जुही माल गरें भारी।
नीलमनी तन कमलनैन कौं सोहै पीत पट धारी।"[374]

परमानंद ने इसी से मिलते-जुलते भाव को अभिव्यक्त किया है[375] तथा एक अन्य पद में ग्वाल बाल द्वारा रथ खींचने का वर्णन किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"तुम देखौ माई रथ बैठे गोपाल।
हीरा मोती पाँत बनी है बिचबिच राजत लाल।
बेरख फरहरात कलसन पर, अरून हरित बहुरंग।
अति ही विचित्र रच्यौ बिस्वकर्मा सोभित चार तुरंग।
खेंचत ग्वाल बाल सब संग के करत कुलाहल भारी।
किलकत हँसत दोउरी भैया मुदित होत गिरधारी।"[376]

कुंभनदास ने राधाकृष्ण के रथ पर बैठने का वर्णन किया है, साथ ही कृष्ण, बलराम और सुभद्रा की रथ यात्रा का उल्लेख भी किया है। आज भी उत्कल प्रदेश में पुरी दोनों भाइयों के साथ सुभद्रा भी रथयात्रा में शोभायमान होती हैं—

"रथ बैठे त्रिभुवन नाथ।
बहिन सुभद्रा अरू बल भइया और सख सब लीन्हे साथ।"[377]

चतुर्भुजदास ने ब्रजरानी द्वारा रथ में बैठे गोपाल की आरती करवाई है—

"ब्रजरानी मिली करति आरती चतुर्भुजदास बलिहारी।"[378]

कृष्णदास ने रथयात्रा के प्रसंग में विभिन्न वाद्यों के साथ गायन का उल्लेख किया है तथा कृष्ण की शरणागत वत्सलता का वर्णन किया है—

"राजत रथ बैठे पिय प्यारी।
आसपास जुवती-जन गावति देति परस्पर तारी।
ताल पखावज बहुविध बाजत गावति हैं सिंघ द्वारी।"[379]
"देखौ माई रथ बैठे गोपाल।
सरन आए कों देत अभै पद बैरिनि के उर साल।
पुहुप वृष्टि नभ करत देवत कंस केसी के काल।"[380]

गोविंद दास ने रथ यात्रा वर्णन में पूर्ववर्ती कवियों का अनुसरण किया है। एक पद में श्रीकृष्ण द्वारा यशोदा से गोद में लेकर रथ में बैठने का अनुरोध कराया है—

"तू मोहि रथ ले बैठि री मैया।
इतकी ओर बैठिहै राधे, उतकी ओर बल भैया।"[375]

जन्माष्टमी

भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को यह उत्सव श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है। वल्लभ संप्रदाय का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्सव है। आज ब्रज में ही नहीं संपूर्ण देश में जन्माष्टमी अत्यंत उल्लास के साथ मनाई जाती है। अष्टछाप के प्रत्येक कवि ने इस अवतार दिवस का उल्लेख किया है, परंतु उसी रात गोकुल पहुँचा दिए जाने के कारण जन्मोत्सव अगले दिन नंद के निवास पर संपन्न करवाया है। सूरदास ने कृष्ण जन्म की तिथि, वार का स्पष्ट उल्लेख किया है—

"संवत सरस विभावन भादौं आठैं तिथि बुधवार।
कृष्ण पच्छ रोहिनी अर्द्धनिसि हर्षन जोग उदार।"[382]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास ने भी तिथि, वार आदि का उल्लेख तथा गोकुल में जन्मोत्सव का वर्णन किया है। गोविंद स्वामी ने मथुरा में, बंदीगृह में कृष्ण जन्म का इनकी अपेक्षा विस्तार से वर्णन किया है—

"भादौं की राति अँधियारी।
संख चक्र गदा पद्म बिराजत मथुरा नम लियौ बनवारी।
बोलि लिये वसुदेव देवकी बालक भयो परम रुचिकारी
अब ले जाहु थाहु गोकुल अधम कंस कौ मोहि डरू भारी।"[383]

परमानंददासादि ने जन्मोत्सव वर्णन में ब्रज के लोकाचार दूध, दही, हरदी छिड़कने का विशेष उल्लेख किया है—

"हरद दूब दधि माखन छिरकें मच्यौ भदैया फाग।"[384]

कृष्णदास आदि कवियों ने सीधे गोकुल के महोत्सव से ही जन्माष्टमी उत्सव का प्रारंभ किया है। जन्माष्टमी का पर्व ब्रज की लोक संस्कृति का विशिष्ट पर्व बन गया है और इसका श्रेय आचार्य वल्लभाचार्य की भक्ति पद्धति को है जिसने ब्रज को कृष्णमय कर दिया है।

राधाष्टमी

श्रीकृष्ण प्रिया और वृंदावन की अधिष्ठात्री देवी राधा का जन्मोत्सव भादों मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। यह उत्सव छह दिन तक मनाया जाता है। राधाष्टमी का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है परंतु विषय का विस्तार नहीं किया। सूर निर्णय में इस विषय से संबंधित एक पद उद्धृत किया गया है—

"आज वृषभान कै आनंद।
सूरदास प्रगटी भुव ऊपर भक्तनि के हित जोग।"[385]

कुंभनदास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, गोविंद स्वामी ने भी राधा के जन्मोत्सव का उल्लेख किया है। चतुर्भुजदास ने नंद, यशोदा और कृष्ण के आनंदित होने का उल्लेख भी किया है—

"राधे जू सोभा प्रगट भई—
वृंदावन गोकुल गलियनि में सुख की लता छई।"[386]
"सकल भवन की सुंदरता वृषभानु गोप कें आई री।"[387]
"पंच सबद बाजे बाजत धुनि दिसनि दिसनि हरिछाई।
नंद जसोमति सब सुख राँच्यो फूले कुँवर कन्हाई।"[388]
"बधाई बाजत रावलिमाँझ।
श्री वृषभानु गोप के प्रगटी माने फूली साँझ।"[389]

परमानंददास और कृष्णदास ने राधाष्टमी का विस्तार से वर्णन किया है। जन्मोत्सव की बधाई के साथ उनके 'पालना' झूलने के पद भी लिखे हैं। परमानंददास ने राधा के जन्म पर यशोदा की बधाई देने का उल्लेख किया है—

"राधा जू को जन्म भयो मुनि माई।
सुकुल पच्छ निसि आठै घर घर होत बधाई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अति सुकुमारी घरी सुभलच्छन कीरति कन्या जाई।"[390]

कृष्णदास ने विभिन्न वाद्ययंत्रों के बजने का उल्लेख भी जन्म के समय किया है—

"आजु बरसानें बजत बधाई।
भाग बड़े कीरति रानी के ऐसी कन्या जाई।
दुंदुभि ढोल भेरी सहनाई बाजन बाजत द्वारे।
श्री वृषभानु राइजू की पौरी धूम मची अति भोरे।"[391]

राधा के अपूर्व सौंदर्य का वर्णन सभी कवियों ने किया है—

"प्रकटी सुता वृषभानु गोप के परमभावती जी को।
जिन देखत त्रिभुवन की सोभा लागत है अति फीकी।"[392]
"जब तें राधिका भूतल प्रगटी तब तें बिधि कौ भान हन्यौ।
मेरी तौ यह सृष्टि न होई अब कछु अद्‌भुत बान बन्यौ।"[393]
"नहिं कमला नहिं सची नहीं रति सुंदर रूप समान के।"[394]
"कोटि रमापति रूप माधुरी ना आवै छवि समताई।
धन्य भाग वृष भानु गोप कौ सुवा अलौकिक पाई।"[395]

गोपाष्टमी

कार्तिक की अष्टमी को 'गोपाष्टमी' का उत्सव मनाया जाता है जो श्रीकृष्ण के प्रथम गोचारण का प्रतीक है। तत्कालीन ब्रज समाज में मुख्यतः आभीर संस्कृति में प्रथम गोचारण एक उत्सव के रूप में प्रचलित था और आभीर बालक उत्सुकता से इस दिन की प्रतीक्षा करते थे। अन्य उत्सवों की भाँति इसमें भी दान-पुण्य किया जाता था। परिजन एकत्र होकर बालक को आशीष देते तथा न्यौछावर करते थे। अष्टछाप के कवियों ने उत्साह से इस उत्सव का वर्णन किया है। सूरदास ने कृष्ण की अभिलाषा तथा नंद बाबा से आज्ञा पाने की उत्कंठा का वर्णन किया है—

"मैया हैं गाय चरावन जैंहों।
तू कहि महर नंद बाबा सौं बड़ो भयो न डरैहौं।
रैंता पैंता मना मनसुखा हलधर संगहि रैहौं।
बंसीबट तर ग्वालनि कैं संग खेलत अति सुख पैंहौं।"[396]

परमानंददास से अत्यंत उत्साह व सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देते हुए इस उत्सव का वर्णन किया है। पिता के पैर छूकर बालक कृष्ण प्रथम गोचारण के लिए जाते हैं और ब्रजवासी आशीष देकर उन्हें अपनी गायें सौंपते हैं। कृष्ण के साथियों की वेशभूषा और ब्राह्मणों के असीस देने का वर्णन भी किया गया है—

"धन्य दिवस बन चलत प्रथम ही कान्ह चरावन गाय।
अपनो पीताम्बर लकुटि मुरलिका और सिर खौरि बनाय।
प्रीति सहित अवलोकि गहत हैं मात पिता के पाँय।
ब्रजजन सब मिलि धेनुन सौंपत नैन निरखि सुख पाय।"[397]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"सोहत लाल लकुटी कर राती।
सूथन कटि चोलना अरू रंग पीताम्बर की गाती।
ऐसे गोप सबै बनि आए जो सब स्याम संगाती।
प्रथम गोपाल चले जु बच्छ लै असीस पढ़त द्विज जाती।"[398]

कृष्णदास ने प्रथम गोचारण का उल्लेख न करके गोचारण से वापस आते हुए कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन किया है। गोविंद स्वामी ने गायन-वादन के साथ यशोदा के आरती करने व राई नोन उतारने का उल्लेख किया है—

"प्रथम गोचारन चले गोपाल।
जननि जसोदा करति आरती मोतिनि भरि-भरि थाल।
मंगल सबद होत तेहि औसर मिलि गावति ब्रज बाल।
राई नोन उतारति जननी गोविंद बलि- बलि जाई।"[399]

पवित्रा

इस उत्सव का संबंध श्री वल्लभाचार्य जी से है। अपनी प्रथम ब्रज यात्रा संवत् 1550 में प्राचीन गोकुल और गोविंद घाट का अन्वेषण करने के पश्चात्, श्रावण मास में आचार्य ने भागवत का साप्ताहिक पारायण प्रारंभ किया। पारायण की समाप्ति श्रावण शुक्ल 11 को हुई उस दिन पवित्रा एकादशी थी। इसी तिथि को मध्यरात्रि में आचार्य जी को दिव्य अनुभूति हुई कि स्वयं भगवान उन्हें सांप्रदायिक दीक्षा के शुभारंभ का आदेश दे रहे हैं। सिद्धांत रहस्य में उन्होंने इस ओर संकेत किया है—

"श्रावणास्याऽमले पक्ष एकदश्यां महानिशि
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरक्षः उच्यते।
ब्रह्म संबंधकरणात सर्वेषां देह जीवयोः
सर्व दोषनिवृतिर्हि दोषाः पंचविधा स्मृताः।"[400]

उसी समय से 'पवित्रा' धारण करने का यह उत्सव संप्रदाय में अनिवार्य कर दिया गया। आधुनिक ब्रज के लोक जीवन का अंग भी यह उत्सव बन गया है। सूरसागर या सारावली में इसका उल्लेख नहीं हुआ है पर सूर निर्णय में 'पवित्रा' से संबंधित पद का उल्लेख है—

"पवित्रा पहिरन कौ दिन आयौ।
केसर कुसुम रँग रस बागौ फुँदना हार बनायौ।
पहिरि पवित्रा लिए नंदसुत सूरदास जसु गायौ।"[401]

चतुर्भुजदास और छीतस्वामी ने पवित्रा पहने कृष्ण के सौंदर्य तथा शोभा का वर्णन किया है—

"पवित्रा पहिरत गिरिवरधारी।
आरू गुंजा के हार मनोहर भामिनी हस्त सँवारी।"[402]
"पवित्रा पहिरत गिरिधरलाल।
कहा कहौं अंग-अंग को सोभा उर राजत बनमाल।"[403]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परमानंददास, कुंभनदास और गोविंद स्वामी ने पवित्रा पहनने की तिथि का उल्लेख किया है—

"सावन सुदी विबदित एकादसी होत है मंगलाचार।
करि सिंगार सिंहासन बैठछे सब बालक परिवार।"[404]

परमानंद दास ने 'पवित्रा' उत्सव पर कृष्ण के साथ-साथ श्री राधा को भी पवित्रा पहने दर्शन कराया है—

"पवित्रा उत्सव को दिन आयौ।
ब्रजबासिनि मिलि मंगल गायों स्याम निरखि सचु पायों।
नंद जसोदा हँसि हँसि भेंटति मोतिनि चौक पुरायौ।"[405]
"पवित्रा पहिरे श्री गिरिवर धारी।
वृषभानु नंदिनी सँग राजति अंग अंग छवि न्यारी।"[406]

गोविंद स्वामी ने विभिन्न वाद्य यंत्रों के बजाने का तथा कृष्ण की आरती उतारे जाने का उल्लेख किया है—

"पवित्रा श्री विट्ठल पहिरावत।
बाजत ताल पखावज बेनु सुर मुनि चहुँ दिसि तें सब धावत।
हरखि हरखि अवलोकि बदन छबि नींराजना उतारत।"[407]

कृष्णदास ने 'पवित्रा-वस्त्र' की कलात्मकता का वर्णन करते हुए आनंदमय वातावरण का तथा घरेलू व्यंजनों का उल्लेख किया है और कृष्ण के इस राजसी उत्सव को लोकाचार से संबद्ध कर दिया है—

"पहिरत पाट-पवित्रा मोहन नंदरानी पहिरावै।
जांबूनद कंचन के तारे बिच-बिच रतन जरावै।
पुआ सुहारी अरू लडुआ लै हँसि हँसि गोद भरावै।"[408]

अक्षय तृतीया

यह उत्सव ग्रीष्म ऋतु में वैशाख के शुक्लपक्ष की तृतीया को मनाया जाता है। इसे 'आखा तीज' के नाम से आज भी मनाया जा रहा है। चंदन तथा अरगना आदि सुगंधित द्रव्यों का शृंगार इस उत्सव की विशेषता है। ग्रीष्म की ऊष्णता को दूर करने के लिए शीतलता पहुँचाने वाले इन द्रव्यों का उपयोग किया जाता है। सूरदास ने अक्षय तृतीया में कृष्ण के शृंगार का वर्णन किया है—

"आजु बने नंद नंदन री नवचंदन अंग अरगजा लाये।
सरकत हार सुठार ढाजलज मनि गुंजत अलि अलकन समुदाये।
पीत बसन तन बन्यौ पिछौरा टेढ़ी पाग तोर लटकाये।
अक्षय तृतीया अक्षय लीला, अक्षय सूरदास सुख पाये।"[409]

परमानंददास ने कृष्ण के चंदन भीगे वस्त्रों को धारण करने के साथ ही साथ वहे अक्षय तृतीया के दिन चंदन पूजकर प्रिय को सुख देने का वर्णन किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"आज धरे गिरधर पिय धोती।
अतिही नीकी अरगजा भीनी, पीतांबर घन दामिनी जोती।"[410]
"अक्षय भाग सुहाग राधे को प्रीतम को दिन रतियाँ।
चंदन पूजि प्रीतम सुख दीजै रीझ रीझ यहै कहों बतियाँ।"[411]

कुंभनदास ने 'खस खाने' में राधा-कृष्ण के चंदन लेप करने का वर्णन किया है—

"ठीक दुपहिरी में खस-खाने रचे ता मधि बैठै लालबिहारी।
खासा कौ कटि वन्यौ पिछौरा चंदन भीजी कुलह सँवारी।
चंदन स्याम तन ठौर ठौर लेपन करति वृषभानु दुलारी।
बिबिध सुगंध के छुटत फुहारे कुसुमनि के बिजना ढोरत पिय प्यारी।"[412]

नंददास ने अक्षय तृतीया के दिन दंपति के 'दरपन' देखने व रीझने की बात कही है—

"अक्षय तृतीया अक्षय सुखनिधि पिय को पिया चढ़ावै चंदन।
लै दरपन निरखे जु परस्पर, रीझि रीझि रही जो बंदन।"[413]

चतुर्भुजदास तथा गोविंददास स्वामी ने संक्षेप में शीतल वस्तुओं का उल्लेख किया है। चतुर्भुजदास ने चंदन अरगजा के श्रृंगार का वर्णन किया है।[414] गोविंदस्वामी ने गुलाब जल के छिड़काव, अरगजा कपूर, फूल के हार, शीतल झारी, शीतल सामिग्री, शीतल पान और खस के परदे का वर्णन किया है। कृष्णदास ने विस्तार से अक्षय तृतीया का वर्णन किया है। उन्होंने वृंदावन के कुंजों में खसखाना रचने का उल्लेख भी किया है[416]—

"बृंदाबन कुंजनि में मध्य खसखानौ रच्यौ,
सीतल ब्यार, झुकि गाखन बहत है।
सुगंधी गुलाब जल नाना बहु भाँतिनि के,
लै लाइ धाई सखी सब छिरकत हैं।"[417]

ब्रज की लोक संस्कृति में प्रचलित कुछ पर्वों को अष्टछाप साहित्य में विशेष स्थान दिया गया है। इनके अंतर्गत व्रतचर्या, संवत्सर, गनगौर, कार्तिक स्नान, नागपंचमी, मकर संक्रांति, दानसाझी, नवरात्रा अनंत चौदस, अहोई अष्टमी आदि आते हैं। लोक में प्रचलित होने के कारण इनमें से कुछ पर्वों का उल्लेख तो किया गया है परंतु विशेष रूप से वर्णन नहीं किया गया। उत्सवों का यह वर्णन ब्रजप्रदेश की स्थानीय विशेषताओं के सांथ अष्टछाप के कवियों ने किया है।

संवत्सर

यह नववर्ष का उत्सव है जो चैत्र मास से शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारंभ होता है। सूरदास के पद "चक्र के धरनहार, गरुड़ के असवार"[417] के गायन से इस उत्सव का प्रारंभ होता है। सूरनिर्णय में यह पद दिया गया है। परमानंद दास ने भी नववर्ष का उल्लेख किया है—

"चैत्रमास संवत्सर परिवा बरस प्रबेस भयौ है आज।"[418]
"बरस प्रबेस भयो है आज, कुंजमहल में बैठे पियप्यारी लालन पहरे नौतन साज।"[419]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गणगौर

यह उत्सव भी चैत्र मास के शुक्लपक्ष की तृतीया को मनाया जाता है। ब्रज की कुँवारी कन्याओं द्वारा कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए यह उत्सव मनाया जाता है। 'गौर' की पूजा आज भी ब्रज के प्रत्येक अंचल में प्रत्येक व्रत के समापन पर की जाती है। परमानंददास और नंददास ने राधा द्वारा 'गणगौर' की पूजा करने का उल्लेख किया है—

"श्रीराधे कौन गौर तैं पूजी।"[420]
"छबीली राधे पूजा लेनी गनगौर।"[421]

कृष्णदास ने गणगौर विषयक केवल एक ही पद लिखा है जिसमें कृष्ण का राधा के साथ गणगौर तीज मनाने का उल्लेख है—

"नंदनंदन श्रीवृषभानुनंदिनी संग,
मदन रस केलि सुख सेज ठान्यौ।
अतर चंदन पान फूल माला सुखद,
सखी स्वर साधि कुछु राग गान्यौ।
कृष्ण दासिनि नाथ नवल राधा साथ,
तीज गनगौरि त्यौहार मान्यौ।"[422]

सावन तीज

श्रावण के शुक्लपक्ष में मनाया जाता है। स्त्रियों के सामूहिक रूप से झूला झूलने तथा विशेष शृंगार करने का विधान इस पर्व में है। ब्रज की लोक संस्कृति में आज भी यह पर्व इसी रूप में मनाया जाता है। सावन तीज के कई लोक गीतों में नारी हृदय की अभिलाषाओं तथा दुखों का वर्णन किया गया है। इसकी चर्चा लोक गीतों के अंतर्गत ही की जाएगी। अष्टछाप कवियों ने केवल उल्लास और हर्ष का ही वर्णन इस पर्व पर, विशेष रूप से किया है। सूरदास ने गोपियों के नंद के घर तीज झूलने तथा यशोदा के तीज खेलने, झूला झूलने और मल्हार गाने का वर्णन किया है—

"गोपी गोविंद कैं हिडोरैं झूलन आई।
रंगमहल मैं जहँ नंदरानी खेलैं तीज सुहाई।
सखी बिबिध विचित्र राग मलार मंगल गाई।"[423]

कृष्णदास ने सावन तीज पर राधा-कृष्ण के हिंडोरे झूलने का विस्तार से वर्णन किया है उन्होंने वर्षा ऋतु में कालिंदी के तट पर प्राकृतिक सुषमा के बीच झूलने का उल्लेख भी किया है—

"एदोऊ झूलत हैं मिलि सावन तीज हिंडोरे।
सघन कुंज वृंदावन के द्रुम में घन दामिनी दुति भेरे।"[424]
"सावन तीज किसोरी गोरी झूलत स्याम गोरी।
अंग उबरे राजी सुरंग चूनरी जुवतिनि मनिमानिक औरी।"[425]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"स्यामा स्याम हिंडोरे झूलैं सुखद वृंदाबन कालिंदी कूले।
तैसिय घन-घटाकारी दामिनी तैसिय भूमि हरियारी।
तैसिय कोकिल कीर कल मृदु बोले।"[426]

परमानंददास ने सावन तीज का नाम तो नहीं लिया परंतु यमुना के तट पर 'प्रथम पावस मास' में झूला झूलने का उल्लेख किया है—

"हिंडोरे झूलें गिरिवर धारी।
जमुना की तट परम मनोहर संग राधिका प्यारी।
झूलन आई सकल ब्रज मंदिर सुंदरि षट दस भूषण सारी।"[427]

साँझी

ब्रज की इस लोक कला का प्रदर्शन साँझी के उत्सव में किया जाता है। कृष्ण कथा से संबंधित विभिन्न लीलाओं को भूमि चित्र अथवा पुष्प चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। भाद्रपद की पूर्णिमा से इस उत्सव का प्रारंभ होता है। डोल, फूलमंडली, हिंडोरे आदि में साँझी के समान ही पुष्प सज्जा की जाती थी। सूरदास ने साँझी के लिए राधा के पुष्प बीनने का उल्लेख किया है—

"सखियनि संग राधिका बीनत, सुमनमि बन माँह।
साँझी पूजन कों आतुर ही ठाढ़े कदंब की छाँह।
साँझी खेलि बिदा करि सबकों दोउ पौढ़े सेउ मंझार।"[428]

मकर संक्रांति

सूर्य के उत्तरायण होने के उपलक्ष्य में यह पर्व मनाया जाता है। लोक जीवन की अभिव्यक्ति इस पर्व की विशेषता है। जनसाधारण को सुलभ खिचड़ी और तिल के लड्डुओं का भोग ही इस दिन लगाया जाता है। इसे भोगी संक्रांति भी कहा जाता है। परमानंददास ने ब्रज संस्कृति में मनाए जाने वाले इस पर्व का उल्लेख किया है। उन्होंने इस अवसर पर अभ्यंग-स्नान तथा नए वस्त्र पहनने का वर्णन भी किया है—

"भोगी के दिन अभ्यंग स्नान करि साज सिंगार स्याम सुभग तन।
पुनि फूलितिलवा भोग धरिकै परम सुंदर आरोगावत सब निज जन।"[429]

परमानंददास ने मकर संक्रांति के राजभोग और संध्याभोग के पदों की रचना की है जिनका गायन वल्लभ संप्रदायी मंदिरों में आज भी हो रहा है—

"भयो नंदराय के घर खिच।
सब गोकुल के लखन कै संग बैठे हैं आए बिच।
परोसि थार धरै लै आगे सद माखन घी खिच।"[430]

इन पर्वों के अतिरिक्त ब्रज की लोक संस्कृति में व्रतचर्या (मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी), कार्तिक स्नान (पूर्णिमा), नागपंचमी, अहोई आठें, करवा चौथ, भैया दूज आदि पर्व भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनका स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप काव्य में नहीं हुआ है। लोकमानस की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh, Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभिव्यक्ति के संदर्भ में व्रत उपवास आदि पर विवेचन किया जाएगा।

भारतीय संस्कृति में वर्णों के अनुसार चार वर्ण प्रमुख हैं। यह पर्व देश के सभी भागों में एक समान उत्साह और उल्लास के साथ मनाए जाते हैं। इनमें रक्षाबंधन ब्राह्मणों का, दशहरा क्षत्रियों का, दीपमालिका वैश्यों का और होली शूद्रों के पर्व के रूप में वर्णित किया गया है। अष्टछाप काव्य में इस तरह का वर्णभेद नहीं मिलता है वहाँ सभी पर्वों का विशद चित्रण किया गया है। वैसे भी अष्टछापी कवि भक्ति के क्षेत्र में वर्ण व्यवस्था को अस्वीकार करते हैं। इसलिए उनके काव्य में पर्व वर्ण विशेष से बँधे न रहकर यौवन और उल्लास के प्रतीक बन गए हैं—विशेष रूप से होली। होली ही ऐसा पर्व है जो प्रत्येक व्यवधान को दूर करके एक समान समाज की संरचना करता है। होली खेलते हुए कृष्ण ब्रज की लोक संस्कृति में घुलमिल कर 'होरी के खिलार' बन गए हैं। छलकते हुए आनंद और हर्ष से भरे यह पर्व ब्रजवासियों के परंपरा प्रेम और उनकी स्थानीय विशेषताओं को उजागर करते हैं। दीपमालिका, अन्नकूट और होली जैसे पर्व जीवंत व लोक संस्कृति के प्रतीक हैं।

राखी या रक्षा बंधन

प्राचीन काल में ब्राह्मण अन्य वर्णों के राखी बाँधकर स्वस्ति वचन कहता था। आज भी इस परंपरा का पालन हो रहा है परंतु मूल रूप में अंतर आ चुका है। लोक संस्कृति में आज बहनें भाई को मंगल कामना से युक्त राखी बाँधती हैं। अष्टछाप साहित्य में परंपरागत रूप का चित्रण किया गया है। इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता है आज जिस रूप में रक्षाबंधन मनाया जा रहा है उसका प्रचलन मध्यकाल के पश्चात हुआ होगा। रक्षाबंधन को 'रच्छा' तथा 'सलूनों' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। अष्टछाप के कवियों ने दोनों नामों का प्रयोग किया है। सूरदास ने केवल राखी बाँधने का, दानादि देने का उल्लेख किया है, किसके द्वारा कब बाँधी गई इस विषय में कुछ नहीं कहा—

"राखी बँधावत मगन भए।
दछिना बहुत द्विजनि को दीनीं। गोप हँकार लए।"[431]

परमानंददास ने राखी त्यौहार को श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को मनाने का उल्लेख किया है और इसे 'सलूनो' नाम से भी बुलाया है—यशोदा के द्वारा राखी बाँधने का[432], विप्रों के आशीर्वाद का तथा नंद द्वारा दक्षिणा देने का उल्लेख भी किया है।

"राखी बाँधत मात जसोदा मोतिन चौकं पुरायो।
विप्रन दे असीस सबनि के प्रनव करि मंत्र पढ़ायो।
नंद देत दछिना गाइन संग मंगल चार बधायो।
स्रावन सुदी पून्यो कै सुने दिन रोरी तिलक बनायो।
याही भाँति सलूनों तुम कौं गिरिधर नित नित आवौं।"[433]

यशोदा के अतिरिक्त गर्गाचार्य द्वारा भी तिलक करवाने तथा राखी बाँधने का[434] उल्लेख परमानंददास ने किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"राखी बंधन नंद कराई।
गर्गादिक सब रिषिनि बुलाये लालहिं तिलक बनाई।"[435]

कृष्णदास ने भी यशोदा द्वारा राखी बाँधने का, विप्रों को दक्षिणा देने का तथा कृष्ण की आरती करने का वर्णन किया है—

"राखी बाँधति हैं नंदरानी।
लाल फूँदना कर पर राजत लालन के मन मानी।
दच्छिना देता द्विजनि कों ठाढ़ी धन खरचति न अघानी।
लै आरती वारति हरि मुख पर अंग अंग बिकसानी।"[436]

एक अन्य पद में "कुंदन सहित जराव जगमगे बाँधन प्रीतम प्यारी" द्वारा राखी बंधन का उल्लेख हुआ है।[437]

चतुर्भुजदास ने राखी के दिन तिलक करने का उल्लेख किया है।[438] कुंभनदास ने रत्नजटित राखी का उल्लेख किया है—

"रत्न जटित की सुभग बनी अति मोहन के मनमानी।"[439]

गोविंद स्वामी ने यशोदा और द्विजवरों से रच्छा या राखी बाँधने का उल्लेख किया जो पाट डोरी की होने पर भी कलात्मक व अनूठी है—

"रच्छा बाँधति जसोदा मैया।
सिंघ पौरि ठाढ़ मनमोहन द्विजवर इच्छा बाँधति आति।
परम विचित्र पाट-डोरी राखि रहे करपानि।"[440]

नंददास ने गर्गाचार्य से रत्न और माणिक से जड़ी राखी बँधवाने का उल्लेख किया है—

"राखी बाँधत गर्ग स्याम कर।
हरा रत्न बिचबिच मानिक बिच बिच मुक्तिन भरन।"[441]

राखी के उत्सव पर आभूषण और मुकामाल न्यौछावर करके आरती उतारने का वर्णन सभी कवियों ने किया है। गोविंद स्वामी ने 'इंडुरी पिंडुरी' वारन का उल्लेख किया है—

"नारिकेल अंबर आभूषण वारति मुकता माल के।"[442]
"इंडुरी पिंडुरी वारति मुख पर जननी लेति बलैया।
आरती उतारत मुख पर गोविंद बलि बलि भैया।"[443]

बिप्रजन और गुरुजनों द्वारा आशीर्वाद[444] दिए जाने के पश्चात् राखी बाँधने वाले ब्राह्मणों को अथाह दान-दक्षिणा देने का उल्लेख सभी कवियों ने किया है।[445]

त्यौहारों के विशेष अवसरों पर मंदिरों में ठाकुर जी का विशेष शृंगार किया जाता है। अष्टछाप के कवियों ने इस शृंगार का विधिवत वर्णन किया है। परमानंद कृष्णदास तथा कुंभनदास ने 'बिबिध सिंगार', 'बिबिध आभूषण', और 'बिबिध पट' का उल्लेख किया है[445] तो गोविंद स्वामी ने उनके कनक सिंघासन पर आसीन होने का भी।[446]

कुंभनदास ने शृंगार के साथ-साथ सुगंधित द्रव्यों के लेप का वर्णन भी किया है—

"मृगमद, अगर, घनसार अरगजा लावति मदन गोपाल कें।"[447]

हर्ष और उल्लास की सूचना देने वाले विभिन्न प्रकार के वाद्यों को बजाने का वर्णन भी किया गया है—

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"लाल क्रिन्नरी ढोल दमामा भेरिमृदंग बजावो।"[448]
"लाल मृदंग संख धुनि बाजत सुनत ब्रज बधू छैया।"[449]

उत्सव की समाप्ति विभिन्न प्रकार के व्यंजनों के भोग से होती है। यह सभी व्यंजन ब्रज संस्कृति के खान-पान के महत्व की ओर संकेत करते हैं।

"मधु मेवा पकवान मिठाई तथा सकल भोग"[450] का संकेत मात्र किया गया है, अलग-अलग व्यंजनों का उल्लेख नहीं किया गया परंतु अन्नकूट उत्सव में वर्णित व्यंजन ही इन विशिष्ट अवसरों पर भोग के लिए तैयार किए जाते होंगे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

दशहरा

विजयदशमी नाम से विख्यात यह पर्व मुख्यतः क्षत्रियों का माना जाता है यद्यपि प्रत्येक वर्ण अपने-अपने ढंग से इसे मनाता है। अन्य त्यौहारों और पर्वों की तरह इस त्यौहार की तिथि तथा ऋतु का उल्लेख परमानंददास ने स्पष्ट रूप से किया है।

"सरद रितु सुभ जानि अनूपम दसमी को दिन आयौ री।"[451]
"आस्विन मास सुभग दसमी सुक्ल घरी सुखकंद।"[452]

गोविंद स्वामी ने इसे 'दसेरा' तथा विजयादसमी[453] कहा है चतुर्भुज ने दसहरा तथा विजयादशसमी[454], कुंभनदास ने 'दशहरा' तथा 'विजय दसमी'[455] तथा कृष्णदास ने 'दसहरा'[456] कहा है। सूरदास, छीत स्वामी तथा नंददास इस ओर से उदासीन ही रहे हैं।

दशहरे के दिन नए वस्त्राभूषण तथा 'जवारे' धारण करना महत्वपूर्ण विधान है। 'जवारे' जौ के अंकुर होते हैं जो शारदीय नवरात्र के प्रथम दिवस कलश की स्थापना कर, बोए जाते हैं। परमानंददास, कृष्णदास तथा गोविंदस्वामी ने 'जवारे' धारण किए कृष्ण की शोभा का वर्णन किया है। परमानंददास ने विस्तार से कृष्ण के शृंगार का वर्णन किया है। यशोदा सर्वप्रथम कृष्ण को सुगंधित जल से स्नान कराती हैं तत्पश्चात् नए वस्त्राभूषण पहनती हैं—

"केसर सौंधी घोरि जननी प्रथम लाल अन्हवायो री।
नाना विधि के भूखन अभरन अंग सिंगार बनायो री।
पाग पिछौरा और उबटना बागो विचित्र धरायो री।"[457]
"सीस पाग रही बाम भाग पर लटकि 'जवारे' छाजत।
करि पट छुद्र घंटिका मनिभय.... ।"[458]

कृष्णदास ने भी 'जवारे' धारण किए कृष्ण सौंदर्य को वर्णित किया है—

"पाग पर पहिरें, लाल, जवारे।
तनसुख झगा लाल सूथन रंग दसमी सुदिन सवारे।
जलज माल सुठार बनी द्युति सुंदरता मन मोहै।
स्रवननि कुंडल किरन अधिक छवि नासा-मोती सो है।"[459]

गोविंद स्वामी ने [illegible] आसन पर [illegible] जवारे धारण किए कृष्ण का वर्णन किया है। एक अन्य पद में नए वस्त्राभूषण के साथ जवारे (अंकुर) धारण कराने का उल्लेख किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"आजु दसेरा परम मंगल दिन धरें जवारें गोवर्धनधारी।
कुंकुम तिलक सुभाल बिराजै, अच्छत सोभा लागत भारी।
अस्व उत्तुंग चढ़े नंद नंदन चले कुदावत महासुखकारी।"[460]
"सूथन लाल अरू सेतु चोलना कुल्है जरकसी अतिमन भावत।
अच्छत है जब अंकुर सिर पर निरखि निरखि मन मोद बढ़ावत।"[461]

कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने 'जवारो' का उल्लेख न करके कृष्ण के शृंगार का ही वर्णन किया है—

"ग्वाल बाल सब बनि बनि आए, नंदनंदन तायें सोभित नीकौ।
लाल पाग झीनी रंगभीनी ता मधिलसत मृगमद को टीकौ।"[462]
"स्वेतजरी सिर पाग, लटकि रही कलंगी तामें लाल।
तनसुख कौ बागै। अति राजत, कुंडल झलक रसाल।
अंग अंग छवि कहाँ लौ बरनों नाहिन बरन्यो जात।"[463]

दशहरे के अवसर पर 'शमीवृक्ष' के पूजन का विधान भी है। ब्रज की इस सर्वमान्य लोकप्रथा का उल्लेख कुंभनदास तथा कृष्णदास ने किया है—

"कुंभनदास प्रभु विट्ठलेस पूजत वृच्छ सभी को।"[464]
"समीवृच्छ पूजिकैं घर, आए।
कुंजलता प्रफुलित जु भई हैं पंखिनि सब्द सुहाए।"[465]

कृष्णदास ने दशहरे के अवसर पर श्रीराम का 'पाई पूजने' की प्रथा का उल्लेख भी किया है। ब्रज संस्कृति में दशहरे का पूजन ही 'श्रीरामचंद जी के पाइता' पूजने से होता है। क्षत्रियों का त्यौहार होने के कारण शस्त्र तथा अश्वादि की पूजा भी की जाती है। कृष्णदास ने केवल 'पाँइ' पूजने का उल्लेख किया है—

"पाँइ तौ पूजिलै रघुनाथ।"[466]

ब्रजबालाओं के मंगल गीतों तथा आरती और न्यौछावर का उल्लेख भी सब कवियों ने किया है—

"ब्रजनन मंगल गायो री।"[467]
"मंगल गावति सब ब्रजनारी।"[468]
"ब्रजभामिनी मिलि मंगल गावति।"[469]
"घर-घर तें सब वालि चली हैं मंगल चार बधाए।"[470]
"मात जसौदा करति आरती बारति हार देति मोती कौ।"[471]

परमानंददास और गोविंद स्वामी ने वात्सल्य पूरित यशोदा के मनभावे भोग लगाने के अनुरोध का वर्णन किया है—

"कहति जसोदा सुनो मेरे लाला जोई जोई भावै तिहारे मन,
सोई सोई भोजन करो दोऊ भैया गावत गुन तहँ परमानंद।"[472]
"बहोत भोग बीरा धरि आगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दीपावली

दीपावली का मुख्य त्यौहार कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होता है परंतु धनतेरस से लेकर भाई दूज तक निरंतर कोई न कोई उत्सव मनाया जाता है। लोक में आजकल धनतेरस, नरकचौदस, बड़ी दिवाली, गोवर्द्धन तथा भैयादूज के रूप में दीपावली का त्यौहार मनाया जाता है। वास्तव में शरद के प्रारंभ से ही लोक पर्वों की बाढ़-सी आ जाती है। ब्रज प्रदेश में धनतेरस से पहले भी शरद पूर्णिमा, करवा चौथ, अहोई अष्टमी आदि त्यौहार मनाए जाते हैं। यह सब दीपावली की पृष्ठभूमि में लोकमानस द्वारा आज भी संपन्न किए जा रहे हैं।

दीपावली मनाने के पीछे कई पौराणिक मान्यताएँ हैं। जैसे वामन का राजा बलि का दर्प दमन करना, तथा हर्षित देवों का दीपावली मनाना, अमावस को समुद्र गर्भ से महालक्ष्मी का उत्पन्न होना, गोवर्द्धन पूजा के पश्चात् ब्रजवासियों को मानसी गंगा में दीपावली मनाना, मधुसूदन द्वारा मधु दैत्य का वध, चौदस के दिन श्रीकृष्ण द्वारा जरासंध के वध के पश्चात् ब्रज के गाँव-गाँव में हर्ष के दीपक प्रज्जवलित होना, आदि। आधुनिक युग में दीपावली का अस्तित्व त्रेता युग से माना जाता है जब चौदह वर्ष के बाद श्रीराम अयोध्या वापस लौटे। आदि कवि वाल्मीकि ने अयोध्यावासियों के हर्ष-उल्लास-आनंद का वर्णन किया परंतु दीपक जलाकर अंधकार को दूर करती हुई नारियों का नहीं। कृष्ण चरित्र के मूलाधार श्रीमद्‌भागवत पुराण में भी गोवर्धन पूजा का उल्लेख है पर उस अवसर पर की जाने वाली दिवाली का नहीं। अतः दीपावली शास्त्र के स्थान पर लोक का पर्व अधिक है। सामान्यतः दीपावली समुद्रगर्भ से उत्पन्न महालक्ष्मी का पर्व है। भक्ति के संस्थापक आचार्य अपने साथ दक्षिण से भक्ति ही नहीं लाए दीप प्रज्जवलित करने की परंपरा भी साथ लेकर आए। अपने ज्ञान दीप से लोकमानस में व्याप्त अंधकार को भी दूर करने का प्रयास किया। महाप्रभु वल्लभाचार्य का योगदान इस क्षेत्र में सर्वोपरि है। उन्होंने अपने पुष्टिमार्ग को लोकधर्म से संयुक्त करके ब्रज के कलाकारों, साहित्यकारों को नवजीवन प्रदान किया। भारतीय संस्कृति में दीपावली को सर्वाधिक साहित्यिक मान्यता की संपुष्टि पुष्टिमार्गीय अष्टछाप के कवियों से ही प्राप्त हुई है। ब्रज की लोक संस्कृति की पूरी-पूरी झलक अष्टछाप के साहित्य में मिल जाती है। छीत स्वामी को छोड़कर बाकी सभी कवियों ने दीपावली का विशद वर्णन किया है। दीवाली की तैयारी दशहरा से ही प्रारंभ हो जाती हैं। दशहरे से दीपावली तक अनेकों छोटे-छोटे पर्व उल्लास और उत्साह को कम नहीं होने देते। धनतेरस से दीपावली पर्व का शुभारंभ होता है।

त्रयोदशी को धनतेरस का त्यौहार मनाया जाता है। परमानंद और कुंभनदास ने ही इस त्यौहार का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया है। परमानंददास ने यशोदा के धन धोने का उल्लेख तिथि के उल्लेख के बिना किया है और गर्गाचार्य को बुलाकर पूजन के पश्चात् दीप सँजोने का उल्लेख किया है। लोक जीवन में भी दीपक जलाने का प्रारंभ धनलक्ष्मी की पूजा के साथ होता है—इसी पद में परमानंद के पुष्टिमार्गीय होने का प्रमाण मिलता है।

"धनतेरस रानी धन धोवति।
गर्ग बुलाई बेद बिधि पूजति ठौर ठौर घृत दीप सँजोवति।
परमानंद त्यौहार मनावति सब ब्रज पुष्टि मारग धन बोवति।"[474]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुंभनदास ने तिथि का स्पष्ट उल्लेख किया है। यशोदा के श्रृंगार तथा धन धोने का उल्लेख परमानंद दास के समान किया है—

"आज माई धन धोवति नंद रानी।
कातिक बादि तेरस दिन उत्तम गावति मंगल बानी।
नवसज साजि सिंगार अनूपम करति मनमानी।"[475]

अन्य कवियों ने इस उत्सव के वर्णन में रुचि नहीं ली है। धनतेरस का उत्सव भी अन्य उत्सवों की भाँति धूप-दीप-नैवेद्य आदि के साथ ही संपन्न होता है।

धनतेरस के अगले दिन नरका चौदस या रूपचतुर्दशी का त्यौहार मनाया जाता है। दीपमालिका से एक दिन पहले होने के कारण इसे छोटी दीवाली भी कहा जाता है। परमानंददास ने रूपचतुर्दशी के अवसर पर कृष्ण के दूध से स्नान कराए जाने के बाद नव-वस्त्राभूषण धारण करने का उल्लेख किया है। उनके सौंदर्य को देख कर ब्रजजन मन भाई को असीस देते हैं—

"दूध सो सनान करो मन मोहन छोटी दिवारी काल मनाये।
करो सिंगार लाल तन बागो कुल्हे जरकसी सीस धराये।
वह छवि देखि देखि ब्रज जन ही देत असीस आपनी मन भाये।"[476]

कृष्ण दास ने भी कृष्ण के स्नान-उबटन तथा नए वस्त्र धारण करने का उल्लेख किया है। यशोदा द्वारा भोजन के अनुरोध व निहाल होने के अतिरिक्त ब्रजनारियों के 'तृण-तोड़ने' (नजर न लगने के लिए) की लोक रीति की ओर संकेत किया है—

"आजु अन्हाउ मेरे कुँवर कन्हैया मानी काल्हि दिवारी।
अति सुंगध कौ कियौ उबटनौ नये बसन सुखकारी।
कछुक खाउ पकवान मिठाई हौ तुम ऊपर वारी।
करि सिंगार चले खेलन तृन तोरति ब्रजनारी।"[477]

दीपमालिका

कार्तिक की अमावस्या को यह त्यौहार मनाया जाता है। ब्रज का ही नहीं संपूर्ण राष्ट्र का यह प्रधान पर्व है। अष्टछाप काव्य में अपने पूरे सौंदर्य के साथ यह वर्णित किया गया है। दीपमालिका के अतिरिक्त दिवारी पर्याय शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। सूरदास ने दिवाली पर द्वारिकाधीश श्रीनाथ जी के राजसी श्रृंगार का वर्णन किया है। उन्होंने दीपों की पंक्ति द्वारा अंधकार के विनाश की उद्घोषणा भी की। इस अवसर पर गोकुल के हर्ष तथा प्रवाल और गजमोतियों से चौक पूरने का उल्लेख भी किया है—

"आजू दीपति दिव्य दीपमालिका।
मनहुँ कोटि रवि चंद्र कोटि छवि विमलभई निशि कालका
गोकुल सकल बिचित्र मनि मंडित सोभित झाक झब झलिका।
गज मोतिनि के चौक पुराए बिच बिच लाल प्रवालिका।"[478]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

परमानंददास के काव्य में लोक-संस्कृति का स्वर अधिक मुखर है। पर्व-त्यौहार के वर्णन

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में लोक-प्रचलित सभी रीतियों का उल्लेख उन्होंने किया है। सूरदास जैसे साहित्यिक ने राजसी और अलंकृत वर्णन के स्थान में सरल भांषा में लोकजीवन को अपने काव्य में उतारा है। दिवारी पूजन से पहले यशोदा कृष्ण को स्नान तथा चंदन 'मारमिला' (आभूषण) धारण करने का आदेश देती हैं फिर नंद की आज्ञा से 'दीप बारने' को कहती हैं—

"आज कुहुकी रात माधौ दीपमालिका मंगल चार।
कहत 'जसोदा सुनो मनमोहन चंदन लेप' सरीर को।
पान फूल चोवा दिव्य अम्बर 'मारमिला' लै कंठ धरो।"[479]
"आज अमावस दीपमालिका बड़ी परबिनि है गोपाल।
कहत जसोदा सुनो मनमोहन अपने तात की आग्या लेहु।
बारौं दीपक बहुत लाड़िले करौ उजियारो आपुन गेहु।"[480]

दीपदान और दीपों की पंक्ति से अंधकार के भागने का उल्लेख भी किया गया है—

"दीपदान दीपावलि देखौ हीरा दीप खर्भ नग राज।
जगमग जोति रही चहूँ दिसिते निखिड तिमिर अति भाजत।"[481]

दीपक प्रदीप्त करने के पश्चात् कृष्ण ब्रज की युवतियों के साथ मंगल गीत गाते तथा चौक भी पूरते हैं। सूरदास ने ब्रज बालिकाओं के साथ कंचन की थाली में जलते दीपक लिए राधा का वर्णन भी किया है जो कृष्ण तथा सभी बालाओं के साथ गाती और हँसती हैं—

"आजु दिवारी मंलचार।
ब्रज जुवति जन मंगन गावति चौक पुरावत नंदकुमार।"[482]
"पहर सिंगार बनी राधा जू संग लिए ब्रज बालिका।
झलमल दीप सजाय सौंज भर कर लै कंच थालिका।
गावति हँसति गवाय हँसवाति पटकि पटकि करतालिका।"[483]

सूरदास ने जहाँ नंदभवन की दिव्य दीपावली की दीप्ति को अपने पद में मुखरित किया है वहीं कुंभनदास ने लोक मंगल से युक्त दीपावली के दीपों की सुघड़ता का तथा उनमें कपूर आदि से सुगंधित घृत और नंदराई द्वारा बनाई बत्तियों के जलने का उल्लेख किया है—

"देखौ इन दीपन की सुघराई।
मानो उडु गन राजत नभ मंडल तम निसि।
नंदराई अगनित बाती रचि अद्‌भुत जुगति बनाई।
बिबिध सुगंध कपूर आदि मिलि घृत पूरन ताई।"[484]

कृष्णदास से दीपावली के अवसर पर दीपक सजाने, प्रत्येक घर में थापा रखने और ब्रज नारियों के मधुर स्वर में गाने का उल्लेख किया है—

"ब्रज घर घर सब दीपक साजत मंगलाचार बधाई बाजत।
घर घर थापा वंदन माला देखि देखि मन मोद बढ़ावत।
घर घर ते जुवती जन आवती गावति गीत परम सुख पावत।"[485]

दीपमालिका वर्णन में अष्टछापी कवियों के माध्यम से ब्रजमानस के हर्ष और उमंग की अभिव्यक्ति होती है। प्रज्ज्वलित दीपों का यह पर्व आधुनिक नागर संस्कृति में मोमबत्ती-पर्व में भले ही परिवर्तित हो गया हो, ब्रज के लोक जीवन में आज भी अपने परंपरागत रूप में ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनाया जा रहा है।

दीपावली पूजन का महत्वपूर्ण अंग हटरी का प्रसंग हैं। सभी अष्टछाप कवियों ने इसका वर्णन किया है। आज भी 'हटरी' दीपावली के पूजन के समय रखी जाती हैं और इन्हें खील-बताशे या मेवा पकवानों से भरा जाता है। 'हटरी' शब्द 'हाट' से बना है। ब्रज में दीवाली के अवसर पर 'हटरीनुमा' दुकानों वाली पैंठ या बाजार लगता है जिसमें विभिन्न प्रकार के धन-धान्य, मेवा-पकवान मिलते थे। उन्हीं दुकानों के रूप में 'हटरी' प्रत्येक घर में पूजन में समृद्धि का प्रतीक मान ली गई है। अष्टछाप काव्य में लोक प्रचलित इस धारणा का सम्यक् निरूपण किया गया है। कृष्ण हटरी में बैठकर वस्तुएँ बेचते थे और ब्रजबालाएँ हास-परिहास के बीच उन्हें खरीदती थीं। सूरदास के कृष्ण बलराम के साथ हटरी में बैठते हैं ओर मेवा-पकवान गोपियों को बुला-बुलाकर देते हैं। स्त्रियाँ उन्हें आशीष देती हैं तथा यशोदा से वस्त्रादि प्राप्त करती हैं—

"सुरभी कान्ह जगाय खारि कहि बल मोहन बैठे हैं हटरी।
पिस्ता दाख बादाम छुहारा खुरमा खाझा गुझा गठरी।
टेरि-टेरि जब देत सबनि कौ लै लै नाम बुलाइ निकट री।
देति असीस सकल ब्रज भामिनि जसुमति देति हरषि बहु पट री।"[486]

परमानंददास ने हटरी से संबंधित दो पद लिखे और दोनों में ब्रज सुंदरियों के सौदा लेने का उल्लेख है। यशोदा द्वारा एक पद में गोपियों के हास-परिहास को सीमा में बाँधने का उल्लेख है—

"गिरधर हटरी भली बनाई।
भाँति अनेक पकवान बनाए अति औतन व्यंजन सुखदाई।
सावधान है सौदा कीजै जो दीजै तो तौल पुराई।
राखी चित चंचल नहिं कीजे ग्वालिन हँसि मुसकाई।
कैसी बोली बोलति ग्वालिन कहत जसोदा माई।
'परमानंद' हँसी नंद घरनी सबै बान मैं पाई।"[487]
"देखि देखि सोभा ब्रज सुन्दरि सौदा लेन लाल सों आई।
मृदु मुसकाय कहत मोहन सों घटि जिन तोलौ लाल।
परमानंद प्रभु नंद नंदन विहँसे और सब ब्रज की बाल।"[488]

चतुर्भुज दास ने भी ब्रज बालाओं के मेवा और यशोदा तथा रोहिणी के डला भरकर पकवान लाने की बात कही है, जिसे हटरी में बैठे कृष्ण नाम ले-लेकर बुलाकर वितरित करते हैं—

"ब्रज की बात सबै ले आई भांति भांति कर मेवा तोलत।
बहुत भांति पकवान डाल भरि लै लै रोहिनी जसुमति डोलति।
भीर भई कहुँ ठौर न पावत लै लै नाम सबन कौ बोलत।
देत मिठाई स्याम अपने कर पित रीति कों जानि अमोलत।"[489]

गोविन्द स्वामी की हटरी राजसी वैभव का प्रतीक है। जिसमें रत्न जड़े हैं और मोतियों की झालरें लटक रही हैं। पकवानों के साथ कृष्ण मखमल भी बेचते हैं। उनकी पैठ के आकर्षण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से ब्रज बालाएँ वहाँ आ जाती हैं—

"गोविंद प्रभु पिय चित चोरयो तब बँधी है प्रेम की पाल।"[490]

नंददास ने सखाओं तथा नंद के साथ हटरी में बैठने का वर्णन किया है—

"हटरी में बैठे श्री ब्रजनाथ।
अपने संग सखा लीने बाँटत मेवा हाथ।"[491]
"दीपदान दै हटरी बैठे नंद बाबा के साथ।"[492]

परमानदंदास ने दीपमालिका पर कृष्ण के, बलराम के साथ द्यूत खेलने का उल्लेख घर में ही किया है। आज भी दीवाली पूजन के पश्चात् परंपरा के तौर पर 'द्यूत' खेला जाता है—

"खेलौ द्यूत सहित संकर्षन मोहन मूरति नंद कुमार।"[493]

अष्टछाप के कवियों ने दिवाली का वर्णन अपने समय के अनुरूप किया है। आधुनिक समाज में आज कुछ भिन्नता दिखाई देती है, जैसे दीपावली शब्द का प्रयोग किसी कवि ने नहीं किया जो आज इस त्यौहार के लिए प्रचलित है। दीपक की पंक्ति के अर्थ में दीपावली का प्रयोग किया है। लक्ष्मी-गणेश के पूजन का उल्लेख भी नहीं किया गया है। संभवतः अष्टछाप साहित्य के पश्चात् लोक परंपरा में इसका समावेश हुआ होगा। इन बातों को छोडकर अष्टछाप के दिवाली वर्णन में अपने लोक संस्कृति कीप्रत्येक विशेषता उद्घाटित की गई है। आज भी उन सभी परंपराओं तथा रीति-रिवाजों का प्रचलन ब्रज समाज में हो रहा है।

गोवर्द्धन पूजा; अन्नकूट

ब्रज की संस्कृति भोग में और राग में है। ब्रज में पर्व का अर्थ ही उमंग पूर्ण गायन और दिव्य भोजन है। दीवाली में भी विविध प्रकार के पकवान बनाए जाने की परंपरा है। अन्नकूट या गोवर्धन पूजा एक प्रकार से दीपावली का समापन समारोह है। इसी दिन कृष्ण ने आकाश के देवता इंद्र के स्थान पर धरती के देवता गोवर्धन की पूजा का विधान किया। गोवर्द्धन ही वह देव है जो ब्रजवासियों को संरक्षण देता है जिसकी द्रुम-लताओं, फल-फूल को खाकर ब्रज के पशु-पक्षी और मानव जीवन-यापन करते हैं। गोवर्द्धन का दूसरा अर्थ गो-संवर्धन भी है। कृष्ण अपनी जाति के क्रांतिद्रष्टा महापुरुष है इसलिए पशुधन का संवर्धन करने वाले गोवर्द्धन की पूजा को आरम्भ करवाते हैं। कृष्ण लोकक्रांति के समर्थक हैं—इसलिए लोक देवता की प्रतिष्ठा करवाते हैं। गोपाल कृष्ण ने इन्हीं कारणों से वेद विहित इंद्रपूजा को रोककर अपनी जातीय परंपरा में गोवर्द्धन पूजा स्थापित की। वैदिक संस्कृति और कृष्ण की लोक संस्कृति के बीच हुए संघर्ष का परिणाम गोवर्द्धन पूजा थी। अष्टछाप साहित्य में गोवर्द्धन पूजा और अन्नकूट दोनों ही पक्षों का चित्रण मनोयोग से किया गया है।

सूरदास ने दीपमालिका त्यौहार से पहले अन्नकूट का उल्लेख किया है और कुलदेव इंद्र से कृष्ण को अमर करने की प्रार्थना यशोदा से करवाई है—

"दीपमालिका के दिन पाँचेक गोपिनि कहौ बुलाई।"
"अन्नकूट बिधि करत लोग सब नेम सहित करि करि पकवान।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

महरि बिनै कर जोरि इंद्र से सूर अमर करि दीजै कान्ह।"[494]

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रीकृष्ण इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन पर्वत की पूजा पर बल देते हैं तब पर्वत के समान अन्नकूट रचकर उनका भोग लगाया जाता है—

"अन्नकूट जैसो गोवर्धन अरू पकवान धरे चहुँ कोदन।"[495]

परमानंददास ने कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण करने के पश्चात् गोवर्धन की पूजा का उल्लेख किया है तथा इंद्र के दर्प दलन के अवसर पर विस्तार से अन्नकूट का वर्णन किया है। साथ ही गोवर्धन की परिक्रमा का उल्लेख भी किया है—

"ब्रज पुर बाजत सबही केघर ढोल दमामा भेरी।
स्त्री गोवर्धन की पूजा कों कहत सबन को टेरी।
अन्नकूट बहुभाँति बनावत रचि पकवानन की ढेरी।
नंदराय पूजत पर्वत को लाऔ गायन घेरी।"[496]
"परिकम्मा सब कोउ चले दाहिन दियो गिरिराय।"[497]

परमानंददास ने विस्तार से विविध व्यंजनों का उल्लेख तथा किसी व्यंजन को तैयार करने की विधि का वर्णन भी किया है। गोवर्द्धन की पूजा के बाद यशोदा द्वारा आरती करने और भूषण मँगाकर दान का उल्लेख भी किया है।

"चार भांति की दार मूंग ठाढे जु बनाये,
घृत नवनीत मूंग मिले भात सनाये।
पापर करूए तेल में तरे संवार बनाय,
उरद बड़ी तिल बड़ी ठवराधरे भुंजवाय।"[498]
"गोवर्धन पूजि के घर आये।
जननी जसोदा करति आरती, मोतिन चौक पुराये"[499]

कुंभनदास ने गोवर्धन की पूजा में प्रदक्षिणा का उल्लेख किया है—

"षटरस बिंजन भोग सकल लै धरत बिबिध उपहार।
पूजा करि पाँइ लागि प्रदछिना देता दि वावत ग्वार।"[500]

चतुर्भुजदास ने धूप-दीप-नैवेद्य से गोवर्द्धन पूजा कराई है तथा परिक्रमा का उल्लेख भी किया है—

"बहुरि पाखरि अरगना चर्चित धूप दीप बहुभोग भरावत।
दै बीरा आरती करत हैं ब्रज भामिनीं मिलि मंगल गावत।"[501]
"परिकम्मा करि बार सब मुख निरखत हैं सब ही समाजु।"[502]

कृष्णदास ने इंद्र के कोप तथा कृष्ण द्वारा ब्रज की रक्षा प्रसंग का अधिक वर्णन किया है। और बार-बार इस अवसर पर कृष्ण की वंदना की है।[503] उन्होंने गोवर्द्धन पूजा की रीति का भी वर्णन किया है—

"गोवर्द्धन पर्वत पूजिये।
चंदन मृगमद कपूर कुंकुम दही मधु सींजिये।
बसन बिचित्र कुसमु बनमाला मोतिनि चित्रित कीजिये।
नव नव पाक साक दधि ओदन पायस घृत मधु मींजिये।[504]
मटुकी भरि पकवान मिठाई ग्वालिनि को बहु दीजिये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोविन्द स्वामी अन्नकूट शब्द का प्रयोग "पाक साक बिंजन बहु अन्नकूट कीनो" कहकर दिया है तथा विविध साजों को बजाते हुए गोवर्धन पूजा के लिए आते कृष्ण उनके सखाओं व गोप बालाओं का चित्रण किया है—

"गोवर्धन पूजा को आए सकल ग्वाल किये संग।
बाजत ताल मृदंग संख धुनि बेला बीन उपंग।
नव सत साजि सिंगार चलीं ब्रज तरूनी अपने रंग।"[505]

अष्टछापी कवियों के वर्णन के अनुसार ही आज भी घर-घर में अन्नकूट उत्सव मनाया जाता है। जिसमें सर्वाधिक व्यंजन तैयार किये जाते हैं। ब्रज के मंदिरों में विशेष रूप से बल्लभ संप्रदायी मंदिरों में "आज भी दूध-धर", अन्नसकरन, सिकरन, चार प्रकार की कढ़ी, आठ प्रकार के साग, पाँच तरह के भात और तलातली भगवान को भोग में तैयार किये जाते हैं। दूध धर के अंतर्गत बादाम-पिस्ता-मखाने की बरफी, कूटू की सामग्री और दूध से बने अनेक व्यंजन, चार भांति की दार, मूंग ठाडे जु बनाये। व्यंजन परसे जाते हैं। अन्नसकरन में घेवर-बाबर, गुड़ के खोआ, के भुजात व पूरी, पाँच तरह के मगद, शुरचन बड़ा, चंद्रकला मैसूर पात्र आदि बनाया जाता है! सिकसरन में चार तरह के भात—मेवा भात, खट्टा भात, सकरन भात, बुंचभात और सादा चावल तथा तलातली में पापड़, बेसन के सेब, चना दाल और कचौड़ी बनती है। इस दिन 'सकरन' का विशेष महत्व है। यह चावल का बना पर्वताकार ढेर होता है। जिसके चारों कोनों पर विष्णु के चिह्न शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा बीच में तुलसी केसर से सजा चंद्रमा होता है। यह संभवतः कृष्ण के चंद्रवंशी होने का प्रतीक है। 'सकरन' के एक ओर जल से भरी तथा दूसरी ओर घी की हाँडी रखी जाती है। भोग लगाने के बाद यह 'प्रसाद' वितरित किया जाता है।

सामान्य लोक जीवन में भी कृष्ण की इस विजय को विधि-विधान से मनाया जाता है। गोर्वधनधारी कृष्ण की गोबर की प्रतिमा बनाई जाती है। गोवर्धन के नीचे गाय, बैल आदि भी गोबर से बनाए जाते हैं। वस्त्र धारण किए गोप-ग्वाले और गोपियाँ भी कृष्ण के आस-पास बनाई जाती हैं। इसे खीलों से तथा रोली से सजाया जाता है। आरती, धूप-दीप के बाद परिक्रमा सभी परिवारजनों के साथ की जाती है तथा इसके बाद भोग लगाया जाता है। गोबर व खील दोनों ही समृद्धि के प्रतीक के रूप में पूजे जाते हैं।

गोवर्द्धन पूजा का एक उद्देश्य यदि लोकदेवता 'गोवर्द्धन' की स्थापना है तो दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य गो-संवर्धन आभीर संस्कृति का मूलाधार यह गोधन ही है। कृष्ण से पूर्व भी आभीर अपने पशुधन के साथ यत्र-तत्र विचरण करते थे। कृष्ण ने सर्वप्रथम ब्रजमंडल को उनके स्थायी निवास के रूप में परिवर्तित किया। विभिन्न वनों से संकुलित यह प्रदेश गो-संवर्धन का मुख्य स्रोत बना। उन्होंने पशुपालन के साथ-साथ कृषि को भी अपनी जाति में प्रचलित करवाया। कृषि और आभीर जाति पूरी तरह से गोधन पर निर्भर थी इसलिए कृष्ण ने गो-धन को महत्व देते हुए गोवर्द्धन पूजा को प्रचलित किया। अन्नकूट के उत्सव द्वारा अपनी जाति की समृद्धि को अभिव्यक्त किया तो 'गो-क्रीडन' तथा 'गो पूजन' द्वारा इस समृद्धि के मूल स्रोत की अभ्यर्थना की।

ब्रज में दीपावली के अगले दिन गायों को खेल खिलाने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। अष्टछाप में विस्तार से इसका वर्णन किया गया है। खिरकों में बंधी गायों को उनके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बछड़े दिखा-दिखाकर बुलाया जाता है। बछड़ों को देखकर गायें उनकी ओर भागती हैं तो ग्वाल बाल बछड़े ले-लेकर इधर-उधर ले जाते हैं। गायें भी उनके पीछे भागती हैं। इस भाग-दौड़ में गले की घंटियाँ, पैरों की पैंजनियां मधुर शब्द करती हैं तो सोने-चाँदी से मढ़े सींग वाली गायें अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि करती हैं। कृष्ण और ब्रज की गायें एक-दूसरे के प्राण थे। इन दोनों की क्रीड़ाओं को आधार बनाकर अष्टछापी कवियों ने अनेक सुंदर पदों की रचना की हैं। सूरदास ने इस विषय का अधिक वर्णन किया है। परंतु बाकी कवियों ने लोक में प्रचलित इस प्राचीन खेल को काव्य में प्रतिबिंबित किया है। कुंभनदास ने ब्रज की इस लोकरीति का सूक्ष्म चित्रण किया है। भक्त कवि होते हुए भी वे कृषक थे, खेती करते थे और स्वयं गाय, बैल, बछड़े पालते थे, इसलिए उनके वर्णन में सहजता और स्वाभाविकता की विशेषताएँ स्वतः सम्मिलित हो गई हैं। कृष्ण की प्रिय गाय 'धौरी' का उल्लेख उन्होंने किया है जो कृष्ण के साथ खेलने के लिए अधीर हो रही है—

"खेलन को धौरी अनकुलानी।
डाढ़ मेलि आतुर सनमुख है नंदनंदन की सुनि मृदु बानी।"[506]

गो-क्रीडन के अवसर पर गायों के अनूठे शृंगार का वर्णन भी उनके काव्य में हुआ है—

"कियो है सिंगार धेनु सगरिनि कौ, सकै कौन बखान।
पाँइ पैजनी, मेहदी राजतिं पीठि पुरट के पान।"[507]

कुंभनदास के सूक्ष्म पर्यवेक्षण का प्रमाण निम्न पद से मिलता है जहाँ कृष्ण द्वारा आवाज गायों को बुलाने और गायों के पूँछ उठाकर कान सीधे करके दौड़ने का उल्लेख किया गया है—

"गाय खिलावत श्याम सुआन।
कूकैं ग्वाल टेर दे 'ही' 'ही' बाजत बैणु बिषान।
फिर फिर फिरत पूँछ उन्नत है कर-कर सीधे कान।
पाँच पैंजनी मेंहदी राजत पीठ पुरुट के पान।"[508]

परमानंददास ने गोवर्धन का पूजन तथा उन्हें खिलाने का उत्सव दिवाली के दूसरे दिन मनाने का स्पष्ट उल्लेख किया है—

"आज कुहू की राति माधौ दीपमालिका मंगलचार।
गो क्रीड़न पुनि काल्हि होयगी नंदादिक देखेंगे आय।"[509]

गायों के प्रति कृष्ण के स्नेह का वर्णन भी परमानंददास ने किया है। यशोदा जब कृष्ण से दीपावली के अवसर पर दीपक जला कर प्रकाश करने को कहती हैं तो कृष्ण उनसे अगले दिन के लिए तुरंत 'धौरी' का सिंगार करने का अनुरोध करते हैं—

"कहत जसौदा सुनो मन मोहन अपने तात की आग्या लेहु
बारौ दीपक बहुत लाड़िलो करो उजियारो आपुन गेह।
हँसि ब्रजनाथ कहत माता सों धौरी धेनु सिंगारों जाय।
परमानंद दास को ठाकुर जाहि भावत है निसिदिन गाय।"[510]

कृष्ण स्वयं खरिक में जाकर गायों का शृंगार करते हैं और करवाते हैं—

"धौरी धेनु सिंगारी मोहन गाडरे वृषभ सिंगार।[511]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"सोने स्रींग घंटा अरू कंठुला पीठ पत्र समुदाई।"[512]
"स्याम खरिक के द्वार करावत गायन को सिंगार।
नाना भांति सींग मंडति किए ग्रीवा मेले हार।
घंटा कंठ मोतिन की पटियाँ पीठिन की आधै औधार।
किंकिन नूपुर चरन बिराजत बाजत चलत सुठार।"[513]

गायों के खेल में पूँछ उठाकर दौड़ने, कृष्ण द्वारा उन्हें पकड़ने और गुड़-भेली खिलाने का वर्णन भी परमानंददास ने सहजता से किया है—

"सब गायन में धूमर खेली।
स्रवन पूंछ उचकाई सूधि है ग्वाल भजावत फिरत अकेली।
पकरि लई गोपाल आप ही कंठ बनावत सेली।
चुम्बत मुख आटो भरि भेटी टेर कहन लाओ गुर भेली।"[514]

खेल ही खेल में गाय के बिफरने और कृष्ण बलराम द्वारा उन्हें सँभालने का वर्णन भी निम्न पद में किया गया है—

"बिफर गईं धूमर, अरू कारी।
कूकत ग्वाल बछरा ग्वालिन बदन पिछोरी डारी।
तब तो हूँक हूँक सन्मुख है भली भाँति सँभारी।
पूँछ उठाय कर दौरी दोऊ कूँवर भरे अँकवारी।"[515]

गाय खिलाने के प्रसंग में गोपों के अद्‌भुत वेष का वर्णन भी किया गया है—

"गायन के अनुकरन ते गोरन धारे सीस,
गोप वेष अद्‌भुत बन्यौ जै जै गोकुल ईस।"[516]

परमानंददास के इस विवरण में ब्रज संस्कृति में गोधन के प्रति प्रेम का प्रगटन हुआ है। आज भी पशु क्रीड़ाओं का स्वरूप इसी प्रकार है। ग्राम्य संस्कृति के इस प्रमुख मनोरंजन का जितना सुंदर चित्रण परमानंददास ने किया है उतना अन्य किसी अष्टछाप के कवि ने नहीं किया।

चतुर्भुजदास ने धूमरि, धौंरी और कृष्ण के प्रगाढ़ स्नेह का चित्रण किया है। गायों की भीड़ देखकर यशोदा कृष्ण को गाय खिलाने से मना कर देती हैं उधर कृष्ण के बिना धूमरि भी खेल छोड़ देती है। समाचार पाकर कृष्ण जाकर मुरली बजाते हैं और फिर खेल प्रारंभ होता है—

"गाई खिलायो चाहत गिरिधर बरजत हैं नंद राई।
धेनु बहुत ठाढ़ी हैं मोहन देखि हूक क्यों न धाई।
बिना लाला खेलति नहीं धूमरि जब ऐसी सुधि पाई।
हूँकि हूँकि कैं ऊपर धावति लै लकुटी और हराई।
हँसि मुसिकाई स्याम घन सुंदर मुरली मधुर सुनाई।"[517]

नंददास, गोबिंदस्वामी और छीत स्वामी ने इस विषय का विशद विवेचन नहीं किया है। वस्तुतः परमानंददास और कुंभनदास ने ही लोक संस्कृति के इस पक्ष का निरूपण किया है। गायों का श्रृंगार व उनका पूजन आज भी ब्रजमंडल में हो रहा है। अन्नकूट उत्सव से जुड़ी इस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परंपरा में ब्रज का लोकजीवन अभिव्यंजित हो रहा है।

ब्रजलोक में दीपावली के तीसरे दिन भाई-दूज का पर्व मनाया जाता है और उसी के साथ दीपमालिका के पर्वों की शृंखला समाप्त होती है। आज भी लोकजीवन में इसे उल्लास के साथ संपन्न किया जा रहा है। परंतु अष्टछापी कवियों ने इस ओर अधिक रुचि प्रदर्शित नहीं की है। केवल गोविन्द स्वामी ने ही इसका वर्णन किया है। इस वर्णन में सुभद्रा द्वारा तिलक व आरती करने, भोजन तथा असीस देने का उल्लेख किया गया है—

"भाई दूज जानिके जसुमति बहनि सुभद्रा न्योति बुलावती।
उबटि अन्हवाये दोऊ भैया बागो अतलस लाल लगावति।
कीनो तिलक सुभद्रा तबहीं नीरांजन करि हरख बढ़ावति।
मुख पखार बीरी हरि ले के बहिनि पानि दे पुनि सिरू नावत।
देत असीस सदा चिरजियो गोबिंद बिमल बिमल जसु गावत।"[518]

परमानंददास और कुंभनदास ने दीपमालिका के इस उत्सव को 'महामहोच्छव' कहकर लोकजीवन में इसकी गहरी पैठ का प्रमाण दिया है।[519]

होली

फाल्गुन पूर्णिमा को मनाया जाने वाला होली का त्यौहार वर्ण-व्यवस्था के क्रम में कभी शूद्रों का रहा होगा पर आज भारतीय संस्कृति की उन्मुक्तता और उल्लास को प्रगट करने वाला यह एकमात्र त्यौहार है। सभी वर्ण होली के रंग के साथ समानता के स्तर पर आ जाते हैं। ब्रज संस्कृति में होली सर्वाधिक महत्वपूर्ण त्यौहार है। महाप्रभु वल्लाभचार्य ने भी इसे शूद्रों के पर्व के रूप में नहीं माना। उन्होंने इस पर्व के माध्यम से यौवन और उल्लास की भावनाओं को व्यक्त किया है। कृष्ण के संयोग से तो यह अभिव्यक्ति और भी लुभावनी हो गई है। वैष्णव संप्रदायों—विशेष पर्व रूप से वल्लभ संप्रदाय में यह देवत्व को लोक तत्व से जोड़ने वाला पर्व है। वल्लभ द्वारा संस्थापित अष्टछाप के कवियों ने इस विषय का विस्तृत कलापूर्ण अमरचित्र साहित्य व राष्ट्र को सांस्कृति धरोहर के रूप में सौंपा है। ब्रज भूमि और ब्रजरंग का सर्वाधिक महत्व इस संप्रदाय ने प्रतिष्ठापित किया। पढ़े-लिखे और अनपढ़ सभी 'बिरज की रज' होने के लिए यहाँ अधीर हैं। ब्रज की रज देव दुर्लभ है और 'फाग प्रतिपदा' को ब्रज में यही खेली जाती है। वल्लभ संप्रदाय में होली के उत्सव को इसी ब्रज रज को, ध्यान में रखकर एक नया नाम दिया गया—"धूलिवन्दन" का त्यौहार। प्रत्येक ब्रजवासी इस दिन ब्रजरज को अपने मस्तक पर धारण करके स्वयं को कृतार्थ अनुभव करता है।

होली वास्तव में लोकोत्सव है और उसके इस रूप परिवर्तन का श्रेय कवियों तथा आचार्य वल्लभ को है। कृष्ण को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्होंने उन्हें लोकजीवन के त्यौहारों से जोड़ा। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए श्री वल्लभाचार्य ने होली द्वारा सामाजिक एकता का प्रसार किया। एक साथ मिलकर विपत्ति का सामना करने की भावना ब्रजवासियों में कूट-कूटकर भर दी। इंद्र जैसी दैवी आपदा और मुस्लिम शासन की लौकिक विपत्ति का सामना एक होकर करने को प्रेरणा दी। विधर्मी आततायों से अपनी रक्षा करने के लिए समाज के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपेक्षित वर्ग स्त्रियों को भी संगठित करने का प्रयास किया। ब्रज की गोपियाँ इसी कारण अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं। ब्रज की, बरसाने की लट्ठमार होली की प्रथा के पीछे यही उद्देश्य प्रमुख रूप से उभर कर सामने आता है।

होली के इस राजनैतिक तथा सांस्कृतिक महत्व को देखते हुए अष्टछाप साहित्य में रास के पश्चात् इसी को सर्वाधिक विस्तार विस्तार से वर्णित किया गया है। सूरदास ने इस विषय पर सत्तर, कुंभनदास ने पंद्रह, नंददास ने बीस, गोविंद स्वामी तथा चतुर्भुजदास ने तीस-तीस, कृष्णदास ने बसंत के अडतीस और होरी के तेइस, कृष्ण के सत्तावन, परमानंददास ने पाँच और छीत स्वामी ने केवल दो पद लिखे हैं।

सामान्यतः लोक में होली का त्यौहार दो दिन का होता है। एक होली जलाने के दिन, दूसरा रंग खेलने के दिन। सूरदास ने पंद्रह दिन तक होली का त्यौहार मनाए जाने की बात लिखी है—और दशम स्कंध के दो पदों 2814 तथा 2915 में प्रत्येक तिथि को लेकर उसका वर्णन किया है। सारावली में सूर ने तथा गोविन्द स्वामी ने भी होली को पंद्रह तिथियों के खेल का वर्णन किया है।[520]

होली का उत्सव प्राचीन मदन महोत्सव का ही रूपांतर है। इसलिए इस त्यौहार का प्रारंभ बसंतपंचमी से किया है। सूरदास ने बारह पदों में तथा कृष्णदास ने चौंतीस पदों में बसंत के राग-रंग का वर्णन किया है।[521] कृष्णदास ने इसे 'मदन महोच्छा' कहकर हेमंत के समाप्त होने का उल्लेख भी किया है।[522] परमानंददास ने बसंतपंचमी की तिथि तथा वार का उल्लेख किया है—

"आज मदन महोच्छव राधा।
मदन गोपाल बसंत खेलत हैं नागर रूप अगाधा।
तिथि बुधवार पंचमी मंगल रितु कुसुमाकर आई।"[523]

कुंभनदास ने इसे "श्री पंचर्मा" कहा है और इसी दिन से गुलाल के उड़ने तथा लाल के गाने का वर्णन किया है।

"सुभ दिन सुभ घरी सुभ मुहूरत साधि राधिका,
श्री पंचमी सदा ही बधाई ब्रजराज लाल।
बृन्दाबन कुंज-धाम, बिहरत प्रिया संग स्याम,
उड़त गुलाल लाल गावत बेनु रसाल।"[524]

इन्होंने वसंत का सौंदर्य भी दो पदों में वर्णित किया है।[525]

गोविन्द स्वामी ने "पंचमी आजु मनोज महोच्छव मगंल चित्र बनावहीं"[526] कहकर होली के त्यौहार का प्रारंभ किया है। परंतु उसका विधिवत विस्तार से वर्णन नहीं किया।

चतुर्भुजदास ने भी हेमंत के वीतने पर वसंत का वर्णन किया है—

"आगम भयौ नई रितु कौ सखि जब ते बिदा भयौ हेमंत
बिरहिन के भागन तें सजीन आवत है चल्यौ री वसंत।"[527]

छीत स्वामी ने वसंत को ऋतुराज कहकर सरस ऋतु में 'फाग' खेलने का वर्णन किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

रसिक फागु खेलें नवल नागरी सों, सरस बर रितुराज की रितु आई।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूरसागर में होली का प्रारंभ गोपियों के मन में 'फाग' खेलने की इच्छा से हुआ है। वे कृष्ण से कहती हैं—

"फागु चरित-रस-साध हमारैं खेलहिं मिलि संग तुम्हारैं।
सुनि सुनि सूर स्याम मुसुकाने रितु बसंत आयौ हरषाने।"[529]

गोविन्द स्वामी ने वसंतागमन पर, कृष्ण की वेणु सुनकर राधा को मान त्याग शृंगार करने का परामर्श देने वाली सखियों का उल्लेख किया है—

"चलो री बृंदाबन बसंत आयौ स्रवन सुनो ही आली मोहन बेनु बजायो।
मान तजि बेगि मिलो राधा रानी, करि सिंगार कबहुँ, फिरि बोलो मधुरी बानी।"[530]

कृष्ण दास ने इस अवसर पर कृष्ण की पूजा करने का वर्णन किया है—

"आनु बसंत सबै मिलि सजनी पूजौ मोहन मीत।
हरद दूब दधि अच्छित लेके गावौं सौभग गीत।"[531]

सूरदास के कृष्ण नंद से होली खेलने की आज्ञा व पिचकारियाँ माँगते हैं। नंदराय कनक की पिचकारियों के साथ सहस्त्रों मन केसर, कस्तूरी और अरगजा भी मँगा देते हैं—

"नंदराई सौं बिनती कीनी, स्याम एक की आज्ञा लीन्ही।
अगनित तब पिचकारि गढ़ाई कंचनरतन बाबा से पाई।
मन सहसक केसरि लै दीन्हो असित सुगंध अरगजा लीन्हों।"[532]

होली खेलने के लिए सभी ब्रज बालाएँ बन-ठन कर शृंगार करके आती हैं प्रायः सभी कवियों ने इस शृंगार का वर्णन किया है—

"सारी पहिरि सुरंग कसि कंचुकि काजर दै दै नैन।
बनि बनि निकसि निकसि भई ठाढ़ी सुनि माधौ के बैन।"[533]

परमानंददास ने होली के एक लंबे पर में "अहो रस मोरन मोरे लाल स्याम लाल तमाल होरी खेल हो"[534] में राधाकृष्ण की रूप-सज्जा का विशद वर्णन किया है।

कुंभनदास की गोपियाँ बन-ठन कर "पहिरे तन कनक नवचीर पट आभरन" धारण कर होली खेलने आती हैं। तो नंददास की गोपियाँ भी ठाठ बनाकर खेलने आती हैं—

"उततें सब सुंदरि जुरि आई करि करि अपनौ ठाट।"[535]

कृष्णदास की राधा भी होली खेलने को तैयार है। उनका शृंगार दर्शनीय है—

"सोभित राधा बाल सब जुवतिनि में सोहनी
कटि पर, लहँगा लाल मोहन मन को मोहनी।
झूमक सारी पीत अँगियां स्याम जु राजहीं।
सोभित केसर आपायल झुनझुन बाजहीं।"[536]
"आई बनि बनि सब ब्रज की बाम, श्री राधा ललितादिक सुनाम।"[537]

नंददास ने गोपियों और राधा के बनाव-सिंगार के साथ कृष्ण के शृंगार का वर्णन भी किया है—

"आज बनि ठनि फाग खेलन निकस्यौ नंद दुलारौ।
फब्यौ है लाल ललित भाल लाल के जटित लाल रिपारौ।
बड़रे बंक बिसाल नयन छवि भर इतरारौ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बन्यौ है मंजुल मोर मुकुट चालत देखत परछाहीं।"[538]

कृष्णदास ने भी नंद-भवन में कृष्ण-राधा के शृंगार का वर्णन किया है। इन विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन ब्रज समाज में होली के अवसर पर संपूर्ण शृंगार किया जाता था। ब्रज की आभूषणप्रियता तथा परिधानकला का परिचय भी इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है—

"पगिया सेत कुलही धरी अरू मोतिनि के अवतंस।
तापर तीन चंद्रिका सोभित कलगि लटकि ढिग अंस।
बागौ खुल्यौ सेत साँवल अंग सो हैं ओढ़नी पीत।
मानों घन सों जोन्ह लपेटी बीजुरी अति सभीत।
सूथन सेत पाइँनि पहिरें सोभा बढ़ी अपार।
मानौं अंबर तें उतरत अवनी अमृत की द्वै धार।
उनके अतरौटा अतलस कौ लाल अंग दरसाई।
कनक कदली जुगल पर मानो अरून बदरिया आई।
कुच जुग पर अँगिया हरियारी तापर मोतिनि हार।
कमलपत्र ओढ़ें सिव दोऊ सिर पर गंग द्वै धार।
तन तन सुख सारी तनु पहिरें राजति राधा गोरी।"[539]

चतुर्भुजदास ने ब्रजबालाओं के शृंगार का विस्तृत वर्णन किया है। गाती हुई गोपियाँ नंद के भवन में विभिन्न आभूषण धारण करके आती हैं, राधा भी कंकण, किंकणि, गज मोतिन के हार, नकबे सरि ताटंक कंठसिरि, चौकी, खुटिला आदि आभूषण पहने नव-वस्त्र-सिंदूर धारण किए, केसरि आड़ कुंकुम तथा काजर लगाकर पान चबाती हुई होली खेलने आती हैं—

"गावत चली बसंत बधावन नंदराई दरवार
पर जेहरि केहरि कटि किंकिनी रह्यौ बिथाकिसुनिमार
घोष-घोष प्रति गलिन-गलिन प्रति बिछुवन के झंकार
तिनमें परम सुदेस श्री राधा अति सुकुमारि।"[540]

"बने चीर आभरन सब तन विविध सिंगार।
कंकन अरू किंकनी उर गज मोतिन हार।
नकबेसरि ताटंक कंठसिरी अनभांति।
चौकी बनी जराइ दूरि, करत रबि कांति।"[541]

चतुर्भुजदास ने "मणि खचित चौक" में होली खेलने का उल्लेख किया है—

"खेल मच्यौ मनि खचित चौक में कहत कहा कहि आवै।"[542]

'फाग' खेलकर होली पर, अपने आन्तरिक उल्लास का प्रगटन किया जाता है। अष्टछापी काव्य में एक ओर राधा, गोपियों तथा दूसरी ओर कृष्ण और गोप बालों के संग 'फाग' का खेल प्रारंभ किया जाता है—

"इत श्री राधा उत श्री गिरिधर इत गोपी उत ग्वाल।
खेलत फागु रसिक ब्रज बनिता सुंदर स्याम तमाल।"[528]

कृष्णदास ने भी इन दो दलों का उल्लेख किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"खेलत फाग नंद कौ नंदन सखा संग सब लीन्हे।
अबीर गुलाल अरगजा चोवा केसर के रंग भीन्हे।
उत आई वृषभानु नंदिनी सखी संग सब लाई।
मानो हो सकल कृष्ण पक्षे एक प्रगटहि होति दिखाई।"[544]

फाग खेलने के लिए नई मटकियों में रंग घोला जाता है—कंचन के कलश भरे जाते हैं—

"नव मटुकि भरि केसरि घोरी अबीर गुलाल उड़ावो।"[545]
"कनक कलस केसरि भरे।" [546]
कंचन माँट भराई कै सौंधे भरयौ कमौर।"[547]

होली के अवसर पर अबीर-चंदन और रोली का छिड़काव स्वाभाविक है। सूरदास, कृष्णदास ने इसका उल्लेख कई पदों में किया है जैसे—

"एक गुलाल अबीर लिए कर इक चंदन इक रोरी।
उपरा उपरि छिरकि रस रस भरि कुल की परिमित फोरी।"[548]
"चोवा चंदन छिरकहीं अबीर गुलाल सुरंग।
खेलत खेलत गहगह्यौ लाडिली लालन संग।"[549]
"लेहु अबीर अरगजा माई और गुलाल भरि झोरी,
मुठीनि भरि भरि डारति मोहन पर इक साँवरी इक गोरी।"[550]

सूरदास ने ब्रज के लोकगीत 'झूमक' गाने का उल्लेख भी किया है—

"झुंडिनि मिलि गावति चलीं झूमक नंददुवार।
आजु परब हंसि खैलियै मिलि संग नंदकुमार।"[551]

सूरदास ने होली पर फाग के कई सरस प्रसंग चित्रित किए हैं। ऐसे ही एक प्रसंग में घर में छिपे हुए कृष्ण को गोपियां नंद की शपथ देकर बाहर निकालती हैं और फिर रंग में सराबोर कर देती हैं। आज भी लोक में ऐसे कई व्यक्ति मिल जाते हैं जो होली खेलने से भागते हैं उन्हें बाहर निकालने के लिए उपयुक्त प्रयास करने पड़ते हैं—

"दुरत स्याम धरि पाइयो राधा भरि अंकवारि।
कनक कलस केसरि भरे, लै धाई ब्रज-नारि।
भरहु भरहु सखि स्यामहीं पीत पिछौरी पाग।
देह-जेह सुधि बीसरी नंद नंदन अनुराग।"[552]

एक अन्य प्रसंग में सूरदास की गोपियां यशोदा से चार दिन के लिए कृष्ण को माँगती हैं। कृष्ण के बाहर न आने पर जब गारी देने की तैयारी करती हैं तो यशोदा हँसकर मना करती हुई श्याम के बदले मनचाही वस्तु देने की प्रतिज्ञा करती हैं—

"सब सखियाँ मिलि गई महरि पै मोहन मांगै देहु।
दिना चारि होरी कैं अवसर बहुरि आपने लैहु।"
अब कहं दुरे सांवरे ढोटा फंगुआ देहु हमारि।
हंसि हंसि कहति जसोदा रानी गारी मत कोउ देहु।
सूरदास स्याम के बदले जो चाहो सो लेहु।"[553]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होली के इस राग-रंग के माध्यम से गोपियों की कृष्ण के प्रति आसक्ति का निरूपण किया गया है। होली के रस में घुला-मिला यौवन का उल्लास प्रत्येक प्रसंग में छलकता दिखाई देता है।

नंददास ने 'नंद पौरि' पर तथा 'वृषभानु की पौरि' पर होली खेलने का वर्णन किया है।

"खेल मच्यौ है नंद जू की पौरी, प्यारी राधा नंद किशोर।"[554]

"खेलत खेल जब रंगीलो लाल गए वृषभानु की पौरि।"[555]

होली के अवसर पर कृष्ण और उनके सखा दूध-दही से छके टोली बनाकर ब्रज की गलियों में घूमते हैं की बगल में पिचकारी और हो-हो चिल्लाते हुए। छज्जों से छूटती गोपियों की पिचकारियों के कारण उन्हें भागना पड़ता है—

"गारी होरी देत दिवावत ब्रज में फिर गोपगन गावत।
दूध दही के मातें डोले। काहे न हो हो हो हो बोलैं
बगलनि में दाबे पिचकारी, बांधत फेंटे पाग संवारी।
छज्जनि तें छूटति पिचकारी रंगि गई बाखरि महल अटारी।
नाना रंग गए रंगि बागे। बलदाऊ इत उतै है भागे।"[556]

सूरदास ने होली खेलने के प्रसंग में राधा और सखियों द्वारा 'बांस' निकालने तथा "मार मचाने' का उल्लेख किया है। ब्रज की 'लठमार' होली का उद्गम स्रोत संभवतः यहीं है। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान सशक्त और चतुर बनाने का मंतव्य भी इसके पीछे छिपा हुआ है।

"हाथनि लै भरि-भरि पिचकारी नाना रंग सुमन बोरी की।
कोउ मारति कोउ दाउं निहारति अरस परस दौरा दौरी की
उतहिं सखा कर जोरी लीन्हें, गारी देहिं सकुच थोरी की।
इतहिं सखी कर बांस लिए बिच मार मची झोरा झोरी की।"[557]

सूरदास और कृष्ण दास ने राधा तथा सखियों के हाथ में छरी, बांस और फूल-डंडा का उल्लेख भी किया है।

"लैलै छरी कुमारि राधिका कमल नैन पर छाई।"[558]

"सुनत नारि मुसकाई बांस लीने कर लाई।"[559]

"कनक-लकुट करनि लिये छाई सब हरषि दिये।"[560]

"फूल डंडा गहि हाथ भारत सबहिन भाल सों॥"[561]

राग-रंग हास्य-व्यंग्य होली के रंग हैं और इसका चित्रण भी सूक्ष्मता के साथ सूर ने किया है। बांस की मार से मना करती हुई सखी कृष्ण व उनके सखाओं पर कोमल होने का आरोप लगाती है। कोई मुरली पीताम्बर छीनती है तो कोई चीरहरण का बदला लेने के लिए राधा के पैर पकड़ने को कहती है—

"खेलत में रिस ना करि नागरी स्यामहि लागै चोट।
मोहन हैं अति माधुर-मूरति सारिव्रये अंचल ओट।"[562]

इक कर पीताम्बर गहि झटक्यौ इक मुरली लई कर मोरी की।
इक मुख सों मुख जोरि रहति इक अंक भरति रति पति ओरी की।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तब तुम चीर हरे जमुना तट सुधि बिसरे माखन चोरी की।
अब हम दाउ आपनौ लैहैं पाई परौ राधा गोरी की।"[563]

कृष्णदास की ललिता चंद्रावलि आदि सखियां भी कृष्ण को घेरकर मनचाही होली खेलती हैं—

"कित जैहो बस पर हमारे भजि न सकै नंदलाल।
फगुवा में मुरली हम लौहें पीताम्बर वनमाल।
केसर डारी मिस तें मुख पर शेरी मंडित राधे।
कृष्णदास प्रभु भुज गहि गाठें मन वांछित फल साधे।"[564]

धमार खेलने आई गोपियों के विभिन्न रूप वेश धारण करने का उल्लेख भी कृष्णदास ने किया है—

"खेलनि आई धमारि नव तरूनी गोप कुंवारी।
सहचरी चोप चटकीली देति रसीली गारी।
कोउ बनी नंद कोऊ बलदाऊ बहुत दीठ बरसाने वाली।
जसुमति सों गठजोरौ कीन्हौ कृष्णदास हितकारी।"[565]

सूरदास ने होली के अवसर पर कृष्ण को स्त्री वेश धारण कराकर परिहास करने का उल्लेख भी किया है। इसके साथ ही अपना पीताम्बर वापस लेने के लिए चतुराई से कृष्ण द्वारा सखा को सखी बनाकर भेजने व गोपियों को चकित करने का वर्णन भी किया है।

"लियौ काहू मुरलि कर तैं कोउ गह्यौ पट पीत।
सीस बेनी गूँथि लोचन आंजि करी अनीत।"[566]
"एक सखा हरि तिया-रूप करि पठै दियौ तिन पास।
मोहिं देहु राखौं दुराई कै स्यामहिं जनिलै देहु।
लिया दुराई गोद में राख्यौ दांव आनौ लेहु।
पीताम्बर जिन देहु स्याम कौ यह कहि चमक्यौ ग्वाल।
सूर स्याम पट फेरत कर सौं चकित निरखि ब्रजलाल।"[567]

एक अन्य पद में गोपियाँ बलराम का भेष बनाकर कृष्ण को सांकरी खोरि में पकड़कर राधा के पास ले जाती हैं वहां उनका स्त्री वेश बनाकर राधा से उनका गठबंधन करा देती हैं। सूचना पाकर नंद वस्त्र और मेवा देकर कृष्ण को छुड़ाते हैं।

"एक सखी हलधर बपु काछौ चली नील पट ओढ़े आछौ।
मिले सांकरी ब्रज की खोरी, घूमि रहीं जहां तहं गोरी।
उतरयों सूर स्याम मुख पानी गई लिवाय जहं राधा रानी।"
लोचन आंजि भाल बेदी दै पुनि-पुनि पाइ पराई।
बेनी गूँथि मांग सिर पारी वधू वधू कहि गाई।"
नंद सुनत हंसि महरि पठाई जसुमति धाइ आई।
पट मेवा दै स्याम छुड़ायौ सूरदास बलि जाई।"[568]

सूरसागर में हास-परिहास से भरे पदों की भरमार है वहां कृष्ण को घेरकर पकड़ना, स्वांग बनाना तथा पिचकारियों से गीले करने का वर्णन किया गया है।[569] स्त्री

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सखाओं द्वारा नंद के पास ले जाए जाते थे। नंद यशोदा दोनों इस कौतुक को देखकर आनन्दित होते हैं।[570] एक पद में तो गोपियां सीमा का अतिक्रमण कर कृष्ण का चीरहरण करने का मंतव्य भी प्रगट करती हैं।[571]

कृष्णदास ने गोपियों की इस धमा-चौकड़ी का अपेक्षाकृत सीमित वर्णन किया है। उनकी गोपियां भी कृष्ण का स्त्रीवेश में शृंगार करती हैं। परंतु सीमा से आगे नहीं बढ़तीं—

"बेनी सीस संवारि सेत सारी पहिराई।
सेंदुर दीन्हों लाल तनक मसि गाल लगाई।"[572]
काजर लोचन आंजि कें पटि पट लैंहि उतारि।
आलिंगन दै चुंबत ए सब ब्रज की नारि।"[573]

परमानंददास की गोपियां भी कृष्ण को तंग करने में पीछे नहीं हैं। और उन्हें एक साथ घेर कर अंजन लगाकर मुरली छीनकर गारी देती हैं—

"एक गहत फेंटा फगुवा को एक करत ठाढ़ी जु ठठोरी।
एक जु आंखि आंजि के भजी, एक बिलोकि हंसी मुख मोरी।
एक न लई छिनाय मुरलिका एक देति गारी मोहन को सौं री।
एक फुलेल अरगजा चोवा कुंकुम रस गगरी सिर ढोरी।"[574]

गोपियों के रूप वेश और अस्त-व्यस्त दशा का वर्णन भी परमानंददास ने किया है।

"एक न चोली अधखुली एक रही बंद धूटि।
एक अलकाबलि उर धरे एक रही लट खूटि।"[575]

होली के रस में सराबोर यह गोपियां नंद के द्वार पर होली खेलने झुंड के रूप में नाचता-गाती एकत्र होती हैं। चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी ने गोपियों के वस्त्राभूषणों का उल्लेख किया है। चतुर्भुजदास ने लोकगीत शैली में झूमक गाते हुए यह वर्णन किया है।

"पहिरें दिव्य कटाव की चोली झूमक सारी जू।
विविध सिंगार बने सबही अंग भूषन नावें सीस जे।
मुखिहत बोल नैन भरि काजर सेंदुर मांग सुदेसजे।
कंठसिरी मखतूल मोति अरू उर गज मोतिनि हार जू।
कर कंकन कटि किंकिनी की छबि पग नूपुर झनकार जू।
अलकावली आड़ मृगमद की बरनि सकै मुख भांति जू।"[576]
"तन तनसुख की सारी पहिरें लाल कंचुकी गात।
अध अंतरोटा पीत बिराजत भूखन विविध सुहात।"[577]

छीत स्वामी ने "अंग कनक बरनी सु करिनी बिराजैं गिरिधारन जुवराज गजराज राई"[578] के द्वारा गोपियों को मस्त हथिनी और गजराज के रूप में वर्णित किया है।

होली के अवसर पर गोपियां कृष्ण के साथ-साथ बलराम को भी परेशान करने में पीछे नहीं रहती। इसके अतिरिक्त अनेक अवसरों पर बलराम को अपनी ओर मिला कर उनके द्वारा कृष्ण को पकड़ कर अपने मन की एक-एक इच्छा को पूरी करतीं।[579] होली के इन विभिन्न चित्रों के माध्यम से हास-परिहास का जो स्वस्थ वातावरण बनता है वह केवल निश्चल मन वाले सहज व्यक्तियों में ही संभव है। आज स्वस्थ [illegible] परिहास की परम्परा लगभग समाप्त हो रही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है फिर भी ब्रजभूमि में होली का उन्मुक्त वातावरण देखने को मिल जाता है।

नंददास की गोपियां भी कृष्ण को नहीं छोड़ती। रंग डालती हैं अंजन आंजती हैं और तब वृषभानु की पत्नी आकर उन्हें छुड़ाती हैं।

"देखि बिबस वृषभान घरनि हंसति वहां आई।
बरजी आन नवल वधू भुज भरि लिये कन्हाई॥"[580]

चतुर्भुज दास और गोविन्द स्वामी ने भी कृष्ण-बलराम को गोपियों द्वारा पकड़वाकर उनकी दशा बनाने का उल्लेख किया है। गोपियों की ही नहीं कृष्ण की चतुरता का वर्णन भी सूरदास ने किया है। जिसमें कृष्ण स्वयं गोपी का रूप धारण कर गोपियों में झुंड में राधा से मिलते हैं और गोपियों को कृष्ण को खोजने की सलाह, दो-दो जोड़े में करने की देते हैं। इस प्रकार राधा के साथ जोड़ी बनाकर प्रणय विहार करते हैं।[581] चतुर्भुजदास ने भी कृष्ण की उन्मुक्तता का वर्णन किया है—

"मैंया मोहन ख्याल परयौ।
ज्यों ज्यों सतराति, त्यों नियरे आवत झटकि अंचलु मोहन अंक भरयौ॥"[582]

इन कुछ पदों को छोड़कर राधा, कृष्ण और गोपियों के फाग में अधिकतर कृष्ण को ही रंगा और पकड़ा गया है।

ग्वाल बालों के परस्पर होली खेलने का वर्णन भी कवियों ने किया है। यद्यपि इसमें उन्होंने अधिक रुचि नहीं ली है। सूरदास ने इन सब क्रियाओं का सुंदर चित्र उपस्थित किया है—

"इक मारत इक तारत, इक भाजत इक गाजत,
इक धावत, इक पावत, इक आवत भारी।
इक हरषत इक लरखत, इक परखत धावहिं कौ।
लोचननि गुलाल डारि सौधैं ढरकावैं।
एक फिरत संग संग इक इक न्यारे विहरत।
डरत दांव दीबे कौ वें ज्यों नहिं पावै।
इक गावत इक भागत इक नाचत इक रोकत
इक कर गिरदंग ताल गतिजति उपजावें।"[583]

कुंभनदास ने 'होरि हो' की आवाज लगाते, पिचकारियों से रंग छोड़ते और 'कीक' देते हुए ग्वालों का उल्लेख किया है। आज भी होली का यह सामान्य और स्वाभाविक दृश्य—

"जुवति जूथ संग फाग खेलत नंदलाल, कुंवर 'होरि हो होरि हो होरि बोलना।'"[584]
"कुमकुमा सुरंग छिरकत पिचकारी भरि भरि
परस्पर देत कीक ब्रज की खोरि खोरि डोलना।"[585]

कृष्णदास और नंददास के ग्वाल बाल भी हो-हो-होरी की उद्घोषणा करते हैं।

"बाजत ताल मृदंग मुरली बेनु सहावनी हो ही हो सब बोलें बोल मोहन को नचावहीं"[586]

चतुर्भुजदास ने मदमाते फेंटें में अबीर-गुलाल भरे रंग-बिरंगे वस्त्र धारण किए ग्वालों का वर्णन किया है। इस वर्णन में लोकगीतों की शैली का अनुसरण किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"पहिरे वसन अनेक तन नील पीत सेतराजे जू।
सुरंग गुलाल अबीर फेंट भरि फिरत महारस मातेजू।"[588]

गोविन्द स्वामी ने ग्वाल बालों को कोलाहल करना और कूक देते हुए प्रमदागन पर अबीर गुलाल बरसाने का उल्लेख किया है।

"लरिका संग सकल गोकुल के करन कुलाहल ब्रज की खोरी।"[589]
"एकनि कर बूका लिए एक गुलाल अबीर,
प्रमदागन पर बरसहीं कूकें देत अहीर।"[590]

कृष्णदास ने बलराम तथा ग्वाल बालों के साथ होली खेलने का उल्लेख किया है।

"होरी खेलत हैं रंग भीन्हें।
बागे बीरे बनि ठनि मोहन बलदाऊ संग लीन्हें।"[591]
"होरी खेलत-खिलात पिय ग्वाल बाल संग लीन्है।"[592]

फाग खेलने के स्थानों का वर्णन भी अष्टछाप साहित्य में हुआ है। सर्वाधिक प्रिय स्थान नंद तथा वृषभानि की पौरि थे। उन भवनों के चौक के अतिरिक्त गोकुल के चौहटों, ब्रज की खौरियों तथा यमुनातट पर भी फाग खेला जाता था। सूरदास ने पूरी तैयारी के साथ कृष्ण का चौहटों पर आकर फाग खलने का वर्णन किया है—

"रसिक गुपाल नवल ब्रजवनिता निकसि चौहटें आए।"[593]

चतुर्भुजदास ने भी ब्रज के चौहटों पर फाग का वर्णन किया है—

"रसमसे नंदकिशोर निकसे खेलन फागु।
मधुर बेनु कर में धरें गावत गौरी रागु।
आए ब्रज के चौहटें लिए सखा सब संग।"[594]

कृष्णदास ने गोकुल गांव के चौक का उल्लेख किया है—

"खेलत फाग गोपाल लाल रतिरंग रस भीन्हें।
गोकुल गांव के चौक में हुतासन कीन्हें।"[595]

गोविन्ददास ने "ब्रज की खौरी" का उल्लेख किया है।[596] सूरदास ने जमुनातट पर फाग का वर्णन किया है तथा गोपियों के साथ कंदुक खेलने का, कृष्ण के सिर पर अबीर अगरजा भरे घट को उंडेलने का उल्लेख किया है—

"प्रिय प्यारी खेलैं जमुन तीर भाई केसरि कुमकुम अरू अबीर।"[597]
"प्रभु हंसि कै गेंदुक वई चलाई, सुख पट दै राधा गई बचाई।"[598]
भरी अगरजा अबीर कनक घट देति सीसतैं
छिरकति सखी कुंकुमा केसरि, भुरकति धाई बांदन धूरि।
सोभित हैं तनु साँझ समै घन आए हैं मनु पूरी।"[599]

परमानंददास ने भी यमुना के तट पर राधा-कृष्णा के दलों में होली खेलने का वर्णन किया है—

"नंद कुंवर खेलत राधा संग जमुना पुलिन सरस रंग होरी।
केसरि के रंग कलस भरे बहु संग सखा हलधर की जोरी।
[illegible] पिचकाइ छिरकी ब्रज की नवल किशोरी।"[600]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नंददास ने जमुनातट पर अहीरों के होली खेलने का उल्लेख किया है। इस होली में बलबीर और युवतियों की भीड़ भी सम्मिलित हैं—

"कुंज कुटीर मिली जमुना तीर खेलत होरी रस भरे अहीर।
एक ओर बलबीर धीरि धरि एक ओर जुवतिनि की भीर।"[601]

गोविन्द स्वामी ने यमुनातट के साथ-साथ पनघट की बाट पर फाग खेलने का वर्णन किया है—

"सुंदर सुभग तरनि तनयातट खेलत हैं हरि होरी हो।"[602]
"खेलत खेलत तहां गए जहां पनिहारी की बाट
गागरि ढोरै सीस तें भरन न पावैं घाट।"[603]

फाग खेलने के उपादानों में चोवा, चंदन, बीर, कुमकुमा, टेसू के फूल के रंग तथा रत्नजडित पिचकारियां हैं। इसके साथ अरगजा, बंदन, बूका, 'मृगमद', कुंकुम आदि छिड़कने का उल्लेख है। सभी कवियों ने इन सामग्रियों का वर्णन किया है क्योंकि इनके बिना एक दूसरे को रंगना संभव ही नहीं है। होली खेलने के लिए आवश्यक सामग्री ग्वाल बाल झोरी बांध कर या फेंटें में बांध कर निकलते थे। गोपियां भी रंग के कलस, पिचकारियां लेकर होली खेलने निकलती हैं—

"चारु अबीर उड़ावत नाचत कटि सों बांधि गुलाल की झोरी॥"[604]
"अति कसि बांधे फेंट गुलालनि मूठी अबीर उडारी।
बूका बंदन उड़त चहूं दिसि दिन निसि ज्यों अंधियारी।"[605]
"पिचकारिनि रंग उछलत भारी उड़ि गुलाल रंगे अटा अटारी।"[606]

कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी और गोविंद स्वामी ने चोवा, चंदन, अगर, कुमकुम, केसर, अबीर आदि उड़ाने का उल्लेख किया है।[607] फाग खेलने के बाद होली के रंग में रंगे राधा-कृष्ण की शोभा का वर्णन भी सभी कवियों ने किया है। एक-दो उदाहरण दृष्टव्य हैं—

"उन पट पीत किए रंगराते, इन कंचुकी पीतरंग बोरी।"[608]
"मोहन को पटपीत रंगि के रंगी हैं से तनसुख की धौरी हो।"[609]

रंग खेलने से घर-आंगन व गलियों में 'कीच' मचने का उल्लेख भी अष्टछापी कवियों ने किया है।

"कनक कलस कुमकुम भरि लीन्हो कस्तूरी ता मैं धसि धोरी।
खेल परस्पर कीच मची घर अधिक सुगंध भई ब्रज खोरी।[610]
"कपूर की आंधी उड़ी आइ दिन अथयौ संध्या भई भाइ।
सब चोवा 'कीच' में रपटि जाइ जानों सुख-सरिता चली धाइ।[611]

सुगंधित द्रव्यों के छिड़काव से यह कीच भी सुगंधित हो गई है। पचासेक रंगों से बने अबीर के बादलों ने गलियों को और भी सुगंधित बना दिया है।

होली के अवसर पर कृष्ण ब्रज में किसी को उदास या रंगों से रहित नहीं देख सकते। कृष्ण के चरित्र की यह विशेषता है कि वे छोटे से छोटे व्यक्ति को भी अपने साथ होली के हुड़दंग में सम्मिलित करते हैं। टोली बनाकर रंग खेलते हैं और घर-बाट में मिलने वाले हर नर-नारी को रंग से सराबोर कर डालते हैं। सास-ससुर के डर से होली न खेल सकने वाली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रजबालाओं को भी अपनी वाग्विदग्धता से संतुष्ट कर अपने 'फाग' के रस में डुबो देते हैं उनकी उदासीनता और अवसाद दूर कर देते हैं—

"पिचकारी मोकौं जनि छिरको झरकि उठी मुसुकाइ
"[illegible] मोकौं घर बैरिनि तिनहिं कहौं। कह जाइ।"
अनल[illegible] हम हैं, की तुम हौ, कहौ न बात उधारि,
तुमहूं नवल, नवल हमहूं हैं बड़ी चतुर हो ग्वारि।"[612]

'होली के खिलार', एक दूसरे की आंखों में, और मुख पर रंग डालने में आनन्दित होते हैं। सूर की गोपियों और कृष्णदास की गोपियों ने इसीलिए नेत्रों में अबीर और रंग न डालने का अनुरोध कृष्ण व उनके सखाओं से किया है

"हम तुम सौ विनती करें जनि आंखिनि भरो गुलाल।"[613]
"लाल गुपाल गुलाल हमारी आंखिनि में जिन डारौ जू।"[614]

सूरदास ने तो स्पष्ट रूप से कृष्ण की इस आदत का वर्णन किया है—

"नैननि अबीर मारैं काहूं सों न डरै री।"[615]

होली और वसंत का वातावरण प्रत्येक प्राणी को मदोन्मत्त करने के लिए पर्याप्त है। कामोद्दीपन के लिए भी यह ऋतु श्रेष्ठ मानी गई है। अष्टछाप काव्य में इस उन्मत्तता का वर्णन भी होली के प्रसंग में किया गया है। सूरदास ने गोपियों को 'मदमाती हथिनियों' की उपमा देते हुए, उनके कुल-मर्यादा के अंकुश को न मानने का वर्णन किया है—

"कुल अंकुस मानैं नहीं सांकर बेद तुराइ।
वृंदावन वीथिनि फिरै संग मदन गजपाल
कबहुं नैन कर दै मिलै तैसियै गजगति चाल।"[616]

मर्यादा की सीमा लांघ कर राधा तक के "झूम-झूमकर" गारी देने का उल्लेख सूर ने किया है—

"झुकि झुकि परति है कुंवरि राधिका, देति परस्पर गारि।"[617]

उन्मत्तता की चरम अवस्था तो तब आती है जब सदैव शील और संयम से रहने वाली नारियाँ अपने वस्त्र फाड़ने को उद्यत हो जाती हैं—

"ते कुल नारि निडर भई लागे लोग परान।
भस्म भरैं अंजन करैं छिरकैं चंदन वारि।
मरजादा राखैं नहीं कटि पट डारै फारि।"[618]

मर्यादा का बंधन एक बार टूट जाने पर नारियां अपने को संभाल नहीं पातीं और प्रत्येक संयमी और आचारयुक्त व्यक्ति को पकड़ कर अपने टोले में मिला लेती हैं। यही कारण है कि इस वातावरण में, पंडित, शठ कुलवधू और वेश्या का अंतर मिट जाता है—

"सठ पंडित वेश्या वधू सबै भए इकसार।"[619]

इस उन्मत्त दशा में न तो वाणी पर अधिकार रह पाता है और न तन के वस्त्रों की सार संभाल हो पाती है। परमानंददास ने इसी अवस्था की ओर संकेत किया है—

"छुटी जात तब तन न संभारत अति [illegible]।"[620]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने भी लोक मर्यादा के उल्लंघन की चर्चा की है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"रास गारी तारी दै गावै अब तो उधरि नच्यौ है।"[621]
"छुटि गई लोक लाज मरजादा फिरत सवै ही धाए।"[622]

कृष्णदास ने "काजर लोचन अंजिकें कटि पट लैंहि उतारि" के द्वारा गोपियों की निर्लज्जता का उल्लेख किया है।[623] लाज और कुल की मर्यादा तोड़ने के साथ-साथ गोपियां कृष्ण से मिलने के नए-नए बहाने ढूंढती हैं और गुरुजनों के सामने ही फाग खेलने में उच्छंखलता का व्यवहार करती हैं—

"आवत बछरा मेलियै, वन को देहिं बिडारि।
वै दैहें हमको पठे देखै रूप निहारि।
औंजत गागरि ढारियै जमुना जल कै काज।
इहिं मिस बाहर निकसि कै जाइ मिलै ब्रजराज।"[624]
"इक अवलंबति इक अवलोकति, चुंबन दान देति इक दंपति।
मगन भई अपर बपु न सम्हारति लालन भुज अपने उर धारति।
गुरुजन खरे सबै मिलि देखैं तिनको तरूनी तृनसम लेखे।"[625]

परमानंददास ने "तिहिं औसर कुल मरजादा तोड़ने का"[626] और चतुर्भुजदास ने "संकन माने काहु की, मातपिता सुत कंता हो"[627] के द्वारा गोपियों के निडर स्वभाव का वर्णन किया है।

गोपियां ही नहीं निःशंक व्यवहार करने में ग्वाल-बाल भी पीछे नहीं हैं। यद्यपि अष्टछाप काव्य में इनके उन्मुक्त व्यवहार का चित्रण गोपियों की अपेक्षा कम हुआ है। कुंभनदास ने अवश्य उनके उद्दंड व्यवहार का चित्र खींचा है।[628] उनके कृष्ण उन्मुक्त व्यवहार में सभी ग्वाल-बालों से आगे हैं—

"काहू को हार तोई काहू की चूरी फोरै होरी कौ है औसरु जिनि कोऊ रिस मानै।
काहू की खुंभी लै भाजै अरु अचानक काहू कौं पिचकाई नेत्रनि तकि तानै।
काहू की नकबेसरि पकरि काहू की चोली काहू की बेनी गहे अरू कंठसिरी झटकि आनै।"[629]

होली के इस अवसर पर स्त्री पुरुष छोटे-बड़े का ही नहीं राजा-प्रजा का अंतर भी मिट जाता है। सामाजिकता और समानता की यह भावना वर्गभेद रहित समाज की रचना में सहायक होती है—

"मगन भए डोलत जित तित हो गिनत न राजा राए।"[630]

अष्टछापी कवियों का उद्देश्य भी ऊँच-नीच से रहित समाज का निर्माण करना था और होली का पर्व उन्हें हर प्रकार के बंधनों को तोड़ने के लिए उपयुक्त प्रतीत हुआ। इसी कारण इसके निरूपण में स्वच्छंदता और उन्मुक्तता का समावेश उन्होंने किया है।

ब्रज के लोकनृत्य चांचरि का उल्लेख भी होली के अवसर पर अष्टछाप काव्य में किया गया है। चांचरि गीत गा-गाकर किया जाने वाला खेल-तमाशा है। प्रत्येक टोले में चांचरि और फाग खेलना होली का अनिवार्य अंग है—

"सूरदास सब चांचरि खेलैं अपने अपने टोलैं।"[631]
खेलत फाग गोवर्द्धन तासी।
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant
नव बन नवल कुंज नवनागर नव राधे राजति चपला सी

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुंज कुंज द्रुम बेलि प्रफुलित करत किलोल नवल ब्रजवासी।"[632]
"इतहि गोपिका जुरि जुरि आई उतहि ग्वाल मंडली चांचरि जोरी।"[633]
"माधौ चांचर खेल ही खेलत री जमुना के तीर।"[634]

चौहटों पर एकत्र होकर लोकगीत तथा झूमक गाना भी अष्टछापीय होली की विशेषता है जिसके पीछे उसकी लोकोन्मुख प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। सूर ने गोपों के धमार गाने का उल्लेख भी किया है—

"झूमि झूमि झूमक गावति।"[635]
"जमना कूल भूल बंसी बट गावत गोप धमारि।"[636]

कृष्णदास ने 'झूमक' और 'बसंत राग' गाने का वर्णन किया है—

"झूमक खेल मचाई सबनि को बैठाइकै।"[637]
"तुम गावौ राग बसंत अटपटौ इहि बिधि खेल जमावौ जी।"[638]

कुंभनदास ने नटनारायन राग गाने का उल्लेख किया है—

"गावत नट नटराइन राग मुदित देत चैन फाग चहुंदिसि…"[639]

चतुर्भुजदास ने झूमक, नटनारायन, गौरी और धमार शैली में गाने का उल्लेख किया है—

"गावहिं झूमक चेत बीच सुहाई गारि।"[640]
"गावत नटनारायन रागु जन खेलतु फागु।"[641]
"गौरी राग अलापत गावत मधुर मधुर मुरली कल घोर।"[642]
"गावत सरस धमारिनि यों रंगु रसिक मंडली जोरें जू।"[643]

होली के अवसर पर गाली गाने की प्रथा का सूरदास ने विस्तार वर्णन किया है वहाँ तरुनी बाल सयानी सभी निःसंकोच गाली देती हैं—

"देति परस्परि गारि मुदित मन तरुनी सयानी।"[644]

ग्वाल-बाल गोपियों की गालियों के विभिन्न रूप सूरसागर में उपलब्ध हैं। परमानंददास की गोपियाँ मर्यादित गालियों का प्रयोग करती हैं—

"… मोहन जू कौं गारी सुनावौं।
हरि कारो री हरि काबरो यह द्वै बापन बिचवारौ।
हरि नटवा जी हरि नटवा राधा जी के आगे लटुवा।
हरि मधुकर री हरि मधुकर रस चाखत डोलत घर घर।
हरि खंजन री हरि खंजन राधा जू के मन कौ रंजन।"[645]

इस 'गारी' में ग्रामीण परिवेश का हास-परिहास तो झलक रहा है पर मर्यादा का उल्लंघन नहीं है। कृष्णदास ने भी गालियों का वर्णन ना करके केवल गारी गाने का संकेत किया है। "गारी देति 'सुहावनी' इत सब गोपी नारि।"[646] कुंभनदास, चतुर्भुजदास और गोविंद स्वामी की गोपियाँ भी 'मीटी गारि' गाती है। नंददास की राधा गोपियों की गारी सुनकर लजाती हैं—

"गावन लागीं ग्वालिनि गारी सुंदर ललहिं लगाय।
राधा जू गारिनि सुनि सुनि हँसि हँसि हरि तन हेरि लजाय।"[647]

होली के अवसर पर गधे की सवारी और मदिरापान का उल्लेख सूरदास ने किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"राते कवच बरात सजि खरनि भए असवार।
धूरि धातु रंग घट भरे धरे यंत्र हथियार।"[648]
"कोटि कलस भरि बारुनी दई बहुत मिठाई पान।"[649]

अन्य कवियों ने इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया है।

अष्टछाप का कोई भी पर्व या त्यौहार वाद्ययंत्रों के बिना संपन्न नहीं होता। वस्तुतः गायन का सौंदर्य ही वादन की पृष्ठभूमि में उभरता है। 'होरी' के अवसर पर बजाए जाने वाले वाद्यों की चर्चा सभी अष्टछाप के कवियों ने अनेक अवसरों पर की है। सूरदास ने झाँझझिली, डफ निसान, निर्झर, ताल-मृदंग, बीन, बाँसुरी, रवाव, महुअरि, उपंग, झालरी, आउझ आदि वाद्यों का वर्णन किया है। परमानंददास ने भी चंग, महुवरिका, रबाब, पखावज, वीना, वेनु आदि का उल्लेख किया है। कृष्णदास ने डफ, झाँझ, झालरि, महुवरि, ढोलक, ढोल, निसान, तूर आदि का उल्लेख किया है। कुंभनदास ने इस सूची में अद्यौटी शंख को जोड़ा है तो नंददास ने मुरज 'ढोले टनक' और 'सहनाई' को। चतुर्भुजदास ने शृंग, वेत्र, गिरगिरी और डिमडिम का विशेष उल्लेख किया है। छीत स्वामी और गोविंद स्वामी ने बेना, अमृत कुंडली, दमामा, धौंसा आदि का अतिरिक्त वर्णन किया है। विषय विस्तार न हो, इस दृष्टि से प्रत्येक कवि का एक-एक उदाहरण ही प्रस्तुत किया जा रहा है—

"डिमडिम पटह ढोल डफ बीना मृदंग चंग अरू तार।"[650]
"बाजत चंग मृदंग अधोटी पटह झाँझ झालर सिर धोरी।
ताल रबाब मुरलिका बीना मधुर सबद उधटत धुन थोरी।"[651]
"ढोलक ढोल निसान महुवरी विच मुरली मनुहारी।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ भेर मेरि सहनाई।"[652]
"बाजत आवज उपंग बाँसुरि सुर बेनु चंग,
संख बस झाँझि डफ मृदंग ढोलनौ।"[653]
"ताल मृदंग मुरज डफ बाजै ढोल टनक नव धन ज्यों गाजै।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ सहनाई अरू ढोल।"[654]
"सृंग वेत्र महुवरि धुनि नीके शब्द सुनाए।
मदन भेरि सुर बीन गिरगिरी झाँझि उपंग।"[655]
"वीन बेना अमृत कुंडली किन्नरी झाँझ बहुभाँति आवत उपंगे।
मेरि दमामा धौंसा कोउ काहु न संभार।"[656]
"बाजत ताल मृदंग अधोटी विच मुरली धुनि थोरी।"[657]

फाग खेलने के पश्चात् 'फगुवा' लेने और देने का उल्लेख भी सभी कवियों ने किया है। फगुआ में वस्त्र आभूषण आदि दिए जाते थे। बंधक कृष्ण-बलराम को छुड़ाने के लिए नंद-यशोदा के फगुवा देने का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है।[658] आज भी होली खेलने आए अभ्यागतों को मेवे मिष्ठान का फगुआ दिया जाता है। आज भी यह प्रथा ब्रज समाज में प्रचलित है। अष्टछाप के कवियों ने फाग खेलने के पश्चात् यमुना में स्नान का वर्णन भी किया है। सूरदास ने जल क्रीड़ा करते कृष्ण को 'गजिनी संग नहाते मदन धुजिनी गज' के समान चित्रित किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"करति जदुनाथ जलधि जलकेलि।
अबलनि कर लिये अंबु अमृत किये, दिये नव नव सुख खेलि।
यौं राजत निहिं काल लाल ललना रसाल रस रंग।
मानहुं न्हात मदन धुजिनी गज सजनी गजिनी संग।"[659]

चतुर्भुजदास ने भी "सब सुख जीति चली ब्रज जुवती गई जमुना के कूलनि जू"[660] कहकर यमुना स्नान का उल्लेख किया है। कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास, छीतस्वामी और नंददास इस विषय पर मौन साधे हुए हैं। गोविंद स्वामी ने परिवा को यमुना स्नान का उल्लेख किया है—

"परिवा सकल घोष जन भानुसुता चले न्हान।"[661]

सूरदास के कृष्ण भी परिवा पर नहाकर जमुना से रथ पर घर आते हैं और 'कोरे' वस्त्र धारण करते हैं। नंदरानी कृष्ण पर न्यौछावर करती है और विप्रों तथा बंदीजनों को दाने देती हैं—

"परिवा सिमिटि सकल ब्रजवासी चले जमुन चल न्हान।"[662]
"भवन गवन यौ नंद सुवन तब निकसि चढ़े रथकूल।"[663]
"वरि कुंवर पर पट नंदरानी दिए विप्रन बहुदान।"[664]
"दुइज समाज समेत करत द्विज तिलक दूब दधि रोचन रोरी।
सूर स्याम विप्रनि बंदीजन देत रतन कंचन की बोरी।"[665]

द्वितीया के दिन श्रीकृष्ण वस्त्राभूषण धारण कर सिंहासन पर बैठते हैं और नंद ब्रजबालाओं को वस्त्राभूषणों देते हैं। सूरदास और गोविंद स्वामी ने ही केवल इस रीति का वर्णन किया है बाकी कवियों में ऐसा वर्णन नहीं मिलता।

"द्वितीया सकल समाज सौं पर बैठे आनंद कंद।
दान देव ब्रज सुंदरी नग भूषन नवनिधि नंद।"[666]
"द्वितीया पाट सिंहासन बैठे छत्र चंवर सिरताज।
राजन सहित श्रीदामा बलि बलि बलि जुवराज।"[667]

इस प्रकार होली का पर्व अष्टछाप में समाप्त होता है। आज भी ब्रज समाज में होली का रंग बिल्कुल वैसा ही है जैसा सूरादि कवियों ने अपने काव्य में चित्रित किया है।

पर्वोत्सवों की इस विवेचना से स्पष्ट है कि अष्टछाप काव्य लोक जीवन को साथ लेकर चला है। प्रस्तुत वर्णन में विषय विस्तार के कारण संपूर्ण सौंदर्य प्रदर्शित नहीं किया जा सका है। प्रत्येक कवि के काव्य के कुछ ही अंशों को उद्धृत किया गया है। सूरदास को छोड़कर बाकी कवियों ने सभी त्यौहारों या पर्वों का वर्णन नहीं किया है इसलिए प्रत्येक पर्व के विश्लेषण में सभी कवियों के उदाहरण नहीं दिए गए हैं। अष्टछाप काव्य उमंग और उल्लास का, छलकते यौवन का काव्य है। प्रत्येक पर्व पर गायन-वादन-नृत्य का समावेश इन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति है। होली के पर्व को व्यापक रूप देने में कवियों की इसी प्रवृत्ति का हाथ है। दीपमालिका के वर्णन में भी, गौरू या नारियल के खोपड़े से दिवारी रखने की प्रथा का मात्र उल्लेख करके उसमें सौंदर्य का वर्णन किया है। अष्टछाप के कवि अपनी सामाजिक दृष्टि को पूर्णतया लोकोन्मुख बना कर चले हैं। परंपरा से चली आ रही सामाजिक मान्यताओं की उपेक्षा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्होंने नहीं की है परंतु इसके साथ ही बहुत ही कोमल ढंग से उनमें परिवर्तन करने का प्रयास उन्होंने किया। तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर समाज के पुनर्गठन का प्रयास किया। अष्टछाप के समाज में वर्गभेद, जाति भेद नहीं है। वहां सब कुछ कृष्णमय है और कृष्ण भी लोकोत्तर नहीं हैं इसी ब्रजभूमि में विचरण करने वाले, उसके विकास में प्रयत्नशील ब्रजवासी हैं। वैदिक कर्मकांड तथा मनुष्य में भेद उत्पन्न करने वाले विश्वासों में अष्टछाप का समाज मुक्त है। वहां प्रत्येक अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्र है, परिवार और समाज की मर्यादाएं हैं परंतु कृष्ण प्रेम में वे सभी टूट जाती हैं।

अष्टछाप साहित्य ने समाज को पुनर्गठित ही नहीं किया उसे एक होकर अपने पैरों पर खड़ा होना भी सिखाया। कृष्ण को केंद्र बनाकर विभिन्न कलाओं का विकास किया और समाज के हर वर्ग को सम्मानित तथा स्वावलंबी बनाया। युद्धों की छाया में भी आनन्द और उत्साह को अभिव्यक्त करना सिखाया। अष्टछाप का समाज जो कुछ भी करता है अपने लिए नहीं कृष्ण के लिए करता है। कृष्ण ही उसकी प्रेरणा और कृष्ण ही उसकी धुरी है। पर्व, त्यौहार, मनोरंजन, समाज के स्वस्थ होने के प्रमाण हैं। अष्टछाप साहित्य ने यही स्वस्थ दृष्टिकोण समाज को प्रदान किया। ब्रज समाज को मनोविकारों से परे रखने में अष्टछाप कवियों का, वल्लभ संप्रदाय का योगदान अनुपेक्षणीय है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अक्षरा फाउण्डेशन
सोराब हाउस, कोलाबा कॉज़वे
मुम्बई, द्वारा प्रदत्त
उपहार

अष्टछाप काव्य में प्रतिबिंबित लोकमानस

अष्टछाप कवि और उनके गुरु श्री वल्लभाचार्य ब्रजलोक को अपनाकर चले हैं। सुदूर दक्षिण से आकर श्रीकृष्ण की कर्मभूमि को ही उन्होंने अपना कर्मक्षेत्र बनाया है। गोकुल का अनुसंधान किया और नष्टप्राय: ब्रज संस्कृति को नवजीवन प्रदान किया। कृष्ण कथा को ब्रज लोक से जोड़ा और उसे अमर कर दिया। कृष्ण यहां राजपुत्र या परब्रह्म नहीं हैं, नंदलाल गोपाल हैं जो गोकुल और ब्रज को स्वर्ग बनाते हैं और गोकुलवासियों को अपने पर गर्व करना सिखाते हैं। कृष्ण ब्रज की लोक-संस्कृति के प्रेरणा स्रोत हैं। अपने काल में ही उन्होंने विभिन्न कलाओं का विकास और विभिन्न व्यवसायों की वृद्धि ने ब्रज को समृद्धि के शीर्ष पर पहुंचा दिया था। ब्रज का लोकमानस इसी पृष्ठभूमि में विकसित होता है वह भाव में भी आनन्द अनुभव करता है और अभाव में भी। यही चिरंतन आनन्द की भावना ही ब्रज के लोकमानस की विशिष्टता है। यों तो पर्वों और अनुष्ठानों के विशद निरूपण द्वारा अष्टछाप काव्य ने स्वयं को लोकोन्मुख प्रमाणित कर दिया है परंतु फिर भी किसी आलोचक को यह प्रतीत हो सकता है कि, सामाजिक पर्वों और उत्सवों के पारंपरिक रूप अक्षुण्ण रखने तथा अपनी संप्रदाय संबंधी भावनाओं की अभिव्यक्ति में, अष्टछापी कवियों द्वारा लोकमानस उपेक्षित रह गया है। इस आशंका के निराकरण के लिए अष्टछाप काव्य में विशुद्ध लोकतत्व को भी प्रतिष्ठित किया गया है। लोकमानस की अभिव्यक्ति के विविध रूप इस काव्य में उपलब्ध हैं जो लोक-संस्कृति अथवा लोकवार्ता का निर्माण करते हैं। इनके अंतर्गत लोकाचार, लोकविश्वास तथा मान्यताएं लोकधर्म, लोककलाएं, लोकमनोरंजन, लोकसाहित्य, लोकभाषा आदि विषय आते हैं।

लोकाचार अथवा लोक व्यवहार

प्रत्येक समाज के अपने विशिष्ट नियम होते हैं। जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते चले आते हैं। लोकमानस उनकी उपेक्षा नहीं करता। ब्रज की लोक-संस्कृति में भी व्यवहार तथा आचार की दृष्टि से ऐसे कई नियम प्रचलित थे। विभिन्न पर्वों तथा उत्सवों के वर्णन में इन विशिष्ट आचारों का वर्णन किया जा चुका है। संस्कार संबंधी वर्णनों में भी इन आचारों की झलक मिल जाती है। गुरुजनों अथवा एक-दूसरे के प्रति व्यवहार भी लोक-संस्कृति का अंग है। यह शिष्टाचार एक ओर सामाजिक गुण और आवश्यकता है तो दूसरी ओर समाज में नैतिक मूल्यों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की प्रतिष्ठा का व्याख्याता है। अष्टछाप काव्य में लोक-संस्कृति के इस अंग को पर्याप्त महत्व दिया गया है। तत्कालीन ब्रज समाज में आयु और पद के साथ-साथ वर्ण भी सम्मान का भागी था। इसी कारण कम आयु वाले उच्च वर्ण के व्यक्ति को, अधिक आयु वाले उससे निम्न वर्ण के व्यक्ति झुक-झुक कर प्रणाम करते थे। आचार्य ब्राह्मण तथा ब्रह्मारियों के प्रति समाज का प्रत्येक व्यक्ति आदर प्रकट करता था। राजा तथा उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों का सम्मान भी आयु और वर्ण का भेद भुलाकर किया जाता था। आज भी ब्रज समाज में इन आचारों का पालन किया जा रहा है। आधुनिकता के आग्रह के कारण यद्यपि समानता का व्यवहार पारिवारिक जीवन में प्रवेश कर रहा है। परंतु अपनी संस्कृति से प्रेम करने वाले परिवार अभी भी परंपरागत लोकाचारों का पालन करने में हीनता का अनुभव नहीं कर रहे हैं।

अष्टछाप काव्य में पौराणिक प्रसंगों के अंतर्गत इस लोकाचार का पालन किया गया है। राजा बलि वामन का आदर-सत्कार उनके ब्रह्मचारी होने के कारण तथा द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण सुदामा का आदर ब्राह्मण होने के कारण करते हैं। ब्राह्मणों को पूज्य मानकर चरणोपोदक लेने की रीति आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है—

"देखि स्वरूप सकल कृष्णाकृति कीनी चरन जुहारी।"[1]

"कर जोरे हरि विप्र जानि कै हित करि चरन परवारे।"[2]

लोकाचार को निरूपित करने वाले प्रसंग अष्टछाप साहित्य में सीमित हैं। उपलब्ध सामग्री के आधार पर सामाजिक शिष्टाचार और लोकाचार के निम्न रूप निर्धारित किए जा सकते हैं—

सम्मानीय व्यक्तियों के लिए नमो, नमस्ते, नमन, नमस्कार आदि संबोधनों का प्रयोग किया जाता था। असाधारण व्यक्तित्व तथा लोक-कल्याण में संलग्न महापुरुषों की अभ्यर्थना इन्हीं शब्दों से होती थी। परब्रह्म श्रीकृष्ण की स्तुति वेद इसी प्रकार करते हैं—

"नमो नमस्ते बारंबार मधुसूदन गोविंद मुरार।"[3]

कृष्णदास ने गोवर्द्धन पूजा के संदर्भ में कृष्ण के लिए इन्हीं संबोधनों का प्रयोग किया है—

"नमो देवेन्द्र दर्पहर श्री मुरारी।
विदित अद्‌भुत चरित गिरिराज उद्धरन, गो गोप गोपीजन तापहारी।"[4]

नमस्कार का प्रयोग सामान्यतः पद और आयु में बराबर वालों के लिए किया जाता था। परंतु सूरदास ने धृतरराष्ट्र द्वारा अक्रूर के मुख से कृष्ण के लिए पैर पकड़ कर नमस्कार कहलाया है।

"नमस्कार मेरी कह्यौ जदुपति सौं परिकैं पायं।"[5]

पूज्य व्यक्तियों के प्रति कायिक अभिवादन प्रचलित था। साष्टांग दंडवत प्रणाम इस अभिवादन की सर्वोत्तम विधि है। साष्टांग प्रणाम में शरीर के आठ अंगों सिर, हाथ, पैर, हृदय, आंख, जांघ, वचन और मन से धरती पर लेटकर प्रणाम किया जाता है, अशोकवाटिका में सीता को लेने के लिए आए लक्ष्मण को जाम्बवंत, सुग्रीव, विभिषण आदि दंडवत प्रणाम करते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh,Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"जामवंत सुग्रीव विभीषण करी दंडवत आइ।"

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूज्य व्यक्तियों को संबोधित करने के लिए पालागन, प्रणाम आदि शब्द प्रचलित थे। वनवास से अयोध्या पधारने पर श्रीराम अपने सखाओं से गुरु वशिष्ठ को पालागन करने का संकेत करते हैं—

"ये वसिष्ठ कुल इष्ट हमारे पालागन कहि सखनि सिखावत।"[8]

'पालागन' के परिवर्तित रूप पांय लगने का उल्लेख भी सूरदास ने किया है। आज भी प्रत्येक ब्रज परिवार में गुरुजनों के पांव लगने की प्रथा प्रचलित है—

"देवकि माइ पाइ लागति हैं जसुमति मोहि पठाइ।"[9]

ग्रामीण परिवेश में जुहार शब्द का प्रयोग नमस्कार के अर्थ में किया जाता है। लोकजीवन का यह संबोधन मध्यकाल में एक पद्धति-विशेष का सूचक भी हो गया था। सामान्य प्रजा राजाओं के प्रति जुहार द्वारा ही सम्मान प्रदर्शित करती थी। अष्टछाप साहित्य में नंद-यशोदा की जुहार कहला भेजने का उल्लेख किया गया है—

"तुमको महर जुहार कह्यौ है पालागन नंदरानी।"[10]

रामकथा प्रसंग में अशोक वाटिका में सीता की पहचान कराकर आकाशवाणी द्वारा हनुमान से उन्हें जुहार करने को कहा गया है।

"सूर आकास बानी भई तबै यही बैंदहि है, करू जुहारा।"[11]

कंस को मारने के पश्चात् राजा उग्रसेन को परमानंददास के श्रीकृष्ण प्रजा के रूप में जुहार करते हैं—

"उग्रसेन बैठारि सिंहसन आयु जुहार कियौ।"[12]

अभिवादन में आदर-प्रदर्शन के अतिरिक्त ब्रजलोक में, व्यवहार में विनम्रता प्रदर्शन को महत्व दिया जाता था। शिष्टाचार का यह रूप कुशल-क्षेम पूछने के बाद अपनी बात कहने से व्यक्त होता था। कृष्ण द्वारा दुर्योधन की राजसभा में दूत बनकर जाने पर इस शिष्टाचार का पालन किया गया है और "पाँच गाउँ पाँचौ जननि किरपा करि दीजै"[13] कहकर विनम्रता का प्रदर्शन किया गया है। अर्जुन भी कृपा करने की बात कृष्ण को अपने पक्ष में लेने का अनुरोध करते समय करते हैं—

"अर्जुन कह्यौ जानि सरनागत कृपा करौ ज्यौं पूर्व करी।"[14]

सौजन्य और शालीनता दिखाने के लिए नंदरानी यशोदा देवकी को संदेश भेजते समय स्वयं को कृष्ण की धाय बतलाती हैं—

"संदेसौ देवकी सौं कहियौं
हौं तो धाइ तिहारे सुत की दया करत ही रहियौ।"[15]

देव संबोधन भी सामान्य व्यवहार में आदर के लिए प्रयुक्त होता था। ब्रजवासी नंद और यशोदा के लिए महर और महरि शब्दों के प्रयोग करते थे[16] "जो मुखिया अथवा नेता के परिचायक हैं।" इन शब्दों का प्रयोग सभी कवियों ने किया है इससे प्रमाणित होता है कि लोकजीवन में प्रयुक्त आदर-प्रदर्शन की शैली का प्रतिनिधित्व अष्टछाप साहित्य में किया गया है। एक-दूसरे से मिलने पर विनम्रता तथा सम्मान प्रदर्शन के लिए "हाथ जोड़ने" की रीति प्रचलित थी। दुर्योधन की सभा में कृष्ण पांडवों का संदेश हाथ जोड़कर सुनाते हैं—

"कर जोरे विनती करी दुरबल सुखदाई।"[17]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की प्रतिष्ठा का व्याख्याता है। अष्टछाप काव्य में लोक-संस्कृति के इस अंग को पर्याप्त महत्व दिया गया है। तत्कालीन ब्रज समाज में आयु और पद के साथ-साथ वर्ण भी सम्मान का भागी था। इसी कारण कम आयु वाले उच्च वर्ण के व्यक्ति को, अधिक आयु वाले उससे निम्न वर्ण के व्यक्ति झुक-झुक कर प्रणाम करते थे। आचार्य ब्राह्मण तथा ब्रह्मारियों के प्रति समाज का प्रत्येक व्यक्ति आदर प्रकट करता था। राजा तथा उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों का सम्मान भी आयु और वर्ण का भेद भुलाकर किया जाता था। आज भी ब्रज समाज में इन आचारों का पालन किया जा रहा है। आधुनिकता के आग्रह के कारण यद्यपि समानता का व्यवहार पारिवारिक जीवन में प्रवेश कर रहा है। परंतु अपनी संस्कृति से प्रेम करने वाले परिवार अभी भी परंपरागत लोकाचारों का पालन करने में हीनता का अनुभव नहीं कर रहे हैं।

अष्टछाप काव्य में पौराणिक प्रसंगों के अंतर्गत इस लोकाचार का पालन किया गया है। राजा बलि वामन का आदर-सत्कार उनके ब्रह्मचारी होने के कारण तथा द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण सुदामा का आदर ब्राह्मण होने के कारण करते हैं। ब्राह्मणों को पूज्य मानकर चरणोपोदक लेने की रीति आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है—

"देखि स्वरूप सकल कृष्णाकृति कीनी चरन जुहारी।"[1]

"कर जोरे हरि विप्र जानि कै हित करि चरन परवारे।"[2]

लोकाचार को निरूपित करने वाले प्रसंग अष्टछाप साहित्य में सीमित हैं। उपलब्ध सामग्री के आधार पर सामाजिक शिष्टाचार और लोकाचार के निम्न रूप निर्धारित किए जा सकते हैं—

सम्मानीय व्यक्तियों के लिए नमो, नमस्ते, नमन, नमस्कार आदि संबोधनों का प्रयोग किया जाता था। असाधारण व्यक्तित्व तथा लोक-कल्याण में संलग्न महापुरुषों की अभ्यर्थना इन्हीं शब्दों से होती थी। परब्रह्म श्रीकृष्ण की स्तुति वेद इसी प्रकार करते हैं—

"नमो नमस्ते बारंबार मधुसूदन गोविंद मुरार।"[3]

कृष्णदास ने गोवर्द्धन पूजा के संदर्भ में कृष्ण के लिए इन्हीं संबोधनों का प्रयोग किया है—

"नमो देवेन्द्र दर्पहर श्री मुरारी।
विदित अद्‌भुत चरित गिरिराज उद्धरन, गो गोप गोपीजन तापहारी।"[4]

नमस्कार का प्रयोग सामान्यतः पद और आयु में बराबर वालों के लिए किया जाता था। परंतु सूरदास ने धृतरराष्ट्र द्वारा अक्रूर के मुख से कृष्ण के लिए पैर पकड़ कर नमस्कार कहलाया है।

"नमस्कार मेरी कह्यौ जदुपति सौं परिकै पायं।"[5]

पूज्य व्यक्तियों के प्रति कायिक अभिवादन प्रचलित था। साष्टांग दंडवत प्रणाम इस अभिवादन की सर्वोत्तम विधि है। साष्टांग प्रणाम में शरीर के आठ अंगों सिर, हाथ, पैर, हृदय, आंख, जांघ, वचन और मन से धरती पर लेटकर प्रणाम किया जाता है, अशोकवाटिका में सीता को लेने के लिए आए लक्ष्मण को जाम्बवंत, सुग्रीव, विभिषण आदि दंडवत प्रणाम करते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"जामवंत सुग्रीव विभीषण करी दंडवत आइ।"

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूज्य व्यक्तियों को संबोधित करने के लिए पालागन, प्रणाम आदि शब्द प्रचलित थे। वनवास से अयोध्या पधारने पर श्रीराम अपने सखाओं से गुरु वशिष्ठ को पालागन करने का संकेत करते हैं—

"ये वसिष्ठ कुल इष्ट हमारे पालागन कहि सखनि सिखावत।"[8]

'पालागन' के परिवर्तित रूप पांय लगने का उल्लेख भी सूरदास ने किया है। आज भी प्रत्येक ब्रज परिवार में गुरुजनों के पांव लगने की प्रथा प्रचलित है—

"देवकि माइ पाइ लागति हैं जसुमति मोहि पठाइ।"[9]

ग्रामीण परिवेश में जुहार शब्द का प्रयोग नमस्कार के अर्थ में किया जाता है। लोकजीवन का यह संबोधन मध्यकाल में एक पद्धति-विशेष का सूचक भी हो गया था। सामान्य प्रजा राजाओं के प्रति जुहार द्वारा ही सम्मान प्रदर्शित करती थी। अष्टछाप साहित्य में नंद-यशोदा की जुहार कहला भेजने का उल्लेख किया गया है—

"तुमको महर जुहार कह्यौ है पालागन नंदरानी।"[10]

रामकथा प्रसंग में अशोक वाटिका में सीता की पहचान कराकर आकाशवाणी द्वारा हनुमान से उन्हें जुहार करने को कहा गया है।

"सूर आकास बानी भई तबै यही बैदहि है, करू जुहारा।"[11]

कंस को मारने के पश्चात् राजा उग्रसेन को परमानंददास के श्रीकृष्ण प्रजा के रूप में जुहार करते हैं—

"उग्रसेन बैठारि सिंहसन आयु जुहार कियौ।"[12]

अभिवादन में आदर-प्रदर्शन के अतिरिक्त ब्रजलोक में, व्यवहार में विनम्रता प्रदर्शन को महत्व दिया जाता था। शिष्टाचार का यह रूप कुशल-क्षेम पूछने के बाद अपनी बात कहने से व्यक्त होता था। कृष्ण द्वारा दुर्योधन की राजसभा में दूत बनकर जाने पर इस शिष्टाचार का पालन किया गया है और "पाँच गाउँ पाँचौ जननिन किरपा करि दीजै"[13] कहकर विनम्रता का प्रदर्शन किया गया है। अर्जुन भी कृपा करने की बात कृष्ण को अपने पक्ष में लेने का अनुरोध करते समय करते हैं—

"अर्जुन कह्यौ जानि सरनागत कृपा करौ ज्यौ पूर्व करी।"[14]

सौजन्य और शालीनता दिखाने के लिए नंदरानी यशोदा देवकी को संदेश भेजते समय स्वयं को कृष्ण की धाय बतलाती हैं—

"संदेसौ देवकी सौं कहियौ
हौं तो धाइ तिहारे सुत की दया करत ही रहियौ।"[15]

देव संबोधन भी सामान्य व्यवहार में आदर के लिए प्रयुक्त होता था। ब्रजवासी नंद और यशोदा के लिए महर और महरि शब्दों के प्रयोग करते थे[16] "जो मुखिया अथवा नेता के परिचायक हैं।" इन शब्दों का प्रयोग सभी कवियों ने किया है इससे प्रमाणित होता है कि लोकजीवन में प्रयुक्त आदर-प्रदर्शन की शैली का प्रतिनिधित्व अष्टछाप साहित्य में किया गया है। एक-दूसरे से मिलने पर विनम्रता तथा सम्मान प्रदर्शन के लिए "हाथ जोड़ने" की रीति प्रचलित थी। दुर्योधन की सभा में कृष्ण पांडवों का संदेश हाथ जोड़कर सुनाते हैं—

"कर जोरे विनती करी दुरबल सुखदाई।"[17]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्नेह-प्रदर्शन के लिए एक-दूसरे से गले मिला जाता है। इस रीति द्वारा प्रगाढ़ आत्मीयता का परिचय दिया जाता है। कृष्ण-सुदामा तथा लंका में विभीषण और हनुमान का मिलन इसी प्रकार का है—

"अंक माल दै मिले सुदामा अर्धासन बैठारे।"[18]
"राम भक्त निज जान विभीषण भेंटे हरि अकवार।"[19]

आदर तथा अभ्यर्थना के यह विविध प्रकार ब्रजलोक संस्कृति की उन्नत अवस्था के परिचायक हैं।

अतिथि सत्कार

भारतीय संस्कति की महत्वपूर्ण विशेषता अतिथि-सत्कार है। अचानक ही बिना किसी तिथि या कार्यक्रम के उपस्थित हो जाने वाला व्यक्ति ही अतिथि कहलाता है। प्राचीन काल से ही मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव के साथ ही "अतिथि देवो भव" की मान्यता भी समाज में प्रचलित रही है। अतः आतिथ्य सत्कार प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य माना गया है। सामान्य लोकजीवन में यह परंपरा आज भी विद्यमान है। अप्टछाप साहित्य के समय भी यह परंपरा विद्यमान थी इसका प्रमाण विविध प्रसंगों में मिल जाता है।

अतिथि के सत्कार के लिए रोली, अक्षत, दूब, दधि आदि मांगलिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक अतिथि का सत्कार करता है। राजा दशरथ के स्वागत में जनक मोतियों के चौक पुरवाते हैं तो कृष्ण जन्म का समाचार सुनकर घर आए पांडेजी का आतिथ्य नंद पैर धोकर करते हैं।[20] उद्धव के ब्रज आने पर गोपियां ब्रज की रीति के अनुसार शुभ पदार्थों को लेकर तिलक कर उनकी प्रदक्षिणा करती हैं—

"कंचन कलस दूब दधि रोचन लै वृंदावन आई।
मिलि ब्रजनारि 'तिलक' सिर कीनौ करि प्रदच्छिना तासु।"[21]

इसी प्रकार कृष्ण के आगमन पर आनन्दित सुफलक सुत द्वारा अतिथि सत्कार के विभिन्न विधानों का उल्लेख किया गया है—

"मिल्यौ सु आइ पाइ सुधि मग मैं बार-बार परि पाई।"
चरन परवारि धामिर जल सिर पर पुनि पुनि दृगनि लगाइ।"[22]

नंदभवन में ऊधो के आने पर गोपियां लोकजीवन की सामान्य से सामान्य बातों का जैसे कुशल-क्षेम आदि पूछने का पालन करती हैं—

"अर्घ्य आरती साजि तिलक दधि माथे कीन्यौ।
कंचन कलस भराइ और परिकरमा दीन्यौ।
गोप भीर आगें धरी पूछत हरि कुसलाति।
कुसल छेम बसुदेव कुशल देवै बलदाऊ।"[23]

विप्र गर्ग के आगमन पर नंद अपने पुण्य की सराहना करते हैं—

"विप्र जू पावन पुन्न हमारे।
जो जिजमान जानि कै मो कौ आपु इहां पग धारे।"[24]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूरसागर में वरुण लोक जाने पर वरुण द्वारा कृष्ण के आतिथ्य का वर्णन किया गया है—

"पांटबर पांवड़े डसाये, महलनि बंदनवार बंधाए।
रत्नखचित सिंहासन धरयौ तापर कृष्नहिं लै बैठारयौ।"[25]

अपने परिचितों को विभिन्न अवसरों पर उपहार तथा शुभकामनाएं भेजना भी लोक-प्रचलित आचार है। राजा प्रजा के बीच भी उपहारों का आदान-प्रदान चलता है। कंस के लिए नंद कमल-पुष्प भेजते हैं तो कंस नंद के लिए सिरोपांव—

'दियो सिरपांव नृपराव ने महर कौं आपु पहिरावने सब दिखाए।"[27]

प्रजा के अतिरिक्त अन्य राजा भी रामजन्म पर दशरथ को शुभकामना स्वरूप रत्न, मणि आदि का टीका भेजते हैं—

"देस दंस तें टीको आयौ रतन कनक मनि हीर।"[28]

परमानंद ने पुरवासियों के पान-फूल ले जाने का उल्लेख इस प्रसंग में किया है—

"पान-फूल चाबो चंदन बहु उपहार लोग लै आयो।'[29]

शुभकामना व्यक्त करने के लिए परमानंदजी की यशोदा दही-रोली का टीका लगाकर लोकाचार का पालन करती हैं—

"दधि रोचन को तिलक किया सिर रूप सहित सुपारी पांच।
परमानंद स्वामी चिरजीवहु तुम जिन लागहु ताती आंच।'[30]

मांगलिक अवसरों तथा पर्वों पर प्रचलित लोकाचारों का उल्लेख संस्कारों तथा लोकाचार लोकमानस का प्रतिनिधित्व करते हैं।

लोकविश्वास तथा लोक मान्यताएं

जातीय जीवन का स्वरूप विभिन्न विश्वासों, मान्यताओं और वर्जनाओं द्वारा निर्मित होता है। इसी कारण प्रत्येक देश की लोक-संस्कृति दूसरे से भिन्न होती है। भारतीय संस्कृति में विश्वासों की परंपरा दीर्घकालीन है इसलिए किसी भी युग का काव्य इनके प्रभाव से बच नहीं सका है। फिर अष्टछाप का तो उद्देश्य ही अपने को लोकजीवन से जोड़ना था। इसलिए उसमें लोक-संस्कृति के विश्वासों का सम्यक् निरूपण किया गया है। विश्वासों की परंपरा ही सांस्कृतिक तत्वों का रूप ग्रहण कर लेती है। इन विश्वासों के अंतर्गत पौराणिक विश्वास, सामाजिक विश्वास, अधंविश्वासों की चर्चा की जाएगी।

पौराणिक विश्वास

पुराणों और उपनिषदों में भारतीय संस्कृति के स्रोत निहित हैं। इसलिए अष्टछाप कवियों ने पुराणों के प्रति आदर प्रगट करते हुए पौराणिक मान्यताओं और विश्वासों का निरूपण किया है। इनके अंतर्गत अवतारों का विवेचन, राम और कृष्ण अवतारों का वर्णन, सीता और राधा संबंधी विचार, अवतार-लीलाओं का देवताओं द्वारा देखना, आकाशवाणी, पुष्प-वर्षा और पौराणिक पशु-पक्षी आदि विषय आते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अवतारवाद

श्रीमद्‌भागवत के अनुसार अवतारों की संख्या असंख्य है—

"अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजा।
यथाविदासिनः कुल्यः सरसः स्युः सहस्रशः।"[31]

अर्थात् जैसे सरोवर से निकलने वाली नालियाँ अनेक हैं वैसे ही ईश्वर के अवतार भी असंख्य हैं। सूरसागर में तथा सारावली में सूरदास ने इसी भावना को प्रगट किया है—

"भूमि रेनु कोउ गनै नछत्रनि शनि समुझा वै।
कह्यौ चहै अवतार अंत सोऊ नहिं पावैं।"[32]
"तब हरि कह्यौ जन्म मेरे बहु बेद न पावै पार।
भुव की रज नभ के सब तारे तितने हैं अवतार।"[33]

भागवत् पुराण में बाईस अवतारों का उल्लेख हुआ है। सनकादिक, सूकर, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष, ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कच्छप, धन्वतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध और कल्कि।"[34]

अष्टछाप काव्य में सूरदास के अतिरिक्त और किसी ने अवतारों की संख्या पर विचार नहीं किया है। सूर ने दस प्रमुख तथा चौदह अन्य अवतारों का वर्णन किया है। भागवत में मोहिनी और बलराम की गणना भी अवतारों में है, परंतु सूरदास ने इससे असहमति प्रगट करते हुए इन्हें अपने अवतारों में सम्मलित नहीं किया। हंस, मनु, ध्रुव और हयग्रीव की चर्चा करके अन्य पुराणों का आधार लेकर चौबीस अवतारों की पुष्टि की है—

"गच्छ कच्छ बाराह बहुरि नरसिह रूप धरि।
वामन बहुरौ परसुराम पुनिराम रूप करि।
बासुदेव सोई भयो बुद्ध भयौ पुनि सोइ।
सोइ कल्की हो रहै और न द्वितीया कोइ।
सनकादिक पुनिव्यास बहुरि भए हंस रूप हरि।
पुनि नारायन रिषभदेव नारद धन्वंतरि।
दत्तात्रेय अरू पृथु बहुरि जज्ञपुरुष बपुधार।
कपिल मनु हयग्रीव पुनि कीन्हौ ध्रुव अवतार॥"[35]

सूरदास ने राम और कृष्ण को प्रमुख दस अवतारों में गिनकर उन्हें परब्रह्म का अवतार माना है और भू-भार उतारना इस अवतार का प्रमुख लक्ष्य माना है। अपने आराध्य कृष्ण के अलौकिक गुणों का विशद वर्णन किया है। पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण को सूरसागर में विभिन्न नामों से संबोधित किया गया है। जो उनके गुणों और वैशिष्ट्य को प्रगट करते हैं। जैसे अशरणशरण, अविगत, अविनासी, उदार, उदधि, करुणामय, करुणानिधान, कलानिधान, जगत् गुरु, जगत् पिता, जगदीश, जगन्नाथ, जगपाल, जानसिरामनि, दीनबंधु, दीनानाथ, पुरुषोत्तम, मधुसूदन, श्रीपति, सकल गुन सागर, सुखसागर आदि। पुराणों में भी इन्हीं संबोधनों का प्रयोग परब्रह्म के लिए हो रहा है—

"अविगत अविनासी पुरूषोत्तम हांकत रथ में आन।" (सा 1.269)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"सूरदास करूनानिधान प्रभु जुग जुग भक्त बढ़ाए।"(सा. 1 .13)
"कलानिधान, सकल गुन सागर जुरू गुरु कहां पढ़ाए हो।"(सा. 1.7)
"जगतपिता जगदीस जगतगुरु निज भक्तिनि की सहत ढिठाई।"(सा. 1.3)

हरि जू की ओती बनी[36] पद में सूरदास ने श्रीकृष्ण के विराट रूप की स्थापना की है। अन्य कवियों ने भी कृष्ण को परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। उन्हें कमलाकांत, कमलापति, गोविंद, जगन्नाथ, त्रिभुवनपति, दीनन-दुखहारी, पुरुषोत्तम श्रीपति आदि कहा है—

"गोविंद धेनु चारें घर आवै। गोविंद करत मनोहर गान।[37]
परमानंद श्रीपति जस अधम भले विसरावे।"[38]
"कमलापति, त्रिभुवन पति नायक
भुवन चतुर्भुज नायक सोई [39क]
"वसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म बैकुण्ठ निवासी।" [39ख]

कुंभनदास के कृष्ण परब्रह्म के तीनों कार्यों का उल्लेख कर स्वयं परब्रह्मा होने की घोषणा करते हैं—

"ब्रह्मरूप उतपति करौं रूद्र रूप संहार।
विष्नु रूप रच्छा करौं सो मैं हो नंदकुमार।" [40क]

परमानंद ने परब्रह्म कृष्ण की शक्ति का परिचय देते हुए तत्कालीन मुगल-व्यवस्था का चित्र भी प्रस्तुत किया है। पौराणिक मान्यताओं का प्रभाव जैसे ब्रह्मा, शिव, इंद्र का ब्रह्मा के समक्ष उपस्थित रहने, लक्ष्मी के पांव दबाने और ऋद्धि- सिद्धि की सेवा करने के उल्लेख से स्पष्ट है—

"सांचो दिवान है री कमल नयन।"
जाके छत्र अकास सिंघासन वसुधा अनुचर सहस अठासी।
जाके ब्रह्मऊ हरि सखा उमापति सुरपति पान खवावै।
नारद तुम्भर की गति गावै मारूत चंबर ढुरावै।
जाकै कमलादासी पाय पलोटें रिधि सिधि छार बुहारै।
दफ्तर लिखै सारदा गनपति रवि ससि न्याउ निवारै।"

राम और कृष्ण की एकता, सूरदास ने देवताओं के मुख से स्तुति करते समय प्रतिपादित की है। जिसमें एक पद में राम तथा दूसरे पद में कृष्ण की स्तुति की गई है—

"रिषि-मष-त्रान ताड़का तारक। ब्रजबसि तातवचन प्रतिपालक।
काली दवन केसि कर पातन। अध अरिष्ट धेनुक अनुघातन।
रघुपति प्रबल पिनाक विभंजन, जगहित जनक सुता मनोरंजन।
गोकुलपति गिरिधर गुन सागर गोपी खन रास रति नागर।"[41]

ब्रह्म की परम शक्ति का अवतार मानकर सीता तथा राधा को भी वे जगत् जननी, जैसे समान संबोधनों से संबोधित करते हैं—

"डासि कै तृन भूमि सोवत द्रुमनि के फल खाइ।
जगत जननी करी बारी मृगा चरि चरि जाइ।"[42]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"जगनायक जगदीस पियारी जगत जननि जगरानी।
नित बिहार गोपाल लाला संग वृंदावन रजधानी।"[43]

पुराणों में परब्रह्म के अवतार लेने पर देवता उनकी प्रत्येक लीला का आनंद लेने विमानों पर चढ़कर आते हैं। हर्ष से पुष्प-वर्षा करते हैं, जयघोष करते हैं, नगाड़े व दुंदभी बजाते हैं और कृष्ण के संपर्क में आए हर जड़ और चेतन प्राणी के भाग्य को सराहते हैं। राम के धनुष भंग करने तथा विवाह पर इसी प्रकार देवता उल्लास व्यक्त करते हैं—

"सूर भयौ आनंद नृपति मन दिवि दुन्दुभी बजाए।"[44]

चतुर्भुजदास ने रासलीला पर व्योम विमानों के मुग्ध होने का तथा परमानंददास ने देवताओं के विमान पर चढ़कर पुष्प बरसाने का वर्णन किया है—

"चतुर्भुज प्रभुवन-विलास मोहे सब सुर अकास,
निरखि थक्यो चंद रथहि पच्छिन नहिं खांचे।"[45]
"चढ़ि विमान सब देवता बरखन री वे लागे फूल।"[46]

ब्रज के लोग, बंसीवट, जमुनातट आदि देवताओं की दृष्टि में धन्य हैं कि उन्हें कृष्ण का सामीप्य मिला है—

"धनि ब्रज लोग, धन्य ब्रज बाल बिहरत रास गुपाल।
णनि बंसीवर धनि जमुनातट धनि धनि लता तमाल।
सब तैं धन्य धन्य वृंदावन जहां कृष्ण कौ बास।"[47]

देव वनिताएँ भी ब्रजवास की इच्छा प्रगट करती हुई अपने देववधू होने पर दुखी होती हैं—

"हमकौ विधि ब्रज वधू न कीन्हीं कहा अमरपुर बास भऐं।
वृंदावन द्रुम लता हूं जियै करता सौ मांजियै चलिये।
यह कामना होइ क्यों पूरन दासी है बरू ब्रज रहियै।"[48]

अष्टछापी कवियों ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवों में आस्था व्यक्त की है और उन्हें परब्रह्म का रूप माना है। वल्लभाचार्य के अनुसार ये तीनों देव अक्षर ब्रह्म के गुणावतार हैं।[49] ब्रह्मा, शिव और इंद्र से संबंधित तीन पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख अष्टछाप काव्य में हुआ है। ब्रह्म ब्रज के वत्स तथा गोपों का हरण कर लेते हैं तब कृष्ण स्वयं को उन वत्सों और गोपों के रूप में प्रगट करके ब्रह्मा के गर्व का नाश करते हैं—

"ब्रह्मा बालक बच्छे हरे।
आदि अंत प्रभु अंतर जामी मनसा तैं जु करे।
सोइ रूप वै बालक गोसुत गोकुल जाइ भरे।
एक बरस निसि बासर रहि संग काहु न जानि परे।"[50]

अपने अपराध की गुरुता जानकर वे क्षमा-प्रार्थना करते हैं और "माधौ मोहि करौ वृंदावन रेनु"[50] की कामना करने पर ही शांति पाते हैं।

शिवमोह के प्रसंग में शिव द्वारा ब्रह्मा से मोहिनी स्वरूप दिखाने का आग्रह किया जाता है। और मोहिनी रूप देखने पर विचलित होकर पश्चाताप करने पर भगवान द्वारा प्रगट होकर सांत्वना दी जाती है।[52]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन दोनों प्रसंगों का उल्लेख केवल सूरदास ने किया है। परंतु देवेन्द्र के गर्वहरण की लीला गोवर्द्धन पूजा के प्रसंग में प्रायः सभी कवियों ने की है इस प्रसंग द्वारा वैदिक देवता इंद्र के स्थान पर कृष्ण द्वारा आभीर संस्कृति के उपकारक गोवर्द्धन को देव पद पर प्रतिष्ठित किया गया है वास्तव में यह दो संस्कृतियों की विरोधी मान्यताओं का संघर्ष था। जिसमें लोक-संस्कृति और लोक-देवता की विजय घोषित की गई हैं। गोवर्द्धन के रूप में कृष्ण ही भोग आरोगते हैं और इंद्र उन्हीं की शरण में आता है।

"जुग गुन नीति त्रिगुन बुधि व्यापी, सरन चल्यौ सुरपति अकुलाई।"[53]
"अब न छाँडौ चरण कमल महिमा मै जानी।
सुरपति मेरो नाम धर्यो लोक लोक अभिमानी।"[54]
"जीत्यौ व जीत्यौ जसोदा कौ नंदन मथवनि वृष्टि निवारी।
इंद्र खिसायौ जोरि कर विनवै मैं अपराध कियौ भारी।"[55]
"छाँडयों सब अभिमान अमरपति अपनो बिगारू जिय विचारयौ।
कुंभनदास प्रभु सैल धरन के आइ परयौ पाइनु हारयौ।"[56]
"चतुर्भुज प्रभु गिरिधारी ब्रज राशि लियौ,
इंद्र खिसाइ आइ परयौ चरननि तर।"[57]
"लै सचिपति कामधेनु को करि अभिषेक प्रभु पांइ परयौ।"[58]

इन कथा प्रसंगों के अतिरिक्त कुछ ऐसे पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख भी किया गया है। जिनमें सत्य का अंश होना विवाद का विषय है और यह शुभ पौराणिक कल्पनाएँ हैं। जैसे पृथ्वी का शेषनाग और कच्छप की पीठ पर स्थित होना।

"सेस के सीस लागे कमटपीठी सौं धंसे गिरिवर सबै तासु मारा।"[59]
प्रलय तथा अक्षयवट पर शिशुरूप भगवान का अँगूठा चूसना,
"बढयौ वृच्छ वट सुर अकुलाने गगन भयौ उत्पात।
महाप्रलय के मेघ उठे करि जहां वहां आघात।"[60]

पूर्णचंद्र को देखकर सिंधु भी लहरों में उफान आना, चंद्रमा के रथ में मृगों का जूता होना, चंद्रमा को राहु द्वारा ग्रसा जाना, आदि।

"थाक्यौ, मानौ मृग मोहै नाहिन होत चंद्र कौ ढरिबौ।"[61]
"ऐसी भांति जानकी देखी चंद्र गह्यौ ज्यों राहु।"[62]

लंका-युद्ध के पश्चात् देवेंद्र द्वारा अमृतवर्षा से भालू कवि तथा राम-पक्ष के वीरों का जीवित हो जाना—

"सुरपतिहि बोले रघुबीर,
अमृत की वृष्टि रन खेत पर करौ सुनत तिन अमिय भंडार खोले।
उठे कपि भालु तत्काल जै जै करत असुर भए मुक्त रघुपति निहारे।"[63]

इन विश्वासों का उल्लेख सूरदास ने ही विशेष रूप से किया है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक शुभ अवसर पर देव, गंधर्व तथा किन्नर आदि के गायन व नृत्य का उल्लेख भी अष्टछाप हुआ है—

"देवनि दिवि दुंदुभी बजाई सुनि मथुरा प्रगट जादव पति।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विद्याधर किन्नर किलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन नाचति सब सुर नारि रसिक अति।"[64]

आकाशवाणी तथा अनाहत वाणी भी पौराणिक मान्यता है। अशोक वाटिका प्रसंग में आकाशवाणी द्वारा ही हनुमान सीता को पहचानते हैं और अनाहत वाणी द्वारा कंस देवकी को विदा करते समय उसके आठवें पुत्र द्वारा अपनी मृत्यु की सूचना प्राप्त करता है—

"सूर अकासबानी भई तबै तंह यहै बैदोहि है जुहारा।"[65]
"समदत भई अनाहत बानी, कंस कान झनकारा।
याकी कोखि औतरे जो सुत करे प्रान परिहारा।"[66]

इंद्र का ऐरावत हाथी, कामधेनु, गरुड़, तक्षक, वासुकि, कल्पवृक्ष, उच्चैश्रवा घोड़ा और चिंतामणि की कल्पनाओं में भी पौराणिक विश्वासों का हाथ है और अष्टछाप में इन सबको स्वीकार कर लिया गया है। सूरदास ने विभिन्न देवताओं के वाहनों तथा अष्टसिद्धि, नवनिधि का वर्णन भी पौराणिक विश्वासों के आधार पर किया है।

सामाजिक विश्वास तथा मान्यताएँ

ब्रज समाज में प्रचलित अनेकों मान्यताओं तथा विश्वासों का अष्टछाप काव्य में वर्णन किया गया है। इनके द्वारा लोकमानस को अधिक निकटता से देखा और परखा जा सकता है। लोकजीवन में परंपरा से चलते आ रहे इन विश्वासों के प्रति प्रगाढ़ आस्था है। भारतीय संस्कृति के अनेकों तत्व इस लोकमानस द्वारा ही पीढ़ी आगे चलते जा रहे हैं। सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सुरक्षित रखे जा रहे हैं। ऐसे विश्वासों में प्रमुख कुछ विश्वास निम्नलिखित हैं—

भाग्यवाद

भारतीय जनमानस की भाग्य में अटूट आस्था है। वह प्रत्येक कार्य को भाग्य के वशीभूत मानकर सुख-दुःख को सहन करता है। भाग्य के प्रति यह आस्था अनुभव से उत्पन्न हुई है। जब अनेकों प्रयत्न करने पर भी इच्छित सफलता नहीं मिलती और तब मनुष्य को अपनी सीमित शक्ति तथा ईश्वर की असीम शक्ति का आभास होता है। सूरदास ने इसी मत को अभिव्यक्त करते हुए समस्त कार्यों के पीछे गोपाल का हाथ माना है।

"करी गोपाल की सब होय।
जो अपनौं पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोइ।
साधन मंत्र जंत्र उद्यम बल ये सब डारौ धोइ।
जो कुछ लिखि राखी नंदनंदन मेटि सकै नहिं कोइ।
दुख सुख लाभ अलाभ समुझि तुम कतहि मरत हौ रोइ।"[67]

इसी प्रकार श्री रघुनाथ की इच्छा के बिना साधक, सिद्ध और मुनियों को भी हार माननी पड़ती है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"होत सो जो रघुनाथ ठटे।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पचि पचि रहैं सिद्ध साधक मुनि तऊन बढ़ै घटै ।"[68]

"भावी काहू सौं न टरै"[68] कहकर सूर ने भाग्यवाद में पूर्ण आस्था का परिचय दिया है। भाग्यवाद में विश्वास, सफल हो जाने पर भक्त को अहंकार से मुक्त रखता है (जो गोविंद को प्रिय नहीं है।) और असफल होने पर उसे दुःख या कष्ट सहने की क्षमता प्रदान करता है। निराशा तथा मृत्यु जैसे दुःख भी भाग्यवाद के सहारे सरलता से झेला जा सकता है। अशोक वाटिका में सीता को यही समझाते हुए निसिचरी कहती है—

"विधि संजोग टरत नहिं टारैं वन दुख देख्यौ आनि ।"[70]

इंद्र की पूजा का निषेध करते हुए स्वयं गोविंद स्वामी के कृष्ण ब्रजवासियों से कहते हैं—

"कर्म लिखी सोई पुनि हैं सुरपति आइ कहा तुम दैहे ।"[71]

भाग्य भी प्रबलता का आख्यान इसी प्रकार कई स्थानों पर किया गया है, जैसे—

"होनहार होत है नहिं जात मिटायौ ।[72]
भाग्य बिबिस सुख दुख सकल जग जो वहु हो ।"[73]
"पुनि पुनि बोधत कृष्ण लिखे मेटे नहि कोई ।"[74]

भाग्यवाद द्वारा मनुष्य की चिंतन सीमा से परे एक अदृश्य सत्ता का बोध कराना है।

कर्म तथा पुनर्जन्मवाद

भारतीय लोकमानस में दर्शन के यह सिद्धांत भाग्यवाद की ही तरह गहराई तक धंसे हुए हैं। जीवन की उपलब्धियों अथवा अनुपलब्धियों के संबंध में मनुष्य की जिज्ञासा को यद्यपि भाग्यवाद के सहारे संतुष्ट करने का प्रयास किया गया है परंतु असंतुष्ट रहने की स्थिति में कर्मवाद के आधार पर भी ईश्वरीय सत्ता की असीम शक्ति का परिचय दिया गया है। "पाप पुण्य कौ फल सुख दुख है"[75] कहकर समाज में एक स्वस्थ वातावरण बनाने के लिए प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों का उत्तरदायी ठहराया है। इस मान्यता को स्वीकार करके वह अपने दुःख का कारण किसी दूसरे मनुष्य को न मानकर ईर्ष्या की भावना से दूर रहता है, साथ ही अच्छे कार्य करने को तत्पर होता है कि भविष्य में कष्ट न उठाने पड़ें। कर्म का यह सिद्धांत एक जन्म तक ही नहीं अनेक जन्मों तक मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ता और पुनर्जन्मवाद का कारण बनता है। अष्टछाप साहित्य ने लोकमानस में पैठे इस विश्वास को और दृढ़ बनाया है। उनका विश्वास है कि प्रकृति के नियम की तरह मनुष्य भी जैसे कर्म करेगा वैसे ही अच्छे या बुरे फल भी प्राप्त करेगा। बबूल को बोने के वाद दाख को प्राप्त नहीं कर सकेगा—

"जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिए कर्मन भोग अभागे ।
बोवत बबुर दाख फल चाहत जोवत है लागे ।"[76]

कर्मवाद का सिद्धांत विपरीत परिस्थितियों में मनुष्य को ढांढस बंधाने में सहायक होता है और वह यशोदा की तरह अपने पुण्यों के तिरछे हो जाने को स्वीकार कर लेता है—

"यह अक्रूर क्रूर कृत रचिकै तुमहिं लेन है आयौ ।
तिरछे भए करमकृत पहिले विधि यह ठाठ बनायौ ।"[77]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि लोक मानस भाग्य से भी पहले अपने कर्मों का विश्लेषण सुख-दुःख के संदर्भ में करने लगता है। कृष्ण जैसे पुत्र के जन्म को भी कवियों ने ब्रजवासियों के पुण्य या शुभ कर्मों का प्रभाव माना है—

"कौन पुन्य तप कीने नंदजू कहे न आवै पार।
परमानंद प्रभु बैकुण्ठ जाके ब्रज लीनो अवतार।"[78]

परमानंद की की गोपियां कृष्ण की प्राप्ति पूर्व संचित पुण्यों का फल ही मानती है—

"पूरब संचित सुकृत रासि फल श्रीपति बांह गही।"[79]

कोई भी मनुष्य किसी दूसरे के कर्म का फल नहीं भोग सकता, न ही उसमें भाग्य के दुख-सुख को झेल सकता है अपने कर्मों का फल प्रत्येक को स्वयं ही भोगना होगा लोक-संस्कृति के इस विश्वास को परमानंददास ने व्यक्ति किया है—

"अपने करम साक्षी नहीं जो त्रिभुवन मानौ।
परमानंद अंतर दसा जगजीवन जानौ।"[80]

कर्म के अनुसार ही मनुष्य को अगला जन्म मिलता है और कर्मों के अच्छे-बुरे फल को भुगतने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है, यह पुनर्जन्म की मान्यता भी लोकजीवन में प्रचलित है। चौरासी लाख योनियों की संकल्पना इसी सिद्धांत पर आधारित है। सर्वश्रेष्ठ योनि मनुष्य योनि मानी गई है और इसी में पुण्य करके मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य अष्टछाप साहित्य ने प्रस्तुत किया है। कर्मों के आधार पर विभिन्न योनियों में भटकने का उल्लेख उन्होंने किया है—

"जिहिं जिहिं योनि जन्म धार्यौ बहु जोर्यौ अघ कौ भार।"[81]

"किते दिन हरि सुमिरन बिनु खोए।
परनिंदा रसना के रस करि केतिक जनम बिगोए।"[82]

"पूरब जन्म सुकृत फल पायो अति पवित्र मानुषावतार।
पाप पुण्य जातै चीन्है परंतु है। उपजत ब्रह्म ज्ञान अतिसार।"[83]

भाग्यवाद, कर्मवाद और पुनर्जन्मवाद का समन्वित प्रभाव ब्रज के जनमानस पर है और उसी के अनुसार मनुष्य योनि प्राप्त कर सुकर्म करने की प्रेरणा अष्टछाप में दी गई है। भाग्य पर विश्वास करके हाथ पर हाथ रखकर बैठने की शिक्षा अष्टछापी कवियों ने नहीं दी है। अपितु अपने आराध्य कृष्ण के समान संतत कर्मशील रहकर सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा उन्होंने समाज को दी है। समय की माँग भी तत्कालीन परिस्थितियों में एक कर्मशील समाज की संरचना थी।

ज्योतिष में विश्वास

भारतीय संस्कृति में ज्योतिष तथा ग्रहों में विश्वास किया जाता है और प्रत्येक शुभ अवसर पर इनकी गणना द्वारा ही कार्य का प्रारंभ किया जाता है। अनिष्ट के निवारण के लिए ग्रहों की शांति आदि उपाय भी किए जाते हैं। सामान्य जीवन के एक अंग के रूप में इन विश्वासों का उल्लेख अष्टछाप में हुआ है। परमानंददास कृष्ण के जन्म से ही प्रत्येक संस्कार पर शुभ दिन की खोज करते हैं। अन्नप्राशन के तथा कनछेदन के अवसर पर शुभ दिन का उल्लेख उन्होंने किया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है—

"सुदिन सवारों सोधिके लालजू भोजन कीजै।[84]
"गुरूबल तिथिबल नच्छत्र वार बलि सुभधरी विचार लीजै।"[85]

ज्योतिषी को हाथ दिखाने तथा उसका फल के सुनने के लिए भी यशोदा लालायित रहती है गोकुल में पंडित के आने की बात सुनकर वे उसे बुलाती है। और कृष्ण का हाथ दिखती हैं—

"पांय पखरि पूजि अंजुली ले तब द्विज पै मांग्यौ अनुशासन
"लोचन चिन्ह होइ थे स्त्रीपति उदरदाम पावन सुभवंदन।"[86]

सूरदास ने भी अन्नप्राशन शुभ दिन सोधि कर ही कराया है।

"विप्र बुलाइ नाम लै बूझयौ रासि सोधि इक सुदिन धरायौ।
आछो दिन सुनि महरिजसोदा सखिनि बोलि सुभगान करयौ।"[87]

आशीवर्चन या स्वस्ति वाचन भी प्रत्येक शुभ कार्य का अंग है। इसलिए लोकमानस में यह विश्वास भी कृष्ण के करवट लेने और नामकरण आदि संस्कारों के समय व्यक्त हुआ है—

"बिप्र बुलाय रचस्ति वाचन करि रोहिनि नैन सिरानी।"[88]
"तनिक स्वस्ति वाचन करि लीजै लरिकन कछू नाउँ धरि दीजै।"[89]

भूत-प्रेतादि से संबंधित विचार भी अष्टछाप में संकेत रूप में अभिव्यक्त किए गए हैं। शिक्षित तथा सभ्य समाज इन मान्यताओं पर विश्वास नहीं करता, परंतु लोकमानस करता है और इसके निवारण के लिए प्रयलशील भी रहता है। सूरदास ने वैराग्य के पद में मृतक की अंत्येष्टि न होने पर उसके भूत बनने का विश्वास प्रगट किया है—

"जादिन मन पंछी उड़ि जैहै।
घर के कहत संबारे काढ़ो भूत होइ धरि खैहे।"[90]

नंददास ने रूपमंजरी के मूर्छित होने का कारण उस पर किसी छाया का प्रभाव बताया है क्योंकि वह घर से दूध-भात जैसी सफेद चीज खाकर आई है। जिस पर भूत की छाया जल्दी पड़ती है—

"कह जानौं कछु छाया पाई दूध भात घर खाइ ही आई।"[91]

अष्टछाप काव्य में कृष्ण का उल्लेख "भूतन के भूतन धरि मारे"[92] रूप में हुआ है। और इस प्रकार कृष्ण में विश्वास रखने से प्रेत बाधाओं से मुक्त होने की धारणा प्रकट की है। लोक का आदर करते हुए इस मान्यता का वर्णन तो किया है पर उसे स्वस्थ समाज के लिए अनावश्यक भी माना है।

अंधविश्वास

लोकमानस में कई विश्वास ऐसे भी हैं जिन्हें अंधविश्वास की संज्ञा दी जाती है और तार्किक बुद्धि वाले शिक्षित व्यक्ति उन पर विश्वास नहीं करते हैं। अष्टछाप कवियों ने लोकजीवन के यथार्थ चित्रण के लिए इन सब अंधविश्वासों का वर्णन किया है। आज भी लोकमानस की इनमें पूर्ण आस्था है इनके विवेचन को सुरक्षित रखने की दृष्टि से इनका परखन लोक-संस्कृति में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आवश्यक है। इनमें से प्रमुख हैं नजर, राइ-नोन उतराना, तिनका तोड़ना, निछावर, पानी उतारकर पीना, जादू-टोना, सयानों से हाथ फिराना और मंत्र-तंत्र।

नजर तथा डिठौना

नजर लगने का संबंध भारतीय समाज में माँ से है। हर माँ अपने बच्चे के स्वास्थ्य के विषय में चिंतित रहती है। और उसे अनमना पाकर लगी नजर उतारने के लिए तत्पर हो जाती है। बिना किसी कारण के बच्चे के रोने और दूध आदि न पीने का कारण भी नजर ही समझा जाता है। अष्टछाप के तो आराध्य ही बाल कृष्ण हैं। इसलिए उन्हें नजर से बचाने के लिए सभी संभव प्रयास किए गए हैं। मुख्य उपाय काला डिठौना लगा देना है। जिससे बुरी नजर वाले व्यक्ति की दृष्टि का प्रभाव समाप्त हो जाता है।[93] सूरदास ने माँ के इस सशंकित हृदय का सशक्त चित्र प्रस्तुत किया। यशोदा नजर उतारने के लिए राइ-नोन उतारकर चंद्रमा की आरती उतारती हैं और कुलदेवताओं को प्रणाम करती हैं—

"झझकि उठयौ सोवत हरि अब हीं कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति।
खेलत में कोउ दीठि लगाई लै लै राई लौन उतारते।
सांझहि तैं अतिहीं बिरू झानौ चंदहि देखि करी अति आरति।"[94]

परमानंद की यशोदा भी कृष्ण की हर लीला पर नजर लगने से बचाने के लिए राई-नोन उतारती हैं और नजर लगाने वाली को निसिचरी भी कहती हैं—

"राई लौन उतारति बारति है होत सकल अंग प्रीति।"[95]
"रसन दसन धरि बाल कृष्ण पर राई-लौन उतारै।
काहू निसिचारी दृष्टि लगाई लै लै अंचर झारै।"[96]
"ले उछंग मुख निरखन लागी राई लौन उतारे री।
कौन निरासी दृष्टि लगाई लै लै आंचल झौरे री।"[97]

सामान्यतः माताएँ किसी के सामने बच्चे को खाना या दूध नहीं देतीं इसलिए सूरदास ने भी नजर के भय से यशोदा के मुख से यही प्रगट किया है—

"बाहरि जानि कबहूं कछु खैये डीठि लगेगी काहु।"[98]

सूरदास ने राधा की माता कीर्ति को भी इस विश्वास से ग्रसित बताया है—

"निसि के उनींदे नैन जैसे रहे ढरि ठरि।
की धौ कहुं प्यारी कौ लागी टटकी नजरि।"[99]

नंददास ने रूपमंजरी को रूप के कारण नजर लगने का उल्लेख किया है और अपनी ही नजर न लगने देने के कारण सखी द्वारा दर्पण भी रूपमंजरी को न दिखाने का वर्णन किया है—

"छिन छिन मांहि दिष्टि है जाई, छिन नीकी छिन ही मुरूझाई।
दरपन देखन दैउं न सौं ही डरौं अपनी डीठि तैं हौं ही।"[100]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

डिठौना बालक या प्रिय पात्र को नजर से बचाने का मुख्य साधन हैं इसलिए शृंगार के

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पश्चात् काला टीका या बिंदु जरूर लगा दिया जाता है—

"लटलटकनि मोहन मसि बिंदु का तिलक भाल सुखकारी।
माई मोरिहिं दीठि न लागै ताते। मसि बिंदा दियौ भ्रूपर।"[101]

परमानंददास ने काजर तिलक का उल्लेख किया है—

"काजर तिलक कंठ कठुला पुनि पीतांबर का चोलना।"[102]
"काजर ले बिंदु का दियो ब्रजजन मुसकैया।"—[103]

आज भी माताएँ बच्चे के काजल डालने के पश्चात् उसके भाल के ऊपर उसी काजल की बिंदी उँगली से लगाती हैं। नजर उतारने के लिए राई और नमक का प्रयोग किया जाता है। वष्राभूषण पहनाने के बाद काली और सफेद दोनों वस्तुओं को उतारने से (सिर से पैर तक) नजर लगने का भय भी समाप्त हो जाता है। इसके उदाहरण पीछे दिए जा चुके हैं।

तिनका तोड़ना

तिनका तोड़ने के पीछे विश्वास है कि प्रियपात्र के सभी संकट तथा अनिष्ट उस तिनके के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। सारावली में नंद-यशोदा तथा सूरसागर में यशोदा और रोहिणी कृष्ण को कटोरे में दूध पीते देखकर तृन तोड़ती हैं—

"निरखि निरखि दम्पति नेत्रनि सुख तोरि तोरि तृन डारे।"[104]
"औटयौ दूध कपूर मिलायो प्यावत कनक कटोरे।
पीवत देखि रोहिनी जसुमति डारति हैं तृन तोरे।"[105]

परमानंददास ने रास प्रसंग में तृन का उल्लेख किया है—

"बरहा मुकुट चरन तट आवत धरे भुजन में भामिनी भारी।
आलिंगन चुंबन परिरंभन परमानंद डारत तृन तोरी।"[106क]
"परमानंद प्रभु लोग हसन दें लोक वेद तिनुका सो तोरयौ।"[106ख]

पानी उतारकर पीना

विपत्तियों से बच जाने पर ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिए पानी पीने में यह भावना भी रहती है कि संतान के रोग-शोक माता को ही लग जाएँ। तृणावर्त के आघात से कृष्ण के बच जाने पर ब्रज युवतियाँ उन पर पानी उतारकर पीती हैं—

"देति अभूषन वारि वारि सब पीवति सूर वारि सब पानी।"[107]

निछावर करना

न्यौछावर भी प्रत्येक उत्सव, पर्व तथा संस्कार पर की जाती है। वष्त्र, आभूषण, धन आदि वार कर याचकों को देने से प्रिय पात्र या संतान को अनिष्ट से बचाने की ही भावना है। हर्ष के समय तो न्यौछावर आवश्यक है ही, संकट से बचाने के लिए तथा उसके निवारण के लिए भी न्यौछावर का वर्णन अष्टछाप में सर्वत्र किया गया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"अब कहा करौं निछा वरि सूरज सोचति अपनै लालन जू पर।"[108क]
"परमानंद करी न्यौछावर हरखे नंद जसोदा दोऊ।"[108ख]

हाथ फेरना

किसी प्रेतबाधा के आ जाने पर किसी सयाने कुलगुरु या पवित्र व्यक्ति द्वारा बच्चे पर हाथ फेराया जाता है। यशोदा मृत्तिका भक्षण प्रसंग में पुत्र के मुख में तीनों लोकों के दर्शन को प्रेतबाधा मानकर घर-घर हाथ फेरवाती हैं। किसी के भी प्रभाव से हो, यह बाधा दूर हो जाए—

"घर घर हाथ दिवावति डोलति गोद लिए गोपाल बिनानी।"[109क]
"मुख में तीनों लोक दिखाए चकित भई नंद रनियां।
घर घर हाथ दिवावति डोलति बांधति गरैं बघनियां।"[109ख]

जादू-टोना और झाड़-फूंक

अष्टछाप के समय समाज में अनेक प्रकार के जादू-टोने प्रचलित थे। इसका प्रमाण कई पदों से मिल जाता है। जादू-टोने में तथा उसमें निवारणार्थ झाड़-फूंक करने में स्त्रियों का विश्वास अधिक होता है और उन्हीं के द्वारा इस विश्वास को बढ़ावा मिलता है। कृष्ण के गले में बघनखा बाँधना भी एक प्रकार का टोना-टोटका है। सारावली में ब्रजवासी कृष्ण के हाथ में बच्छ-पुच्छ रखने का टोटका करते हैं—

"जहं तहं वे दौरे ब्रजवासी स्यामहिं लियो उठाय।
बच्छ पुच्छ लै दियो हाथ पर मंगल गीत गवायो।"[110]

झाड़-फूंक द्वारा सर्प का विष उतारने का वर्णन सूर ने किया है। तथा 'टोना टामनि' शब्द का भी प्रयोग किया है—

"कहूं राधिका कारै खाई जाहुन आवै झरि।"[111]
"टोना टामनि जंत्र मंत्र करि ध्यायादेव दुआरो री।"[112]

परमानंददास ने कई स्थानों पर कृष्ण को आंचल से झाड़कर नजर उतारने का उल्लेख किया है—

"कौन निरासी दृष्टि लगाई लै लै झारै।"[113]

इन लौकिक विश्वासों के निरूपण से अष्टछापी कवियों ने अपनी लोकोन्मुखी दृष्टि का परिचय दिया है।

मंत्र-तंत्र

जंत्र-तंत्र के प्रति भी तत्कालीन ब्रज में आस्था विद्यमान थी, इसका प्रमाण भी रचनाओं से मिलता है। प्राचीन काल से ही वंशीकरण मंत्र तथा लाबी मेलने का प्रचार लोकसमाज में था। अथर्ववेद में मंत्र-तंत्र का विशद विवेचन उपलब्ध है—

अथर्ववेद को एक प्रकार से जादू-टोना सदृश मंत्रों का संग्रह कहा जाता है। इसलिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अथर्ववेद के मंत्रों का विनियोग अनेक रोगों तथा उत्पातों की शांति, शत्रु आदि के प्रतिकार संबंधित मंत्र भी अथर्ववेद में संग्रहीत है।"[114]

शाक्तमत तथा वाममार्गियों के प्रभाव स्वरूप भी भक्ति के साथ-साथ जंत्र-मंत्र, जादू-टोने आदि में विश्वास ब्रज संस्कृति में घुल-मिल गए हैं। ब्रज लोकजीवन में आज भी झाड़-फूंक और मंत्र-तंत्र पर विश्वास किया जा रहा है। सूरदास की यशोदा के कुछ पढ़कर दोष दूर करने का उल्लेख नजर के प्रसंग में किया जा चुका है। मंत्र पढ़कर पानी पिलाने का उल्लेख भी सूरदास ने किया है—

"जाको नाउं सक्ति पुनि जाकी, ताकौं, देत मंत्र पढ़ि पानी।"[115]

परमानंद ने बलराम के झुझुवा से डराने पर धड़-धड़ करती छाती वाले, दौड़कर घर आए कृष्ण के अनिष्ट निवारण के लिए यशोदा के वेद मंत्र पढ़ाने तथा बछिया की पूंछ पकड़ाने का वर्णन किया है—

"परमानंद रानी दुज बुलाय वेद मंत्र पढ़ायो री।
बछिया की पूंछ गहि हाथहि दिखायो री।"[116]

आधुनिक युग में भी मंत्र-तंत्र पर विश्वास किया जा रहा है। विशेष रूप से साँप के काटने की दशा में। सूरदास और नंददास ने भी गारुड़ी द्वारा सर्प का विष उतारने का उल्लेख किया है। राधा की माता कीर्ति किसी और गारुड़ी के 'मंत्र न लागत थरतैं' की स्थिति में गारुड़ी कुँवर कन्हाई (सू.सा. 746, 754) को बुलाती है और यशोदा कृष्ण को वहाँ जाने की आज्ञा देती है—

"कीरति महरि बुलावनि आई जाहु न कुंवर कन्हैया।
जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम सूर स्याम बन वारि।"[117]

कृष्ण भी अपनी इस विशेषता का परिचय देते हैं—

"भैया एक मंत्र मोहि आवै
विषहर खाइ मरै जो कोऊ मोसों मरन न पावै।"[118]

स्याम सगाई में नंददास ने नाग डसी राधा का उपचार कृष्ण गारुड़ी से कराया है—

"नाग डसी भैया सनुति गिरी धरनि मुरझाइ।
सखी कहै समुझाइ कहौ तौ गोकुल जाऊँ।
मनमोहन घनस्याम तुरत वाकों लै आऊँ।"[119]

रूपमंजरी के भूताविष्ट हो जाने पर मंत्रों से भी उपचार किया जाता है—

"भूतावेस अवसि हैं माई दौरों कहूं इक करौ उपाई।
सखि कहै काहु बोलि किन आनौं एक मंत्र अस हौं हूं जानौं।"[120]

शकुन विश्वास

भारतीय लोकमानस में ही नहीं साहित्य में भी शकुन का प्रयोग आगामी घटनाओं के परिचय के लिए दिया जाता है। इससे पाठक को कथा-सूत्रों का आभास हो जाता है और साधारणीकरण की प्रक्रिया सरल हो जाती है। शकुन के प्रति समाज में प्रारंभ से ही आस्था रही है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वर दर्शनम्।
अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां परिदृश्यते।"[121]

शकुन दर्शन से कार्य के प्रति सिद्धि का विश्वास दृढ़ हो जाता है तो अपशकुन से हृदय संशयग्रस्त हो जाता है। शकुन दर्शन आवेग द्वारा, प्रकृति की सूचना के द्वारा, शारीरिक क्रियाओं द्वारा तथा पशु-पक्षी के दाहिने बाएँ होने से होता है।

कभी-कभी अकारण ही हृदय प्रफुल्लित रहता है। जो किसी शुभ सूचना का सूचक होता है। मनःस्थिति की यह सूचना साहित्य में अनेक प्रसंगों के संदर्भ में व्यक्त की गई है परंतु अष्टछाप में इसका प्रयोग सीमित है। सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र पहुँचकर कृष्ण जब ब्रजवासियों को बुलाने दूत भेजते हैं तब गोपियों को इसकी पूर्व सूचना मिल जाती है—

"माधौ आवनहार हुए।
अंचल उड़ि मन होत गहगहौ फरकर नैन खए।"[122]

प्रकृति भी शकुन की सूचना शीतल, मंद-सुगंध, दिशाओं के निर्मल स्वरूप, वृक्षों के फल और पुष्पों द्वारा देती है। इस विद्या का प्रयोग भी कम किया गया है—

"रितु बसंत फूली बन बेली उलटे पात नए।"[123]

अंगों के फड़कने से शुभ संकेतों की सूचना पर विश्वास भारतीय समाज में सर्वाधिक प्रचलित है। नेत्र व भुजाओं का (पुरुषों में दाएँ तथा स्त्रियों में बाएँ) फड़कना शुभ संकेत है। स्त्रियों के उर और अधर के फड़कने का वर्णन भी अष्टछाप में किया गया है—

"इतनो कहत नैन उर फरके, सगुन जनायौ अंग।
जाऊ लहौं रघुनाथ संदेसो मिटै बिरह दुख संग।"[124]

सीता के ही समान सूरदास ने राधा के भी शुभ अंगों के फड़कने का उल्लेख किया है—

"कुच भुज अधर फरकत हैं बिनहि बात अंचल ध्वज डोली।"[125]

परमानंददास ने कृष्ण मुख का देखना भी शुभ शकुन बतलाया है। उनका मुख देखकर ही ग्वालिन का दही जाते ही बिक जाता है। और दुगना लाभ होता है, तथा गाय के बछिया होती है—

"लाल को मुख देखन को आई।
काल्हि ही मुक देख गई दधि बेचन जातहि गयौ बिकाई।
दिन तें दूनो लाभ भयौ घर काजरि बछियां जाई।"[126क]

परमानंद की गोपियों को दृढ़ विश्वास है कि कृष्ण का मुख देखने से ही लाभ होगा इसलिए वह प्रातःकाल उठकर कृष्ण का मुख देखने आती है—

"हौं परभात समै उठि आइ कमल नयन देखन तुम्हरो मुख।
गोरस बेचन जात मधुपरी लाभ होय मारग पाऊँ सुख।"[126ख]

"हरि जू को दरसन भयो सबेरो।
बहुत लाभ पाऊँगी री माई दह्यौ बिकेगी भेरो।"[126ग]

छीत स्वामी ने भी शुभ अंगों के फड़कने को शुभ शकुन बताया है—

"आज सवेरे हौं उठि बैठी कुचनि कंचुकी दरकी।
औ केसरि धोरत में मेरी फर फर भुज द्वै दरकी।"[127]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नंददास ने भी रुक्मिणी का पत्र पाकर कृष्ण के प्रस्थान करते ही रुक्मिणी के शुभ अंगों के फड़कने का शकुन वर्णित किया है—

"बाम भुजा लागी फरकनि कंचुकि बंध लागे तरकन।"[128]

पशु-पक्षियों के दाहिने या बाएँ रहने से भी शकुन की सूचना मिल जाती है। सूरदास ने कंस की आज्ञा से ब्रज जाते ही अक्रूर को दाहिनी ओर मृगमाल दिखाई देने पर निश्चित हो जाने का वर्णन किया है—

"दाहिनै देखियत मृगमाल।
मानौ इहि सकुन अबहिं इहिबन आजु इनहि भुजनि भरि में हौंगे गोपाल।"[129]

राम-कथा प्रसंग में कौशल्या राजभवन पर बैठे कौए को देखकर राम-लक्ष्मण के आने का सगुन जानना चाहती हैं। और कौए के उड़कर हरी डाल पर बैठ जाने पर आनंदित हो उठती हैं—

"बैठि जननी करित सगुनौती।
लछिमन राम मिलैं अब मोकौं दोऊ अमोलक मोती।
इतनी कहत सुकाग उहां तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ।
अंचल गांठ दई दुख भाज्यौ, सुख जु अति उर पैठ्यौ।"[130]

आँगन में कौए का बोलना भी प्रिय की आने की सूचना देता है। लोक में आज भी यह विश्वास प्रचलित हैं—

"तेरै आवैगें आजु सखी, हरि खेलन कौ फागरी।
सगुन संदेसौ हों सुन्यौ तेरे आंगन बोलै कागरी।"[130]

कान के समीप भँवरे के गूँजने को भी शुभ शकुन माना गया है—

"जबहिं चले ऊधो मधुबन तैं गोपिनि मनहिं जनाई गई।
बार-बार अलि लागे स्रवननि कछु दुख कछुहिय हर्ष भई।"[132]
"भौंर एक चहुं दिसि तैं उड़ि उड़ि कानन लगि लागि गावै।
उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि चढ़ि अंग अंग सगुनावै।"[133]

शकुन के समान ही उपरोक्त साधनों द्वारा अपशकुन भी अभिव्यक्त कर दिए जाते हैं। लोकमानस इन पर भी पूर्ण विश्वास करता है और अष्टछाप में इनका वर्णन किया गया है। अपशकुन की पूर्व सूचना से भविष्य में घटने वाली घटना का आभास हो जाता है। और पात्र तथा सहृदय दोनों ही मानसिक रूप से उसे झेलने के लिए तैयार हो जाते हैं। हृदयगत भावों द्वारा अपशकुनों की सूचना अष्टछाप साहित्य में नहीं दी गई है। प्रकृति के असामान्य व्यापारों का अपशकुन के रूप में वर्णन किया गया है। कृष्ण के स्वर्गवास का अपशकुन पृथ्वी के काँपने और अनावृष्टि द्वारा युधिष्ठिर को हो जाता है—

"कंपै भुव वर्षा नहिं होइ भयो सोच नृपचित यह जोइ।"[134]

कृष्ण के कालीदह में कूदने पर नंददास ने भी ऐसे ही प्राकृतिक परिवर्तनों का उल्लेख किया है—

"ब्रज में होन लगे उत्पात असुभ सेचने फरके गात।
भूमि कंप नभ ते उड़ि गिरे अवर असगुन निरिख थरहरे।"[135]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोक में किसी कार्य पर जाते समय छींक आने को या किसी के द्वारा बाईं और छींकने को अपशकुन माना जाता है। कंस द्वारा कालीदह के फूल भिजवाने की आज्ञा का पूर्वाभास नंद को बाईं ओर हुई छींक से होता है—

"नृपति दूत पठाई दीन्हौ चल्यो ब्रज इहिंकार।
महर पैठत सदन भीतर छींक बाई धार।"[136]

छींक के अपशकुन को दूर करने के लिए कुछ देर रुककर बाहर जाने या कुछ पीकर अथवा वापस होकर दुबारा जाने का विधान लोक में प्रचलित है। यशोदा इसका पालन करती है—

"जसुमति चली रसोई भीतर व बहीं ग्वालइक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी बात नहीं कछु नीकी।
आइ आजिर निकसी नंदरानी बहुरी दोष मिटाइ।"[137]

शरीर के अंगों के फड़कने से अपशकुनों का वर्णन अष्टछाप में प्रायः नहीं हुआ। केवल नंददास ने इसका संकेत मात्र किया है—

"ये दिखि फरकत मेरे गात ब्रज में आहि कछू उतपात।"[138]

जिस प्रकार शकुन के अंतर्गत कृष्ण के मुख देखने का वर्णन है अपशकुन के अंतर्गत नहीं है। केवल सूरदास ने "काको बदन प्रातः ही देखयौ" (सू.सा. 1482) कहकर दानलीला-प्रसंग में गोपियों द्वारा अपने संकट की स्थिति में पड़ने का उल्लेख किया है। परमानंददास ने व्यापारी गजत से संबंधित विश्वास भी वर्णित किया है। जिसमें दिन के पहले ग्राहक से सौदा न पट सकने को अपशकुन माना है। दान-लीला, प्रसंग में गोपियाँ कृष्ण से इसीलिए देर न कराने की प्रार्थना करती हैं—"क्यों बिकायगो गोरस मेरो, भोर करत हो नाट"। (परमा. 150) पशु-पक्षियों द्वारा अपशकुन की सूचना अवश्य दी गई है। वृषभ, हाथी-घोड़ों के रोने के पीछे तथा शृंगाल और कौओं के असमय बोलने से कृष्ण के स्वर्गवास का अपशकुन युधिष्ठिर को होता है—

रोवै वृषभ तुरंग अरू नाग स्यार धौस निसि बोले काग।"[139]

कृष्ण के कालीदह में कूदने पर नंद को खर के बोलने और कुत्ते के कान फटकारने के अपशकुन होते हैं—

"बाएं फाग दाहिने खर स्वर व्याकुल घर फिरि आई।"[140क]
"फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर।"[139ख]

बिल्ली के रास्ता काटने का लोकविश्वास भी सूर की दृष्टि से नहीं बच सका है—

"मंजारी आगे द्वै आई पुनि फिरि आंगन आई।"[140ग]

"माथे पर है काग उडान्यौ" का तथा "गररी कतर लराई" का कुसगुन भी अष्टछाप काव्य में वर्णित किया गया है।

स्वप्न विश्वास

परंपरा से स्वप्नों के फलों का विचार लोकसमाज में प्रचलित हैं। स्वप्न भी शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। लोकविश्वास के अनुसार प्रातःकाल में देखा गया स्वप्न सदैव सत्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होता है। रामकथा के प्रसंग में त्रिजटा का स्वप्न ऐसा ही है—

"सुनि सीता सपने की बात।
रामचंद्र लछिमन मैं देखे ऐसी विधि परभात।"

इस स्वप्न में पुष्पक में विमान राम के पास सीता के बैठने, रावण के मरण, मंदोदरी के विलाप आदि का वर्णन किया गया है।[141]

वसुदेव बंदीगृह में देवकी को भविष्य में घटने वाली घटना के संबंध की सूचना देने वाले स्वप्न के बारे में बताते हैं—

"आजु काल्हि हरि आउहैं यह सपने की बात।
अब जनि होई अधीर कंस की आयुतुलानी।
ऐसौ सुपनौ मोहिं भयौ त्रिया सत्य करि भानि।"[142]

भावी अनिष्ट की सूचना भी स्वप्नों द्वारा दी गई है। कृष्ण कालीदह में कूदने से पहले रात में देखे स्वप्न के बारे में यशोदा को बताते हैं—

"सपनै कूदि परयौ जमुना दह काहू दियौ गिराइ।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा जनि हो लाल डराई।"[143]

समझाने पर कृष्ण तो सो जाते हैं परंतु नंदयशोदा उसकी चर्या करते हैं। दूसरे दिन स्वप्न सत्य हो जाता है तो पछताते हैं।

"सपनौ सुनि जननी अकुलानी।
दंपति बात कहत आपुस मैं सोवत सारंग पानी।"[144]
सुपनौ परगट कियौ कन्हाई।"[145]

कृष्ण के मथुरागमन की सूचना देने वाले नंद का स्वप्न भी सूरदास ने वर्णित किया है। जिसमें कृष्ण को खो जाने का ग्वाल बालों के रोने का, दूत के आने और कृष्ण-बलराम का उसके साथ चले जाने का वर्णन है—

"उत नंदहि सपनौ भयौ हरि कहूँ हिराने।
बल मोहन कोउ लै गयौ सुनि कै बिल खाने।
ग्वाल सखा रोवत कहैं हरि तौ कहूँ नाहीं।"[146]

कंस के दुःस्वप्नों का उल्लेख भी किया गया, जिसमें उसकी चिंता और मानसिक अस्थिरता का वर्णन है। दोनों बालक उसे काल के समान प्रतीत होते हैं—

तुरत जाई पलिका परयौ पलकनि झपकानौ।
स्याम राम सुपने खेर तंह देखि डरानौ।
अति कठोर सुपने खरे तंह देखि डरानौ।
अति कठोर दोउ काल से भरम्यौ अति झझक्यौ।"[147]

परमानंददास के कृष्ण भी कंस वध संबंधी स्वप्न का उल्लेख करते हैं—

"अपने हाथ कंस मैं मारो।
हंसि गोपाल कहत ग्वालन सौंरग भूमि में जरयौ।
अहो बलराम अहो स्त्री दामा, आज रात कौ सपनौ।"[148]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

परमानंददास ने इस स्वप्न द्वारा घटना का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है। लोक ने ऐसे

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सपनों पर भी विश्वास किया जाता है जिसमें किसी देवता आदि की पूजा का विधान किया जाता है। ऐसे लोकदेवता आज भी स्वप्नों के माध्यम से जन्म लेते हैं। कुछ वर्षों पूर्व संतोषी माता का अस्तित्व इसी प्रकार प्रकाश में आया था। अष्टछाप में सूरदास ने गोवर्द्धन-पूजा प्रसंग में कृष्ण द्वारा स्वप्न में अवतारी पुरुष के मिलने और उसके द्वारा गोवर्द्धन की पूजा का आदेश दिए जाने का उल्लेख किया है—

"सुपनें आज मिल्यौ मोकों इक बड़ों पुरुष अवतार मनाई।
कहन लग्यौ मोसौं ये बातैं पूजत हैं तुमकाहि मनाई।
गिरि गोवर्द्धन दवनि को मनि से बहुता को भोग चढ़ाइ।"[149]

गोपियों के स्वप्नों का उल्लेख भी सूर ने किया है, परंतु उनके सत्य या असत्य होने का प्रमाण नहीं दिया—

"सोवत मैं सुपनैं सुनि सजनी ज्यों निधनी निधि नाई।"[150]
"सुपने हरि आए हौं किलकी।"[151]
"सपनैहूं के सुख न सहि सकी नींद जगाइ भगी।"[152]

स्वप्नों के फल आदि पर विश्वास आधुनिक समाज में भी किया जा रहा है।

शपथ, शाप, आशीर्वाद में विश्वास

यह एक ऐसा लोक विश्वास है जो आज भी शिक्षित और अशिक्षित वर्ग में समान रूप से प्रचलित है। भारत ही नहीं प्रत्येक देश की संस्कृति का यह अनिवार्य तत्व है। शपथ के विषय में सामान्य मत है कि शपथ खाकर कही गई बात का पालन अवश्य किया जाएगा। अष्टछाप में यह विश्वास अनेक प्रसंगों में अभिव्यक्त हुआ है। बालक कृष्ण द्वारा भी शपथ खाने का उल्लेख किया गया है। जो यह सिद्ध करता है कि छोटा-सा बच्चा भी शपथ की गुरुता और महत्ता से परिचित है—

"सूरदास है साखि जमुन सौंह देहु जुनहौं।"[153]

दान-लीला-प्रसंग में गोपियाँ कृष्ण को कई शपथें एक साथ खिलाती हैं—

"सोइ कहौ मनहिं जो आई तुमहि नंद की सौंह।
और सौंह तुमको गोधन की, सौंह भाइ जसुमति की।
सौंह तुमहिं बलदाउ की हैं कहौ बात वा मति की।"[154]

परमानंद ने भी चंद्रावली प्रसंग में शपथ खाने का उल्लेख किया है—

"जो न पत्याहु तौ सपथ दै बूझहु परमानंद ता दिन संग आयो।"[155]

परमानंददास ने भी चंद्रावली प्रसंग में शपथ खाने का उल्लेक किया है—

"जौ न पत्याहु तौ सपथ दै बूझहु परमानंद ता दिन संग आयो।"[154]

शाप का तात्पर्य लोकभाषा में कोसने से है। अत्याचारी या कष्ट देने वाले व्यक्ति के समक्ष अक्षम रहने पर सामान्य जन शाप देने का ही रास्ता अपनाता है। मध्ययुगीन ब्रज में आक्रांताओं के संदर्भ में दीन-हीन, असमर्थ-साधारण मनुष्य प्रतिकार के लिए अक्षम होकर इसी पद्धति का पालन करता होगा। कंस के अत्याचारों से त्रस्त वसुदेव-देवकी का कंस को कोसना,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शाप देना इसी मनोवृत्ति का प्रमाण है—

"मरै वह कंस निरबंस विधना करैं सूर क्यौ हूं होइ वह निमूल्यौ।"[156]

पीड़ित व्यक्ति के अतिरिक्त तत्कालीन समाज में ऐसे व्यक्ति भी थे जिन्हें स्वार्थ वश या विवश होकर अत्याचारी का साथ देना पड़ता था। परंतु हृदय से वह अन्यायी के विरोधी थे अक्रूर कृष्ण-कथा के ऐसे ही पात्र हैं जो उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्र करते हैं जिन्होंने मुसलमानी शासन का साथ दिया। धोखे से कृष्ण बलराम को मथुरा बुलाकर मारने की कंस नीति के वे खिलाफ थे पर प्रगट आलोचना का साहस नहीं रखते थे। अतः वे भी शाप का सहारा लेते हैं—

"सुफलक सुत मन परयौ विचार कंस निर्बंस हत्यार।"[156]

मथुरा की नारियाँ भी अपनी असहायता को शाप द्वारा अभिव्यक्त करती हैं—

"रथ पर देखि हरि बलराम।
निरखि कोमल चारू मूरति हृदय मुक्तादाम।
कंस कौ निरबंस हैं करत इन पर ताम।"[158]

शाप के विपरीत हृदय की समस्त शुभकामनाएँ आशीर्वाद के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। प्रत्येक शुभ अवसरों पर आशीर्वाद, स्वस्ति वाचन का उल्लेख किया जा चुका है। प्रिय तथा उपकारी व्यक्तियों को भी आशीर्वाद की प्रथा समाज में प्रचलित हैं। निर्दोष बालकों को कंस के अन्याय से बचाने के लिए मथुरा की नारियाँ भी उन्हें अनेकों आशीर्वादों से सिंचित करती हैं—

"जोरि कर विधि सौं मनवति आसिस दै दैनाम।"[159क]
"सूर असीस देति सब सुंदरि जीवहिं अपनी माँ के प्यारे री।"[159ख]
"सूरदास चिर यिहु दुष्ट दलि, दोऊ दुलारे।"[156ग]

काव्य संबंधी विश्वास

काव्य से संबंधित कई असंगत बातें भी लोकमानस स्वीकार करता चलता है। इनके विषय में सत्यता की परख करने की आवश्यकता वह नहीं समझता। इन्हें कवि समय भी कहा जाता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार कवि समय के अंतर्गत लोक और शास्त्र विरोधी वे ही बातें आती हैं जिन्हें प्राचीन काल के पंडित, सहस्त्र शास्त्र वेदों का अंवगाहन करके, शास्त्रों का अवबोध करके, देशांतर और द्वीपांतर का परिभ्रमण करके निश्चित कर गए हैं। देश कालवश उनका यदि व्यतिक्रम हो भी गया हो तो उन्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिए।"[160] अष्टछाप काव्य में भी काव्य में स्वीकृत ऐसे विश्वासों को अपनाया गया है। हाथी के मस्तक से निकले गजमोती का उल्लेख प्रायः सभी कवियों ने किया है। सूरदास ने बाल कृष्ण को गजमनिया धारण किए बताया है। तो परमानंददास ने "हरि के उर का गजमोती" (परमा. 491) का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त चकई-चकवे का दिन में मिलन और रात में वियोग—

"चकई री चलि सरन सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग।"[161]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चकोरी का चंद्रप्रेम—

"ज्यो चकारे चंदा तन चितवत ज्यों आली निरखत गिरवरधर।"[162]
"तृषित लोचन चकोर मेरे तुव बंदन इंदु किरनि पान दैरी।"[163]

चातक का स्वाति नक्षत्र की बूँदों का पान—

"मन चातक चल जत्यौ स्वाति हित एक रूप व्रत धारयौ।"[164]

हंस का मोती चुगने—

"हंस उज्जल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हाहिं।
मुक्ति मुक्ता अनारी ने फल तहाँ चनि चुनि खाहिं।"[165]

सर्प के पास मणि होने का—

"देखति रहीं फनिग की मनिज्यौं गुरुजन ज्यौं न भुलायौ।"[166]

भ्रमर का कमल के फूल में बंद हो जाने—

"सुब कुसमनत मिलि रस करै कमल बंधावै आप।"[167]

विभिन्नग्रह सूचक रंग—

"मुक्ता विद्रमु नील पीति मनि लटकत लटकन मालरी।
मानौ सुक्र भौम सनि गुरु मिलि ससि कैं बीच रसालरी।"[168]

आदिकवि की प्रसिद्धियों का उल्लेख भी किया गया है। लोकविश्वासों की यह परंपरा सूर आदि अष्टछापी कवियों के समय से लेकर आज तक आधुनिक विचारधारा के समानान्तर प्रवाहित हो रही है। वास्तव में लोक-संस्कृति की धारा भी संस्कृति की धारा के समानांतर ही प्रवाहित होती है परंतु उसकी गहनता संस्कृति की उपेक्षा कहीं अधिक होती है। संस्कृति काल के गर्भ में विलीन हो सकती है परंतु लोक-संस्कृति निरंतर प्रवहमान रहती है। अष्टछाप काव्य की यह उपलब्धि ही कही जानी चाहिए। कि भक्ति काव्य होते हुए भी उसमें लोक-संस्कृति का प्रतिनिधित्व हो सका। इसका श्रेय सूरदास के साथ-साथ परमानंददास और नंददास को भी है। इस विषय की व्यापकता निर्विवाद है। स्थानाभाव के कारण इन सब विश्वासों का संकेत मात्र किया गया है।

लोक धर्म का स्वरूप

भारतीय संस्कृति के समान ब्रज संस्कृति भी धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धांत पर दृढ़ है। विभिन्न संस्कृतियों का प्रसार ब्रजभूमि में समय-समय पर रहा है। इसलिए विभिन्न धार्मिक मान्यताएँ भी यहाँ फलती-फूलती रही हैं। इस सबका परिणाम यह हुआ कि ब्रज के लोकमानस ने अपने लिए एक लोकधर्म की रचना कर ली जिसमें उन सभी धार्मिक विशेषताओं का समाहार है जो प्रत्येक धर्म का आधार है। इस प्रकार लोकधर्म का जो स्वरूप निश्चित होता है उसमें जिन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है वह तत्कालीन युग के प्रत्येक धार्मिक साहित्य का अंग है। अष्टछाप काव्य इस प्रकार जहाँ वल्लभ संप्रदाय के दार्शनिक विचारों की प्रतिष्ठा करता है, वहीं लोकधर्म की समस्त विशेषताओं का प्रतिनिधित्व भी करता है।

तत्कालीन समाज में ज्ञान भक्ति और कर्म का विचार विद्यमान था। साथ ही सद्गुण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और निर्गुण का द्वंद्व भी समाज को प्रभावित कर रहा था। इसलिए लोकमानस ने इन दोनों में संतुलन स्थापित करने की प्रयास किया। अष्टछाप काव्य ने सद्गुण के साथ निर्गुण के अस्तित्व को भी स्वीकार किया। ज्ञान और योग निर्गुण की प्राप्ति में सहायक माने जाते हैं। भक्ति की अपेक्षा सामान्यजन के लिए यह मार्ग कठिन हैं। इसलिए अष्टछापी कवियों ने भक्ति का प्रचार किया परंतु ज्ञान और योग की उपेक्षा न कर उनके प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित किया—

"अविगत गति कछु कहत न आवै।
मन वाणी कौ आगम अगोचर सो जानै जो पावै।
रूपरेख गुण जाति जुगुति बिनु निरालंब कित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तोंत्सूर सगुन पद गावै।"[169]

परमानंद ने भी भक्ति के सुगम मार्ग को ही श्रेयस्कर बताया है—

"हरि के भजन में सब बात
ग्यान कर्म सौं कठिन करि कत देत हौ दुख गात।"[170]

नंददास ने ज्ञान की प्राप्ति के लिए भी भक्ति को आवश्यक माना है।

"यहि विधि कहत ग्यान है जोई भक्ति बिना दोउ सिद्ध न होई।
तुम्हरी भगति अमीरस सरवर मोच्छादिक जाके बस निर्झर।"[171]

गोविंद स्वामी ने "प्रीतम प्रीति ही तैं पैए"[172] कहकर ईश्वर की प्राप्ति प्रेम से संभव बतलाई हैं। स्वयं कृष्ण ने भी कर्म-धर्म, योग-यज्ञ की ओर ध्यान न देकर भक्ति के वशीभूत होने की घोषणा की है—

"भक्त हेतु अवतार धरौं
कर्म धर्म कैं बस मैं नाहीं जोग जज्ञ मन मैं न करौं।
सूर स्याम तब कहीं प्रगट हीं जहाँ भाव तहं तैंन टरौं।"[163]

सूरदास ने अष्टांग योग की चर्चा करते हुए उपाधि का मिटना स्याम के भजन से ही बताया है—

"भक्ति पथ को जो अनसुरै सो अष्टांग जो को करै।
यम नियमासन प्रानायम, करि अभ्यास होइ निष्काम
प्रत्याहर धरना ध्यान करै जु छाड़ि बासना आन।
क्रम क्रम सौं पुनि करे समाधि सूर स्याम भजि मिटै उपधि।"[174]

भ्रमरगीत की तो रचना ही निर्गुण और सगुण के विवाद क सुलझाने के लिए की गई है। और उसके द्वारा विलक्षण प्रेमयोग की साधना पर बल दिया गया है। गोपियों "उधौ करि रहीं हम जोग" (सू. सा. 3664) में अपनी योग साधना का वर्णन कृष्ण प्रेम के संदर्भ में देकर सामान्य प्रजा के लिए निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान को निरर्थक ठहरा दिया है।

ज्ञान कठोर पंथ का समर्थन लोकधर्म में नहीं हुआ परंतु अज्ञान और मोह को नष्ट करने वाले ज्ञान को उसमें आवश्यक माना गया है। सूरदास ने अज्ञान की मूर्छा टूटने के लिए ज्ञान रूपी सुभेषज को खाने का परामर्श दिया है—

"सूरदास मिटै अज्ञान मूरछा ज्ञान सुभेबज खाएँ।"[175]

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की पद्धति के कारण वैराग्य की महत्ता प्रत्येक भारतीय को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पता है। इसलिए संन्यासियों तथा वीतरागियों के प्रति श्रद्धा भी जनमानस में बराबर बनी रहती आई है। ब्रज के लोकमानस ने भी वैराग्य को स्वीकार करके सांसारिक सुखों के प्रति वितृष्णा की भावना को कई बार अष्टछाप के माध्यम से अभिव्यक्त किया है—

"सुख संपति द्वारा सुत हय गय छूट सबै समुदाई।
छन भंगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नाहिं संग जाइ।"[176]

परमानंददास ने "स्वारथ मीत मिले बहुतेरे" (839) कहकर सांसारिक संबंधों की असारता को सिद्ध किया और विरहयुक्त गोपियों की तरह घर को ही वन बनाकर इस संसार में बटाउ की तरह रहने पर बल दिया—

"छाँडि अहार विहार सुख यह और न चाहत का।
परमानंद बसत हैं घर में जैसे रहत बटाउ।"[177]

भक्ति की साधना के लिए सतगुरु की महत्ता पर लोक ने सदैव बल दिया है। और सभी संप्रदायों ने इस लोक भावना का आदर किया है। वल्लभाचार्य जी ने तो गुरु सेवा को ईश्वर सेवा के बराबर बताया है। इसलिए अष्टछाप के कवियों ने भी गुरु की महत्ता पर बल दिया है—

"हरि गुरु एक रूप नृप जानि। यामैं कछु संदेहन आनि।
गुरु प्रसन्न हरि पर नस होइ, गुरु के दुखित हरि जोइ।"[178]
"गुरु को निहारि पोत पद अंबुज भवसागर तरिबै कौ हेत।"[179]

श्री वल्लभाचार्य और श्री विट्ठलनाथ की महिमा तथा स्तुति-गान भी इसी भावना के कारण अष्टछाप के कवियों ने किया है। संप्रदाय भक्ति तथा सिद्धांत के साथ-साथ सतगुरु की प्राप्ति भी इसके द्वारा प्रदर्शित की है—

"तबकै गोप भेष अबके प्रगटें द्विजवर अवतार।
तब गोकुल में नंद सुवन वल्लभ राजकुमार।"[180]
"छीत स्वामी गिरिधर न विट्ठल बानी निगम प्रकासी।"[181]
"जै जै जै श्री वल्लभ नाम। कल्पतरू वर
सब सुखदायक दैवी जन गावत गुन ग्राम।[182]
"परमानंद को ठाकुर जे बल्लभ ते सुंदर स्याम।[183]
"तन्नमामि पद परम गुरू कृष्ण कमल दल नैन।
जगकार न करू नार्नव गोकुल जिन कौ ऐन।"[184]
"जो पै विट्ठलरूप न धरते।
तो कैसेक धोर कलिजुग के महापतित निस्तरते।"[185]

गुरु कृपा के साथ-साथ आचरण की शुद्धता भी आत्मिक उन्नति का साधन लोकजीवन में मानी गई है। इसके लिए सत्संग की महिमा और उसकी अनिवार्यता का प्रतिपादन भी अष्टछाप काव्य में हुआ है।

"सब सुख सोई लहै जाहि है कान्ह पियारो।
[illegible] रहै जात तै न्यौरो।"[186]
"मोकों बल है दोउ ठौर कौं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इक बल मोको हरि भक्त कौ दूजौ नंद किसोर कौं।[187]
"जाके मन में उग्र भरम है श्री विट्ठल श्री गिरिधर दोइ।
ताकौ संग विषम विष हूं ते भूलै चतुर करो जिन कोई।"[188]

साधुओं की संगति को तत्कालीन समाज व्यक्ति के आत्मिक उत्कर्ष का कारण मानकर चलता है। लोकधर्म के रूप में भक्ति के सिद्धान्तों के अतिरिक्त योग, यज्ञ, श्राद्ध, तीर्थ, सेवन, व्रत, तप, दान, पूजा और कथा-श्रवण आदि पर विभिन्न विचारों को स्वीकार किया गया है। यह सभी एक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान हैं जो लोक में सर्वमान्य हैं।

योग के विषय में अष्टछाप कवियों के विचार भ्रमरगीत प्रसंग में तथा ज्ञान भक्ति के प्रसंग में स्पष्ट रूप से वर्णित किए जा चुके हैं। योग को आवश्यक मानते हुए भी इसकी कठिनता को देखकर भक्ति का सरल मार्ग ही सामान्य जन के लिए उन्होंने श्रेयस्कर माना है। सूरदास और नंददास द्वारा अष्टांग योग के उल्लेख से प्रमाणित हो जाता है कि तत्कालीन ब्रज समाज में, वैष्णव भक्ति के विरुद्ध पड़ने वाली योगमार्गी साधना भी लोकप्रिय थी और ज्ञानमार्गी संतों द्वारा पुष्ट भी की जा चुकी थी। इसी कारण परमानंददास को "ग्यान करम सो कठिन करि सकत देत हौं दुख गीत"[189] की उद्घोषणा करनी पड़ी थी।

यज्ञ की प्रतिष्ठा प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में चली आ रही है। सूरसागर में विभिन्न प्रकार के यज्ञों का उल्लेख हुआ है। पौराणिक आख्यानों के अंतर्गत राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का उल्लेख किया गया—

"राजसूय मैं चरन पखारे स्याम लियौ कर पानि।"[190]
"अश्वमेध जहसु जो कीजै, गया बनारस अरू केदार।"[191]

इन दोनों यज्ञों के अनुकूल वातावरण का मध्यकाल में अभाव था। अतः इनका वर्णन अधिक नहीं मिलता है। सूरदास ने धार्मिक अनुष्ठान के रूप में यज्ञ का वर्णन भी किया हैं। ऐसे ब्राह्मणों का वर्णन किया गया, है। जिन्होंने यज्ञ की समाप्ति के पहले गोप बालकों को भोजन देना अस्वीकार कर दिया था—

"हरि कह्यो जज्ञ करत तहं ढांभन जाहु उनहिं ढिगा भोजन मांगन।
जज्ञ हेत हम करी रसोई ग्वालिनि पहिलैं देहिन सांई।"[192]

यज्ञ विधि के विलुप्त होने पर दुख प्रगट करते हुए सूरदास ने कृष्ण को होम, यज्ञ आदि करते हुए वर्णित किया है—

"करत होम बहुत भांति बेद धुनि सब विधि पूरन काम।"[193]

यज्ञ के साथ श्राद्ध को भी अनिवार्य मानकर समाज चलता है इसलिए पुत्र जन्म के अवसर पर नादी मुख आदि 'श्राद्ध' आवश्यक बताए गए हैं—

"तब नंद भए ठाढ़े अरू कुस हाथ धरे।
नांदी मुख पितर पुजाइ अंतर सोच हरे।"[194]

श्राद्ध को न करना अधार्मिक भावना है। ऐसी अष्टछाप के कवियों की मान्यता थी और इसी स्थिति को काव्य द्वारा भी उन्होंने प्रदर्शित किया है—

"जज्ञ सराध न कोउ करै कोउ धर्म न मन मैं धरै।[195]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

विरथा जन्म लिया संसार।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यज्ञ जप तप नहिं कीन्ह्यौ अल्पमति बिस्तार।" [196]

श्राद्ध द्वारा पितृ पूजा की ओर संकेत किया गया है।

तीर्थ-यात्रा और तीर्थ-स्नान का लोकजीवन में अत्यधिक महत्व है। यही कारण है कि तीर्थ भारतीय संस्कृति के प्रतिबिम्ब, मिथिला, अयोध्या, केदार, गया, कुरूक्षेत्र, नीमसार, वाराणसी तथा हिसार तीर्थों के वर्णन में मिल जाता है केदार, गया जैसे तीर्थों का नामोल्लेख मात्र किया गया है। मिथिला तथा अयोध्या का महात्म्य रामकथा के प्रसंग में किया गया है। कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर स्नान किया गया है—

"बड़ौ परब रविगहन कहा कहौं तासु बड़ाई।
चलौ सकल कुरूखेत तहां मिलि न्हेये जाई।" [197]

वाराणसी अपनी चिरआस्था के कारण मुक्ति क्षेत्र कहलाता था।[198] नीमसार अनेक ऋषियों के निवास स्थान के रूप में वर्णित हुआ है।[199]

"राम नाम सरि तऊ न पूजै जौ तनु गारौ जाइ हिवार" कहकर हिवार में शरीर त्यागने को श्रेयस्कर माना है। हिवार संभवतः हिमालय में स्थित तीर्थ हैं जहां तन को छोड़ना शुभ माना जाता है। प्रयाग और मथुरा आदि तीर्थ अपने विशिष्ट महत्व रखते थे।

श्रीकृष्ण की लीलाओं से संबंधित गोकुल, ब्रज, मथुरा, द्वारिका, वृंदावन आदि स्थानों का वर्णन अष्टछाप साहित्य में विशदता से हुआ है। और इसी के परिणामस्वरूप आज भी यह स्थान लोकमानस में तीर्थों के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

बालकृष्ण के उपासक होने के कारण गोकुल, वृंदावन, ब्रज को जो वर्णन किया गया है। वैसा मथुरा और द्वारिका जैसे स्थानों का नहीं। वृंदावन का महत्व हर कवि ने स्थापित किया है। ब्रज और वृंदावन को छोड़कर कहीं न जाने की इच्छा भी इन कवियों ने व्यक्त की है—

"बंसीवट वृंदावन जमुना तजि बैकुंठ न जावै।" [200]
"कहा करूं बैकुंठहि जाय।
जहं न जल जमुना को निरमल और नही कदमन की छाय।"
परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रजराज तजि मेरी जाय बलाय।" [201]
"जो मुख होय अनंत सखि रसना ताहि अनंत।
वृंदावन गुनकथन को तऊ न पहुंचे अंत" [202]

वंदावन की रज प्राप्ति के लिए ब्रह्मदिक देवताओं को भी इच्छुक बताया है। ब्रज तथा गोकुल में रहनेवाले भाग्य से इसीलिए देवताओं को भी ईर्ष्या करते हुए वर्णित किया गया है। बृंदावन की ही तरह गंगा तथा यमुना स्नान का महत्व भी प्रत्येक कवि ने वर्णित किया है—

"गंगा तैं त्रिभुवन जस छायौ।
सकल बंस तान के कारन भागीरथ लै आयै।" [203]
"जै जमुना जगबंदनी जैसे वेद ही गायौ।
जै जन तट सेवन करैं सो हरि पद पायौ।" [204]
"भक्त जमुने सुगम अगम औरैं।
प्रात: जो न्हात आ जात ताके सकल ताहि जनहुं रहत हाथ जोरैं।" [205]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

परमानंददास ने भी यमुना और गंगा के महत्व को विशदता से प्रतिपादित किया है—

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"मन क्रम वचन कर जोरि के मांगत निसिदिन राखिए अपने जु पास।
जहां पिय रसिक वर रसिकनी राधिका दोउ जन संग मिलि करत हैं रास।"[206]
"परमेश्वरी देवी मुनि बंधे पवित्रै देवि गंगे।
मन्जन पान करत जे प्रानी त्रिविध ताप दुख भंगे।"[207]

व्रतों का महत्व लोकमान्यता के आुसार प्रत्येक शुभ कार्य के साथ जुड़ा हुआ है। आज भी सामान्य जीवन में अनेकों प्रकार के व्रत-उपवास प्रचलित हैं। अष्टछाप में केवल चंद्रायण और एकादशी के व्रतों का वर्णन किया गया है। इनमें से भी चंद्रायण व्रत का संकेत मात्र केवल सूरदास ने किया है—

"सहस बार जो बेनी परसौ, चंदायन की जैसौ बार।"[208]

एकादशी का उल्लेख अवश्य कुछ विस्तार से किया गया है। पौराणिक आख्यानों के अंतर्गत अंबरीष के निराद्वार एकादशी व्रत का उल्लेख है[209] और कृष्ण कथा के प्रसंग में नंद के विधिवत एकादशी व्रत रखने, पूजन करने तथा स्नानादि से 'पारन' करने का वर्णन है।[210] नंददास ने एकादशी व्रत का संकेत मात्र किया और बाकी कवियों ने इस प्रसंग पर कुछ नहीं लिखा है।

तप से तात्पर्य लक्ष्य प्राप्ति के लिए अपनाए गए साधना मार्ग है। योग-तप आदि द्वारा शरीर को कष्ट देने का अष्टछाप काव्य में समर्थन नहीं हुआ है। परंतु अहिंसा, त्याग आदि व्रतों का तप करना ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक बताया है—

"जप तप व्रत संजम साधन तैं द्रवित होत पाषान।"[211]

अष्टछाप काव्य की गोपियां कृष्ण की प्राप्ति के लिए शीत, ताप, वर्षा सहकर पार्वती की भांति तप करती हैं और अपने अभीप्सित वर को प्राप्त करती हैं।

दान लोक-संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्व है। जिसके द्वारा साधारण मनुष्य अपनी आगत आपत्तियों को टालने में विश्वास रखता है। वरुण-पाश से मुक्त होने पर यशोदा इसी कारण विप्रों को दान देने की बात कहती है।[212] तीर्थ-स्नान के समकक्ष दान के द्वारा पुण्य अर्जित करने का उल्लेख भी कवियों ने किया हैं।

मध्यकालीन ब्रज की लोक-संस्कृति में बहुदेवो पासना प्रचलित रही और लोकमानस की इस विशेषता की भी अष्टछाप काव्य ने प्रदर्शित किया है। विष्णु, शिव, सूर्य, देवी तथा गणेश को वंदना विभिन्न संप्रदायों के आधार पर अष्टछाप में की गई है। विष्णु के अवतार कृष्ण के आराधक होने के कारण अलग से विष्णु को पूजा का विधान न करके उन्हें देवाधिदेव कहकर संबोधित किया है—

"मोहि भावै देवाधिदेवा।
संख चक्र सारंग गदाधर रूप चतुर्भुज आनन्द कंदा।
गोपीनाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासत परमानंदा।"[213]

सूर्य की पूजा गोपियों द्वारा की गई है और उसी के दोष निवारण के लिए चीरहरण क प्रसंग वर्णित किया गया है—

"नित्य करति सविता तुमसरि को पय अंजलि कर जोरी।
सूर स्याम पति तुम तैं पायो यह कहि धरहि बहोरी।"[214]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यशोदा भी 'सूर महरि सविता सौं बिनवति'[215] के आधार पर सूर्य की उपासना करती हुई वर्णित की गई हैं। सारावली में श्रीकृष्ण स्वयं सूर्य को अर्घ्य देते हैं।[216] अन्य किसी कवि ने सूर्योपासना का वर्णन नहीं किया है।

शैवधर्म को महत्ता देने के लिए शिव तथा पार्वती की पूजा का प्रचलन भी लोक में सामान्य बात थी। सूरदास ने स्पष्ट रूप से इसका वर्णन किया है—

"जा सुख कौं सिव गौरि मनाई। तिय ब्रज नेम अनेक करी।"[217]

कृष्ण की प्राप्ति के लिए गोपियां विविध नियमों के साथ गौरी पति शिव की आराधना करती है।

"शिव सों विनय करति कुमारि।
जोरि कर मुख करति अस्तुति बड़े प्रभु त्रिपुरारि"[218]

सारावली में—"कहूँ अरघ देत सूरज कौं, कहूँ पूजत त्रिपुरारि"—द्वारा श्रीकृष्ण द्वारा शिव और सूर्य की पूजा एक साथ किए जाने का उल्लेख हुआ है।

मनोकामना सिद्धि के लिए गौरी-पूजन का लोक-विधान है। नंददास व सूरदास ने रुक्मिणी द्वारा देवी पूजन का उल्लेख किया है।[219] देवी के ही एक रूप कात्यायनी की पूजा का उल्लेख भी सूरसागर में मिलता है। नंददास ने गोपियों द्वारा देवी से वर पाने का वर्णन किया है—

"बोली वचन देवि रस भारे पूरण मनोरथ होहू तुम्हारे।
कात्यायिनी तैं यौं बर पाइ बहुरि धंसी जमुना जल आई।"[220]

सारावली में स्यमन्तक मणि और जाम्बवती के साथ द्वारिका वापस आने पर दुर्गा पूजा का वर्णन किया गया है—

"आस्वनि सुदि नौमी को सुभ दिन हरि आए निज धाम।
तौंलौं घर-घर प्रति दुर्गा कौ पूजन कियौ सब गाम।"[221]

गोविन्द स्वामी ने मनोकामना पूर्ण करने वाली वन देवी की पूजा का उल्लेख किया है।

"पूजन चलो हो कंदब देवी आओ हमारे कोऊ संग
भाव भगति मानति सबहिनि की बलि न काछु की कहु लेनी।
पुजवति सकल घोष की कामना सीतल सुखद सरस सुर देवी।"[222]

गणेश तथा सरस्वती क्रमशः विघ्नविनाश के तथा विद्या के देवताओं के रूप में स्वीकार किए गए हैं। अलग से इनका पूजा का विधान अष्टछाप काव्य में नहीं हुआ है। परंतु मांगलिक अवसरों पर इनकी पूजा का वर्णन हुआ हा—

"गौरि गनेस्वर बीनऊँ हो देवी सारद तोहिं।"[223]

सारावली में कृष्ण द्वारा भी गणेश की पूजा का उल्लेख हुआ है—

"प्रथम पुत्र को ब्याह जानि कै पूजत कहूं गनेस।"[224]

इनके अतिरिक्त इष्टदेवता इंद्र और लोकदेवता गोवर्द्धन की पूजा का उल्लेख भी अष्टछाप काव्य में हुआ है प्रत्येक व्यक्ति के इष्टदेवता और कुलदेवता तत्कालीन समाज में अलग-अलग होते थे। आज भी यह परंपरा लोक में प्रचलित है। इष्टदेवता की स्थापना प्रत्येक घर में होती है। और नित्यप्रति उसके भोग व आरती का आयोजन किया जाता है। नंद के यहां

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महराने से आए पांडे इष्टदेव का ध्यान करके भोग लगाते हैं और ब्रह्म के अवतार कृष्ण तुरंत उनकी रसोई में पहुंच जाते हैं—

"घृत मिष्ठान्न खीर मिश्रित करि परूसि कृष्ण हित ध्यान लगायौ।"[225]
"पांडे नहिं भोग लगावन पावै।
वह अपने ठाकुरहिं जिंवावै तू ऐसैं डात धावै।"[226]

राम कथा के प्रसंग में हनुमान भी अशोक वाटिका में फल खाने से पहले भोग लगाते हैं—

"अगनित तरूफल सुगंध मृदुल मिष्ट खोटे।
मनसा करि प्रभुहिं अर्पि भोजन करि डाटे।"[227]

नंद द्वारा अपने इष्टदेव शलिग्राम की पूजा का विधि विधान से वर्णन सूर ने किया है इसमें स्नानोपरांत झारी (पात्र विशेष) भर यमुना जल लाने, घर में देव मंदिर को लीपने, पात्र धोने और देव पूजा का उल्लेख किया गया है। आज भी प्रत्येक घर में इन नियमों का पालन किया जाता है—

"करि अस्नान नंद घर आए।
लै जल जमुना कौ झारी भरि कुंज सुमन बहुल्यायै
पांइ धोइं मंदिर पग धारे प्रभु पूजा जिए दीन्ह।
अस्थल लीपि पात्र सब धोए काज देव के कीन्ह।"[228]

इस पूजा के प्रसंग में बालकृष्ण की जिज्ञासाओं को जैसे शालिग्राम द्वारा भोग न खाने का उल्लेख भी किया है कृष्ण की चंचलता नटखटपन का वर्णन शालिग्राम को मुख में रख लेने पर किया गया है। नंद उनके इस कार्य के लिए देवताओं से क्षमा याचना कर पुनः देव पूजन करते हैं—

" एक समय पूजा के अवसर नंद समाधि लगाई।
सालिग्राम मेलि मुख भीतर बैटि रहे अलगाई।"[229]

दैनिक उपासना पद्धति में यदि इष्टदेवता की पूजा का विधान लोक में प्रचलित था तो वार्षिक अथवा विशिष्ट अवसरों पर कुल देवता की पूजा की जाती थीं। कुल देवता की कृपा से ही ऋद्धि-सिद्धि पाने का विश्वास समाज में था। गोवर्धन से पहले इंद्र ही ब्रजवासियों के कुल देवता के रूप में प्रतिष्ठित थे। इंद्र प्राचीन वैदिक देवता हैं जिन्हें आभीर जाति अपनी समृद्धि का मूल मानती है—

"जाकि कृपा दूध दधि पूरन सहस मथानी मथति सदाई।
जाकी कृपा अन्न धन मेरैं जाकी कृपा नवौं निधि आई।"[230]

सूर की यशोदा कृष्ण के अनिष्ट निवारण के लिए अपने इन्हीं कुल देवता की शरण में जाती हैं—

"और नहीं कुलदेव हमारै कै गोधन कै ये सुरपति बर।
करति विनय कर जोरि जसोदा कान्हहिं कृपा करौ कराना कर।"[231]

नंददास के काव्य में तर्कशीलता का प्राधान्य हैं उनके कृष्ण इंद्र पूजा के अवसर पर नंद से अपने तर्कों का प्रत्युत्तर मांगते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"यह करनी तुम शास्त्र तें पाई ऐ किधौं परंपरा चलि आई।
कैंधौं लोकरूढ़ हैं तात मो सौं कहौ कहा यह बात।"[232]

परमानंददास के नंद कृष्ण को इंद्र का महत्व बताते हुए कहते हैं—

"इंद्र कपाक हम करत सदा तुमरी कुस लाई।
ताल तलैया सब भरे बहुनृन उपजै भूमि।
वृच्छ हरित सब होत हैं फूल लता रहै झूमि।"[233]

कुलदेवता के आयोजन में स्त्रियां मंगलगीत गाती हुई विभिन्न प्रकार के भोग आदि तैयार करती है। यशोदा नेवज को अछूता रखने के लिए संभाल कर रखती हैं और कृष्ण उसे न छुएं इसलिए उन्हें डराती है—

"महरि सबै नेवज लै सैंतति स्याम छुवे कहुं तोको डरपति।
कान्हहि कहत इहां जनि आवै, लरिकनि कौं यह देव डरावै।
स्याम रहे आँगनहिं डराई मन-मन हंसति मातु सुखदाई।"[234]

थोड़ा बड़े होने पर कृष्ण इसी कुलदेवता के पद पर इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन की पूजा का विधान करते है॥ गोवर्द्धन को वह लोकदेवता के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। जनसाधारण की धारणा को इस ओर मोड़ने के लिए वे स्वप्न में अवतारी पुरुष के दर्शन तथा उसके द्वारा गोवर्धन की पूजा किए जाने के आदेश का उल्लेख करते हैं।[235] परमानंददास के कृष्ण भी गोवर्द्धन की पूजा के औचित्य को वर्णित करते हैं—

"हमारो देव गोवर्द्धन रानो।
जाकी छत्र छांह हम बैठे गोधन रहत ऊघानो।
नीको सब ब्रज होत सुखारो सुरपति कोप कहा पहचानो
नीको सब ब्रज होत सुखारो सुरपति कोप कहा पहचानो।"[236]

गोवर्द्धन पूजा का वर्णन अष्टछाप के प्रत्येक कवि ने किया है। अन्नकूट के उत्सव द्वारा उनकी पूजा के विविध आचारों का निरूपण किया गया है।

ब्रजमंडल में विभिन्न संस्कृतियां कालक्रम से विकसित और नष्ट होती रहीं। उनके चिन्ह लोकधर्म की मान्यताओं में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। यक्ष-पूजा, नागपूजा आदि ऐसे ही तत्व हैं प्रत्येक ग्राम का ग्राम देवता या लोक देवता यक्ष होता था। नलकूबर के उद्धार के प्रसंग में वृक्षपूजा का उल्लेख किया गया हैं। यक्ष पूजा के विधान के लिए जमाए दही को खाने के अपराध में बंधे कृष्ण द्वारा यक्ष पुत्रों का उद्धार वर्णित किया गया हैं—

"कोरी मटकी अह्यौ जमायौ जाख न पूजन पायौ
तिहिं घर देव पितर काहे को जा घर कान्हर आयौ।"[237]

यक्षोपासना प्राचीन लोकधर्म था। ब्रज में अनेकों यक्ष मूर्तियां उपलब्ध हैं जो यक्ष-पूजा का प्रमाण हैं। नागों को भी यक्षों की भांति देव कोटि में माना जाता है। वे जल के देवता और धन-संपत्ति के स्वामी माने जाते हैं। नागपंचमी का पर्व ब्रज में नागपूजा का प्रमाण है। इस दिन प्रत्येक घर की दीवारों पर नाग के चित्र बनाकर दूध तथा दूध से बने पकवानों द्वारा नागों की पूजा की जाती है। वासुकि, शेष आदि नाग सर्वपूज्य माने जाते हैं।

ब्रजसंस्कृति के लोकधर्म स्वरूप में वृक्षपूजा को भी स्थान दिया गया है। प्रकृति की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपासना वैदिक धर्म का अंग थी और उसी के प्रभाव स्वरूप वृक्षपूजा भी प्रचलित हो गई थी। वृक्ष जीवन की हरियाली के प्रतीक हैं। आभीर संस्कृति वन्य संस्कृति थी इसलिए वृक्षों का महत्व वहां और भी ज्यादा है। वृक्ष को पूजनीय मानकर इस संस्कृति ने वृक्षों और उनसे निर्मित वनों के सरंक्षण का दायित्व समाज को सौंप दिया। पौराणिक विश्वास के फलस्वरूप कल्पवृक्ष की पूजा मनवांछित फल देने वाले वृक्ष के रूप में की गई। इसी प्रकार केले के वृक्ष को भी विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों में शुभ मान कर अनिवार्य बनाया गया। आम और अशोक भी लोक-संस्कृति में पूज्य माने गये। वट-सावित्री व्रत में जो सौभाग्य के लिए किया जाता है उसमें वट-वृक्ष की पूजा अनिवार्य मानी जाती है। वृक्षों के प्रति यह पूज्य भाव आज भी लोक-संस्कृति का अंग है। गज, अश्व, वृषभ आदि पशु लोकजीवन में अपनी उपयोगिता तथा पौराणिक मान्यताओं के अनुसार पूज्य माने गए हैं। अन्नकूट के अवसर पर पौराणिक आख्यानों में तथा देव-वाहनों (ऐरावत, उच्चैश्रवा, नंदी) के रूप में इनकी पूजा का प्रचलन आज भी है। व्रत के संदर्भ में जागरण का उल्लेख भी किया गया है। एकादशी व्रत के दिन नंद सारी रात जागरण करते हैं और एक दंड द्वादशी रह जाने पर पारण विधि संपन्न करने को उद्यत होते हैं—

"एकादसी काल्हि मैं कीन्हौ निसि जागरन-नेम यह लीन्हौ।
तीनि पहर निसि जागि गंवाई। तब लीन्हीं मैं महरि बुलाई॥"[238]

राधा-कृष्ण के विवाह के अवसर पर जागरण को उत्सव के रूप में मनाया जाता है। आज भी विवाह संस्कार में रतजगे के रूप में प्रथा प्रचलित है। जागरण का उत्सव हेमंत ऋतु में मनाया जाता है।

पूजा-व्रत, तप-तीर्थ के यह अनुष्ठान लोक-धर्म के स्वरूप का निर्माण करते हैं। ब्रजलोक संस्कृति की विशेषता इस बात में है कि यहां प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान एक लोकोत्सव का रूप धारण कर लेता है। ब्रज का लोकमानस प्रत्येक धर्म व संस्कृति के प्रभाव को आत्मसात करते हुए उसे पूर्णतः अपने स्वरूप में ढाल लेता है। परंपरा और प्रभाव दोनों वहां मिलकर एक हो जाते हैं।

लोकधर्म में प्रत्येक व्रत-त्यौहार तथा अनुष्ठान को किसी-न-किसी कथा से जोड़ा गया है। इन कथाओं में तार्किकता का आग्रह अधिक नहीं है। इनका उद्देश्य जनसाधारण को ब्रज का महत्व आदि समझाना भर है। इसलिए लोकधर्म में कथा-श्रवण का महत्व भी प्रतिपादित किया गया। कथा-श्रवण के साथ ही साथ ग्रंथ पारायण भी लोकधर्म का एक अंग माना गया। धार्मिक ग्रंथों के पारायण को भक्ति के एक अंग के रूप में प्रतिपादित किया गया है। श्रीमद्भागवत की कथा सुनना और गाना परम कर्त्तव्य घोषित किया है। "हरि की कथा होये जब जहाँ गंगा हू होय चली आए वहां,"[239] के अनुसार गंगादि पवित्र नदियां तथा तीर्थ उस स्थान पर उपस्थित होकर मनुष्य को पुण्य का भागी बनाते हैं।

अष्टछाप के कवि यद्यपि भक्ति का लक्ष्य लेकर चले और उसी के अनुरूप वातावरण का निर्माण भी उन्होंने किया फिर भी समाज में व्याप्त धर्म से संबंधित विकृतियों का चित्रण उन्होंने किया है। आत्मनिवेदन तथा विनय के पदों में अप्रत्यक्ष रूप से इसका चित्रण किया गया है। पाखंड और दंभ का इन्होंने अनेकशः विरोध किया है। बारह वर्ष की अवस्था में दिगम्बर होने वाले ज्ञानहीन संन्यासियों का उल्लेख परमानंददास ने किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"बारह बरस कौ भयो दिगम्बर ग्यानहीन संन्यासी।
खान पान घर घर सबहित के भसम लगाय उदासी।"[240]

"तुम साकत वै भगत भागवत राग द्वैष तै न्यारै।"[241] कहकर सूरदास ने शाक्त साधना की अवांछनीय अवस्था का संकेत किया। साधु के गुणों से रहित साधुओं का वर्णन भी उन्होंने किया है[242] परमानंददास ने भी ऐसे ढोंगियों को धर्म के हानिकारक तत्वों के रूप में वर्णित किया है—

"काम ने बिसरायौ क्रोध बिसरचौ लोभ न छूटयौ देवा।
मोह मलिनता मने नाहिं दूटी विफल भई सब सेवा।
बाट पारिधर मूंसि बिरानो फोट भरे अपराधी।
जेहि परलोक जाए अपकीरति साई अविद्या साधी।"[243]

सूरदास ने भी 'लालच लागि कोटि देवनि के फिरत कपाटनि खोलत' द्वारा धर्म की आड़ में लाभ उठाने वाले ढ़ोंगियों का चित्र खींचा है। इस प्रकार लोकधर्म की बहुदेवोपासना धीरे-धीरे लाभ का व्यवसाय बनती जा रही थी।

लोकधर्म के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूरदास को छोड़कर और किसी कवि ने सूक्ष्मता से इसका चित्रण नहीं किया है। इसका कारण उन कवियों का पुष्टिमार्गीय साधना के प्रति रुझान था। फिर भी धर्म से संबंधित लोकमानस की विशेषताओं का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। वैष्णव भक्त इसी कारण सभी संप्रदायों और धार्मिक कृत्यों—व्रत, दान, उपवास, श्राद्ध आदि को अपनाते हुए भी भक्ति की महत्ता को सिद्ध करते हुए चले हैं।

लोककलाएं

कलाओं की दृष्टि से अष्टछापकालीन ब्रजसमाज उन्नति के शिखर पर था। कृष्ण के जीवन से जुड़ जाने के कारण कई लोककलाओं का विकास हुआ। और अष्टछाप साहित्य में उन्हें उपयुक्त स्थान मिला। कला का संबंध सृजन-शक्ति से है। प्रत्येक कलाकार अपनी वैयक्तिक साधना द्वारा ब्रह्म के समान ही अपनी सृजनात्मकता का परिचय देता है। समाज के कल्याण के प्रति उसका उत्तरदायित्व भी इसलिए बढ़ जाता है। ब्रजभूमि प्राचीनकाल से ही धर्मक्षेत्र के रूप में विख्यात रही है। इसलिए कला का आधार वहां धर्म है। ब्रज की कलाओं का मूल स्वर लोककल्याण है।

ब्रज के लोकजीवन में कामूसत्र में वर्णित सभी कलाओं का प्रचलन था। अष्टछाप काव्य में इन सबके प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष वर्णन किया गया है। आचार्य वल्ली के प्रयासों के फलस्वरूप ब्रज में ललित कलाओं का बहुमुखी विकास हुआ। संगीत कला अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई। चित्रकला के विविध प्रकार सामने आए और नृत्य तथा नाट्य कलाएं सूक्ष्म भाव-प्रदर्शन तथा भावाभिनय से जुड़ गई। इन सब कलाओं के मूल में लोककलाओं का बहुत बड़ा योगदान है। ब्रज का लोकमानस स्वभावतः कलाप्रेमी रहा है इसलिए कलाओं के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण अष्टछापी कवियों को सहज मिल गया। अपनी लोकोन्मुखी दृष्टि द्वारा उन्होंने इस प्रवृत्ति को पहचानकर अपने काव्य में गूंथ लिया। लोककलाओं के सभी रूप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोकनृत्य, चित्रशिल्प तथा व्यवसाय आदि इस काव्य में मिल जाते हैं।

लोकनृत्य के रूप में रास का प्रचलन ब्रज में प्राचीन काल से ही था। कृष्ण के द्वारा अपनाए जाने पर इसकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई और अष्टछापी कवियों ने अपने मनोरम वर्णनों द्वारा इसे अमर कर दिया। रास में नृत्य के भेद-लास्य की प्रधानता है, इसमें एक नर्तक अनेक नर्तकियों के साथ नृत्य करता है। कृष्ण और गोपांगनाओं के रास का वर्णन प्रत्येक कवि ने किया है। इसका विशद विवेचन आगे किया जाएगा। इसका कारण यह है कि अपने सौंदर्य और पद-संचालन की गति व लयादि के कारण लोकनृत्य के साथ-साथ ब्रज की नृत्य कला का पर्याय बन गया है। हल्लीसक भी ब्रज का लोकनृत्य है जिसका सर्वप्रथम उल्लेख भास के बाल-चरित नाटक में मिलता है। वहां तृतीय अंक में इसे दामोदर संकर्षण के साथ गोप-गोपियों का नृत्त कहा गया है। नृत्त में जो अंग संचालन होता है उसमें केवल ताल-लय का ध्यान रखा जाता है। भावाभिनय और गान का नहीं। पुराणों में इसका वर्णन "हल्लीसक क्रीडनं" नाम से मिलता है।[244] अभिनवगुप्त ने हल्लीसक को ऐसा नृत्त माना है जिसमें एक नेता के साथ अनेक ष्टियां कृष्ण के साथ गोपियों की भांति मंडल बांधकर नाचती हैं।[245] हरिवंशपुराण के टीकाकार नीलकंठ ने इसे रासक्रीड़ा के समकक्ष बताया है।

"हल्लीस क्रीडन एकस्य पुंसो बहुभिः स्त्रीभिः क्रीडनं सैव रास क्रीडा।"[246]

वैष्णव धर्माचार्यों ने रास को इससे आग माना है। अष्टछाप काव्य में कृष्ण के साथ गोपियों के नृत्त का वर्णन भी किया गया है। रास वर्णन के अंतर्गत ही ऐसे पदों का समावेश किया गया है। जिनमें केवल नृत्य कां अंग-विक्षेप और पदसंचालन का उल्लेख है—

"नाचति मोहन संग राधिका ब्रजजुवतिनि के जूथ लिये
बाहु परस्पर जोरि प्रेम बल मुदित गंड पर गंड दिये।"[247]

आज भी विभिन्न लोकनृत्यों में इस प्रकार का पद-संचालन देखने को मिल जाता है। नृत्य के अवसर पर परंपरागत लोक वेशभूषा—काछनी, चोली, अतरौटा, चुनरी, कंचुकी तथा सभी प्रकार के नख से शिखर तक आभूषण धारण किए जाते थे। अष्टछापी कवियों ने इस सभी वस्त्राभूषणों का उल्लेख किया है। प्राचीन ब्रज में नृत्त का एक प्रकार छालिक्य अथवा छलिक भी प्रचलित था। जो कृष्ण द्वारा यादवों में प्रचलित किया गया था। कृष्ण प्रद्युम्न, अर्जुनादि इसके विशेषज्ञ थे। अष्टछाप में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

चांचरि लोकनृत्य का वर्णन भी अष्टछाप काव्य में हुआ है। परमानंद ने स्पष्ट रूप से इसका उल्लेख करते हुए नृत्य के सौंदर्य का भी प्रतिपादन किया है—

"माधौ चांचर खेल ही खेलत रही जमुना के तीर।
विच विच गोपी बनो विचबिच री वे बने हैं मुरारि।
कुंकुम बरनी गोपिका कैसे री घनस्याम सरीर।
नील पीत पटमंडिता नाचत री वे प्रेम गंम्भीर।"[248]

कृष्णदास ने भी होली के प्रसंग में चांचरि नृत्य के समान जोड़ी बनाकर होली खेलने का उल्लेख किया है।

"इतहिं गोपिका जुरि जुरि आई उतहिं ग्वाल मंडली चांचरि जोरी।
पिय प्यारी पर प्यारी पिय पर अबीर र लाल की डारत झोरी।"[249]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रज में लकड़ी के सोटों से नृत्य करना भी लोकनृत्य का एक प्रकार है। वह भी होली के अवसर पर ही खेला जाता है। बरसाने का यह नृत्य आज भी प्रसिद्ध है। परमानंददास ने राधिका तथा उनकी सखियों का सोलहों शृंगार किए। गायन-वादन के साथ इस नृत्य का विशद वर्णन किया है—

"जो कूटक तो बांधि बांधि के सांटिन नृत्य नचैये।"

कृष्णदास ने भी डंडा-रास का उल्लेख किया है जो गुजरात में गरबा लोकनृत्य के रूप में आज भी प्रचलित है। लोकनृत्य प्रचलित है।

"मिली जु डंडा रास खेलिये नंदराय की पौरि।
आनन्द सौं मन भाइ रह्यौ नवल किसोर किसोरि।"[250]

कृष्ण जनम के अवसर पर ढाढ़ी ढाढ़िन के नृत्य का उल्लेख प्रायः सभी कवियों ने किया है। इस नृत्य में शास्त्रीयता के स्थान पर विशुद्ध लोकतत्व की अभिव्यक्ति हुई है। भावाभिव्यक्ति के सूक्ष्म चित्रण के स्थान पर आनन्द से भर-घुमेड लेकर नाचने का उल्लेख यहां किया गया है—

"करि सिंगार ढाढ़ी अरू ढाढ़िनि श्री ब्रजपति गृह गयौ।
फूलि अंग न माति है ढाढिनी अरू ढाढ़ी मन फूल्यौ।
लटकि लटकि दोउ नांचन लागे आनन्दित जग भूल्यौ।"[251]

चुरुकुला नृत्य स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला लोकनृत्य है। यह सिर व हाथों पर प्रज्ज्वलित दीप वाली थालियां लेकर किया जाता है। इसका स्पष्ट उल्लेख तो अष्टछाप काव्य में नहीं मिलता परंतु गोपियों के नृत्य करते हुए "सुनत चली सब ब्रज की सुन्दिर, कर लिये कंचन थाल"[252] जैसी पंक्तियों से इसका अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। ब्रज के मंदिरों में उत्सवों के अवसरों पर यह नृत्य आज भी संपन्न किया जाता रहा है। नृसिंह नृत्य भी ब्रज का लोकनृत्य है जो नृसिंह लीला के अवसर पर किया जाता है। इस अवसर पर नर्तक द्वारा लास्य के स्थान पर तांडव नृत्य के पदक्रम को अपनाया जाता है। अष्टछाप काव्य में इसका भी स्पष्ट वर्णन नहीं है।

रासलीला का मंचन लोकनाट्य के रूप में किया जाता है। नाट्य का समावेश पहले नृत्य में ही था परंतु धीरे-धीरे यह दोनों स्वतंत्र कलाएं बन गईं। इस स्थिति में भी उनका एक-दूसरे से संबंध समाप्त नहीं किया हुआ। कालांतर में नाट्यकला का विस्तार हुआ और नृत्य को उसका अंग मान लिया गया। ब्रज में यह कला प्रारंभ से ही विद्यमान थी। कंस की रंगशाला के उल्लेख द्वारा इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि अष्टछाप के समय में नाट्याभिनय के लिए रंगशालाओं का निर्माण किया जाता था। कृष्ण लीलाओं के साथ रासलीला के रूप में नृत्य नाट्य का प्रचलन भी मध्यकालीन ब्रज में था। सूरदास तथा नंददास के पदों की अभिनेयता से तत्कालीन नाट्यकला का परिचय मिल जाता है। नाट्यकला का यह विकास आधुनिक युग में भी जारी है।

लोक संगीत के गायान तथा वादन पक्ष का भी विस्तृत विवरण अष्टछाप काव्य में उपलब्ध है, यह दोनों लोक कलाएं भी निरंतर उन्नतिशील रही है और शास्त्रीय स्वरूप को प्राप्त कर चुकी है। विभिन्न वाद्य जैसे बांसुरी आज भी लोकवाद्य के रूप में बजाए जा रहे हैं। शास्त्रीय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कलाकार तथा लोक कलाकार दोनों ही समान रूप से इसका प्रयोग कर रहे हैं, यही स्थिति गायन के साथ भी हैं लोकगीतों के रूप में यह परंपरा आज भी अपने मूल रूप में सुरक्षित हैं। ब्रज की भगत परंपरा और स्वांग परंपरा भी अत्यंत प्राचीन हैं परंतु अष्टछाप काव्य में इसका वर्णन नहीं है। दीपमालिका के हटरी प्रसंग में अप्रत्यक्षरूप से लोक स्थापत्य का चित्रण किया गया है।

लोक चित्रकला के विभिन्न रूपों का वर्णन अष्टछाप काव्य में हुआ है। बेल-बूटे काढ़ना द्वारों पर चित्र, सथिये, नाग आदि बनाना, नृत्यादि के अवसर पर मुखादि पर चित्र बनाना, रूप सज्जा आदि इसके प्रकार हैं। सांझी, अल्पनादि भूमि चित्रों तथा भौगोलिक अवसरों पर चित्रित भित्ति चित्रों में लोकमानस का प्रतिबिंब स्पष्ट परिलाक्षित होता है। लोक चित्रकारी के लिए सामान्य जीवन में उपलब्ध घरेलू साधनों का प्रयोग किया जाता है। चूना, पिसे हुए चावल, काजल, रोली, पीली मिट्टी, सूखे रंग, बांस आदि ऐसे ही उपकरण है। लोक चित्रकारी में स्त्रियों की विशेष भूमिका है। शुभ अवसरों पर अष्टछाप में प्रायः गज मोतियों से चौक पुराने और साथिये आदि रखने का उल्लेख किया गया है।

"गोपी सब मिली गावत मोतिन चौक पुराई।"
"धरति साथिये तोरन बांधति दधि छिरकायो है।"[253]

लोक संस्कृति के अनुरूप गोबर से आंगन लीपने का वर्णन भी परमानंददास ने किया है—

"आंगन लीपो चौक पुरावों विप्र पढ़न लागे वेद।"[254]

इसी प्रकार विवाह के अवसर पर थापे, छट आदि भी लोकचित्रकला के प्रतीक हैं, आधुनिक परिवेश में यह अपना मूल रूप खोते जा रहे हैं फिर भी सलूनों, होई अष्टमी में यह अपना मूल रूप खोले जैसे पर्वों पर भित्ति अथवा कागज पर आज भी कुछ परिवारों में श्रवणकुमार अहोई देवी के चित्र अंकित किए जा रहे हैं। बड़मावस, ओघद्वाशी, आस चौथ जैसे लोक पर्वों का चित्रण अष्टछाप काव्य में नहीं किया गया। लोक शिल्प के अप्रत्यक्ष उदाहरण भी अष्टछाप में मिल जाते हैं। बर्तनों तथा मृण्यमूर्तियों का निर्माण लोकशिल्प का उदाहरण हैं। काठ के बर्तन, कठपुतली आदि भी इसी के अंतर्गत आते हैं। खिलौने तथा गुड़िया आदि बनाना भी स्थानीय शिल्प के द्योतक हैं, इन्हीं से जुड़े अनेकों अनेकों लोक व्यवसायों का अनुमान भी लगाया जा सकता है—बांस की टोकरी बनाना, संगतराशी, लकड़ी पर बेल-बूँटे बनाना, हाथी, घोड़ा, मीन, आदि की जीन, हौदां, झूल, पुष्पों के बंगले, आभूषण, वष्ट आदि ऐसे ही व्यवसाय हैं। ब्रज समाज के छोटे से छोटे कार्य से जुड़े लोक व्यवसाय के रूप में तत्कालीन विद्यमान ये अष्टछाप काव्य में इन सबका प्रतिनिधित्व किया गया है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है। ब्रज की लोक कलाएं अष्टछाप काव्य का सशक्त पक्ष है।

लोक साहित्य

लोक साहित्य लोकमानस का प्रतिबिम्ब है। उसमें सामान्य जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती हैं। लोक-संस्कृति का चित्रण करना भी लोक साहित्य की विशेषता है। इससे साहित्यिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

या कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा नैसर्गिक भाव सौंदर्य पर बल दिया जाता है। लोकगीतों और लोककथाओं में जन जीवन का जितना सही रूप चित्रित किया जाता हैं उतना अन्यत्र नहीं। लोक-संस्कृति भी लोक साहित्य में ही अपना रूप सुरक्षित रखती है।लोक साहित्य के आतर्गत लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा लोकोक्तियां तथा लोक भाषा आदि तत्व परिगणित किए जा सकते हैं। इन सभी के माध्यम से लोकमानस के भावजगत, सुख-दुख आदि का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। अष्टछाप के कवियों ने ब्रज की आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था। इसलिए उनके काव्य में लोक साहित्य के विविध अंगों का समावेश होना स्वाभाविक ही था। वे ब्रजभूमि, ब्रजलोक, ब्रजसंस्कृति तथा ब्रजभाषा के कवि थे अतः लोक-संस्कृति की पृष्ठभूमि में लोकमानस को प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके।

अष्टछाप साहित्य वास्तव में श्रीमद्‌भागवत से जीवन और लोककथाओं से स्पन्दन प्राप्त कर रहा है। आचार्य रामचन्द शुक्ल ने, "सूरसागर किसी चली आती हुई गीति काव्य परंपरा का चाहे वह मौखिक ही रही हो पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है"[255] कहकर सूर साहित्य की पृष्ठभूमि में लोक साहित्य के अंग लोकगीत का होना प्रतिपादित किया है। लोक साहित्य के महत्व को निरूपित करते हुए डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा है—"हमें अभी तक यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि किस प्रकार की सामाजिक आस्थाओं के भीतर भक्ति का आंदोलन शुरू हुआ था। इस बात को जानने का सबसे बड़ा साधन लोकगीत, लोक कथानक और संप्रदायों की रीति, नीति, पूजा-पद्धति और अनुष्ठानों तथा आचारों की जानकारी है।"[256]

डा. हरवंशलाल शर्मा ने सूर की राधा-कृष्ण और गोपियों की शृंगारिक चेष्टाओं के पीछे समाज में प्रचलित लोकगीतों की परंपरा को उत्तरदायी माना है।[257]

डॉ. मुंशीराम शर्मा ने भी परंपरागत गीतों के रूप में लोकगीतों के प्रभाव को स्वीकार किया है "सूरसागर की कुछ लीलाएं ऐसी भी हैं जो भागवत में नहीं मिलतीं जैसे बसंत हिण्डोल और फाग आदि यद्यपि यह लीलाएं परंपरागत गीतों का प्रभाव स्वरूप सूचित करती है। फिर भी सूर ने उनमें अपनी मौलिकता का पूर्ण सन्निवेश कर दिया है।"[258]

लोकगीत

अष्टछाप कवियों की रचनाओं में ब्रज में प्रचलित लोकगीत का अस्तित्व सुरक्षित मिलता है। शास्त्रीय रागों तथा साहित्यिक भाषा के स्पर्श से उन्होंने उसका रूप परिष्कृत कर दिया है। अपनी इस चेष्टा द्वारा लोकगीतों की आत्मा और उनकी प्रकृति को किसी तरह की हानि नहीं पहुंचाई है। उनके लोकगीतों में भावुकता सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति अपने सुंदरतम रूप में हुई है। ब्रज की लोक संस्कृति का अकृत्रिम रूप इन गीतों में प्राप्त होता है। गेय पदों की कसौटी पर भी यह गीत खरे उतरते हैं। संगीत के क्षेत्र में अष्टछापी कवियों ने जैसे नाम-योजना को महत्व देकर संगीत के सौंदर्य को उभारा है। वैसे ही लोकगीतों का परिष्कार भी किया है। इसके पहले भी लोकगीतों में कृष्ण लीलाओं का गान हो रहा था, परन्तु इनका वह सुघड़ रूप देखने को नहीं मिलता था जो अष्टछाप के कवियों द्वारा स्थापित किया गया। अपने मत की लोकप्रियता के लिए इन कवियों ने लोकगीतों को माध्यम बनाया। लोकगीतों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का सहज संगीत जनसाधारण को आकर्षित करने के लिए शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा अधिक उपयुक्त था इसलिए उसी को अपनाकर भावनाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति अष्टछाप में की गई है। इन लोकगीतों का स्वरूप काव्यात्मक होते हुए भी भावभिव्यंजक है। व्यक्तिगत और सामूहिक उल्लास इनकी विशेषता है। कृष्ण जन्म, पालना, गोचारण, छठी, विवाह, ज्यौनार आदि के गीतों में उन सब गीतों में उन सब तत्वों और शैलियों का समावेश किया गया है। जो तत्कालीन ब्रज-जीवन के अंग थे। इन गीतों में वर्णन शैली का प्राधान्य है। काव्यकला की दृष्टि से अन्य पदों की अपेक्षा इन गीतों का महत्व चाहे कम हो, लोकसंपर्क भी दृष्टि से अत्याधिक है। लोक से अंतरंगता इन्हीं गीतों के माध्यम से स्थापित हो सकी है। लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत को समन्वित और संतुलित रूप में प्रस्तुत करना अष्टछाप काव्य की विशेषता है। यह गीत अधिकतर सहगान के रूप में उल्लास की अभिव्यक्ति के लिए गाए जाते थे। इसलिए द्रुतलय साधारणता के इसी गुण के कारण अनेकानेक गीत कालांतर में लोकगीतों के रूप में स्वीकार कर लिए गए।

प्रत्येक सांस्कृतिक पर्व या धार्मिक आुष्ठान पर लोकगीतों का गायन ब्रजलोक संस्कृति में अनिवार्य माना जाता है। सूरदास के ऐसे पद लोक-संस्कृति का रूप तो प्रस्तुत करते ही हैं साथ ही साथ लोकमानस का उदात्तीकरण भी करते हैं। संस्कार, पर्व, त्यौहार आदि के प्रसंग में सूर तथा अन्य कवियों का लोक से संबंध स्पष्ट किया जा चुका है। यहां पर एक प्रसिद्ध पद उद्धृत किया जा रहा है जो लोकगीत शैली पर लिखा गया ओर आज स्वयं लोकगीत के रूप में प्रयुक्त हो रहा है

"गौरि गनेस्वर बीनऊँ देती सादर तोहिं
गावौं हरि कौ सोहिलो (हो) मन आखर दै मोहिं
हरषि बधावा मन भया (हो) रानी जायौ पूत।
घर बाहर मांगे सबै (हो) ढाढ़े मागध सूत।"[259]

(हो) का प्रयोग यहां पर लोकगीतात्मक शैली में किया गया है। उत्तर प्रदेश में जन्मोत्सव पर गाए जाने वाले सोहर में इसी शैली का पालन किया जाता हैं जैसे—

गंगा जमुनवां के बिचवां तेवइया एक तप करइ हो।
"गंगा अपनी लहर हमें देतिउ मइं मंझधार डूबित हो।"[260]

कृष्ण जन्म लोकगीतों का अभिन्न अंग है। ब्रजलोक में अनेकों सोहर इसी को विषय बनाकर लिखे गए हैं। और नारी समाज के प्रिय बने हुए हैं—

"अनोखा लाला जायारी मैं वेदों में सुन आई।
कहां तो कान्हा जनम लिया हैं कहां तो बजत बधाई री।
मथुरा में कान्हा जनम लिया है गोकुल बजत बधाई री मैं वेदों में सुनवाई।"[261]

लोकगीतों का एक रूप बधाई भी है। ब्रजलोक की बधाइयां इस प्रकार हैं।

"आई आई नंद जू की पौरि बधाई लाई मालिनियां।
कहा लाई लला की बधाई सुघड़ पट मालिनियां।"[262]

इसी प्रकार कृष्ण जन्म पर लोक बधाई का यह रूप दृष्टव्य है—

"जसुदा के हुए नंदलाल बधावा लाई मालिनियां

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

मालिन लाई फूल तमोलिन बीथियां हो, तमोलिन बीथियां हो।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोई अच्छी सी साड़ी ले आई "महापटवारिनयां।"
"बंधावा नंद द्वार ढबढब बजे
ग्वालिन संग ग्वाल छम छम नाचे।"[263]

अषटछाप काव्य में भी बधाई पद प्रायः सभी कवियों ने लिखे हैं—

"धनि धनि नंदजसोमति धनि जग पावन रे।
धनि हरि लियो अवतार सुधनि दिन आवन रे।
दसएं मास भयौ पूत पुनीत सुहावन रे।
संख चक्र गदा पदमचतुर्भुज भावन रे।
बनि ब्रज सुन्दरि चलीं सुगाइ बधावन रे।
कनक थारू रोचन दधि तिलक बनावन रे।
पाइन परि सब वधू महरि बैठावन रे।"[264]

सूरदास के इस बधाई गीत में की टेक द्वारा लोकगीतों की शैली का अनुकरण किया गया हैं साथ ही कृष्ण जन्म से जुड़े पौराणिक प्रसंग का संकेत, ब्रज ललनाओं का सामूहिक उल्लास तथा सहगान के रूप में उपयुक्त वर्णों का चयन कवि की कुशलता का परिचायक हैं। 'पाइन परि' द्वारा अभ्यर्थना की तत्कालीन प्रचलित लोकरीति की ओर भी संकेत दिया गया है। कृष्ण जन्म के शुभ अवसर पर नंद के वैभव, लोक-संस्कृति के आचार तथा सामान्य जन के सहज उल्लास का चित्रण सूर के बधाई गीतों की विशेषता है। लोक बधाई "बधावा नंदद्वार ढब ढब बाजे" की गूंज निम्न बधाई में उपर्युक्त विशेषताओं के साथ सुनाई पड़ती है—

"आजू हो बधायो बाजे नंद गोप राइ के।
अनंदति गोपी ग्वाल नाचै कर दै दै ताल
अति आहलाद भयो जसुमति माय के।
सिर पर दूब धरि बैठे नंद सभा मधि, द्विजनि कौ गाय,
दीनी बहुत भंगाय के।
कनक कौ माट लाइ हरद दही मिलाइ
छिरकैं परस्पर छल बल धाइ कै।"[265]

गोपबालाओं के साज-शृंगार और सामूहिक उल्लास के अतिरिक्त समाज में निम्न समझे जाने वाले ढाढ़ी-ढाढ़िन के व्यक्तिगत उल्लास के साथ तत्कालीन प्रथाओं और रीतियों का उल्लेख भी अष्टछाप काव्य में किया है। नंददास ने लोकगीतों की परंपरानुसार यहां जू शब्द का प्रयोग किया गया है—

"कृष्ण जनम सुनि अपने पति सों हंसि ढाढ़िन यों बोली जू।
जाउ जाउ तुम नंदनृपति कैं, दान कोठरी खोली जू।
तुमहिं मिलैगो। बागौ वीरा दछिना भरि भरि झोरी जू।
हमको लइयौ नख सिख गहना जेहरि सहित सु जोरी जू।
साज सहित इक घुड़िया लैयौ, गैया दूध अतोली जू।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

सुन्दर सों इक हाथी लइयों हथनी संग अमोली जू।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सज्जा सहित एक दुलिया लइयौ और पानन की डोली जू।
बीरी करि करि मोहि खवावै लैयौ संग तम्बोली जू।"[266]

उत्साह और उल्लास से भरे ऐसे बधाई गीत सभी कवियों ने लिखे हैं जिनमें ब्रजलोक संस्कृति की जीवंतता देखने को मिलती है।[267]

कृष्णदास ने लोकगीत की टेक लेकर निम्न बधाई लिखी है—

"आजु बधायो नंदमहर घर चलु सखि देखनि जाइरी।
आनद होत कुतूहल बरषत मानिनी मंगल गाइ री।
साजि सिंगार सकल ब्रज सुंदरि कनक कलस धरि सीसरी।
पूत जायौ रानी जसोदा देत हैं मुदित असीस री।"[268]

इसमें केवल लोकगीत शैली का ही नहीं लोकरीति का सिर पर भरा कलश लेने का उल्लेख भी किया गया है। वैराग्य तथा संसार के प्रति उदासीनता के कारण लोकजीवन में लोकगीतों के माध्यम से ईश्वर के प्रति आत्मनिवेदन की प्रवृति विद्यमान थी जो भजनों के रूप में परिणत हो गई थी। सूरदास तथा अष्टछाप कवियों के ऐसे भजन लोकगीतों का रूप लेकर आज भी मंदिरों में साधु संतों द्वारा तथा साधारण गृहस्थों द्वारा भी गाए जा रहे हैं—

"नहिं अस जनम बारंबार।
पुरबलो धौं पुन्य प्रगटयौ लहयौ नर अवतार।
घटै पल पल बढ़ै छिन छिन जात लाग न बार।
धरनि पत्ता गिरी परे तैं फिरिन लागै डर।
भय-उदधि जमलोक दरसै निपट ही अंधियार।
सूर हरि को भजन करि करि उतरि पल्ले पार।"[269]

ऐसे अनेकों पद अपने लोकगीतात्मक रूप के कारण ब्रज प्रदेश तथा भारत के अन्य देशों में विख्यात हैं। विवाह के समय लोकगीतों का प्रचलन तथा ज्यौनार के अक्सर पर गीता का गायन ब्रज समाज की विशेषता है। विवाद के समय गारी देने की लोकप्रथा के रूप में भी लोकगीतों का प्रयोग किया गया है। आज भी गाली गाने का प्रचलन ब्रज प्रदेश में हैं। प्रायः माता-पिता को लक्ष्य करके गालियां गाई जाती हैं। सूरदास ने "तेरी माइ सकल जग खोयौ सो को जों इहिमिलि न बिगोयो"[270] जैसा लंबा पद गाली पर लिखा है। परमानंददास ने भी लोकगीतों की इस विधा का प्रयोग किया है—

"द्वै बाप सबै कोउ जाने जाहि वेद पुरान बखानै।
तेरी मैया आनि आनि जाती तुत बैठे हिलि मिली पांती।
तेरी फूफी पंच भरतारी सो तो अर्जुन की महतारी।
तेरी बहन सुभद्रा बारी सो तो अर्जुन संग सिधारी।"[271]

उन्होंने लोकगीत शैली का सुंदर प्रयोग निम्नपद में किया है—

हरि खंजन री हरि खंजन, राधानू के मनकोरंजन।
हरि रंजन री हरि रंजन, ललिता लै आई अंजन।[272]

वसंत ऋतु में गाए जाने वाले लोकगीतों ने 'फाग' काव्य परंपरा को जन्म दिया और अष्टछापी कवियों ने उसमें काव्यात्मकता तथा संगीतात्मकता का समावेश कर सुंदरतम काव्य

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की रचना की। इन्हें होली या होरी भी कहते हैं। लोकजीवन में प्रचलित 'फाग' की प्रारंभिक पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"मति जाहु कंत परदेस बसंत नेराने।
लखौ आम बगरान मधूकनि कूच देखाने।
रूख होत परझार टेसू बन माँहि फुलाने।"[273]

सूरदास ने इस भाव को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

"कछु दिन ब्रज औरौ रहौ हरि होरी है।
जब जिनि मथुरा जाहु अहो हरि होरी है।[274]

"फूले बननि सुमन पलास ऋतुनायक सुख कौ बिलास" कहकर सूरदास ऋतु की मादकता का कारण भी सूचित कर देते हैं। कृष्णदास ने भी वसंत के इस प्रभाव का वर्णन किया है—

"फूल फले री चलि देखन जैये नव बसंत नच बन द्रुग केलि।"[275]

इसी प्रकार ब्रज की प्रसिद्ध 'होली' का प्रभाव भी अष्टछाप साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आजकल लोक में प्रचलित 'होरी' का रूप इस प्रकार है—

"आज बिरज में होरी ।
उड़त गुलाल लाल भए बादर केसर रंग में बोरी।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ और मंजीरन जोरी।"[276]

सूरदास की 'होरी' में भी इस भाव का प्रतिबिम्ब पाया जाता है—

"डफ की धुनि सुनि बिमल भई सब कोउ न रहति घर घूँघटवारी।
उड़त गुलाल लाल भए बादर रँगि गए सिगरे अटा-अटारी।"[277]

कृष्णदास ने भी 'होली ' के सरस रंग बिखेरे हैं—

"चोवा चंदन अगर कुंकुमा उड़त गुलाल अबीरे।
खेलत फाग भाग बड़ गोपी छिरकति स्याम-सरीरे।
ताल मृदंग उपंग बाँसुरी बाजत बीन रसाल।"[278]

कृष्णदास के कई पदों में 'होरी' के लोकगीतात्मक रूप को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया है—

"होरी के खिलार होरी तौ खैलौ।[276]
"होरी खेलै लाल कर लिये गुलाल, वारौं अमरपाल।
सम न न न न न न न न न।
संग गोपाल आप भरे छवि प्रताप गावै अलाप।
न न न न न न न न न।[280]

कुंभनदास ने लोक गीतों की आत्मा और शास्त्रीय संगीत की सूक्ष्मताओं का संयोजन 'फाग' और होरी गीतों में किया है—

"भाई हो हो होरी खिलाइये।
झाँझ बीन पखावज किन्नर डफ मृदंग बजाइये।[281]
ताल त्रिवट ततकार चाँचर खेल मचाइये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'फाग ' के पदों में लय प्रयोग द्वारा लोक गीतों की विशेषताओं को रूपायित करने का प्रयास उन्होंने किया है—

"गावत नटनाराइन रागमुदित देत चैन,
फाग चहुँदिसां जुरि ग्वाल बाल वृंद टोलना।
बाजत अपंग बांसुरि सुर बेनु चंग,
संख बंस झांझि डफ मृदंग ढोलना।
चलत सुर अनेक ताल सुधरराई जी गोपाल,
बेनुमध्य गान भरत होहि होलना।"[283]

छीतस्वामी ने भी बसंत और धमार के पदों में 'हो हल्ला' और उल्लास की व्यंजना की है।

इसमें भी लोक और शास्त्रीय संगीत का संतुलन कवि ने बनाए रखा है—

"आयो रितुराज साज पंचमी बसंत आज
भोरे द्रुम अति अनूप अम्ब रहे फूली।
बेली लपटी तमाल सेत पीत कुसुम लाल।
उड़वत रंग स्याम भाम भँवर रहे झूली।"[283]

चतुर्भुजदास ने रंग और सौरभ से युक्त होली के अनेकों चित्र प्रस्तुत किए हैं जो आज भी लोकजीवन के अंग हैं।—

"कुंकुम रंग सों भरि पिचकारी छिरकत जे सुकुमारी।
बरजत छींटे जात द्रुमनि में धनि वे पोंछन वारी।
बदनचंद सों चोवा मथि के नील कंज लपटावो।
अलकें सिथिलित पाग सिथिलानी बेई फुनि बाँधि बनावो।"

ब्रज की होली के यह चित्र सरल होने के साथ-साथ तत्कालीन समाज के मनोरम चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। फागुन के उल्लास की ही भांति सावन की हरीतिमा भी अष्टछाप काव्य में सर्वत्र बिखरी हुई है। वर्षा ऋतु का सौंदर्य और सावन के महीने में वृक्षों पर पड़े झूलों पर झूलती-गाती स्त्रियों के दृश्य ब्रजलोक की विशेषता हैं। 'हरियाली' तीज के इस अवसर पर झूले के गीत गाए जाते हैं। अष्टछाप कवियों ने सावन के इस उल्लास तथा लोकगीतों को हिंडोरे के पदों में व्यक्त किया है। कृष्ण राधा तथा गोपियों के झूलने के यह गीत लोकगीतों का रूप धारण कर चुके हैं—

"हिडोरनै हरि संग झूलन आई।
पंचरंग बरन पाट की डाँडी अतिहीं सौंज बनाई।
झूलति जुवती नंद लालन संग एक बसै इकदाई।
सूरदास प्रभु मोहन नागर आपुन झूलि झुलाई।"[285]
"झूमि रहे बादर, सगरी निसा के, बरसन को रहे हैं छाय।"[286]
"रमकि-झमकि, झूलन में झमकि मेह आयौ हो नहिं सुरझत बातनि ते।"[287]
"जुरि जुरि आई सुहाई मन भाई ब्रज सुंदरि सब
सावन ऋतु मन भावन [illegible]।"[288]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोकगीतों का एक प्रचलित रूप 'झूमक या झूमर' है। एक विशिष्ट प्रकार से एक ही सुर में इसका गायन किया जाता है। सूरदास ने इस पद्धति का भी सरस वर्णन किया है—

"गोकुल सकल गुवालिनी घर-घर खेलत फाग.मनोरा झूम करौ।
तिन में राधा लाड़िली जिनको अधिक सुहाग, मनोरा झम करौ।"[289]
"तब चीर हरे जल तीर मिलि झूमक हो।
सो परिहस हम सारिहैं मिलि झूमक हो।
सुनि लेहु ललन बलवीर मिलि झूमक हो।"[290]

कृष्णदास ने भी इस पद्धति के प्रयोग द्वारा 'झूमर' का उल्लेख किया है—

हिंडोरना हो झुलवति सुंदरि नारी।
हिंडोरना हो परम चतुर बनवारि।
हिंडोरना हो रमकनि झमक बिसाल।
हिंडोरना हो कि किनी कुनित रसाल।[291]

लोक गीतों के इन विविध प्रकारों से अष्टछाप साहित्य लोक संस्कृति को व्यक्त करने में समर्थ हो सका है। अष्टछाप के कवि बालकृष्ण के उपासक थे इसलिए माता और शिशु से संबंधित प्रत्येक भाव का चित्रण उन्होंने किया है विशेष रूप से सूरदास ने। वात्सल्य रस का कोना वे झाँक चुके थे। 'लोरी' माँ द्वारा शिशु के लिए गाए जाने वाले ऐसे गीत हैं। जिसमें नींद के जल्दी आने की इच्छा प्रगट की जाती है जैसे 'आ री निंदिया रानी, लाल की आँखों में घुल जा री।" आदि गीत गाते हुए पालना झुलाकर शिशु को सुलाती माँ का चित्र कभी पुराना नहीं पड़ता। अष्टछाप कवियों ने इस शैली को भी अपनाया है। सूर का निम्न पद तो ब्रज की प्रसिद्ध लोरियों में सम्मिलित हो चुका है—

"यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलरावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहीं बेगहिं आवै तो कौ कान्ह बुलावै।"[292]

लोरी के अतिरिक्त व्रत और अनुष्ठानों से संबंधित लोक गीत भी ब्रजभूमि में प्रचलित हैं। नागपंचमी, बसंत पंचमी, गोधन, छठी, माता आदि के गीत आज भी अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए हैं। गंगा दशहरा, कार्तिक स्नान आदि के समय गीत गाती हुई स्त्रियों के झुंड के झुंड नदी की ओर जाते हुए देखे जा सकते हैं। अष्टछाप काव्य में अपरोक्ष रूप से लोकगीतों के इन सभी रूपों का चित्रण किया गया है।

लोककथाओं तथा लोकगाथाओं द्वारा समाज में विभिन्न आदर्शों की स्थापना की जाती है.। मौखिक परंपरा के रूप में यह कथाएं अनवरत रूप से समाज में प्रचलित रहती हैं। इनका संबंध काल्पनिक नहीं वास्तविक जगत से होता है। पौराणिक और ऐतिहासिक काव्यों ने यदि राम, सीता, द्रौपदी आदि पात्रों को आदर्श के रूप में स्थापित किया तो लोककथाओं में भी इनके सामने पात्रों का निर्माण हुआ। प्रत्येक मानवीय संबंधों की व्याख्या आदर्श रूप में की गई और किसी न किसी पर्व के से जोड़ दिया। ब्रज में व्रत अनुष्ठानों के अवसर पर सामूहिक रूप से लोककथाएं सुनाने वाली वृद्धाएं मिल जाएंगी। इन कथाओं द्वारा व्रत का समय भी कट जाता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। और एक आदर्श का उपदेश भी दे दिया जाता है। गांव के चौपालों पर पुरुष वर्ग द्वारा भी लोककथाओं का आयोजन किया जाता है। भैया दूज, अहोई आठें, करवा-चौथ आदि लोक-पर्वों के अवसर पर सुनाई जाने वाली कथाएं लोककथाएं हैं। अष्टछाप काव्य में इनका प्रतिपादन भी अप्रत्यक्ष रूप से ही हुआ है। लोक गाथाओं में कथाओं को गाकर प्रस्तुत किया जाता है। भावों के अनुसार यहां लय और छंद बदलते जाते हैं। ढोला ब्रज की मौलिक विशेषता है। इसके अतिरिक्त आल्हा, रांझा, जाहरपीर, पूरनमल, भरथरी आदि की गाथाएं भी ब्रज में लोकप्रिय हैं। अष्टछाप काव्य में लोकहित और लोककल्याण के लिए त्याग करने वाले पात्रों की गाथाओं और कथाओं का समावेश किया गया है। इस दृष्टि से दधीचि, हरिश्चन्द्र, पृथु आदि की कथाओं का वर्णन है। सूरदास ने ही इस विषय का निरूपण किया है अन्य कवि कृष्ण-कथा तक ही सीमित रहे हैं। लोकगीतों की तरह लोककथाओं का निरूपण विस्तार से अष्टछाप काव्य में नहीं हुआ है। इसका एक कारण इस काव्य का मुक्तक स्वरूप है। जिसमें प्रबंध काव्य के समान कथा सूत्रों का निर्वाह कठिन है। लोक मनोरंजन को अष्टछाप काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कवियों ने मनोरंजन में उन्हीं साधनों का विशद चित्रण किया जो लोक द्वारा अपनाए जा रहे थे। कलात्मकता का आग्रह उनमें इतना अधिक था कि उन्होंने प्रत्येक खेल को एक कला के रूप में परिवर्तित कर दिया। सर्वाधिक उल्लेख बच्चों के खेलों का हुआ है। कृष्ण और उनके सखाओं द्वारा खेले जाने वाले खेल आज भी बालकों द्वारा खेले जा रहे हैं। नट, बाजीगर, कठपुतली आदि खेलों द्वारा भी उन्होंने विभिन्न लोक कलाओं की पुष्टि की है। लोक मनोरंजन इस प्रकार अष्टछाप काव्य का प्रमुख विषय बन गया है।

लोक भाषा

ब्रजमंडल की लोकभाषा ब्रज भाषा है और अष्टछापी कवियों ने इसी को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर इसे साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है। प्राचीन शूरसेन जनपद की राजभाषा शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रजभाषा की उत्पत्ति हुई है। शौरसेनी अपभ्रंश परिनिष्ठित अपभ्रंश थी। हेमचन्द्राचार्य ने इसी परिनिष्ठित अपभ्रंश का व्याकरण लिखा है काव्य भाषा के रूप में यह नदी से बारहवीं शताब्दी तक पश्चिम में पंजाब, गुजरात, राजस्थान से लेकर पूर्व में आसाम, बंगाल और मिथीला तक प्रचलित थी। यह राजदरबारों की शिष्ट भाषा थी। राजभाषा अथवा काव्य भाषा का स्वरूप सदैव भिन्न रहता है, शौरसेनी अपभ्रंश के राजभाषा रहते समय, लोकभाषा, ब्रजभाषा का स्वरूप कैसा था, इसका पता नहीं चलता क्योंकि इस समय का लोक साहित्य प्रायः अनुपलब्ध है। अष्टछाप से पहले भी ब्रजभाषा परिपक्व हो चुकी होगी, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि सूरदास आदि कवियों में ब्रजभाषा का जो स्वरूप पाया जाता है वह किसी भाषा का आदिकाल नहीं हो सकता फिर भी जब तक कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं मिलती 15वीं, 16वीं शताब्दी की ब्रजभाषा को ही प्रारंभिक ब्रजभाषा स्वीकार करना पड़ेगा। महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा "संवत् 1556 वैशाख सुदी 3, आदित्यवार को गोवर्द्धन में श्रीनाथ जी के विशाल मंदिर की नींव रखी गई थी। यही तिथि साहित्यिक ब्रजभाषा के शिलान्यास की तिथि भी मानी जा सकती है।"[293]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रजभाषा के विकास में अष्टछाप काव्य का महत्वपूर्ण योगदान है। अपनी लोकोन्मुखी दृष्टि के कारण अन्य लोक तत्वों के साथ लोक भाषा को अष्टछापी कवियों ने अपनाया और उसके माध्यम से अपने काव्य तथा संप्रदाय के सिद्धांतों को जनप्रिय बनाया। लोक भाषा के माधुर्य और लालित्य को निखार कर उसे सर्वप्रिय बनाया।

ब्रजभाषा का प्रधान क्षेत्र मथुरा, आगरा, अलीगढ़ और इटावा के भू-भाग हैं। इसका केंद्र मथुरा है। इस क्षेत्र के चारों ओर विभिन्न बोलियां बोली जा रही हैं। पूर्व में अवधी तथा कन्नौजी, दक्षिण में बुंदेली, पश्चिम में डिंगल या राजस्थानी और उत्तर में खड़ी बोली। इन सभी बोलियों का प्रभाव ब्रजभाषा में देखा जा सकता है। धीरे-धीरे ब्रजभाषा का क्षेत्र विस्तृत हो गया और यह कन्नौज, भरतपुर, धौलपुर तक बोली जाने लगी। जैसे-जैसे ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप मिलने लगा वैसे-वैसे उसका व्यावहारिक रूप भी अस्तित्व में आने लगा और इस प्रकार उसके दो रूप, ग्रामीण ब्रज और नागरिक ब्रज स्पष्ट हो गए। स्थानीय बोलियों को भी ब्रजभाषा ने इस सीमा तक प्रभावित किया कि वे उसी का एक रूप मान ली गईं।

अष्टछाप काव्य में ब्रजभाषा के साहित्यिक तथा लोक प्रचलित दोनों ही रूप विद्यमान हैं। इन दोनों रूपों का संतुलित स्वरूप साहित्य रसिकों तथा सर्वसाधारण को एक ही भावभूमि पर प्रतिष्ठापित करके समान रूप से रसास्वाद कराता है। भाषा की समृद्धि और उसके सौष्ठव की दृष्टि से अष्टछाप काव्य आज भी सर्वोत्तम काव्य माना जाता है। प्रत्येक कवि ने भाषा का स्वाभाविक और कलात्मक प्रयोग किया है। तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के अतिरिक्त, लोकमानस की अभिव्यक्ति के लिए तत्कालीन समाज में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। वाग्विदग्धता के संदर्भ में इनका प्रयोग अनिवार्य है। अष्टछापी कवियों ने इन लोकोक्तियों और मुहावरों को उनके मूल रूप में अपना लिया है। क्योंकि लोक-संस्कृति इन्हीं भाषा प्रयोगों द्वारा अभिव्यक्त होती है। सामान्य बोलचाल में इनका प्रयोग कथन की गुरुता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

लोकोक्तियों में अनुभव की सत्यता और मार्मिकता स्पष्ट रूप से झलकती है। भाषा का चमत्कार तथा गंभीरतम भाव इनके द्वारा स्पष्ट होता है। लोकोक्तियों की तरह मुहावरे भी लोक मानव की अभिव्यक्ति के सूक्ष्म और सुंदरतम साधन हैं। कम से कम शब्दों में अधिकाधिक अर्थ संप्रेषित करना इनकी विशिष्टता है। लोकजीवन की झांकी भी इनके द्वारा प्रस्तुत की जाती है। क्योंकि मनुष्य विभिन्न परिस्थितियों में जो कुछ अनुभव करता है उसी को भाषा के इस रूप द्वारा अभिव्यक्त करता है, इन्हें अपना कर ही कोई कवि लोक-कवि बन सकता है क्योंकि इन तत्वों द्वारा वह लोकमानस से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस दृष्टि से अष्टछाप की प्रत्येक कवि लोक-कवि कहा जा सकता है। सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास आदि कवियों ने प्रचुर मात्रा में इनका प्रयोग करके अष्टछाप काव्य को लोककाव्य का स्वरूप प्रदान कर दिया है। अन्य कवियों ने भी भाषा की जीवंतता के लिए इनका प्रयोग किया है। परंतु भाव पर अधिक बल देने के कारण तथा रचनाओं का परिमाण प्रथम वर्ग के कवियों से कम होने के कारण लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग की मात्रा भी कम हो गई है। अष्टछाप काव्य में प्रयुक्त कुछ लोकोक्तियों और मुहावरों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। ग्रंथ विस्तार के भय से इनका समग्र रूप से उल्लेख करना कठिन है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"भई रीति हठि उरग छछूंदर छांडै बनै न खात।"[294]
"जैसाइ बोइए तैसोइ लुनिये कर्मन भोग अभागे।"[295]
"हम जातहिं वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी।[296]
"कहौ मधुप कैसे समाहिंगे एक म्यान दो खाँडै।[297]
"मंदिर की परछाया बैठ्यो कर मीजै पछिनाठ।"[298]
"कबहुंक फूलि सभा में बैठ्यों मूंछनि ताव देखावौ।"[299]
"सूरदास ऐसे स्वामी कौ देहिं पीठि सो अभागे।"[300]
"इहि कृति कौ फल चखै हौं।"[301]
"सेंत मेंत क्यों पाइए पाके मीठे आम।[302]
"हरि सौं जोर सबनि सौं तारयौ॥[303]
"परमानंद ब्रजवासी सांवरों अंगूठा दिखाय रस ले गयौ री।"[304]
"आगे पीछे सोच मिट्यौ जी कौ॥... [305]
"देखत रूप चिहुट चित लाग्यो वाही के हा बिकानो।"[306]
"वृंदावन की सघन कुंज में ऊंची नीची मों ते कहीं ग्योरी।"[307]
"यह मथुरा काजर की रेखा जो निक सै सो कारे।"[308]
"कमलनयन मेरी अंखियन तारो॥"[309]
"यह विधि धरिक रही चटपटी प्रेम की रिति निपट अटपटी।"[310]
"सूधो जो कछु उद गढ़े सो काढ़े दुख होय।"[311]
"बड़रे तपत पहाड़ से दिना··· ।"[312]
"रति तेजहिं सौ दुखित मछरि थोर जल जैसे।"[313]
"फरकन लागी भुजा··· ।"[314]
अंगुरिनि गहत पहुंची गही सगरी।
पहुंची गहत हाथ गहिं लीन्हों।"[315]
"तब उन दुचितै लखे धोरिकै गहे कन्हाई।"[316]
"अचंल ओट दुरावहीं··· ।[317]
"चारों नैन मिले जब सनमुख भए बिलगु गतिहीने।
छिनु न रहत दिखे बिनु दंपति ज्यों जल हीन होई मीने।"[318]
"कृष्णदास उर नैन सिराने देखत ही ब्रजराज··· ।" [319]
"कृष्णदास प्रभु गिरिधर हंसि लीन्हीं कंठ लगाइ।"[320]

इनके अतिरिक्त "मन फूले टगौरी मेली, राखे हैं नाकेन, मंत्र पढ़ि डारयौ नैन को घात, नाहिन कछू बसान, नैन सुफल करि, नैननि के तारे, हृदय गंठि तेरे ने कुन गांठ दिये की खोलै कान करी, किया दुचितों चित तनमनु लिया चुराइ, रही ठगी मुरूझाइ"[321] इच्छा भई लूली हिय में आइ परयौ मन हरि लियौ, ठगौरी सी लाई, जिय उनही हाथ परयौ,[322] फूले अंग न समाई सिरात हियो, लादी है लौंग सुपारी अतिरंग भरिया"[323] आदि मुहावरों का प्रयोग उनके मूल रूप में किया गया है। मुहावरों का यह प्रयोग ब्रजभाषा के लोक रूप को संवारता है। लोकोक्तियों का मुहावरों की अपेक्षा कम प्रयोग हुआ है। लोकजीवन में प्रचलित सूक्तियों का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रयोग भी भाषा के नैसर्गिक सौंदर्यवर्धन की दृष्टि से किया गया है—

"एक प्रीत के सब गुन नीके बिन गुन अभरन सबही फीके।" [324]

"लरिका कहै बहुत सुत जाये जो न होय उपकारी,
एक सौ लाख बराबर गिनिये करै जो कुल रखवारी।" [325]

"घर आये नाग न पूजैं बांबी पूजन जाहि।" [326]

"पारस परसें लोह तुरंत कंचन है जाई।" [327]

"पारस परसि पितल होइ सोनू पाहन तैं परमेश्वर औनू।" [328]

सूक्तियों और लोक-तथ्यों का प्रयोग ब्रजभाषा के वैभव का प्रतीक है। सामान्य लोकजीवन की रीति-नीति भी इनसे झलकती है क्योंकि इनका निर्माण लोकानुभव के आधार पर ही होता है। तत्सम, अर्ध-तत्सम व तद्‌भव के साथ-साथ ब्रजलोक में प्रचलित शब्दों द्वारा भी भाषा की समृद्धि का प्रयास किया गया है। इस प्रकार के शब्द अन्य शब्द भंडार के साथ मिलकर ब्रजभाषा के मौलिक और विशिष्ट रूप को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं। इन शब्दों की प्रचुरता अष्टछाप काव्य में है। नगारे, गुलगुली, लली चोलना, झंगुलिया, तुर्रा, पटा, ढिग पूठन, बासोंदी, सखरी पिठौर, आंगोछि, औचट खुनस, झूरवी घींच गौड़िया चिरिया, टकटोरत हूकी, झौंकठ, सिकतहर, सौंतुख हांक खरिक, बारवरि अचगरी, छाछी झंझोटा दोहनी पिरायेंगे, मोह, बोहनी अरैरी खिसय, छिपरो टकटोलति, डगरी, बिथुरन, औंगी, मौंगी, रली, टटावक, औती, घूघरि, पहपटिया, उनसौही दुकाय, निहौरि, बिरराई, खेव, बागो, बडडे छाक, बूका, वाठिली, खंज मनलरी, लीपो, बांझौ माडत, उनेदन, खसत, बाछरू, हलावेली, कठुला, अतरौआ, मद्रहा, मुरकी, अघोटी, पछौड़े, खरूवे और सिहाय आदि।

लोकभाषा के इन प्रयोगों कों अष्टछापी कवियों ने साहित्यिक ब्रजभाषा में प्रतिष्ठित कर दिया है। मुस्लिम राज्य स्थापना के कारण अरबी-फारसी के शब्द भी ब्रजभाषा क्षेत्र में व्यवहृत किए जा रहे थे। अष्टछाप काव्य में उनका भी प्रतिनिधित्व करता है। विदेशी शब्दों को उनके मूल तथा अर्ध-तत्सम रूपों में प्रयुक्त किया गया है। अमानी खसम मुसाहिब, मुसाहिब, खवास, कुमैत, दरबार, अबीर, हवाल, ऐलान, खसखाना, जरकसी, कुलह, फोंदा, मखतूल, सूथन, लाइक, गुमान, इजार, ताफता, दफतर, कसीदा आदि ऐसे ही शब्द हैं। अवधी शब्दों का प्रयोग भी (दोनी, हरूवी, पहियों, गोहन, नियरे, अस, गोर, छोट, जुहार, इहां हमारे, रावरे—आदि) अष्टछाप काव्य में हुआ है। संप्रदाय के आधार पर आरोगना तथा पधारना जैसे शब्दों का समावेश किया गया। इन सभी शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा को लोकभाषा का रूप देने के उद्देश्य से अष्टछाप कवियों द्वारा किया गया है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है अनुरणनात्मक शब्द जिनके द्वारा भाषा में चित्रात्मकता का गुण उत्पन्न हो गया। बिम्ब निर्माण की दृष्टि से यह चित्र बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। किलकार, रूनझुन, अटपट, फरहरन, अरबराइ, अरराना, किलकना, गरराना, झकझोरना, घुमरुना, रूनक झुनक, ननक, किलकि, रसमसे, रगमगे, झटपटी, कसमसे, झलमलात, थरथर, खसि खसि, परत, रमकानि, झांकति, घनन घनन, अंकबक, हर हर, तराई, कलमले आदि शब्दों के प्रयोग से भाषा को सशक्त बनाया गया है। सूरदास नंददास ने संस्कृत शब्दों की सहायता से अपनी भाषा को समृद्ध बनाया। साथ ही नए शब्दों का निर्माण व पुराने शब्दों का नए अर्थ में प्रयोग किया। इस प्रकार के भाषा प्रयोग कम हैं जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गायो", "गावत सिव सारद मुनि नारद कमलकोस नैकों न चरवायौ" आदि।[336]

कहीं-कहीं पर युग्म भाव की अभिव्यक्ति को स्वाभाविक बनाने और लोकभाषा के निकट लाने के लिए भी प्रत्यय जोड़कर शब्दों का नया रूप दे दिया गया है। "माते मधुपा मधुपनी कोकिल कुल कल बेनु।"[330] लक्षणा के आधार पर भी शब्दों का निर्माण किया है जैसे चुंबन के स्थान पर आनन को मधु

"श्रीदामा हंसि यो कहियो मेवा देहु मंगाइ।
नैकु हमारे स्याम कौं आनन को मधु प्याइ।"[331]

शब्दों के इन प्रयोगों से भाषा की शक्ति व सामर्थ्य में वृद्धि होती है। संक्षेप में अष्टछाप कवियों ने ब्रजभाषा को लोकभाषा का रूप देने का कोई अवसर नहीं खोया है। साहित्यिक भाषा और लोकभाषा को एक धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया है।

अष्टछाप काव्य में विविध लोकप्रतीकों जैसे स्वस्तिक, सांथिए, तोरण बंदनवार आदि को यथास्थान वर्णित किया गया है। विभिन्न ऋतुओं के वर्णन द्वारा अपना ऋतु संबंधी ज्ञान भी उन्होंने प्रगट किया है। ऋतु के अनुसार लोकजीवन का चित्रण भी काव्य का विषय है। अष्टछाप काव्य के कवि ब्रज की प्राकृतिक संपदा से भली-भांति परिचित थे। प्रकृति से उनका अभिन्न संबंध विविध वृक्षों और वनस्पतियों के वर्णन द्वारा स्पष्ट है। अशोक, आम, जामुन, कदली, कंदब, चंदन, ताल या ताड़, धतूरा, नीम, पीपल, बबूल, बांस, मदार आदि वृक्षों का; करील कांस, तुलसी आदि झाड़ियों का और कुद बेलि, राजबेलि, लवंग, घुंघची, आदि लताओं का वर्णन उनके पेड़-पौधों संबंधी ज्ञान का परिचायक है जो लोक के सूक्ष्म पर्यवेक्षण द्वारा ही संभव है। इस ज्ञान के आधार पर ही उपमानों, दृष्टांतों द्वारा उन्होंने अपनी भाषा को सशक्त आधार प्रदान किया है।

लोकमानस के इस विवेचन से स्पष्ट है कि अष्टछाप के कवि पूर्णरूपेण लोक पर आश्रित होकर चले हैं। भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से लोक से उन्होंने जो कुछ भी ग्रहण किया अपनी प्रतिभा के द्वारा सूर्य के समान सौगुना करके लोक को लौटा दिया। अष्टछाप काव्य अपनी इसी विशेषता के कारण आज लोककाव्य के रूप में समादृत है। ब्रजलोक संस्कृति और अष्टछाप काव्य एक-दूसरे के अभिन्न अंग बनकर परस्पर पर्यायवाची बन गए हैं। इसका संपूर्ण श्रेय अष्टछापी कवियों की लोकोन्मुखी दृष्टि को है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रज संस्कृति का आर्थिक पक्ष

भारत प्राचीनकाल से ही कृषिप्रधान देश है। यही कारण है कि अर्थव्यवस्था का केंद्र यहाँ कृषि ही रहती है। कृषि के दृष्टिकोण से ब्रजप्रदेश उर्वरभूमि के अंतर्गत आता है। यहाँ की प्राकृतिक सुषमा और सौंदर्य अनुपम हैं। ब्रज के वन-पर्वत उसके सौंदर्य के मूलाधार हैं। ब्रज की प्रमुख नदी यमुना है जो अपनी सहयोगी नदियों के जल से इस प्रदेश को हरा-भरा रखती है। यमुना कृष्ण की लीलाओं के केंद्र में रही है इसलिए अष्टछाप साहित्य में यमुना का महात्म्य प्रत्येक कवि ने अनेक स्थानों पर वर्णित किया है। यमुना के अतिरिक्त जिन नदियों का उल्लेख हुआ है उनमें मानसी गंगा का महत्व सर्वाधिक है। गोवर्द्धन की पूजा के बाद मानसी गंगा में स्नान करने का विधान है।[1] वास्तव में यह ब्रज का एक विशाल सरोवर है जिसे गंगा शब्द जुड़ा होने के कारण नदी कह दिया जाता है। इसके अतिरिक्त चंद्रभागा, गंगा, गोदावरी, सरयू, सरस्वती, सतद्रु और सिंधु का नाम भी अष्टछाप के कवियों में चर्चित रहा है। विभिन्न प्रसंगों में उत्तर भारत की यह प्रमुख नदियाँ ब्रज की लोक-संस्कृति का अविभाज्य अंग बन गई हैं। चंद्रभागा और सतद्रु आधुनिक पंजाब की चेनाब और सतलुज नदियाँ हैं जिनका उल्लेख व्यास के स्नान के प्रसंग में हुआ है—

"पुनि सतद्रु औरहु चंद्रभागा, गंगा, व्यास अन्हवाए।"[2]

गंगा ब्रज संस्कृति की ही नहीं भारतीय संस्कृति की भी अनुपेक्षणीय नदी है। परमानंददास ने गंगा स्नान और गंगाजल पान को आवागमन से मुक्ति के साधन के रूप में वर्णित किया है।[3] प्रयाग में गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम वर्णित किया गया है।[4] गोदवरी का उल्लेख नंददास ने दशम स्कंध में किया है। सरयू का वर्णन रामकथा के अंतर्गत और सिंधु का कृष्ण के द्वारिका जाने के समय हुआ है।

इन सभी नदियों में से ब्रज संस्कृति का प्राण यमुना है। उसी के चारों ओर विभिन्न वनस्पतियों, पुष्पों और वृक्षों का विकास हुआ। ब्रज संस्कृति कृषिप्रधान संस्कृति है इसलिए नगरों के स्थान पर इसमें गाँवों की बहुलता है। ब्रज की आर्थिक संपन्नता बहुत कुछ कृषि पर ही निर्भर है। तत्कालीन राजनैतिक उथल-पुथल, आक्रमण आदि से कृषि भी प्रभावित हुई थी और कृषि-व्यवसाय को जीविका का साधन बनाने वाले साधारण मनुष्य भी। अष्टछाप के आराध्य मथुरा नगर में अवश्य पैदा हुए परंतु उनका बचपन तथा किशोरावस्था ब्रज में व्यतीत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुई और उस समय ब्रज में कृषि के साथ गौ-पालन का व्यवसाय प्रमुख था। नंद ब्रज के अधिपति और अपार गोधन के स्वामी थे। इसलिए अहीर संस्कृति का यह व्यवसाय अष्टछाप में काव्य में प्रत्यक्ष रूप से वर्णित है। कृष्ण का गोचारण, गोपालन अष्टछाप का प्रमुख विषय है। इसी कारण कृषि की अपेक्षा इस विषय को सभी कवियों ने अपने काव्य में निरूपित किया है। इस दो व्यवसायों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में वाणिज्य व्यापार द्वारा ब्रज की आर्थिक उन्नति हो रही थी। उन सबका संकेत भी अष्टछाप में मिल जाता है।

कृषि व्यवसाय

वासुदेव कृष्ण ने ब्रज में कवि को लोकप्रिय बनाना प्रारंभ किया। इससे पहले आभीर जाति अपने पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर चारागहें की तलाश में घूमती रहती थी। कृष्ण ने सभी समस्याओं का सामना करते हुए अपनी जाति को एक स्थायी आधार देने का प्रयास किया, एक स्थान पर रहकर कृषि और पशुपालन को जीविका का प्रमुख साधन बनाया। कृष्ण का सुदर्शन चक्र बैलगाड़ी में प्रयुक्त होने वाले पहिए का ही परिवर्धित संस्करण है और बलराम के हल तथा मूसल कृषि में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख उपकरण हैं। आज भी यह कृषि के मुख्य साधन हैं। कृष्ण के प्रयासों के परिणामस्वरूप उनके मथुरा जाने तक ब्रज वृंदावन की गोप जाति ऐश्वर्य और शक्ति से संपन्न हो गई।

आज भी कृषि भारत का प्रमुख व्यवसाय है और विभिन्न नदियों के जल से सिंचित ब्रज का भी प्रमुख व्यवसाय है फिर भी अष्टछाप के कवियों ने इसका विशेष चित्रण नहीं किया है। इसके दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। पहला यह कि अष्टछाप के कवि भक्त पहले थे इसलिए अपने आराध्य और उनसे संबंधित व्यवसाय वर्णन में उनका रुझान अधिक है और दूसरा यह कि संभव है उस समय परिस्थितियों से विवश होकर ब्रजवासी कृषि की ओर से विमुख हो गए हों। सुलतानों के अत्याचारों में खड़ी फसलों में आग लगाना या प्राकृतिक विपत्ति से नष्ट फसल के बाद भी जबरन लगान वसूल करना भी शामिल थे। इनमें से प्रथम कारण ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। क्योंकि आम भारतीय किसान विषम से विषम परिस्थिति में भी भूमि के प्रति अपना मोह त्याग नहीं पाता। आठों कवियों में से केवल सूरदास ने ही कृषि के ऊपर प्रकाश डाला है।

सूर की रचनाओं में कृषि तथा कृषि से संबंधित विविध अंगों जैसे खेती, उत्पादन, खेती के प्रकार, मान्यताएँ, खेतिहर की सामाजिक स्थिति, लगान वसूल करना, लगान निर्धारित करना आदि का वर्णन किया गया है। सूरदास ग्रामीण परिवेश और वहाँ की संस्कृति के मुखर कवि हैं। यद्यपि गीति काव्य में ऐसे विषयों का अधिक अवकाश नहीं है फिर भी सूर ने ग्रामीण जीवन के रूप में ब्रज की कृषि व्यवस्था और उससे संबंधित शासन-व्यवस्था और गोचारण, पशुपालन तथा उससे संबंधित जीवन-शैली को जीवंत कर दिया है।

सूर ने प्रसिद्ध मथुरा नगर और वहाँ के नागरिक जीवन की मान्यताओं के स्थान पर भोले-भाले निश्छल ग्रामीणों के हृदय की सहृदयता का वर्णन किया है। सूर साहित्य के इस रसमय चित्रण में ग्रामीण जीवन में विविध पक्षों के साथ ही साथ कृषि भी एक पक्ष बन गई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अप्रत्यक्ष रूप से ही सही सूर के काव्य में कृषि वर्णन पर अकबरकालीन कृषि व्यवस्था का प्रभाव अधिक पड़ा है। सूरदास ने ब्रज को एक परगना कहा है। परगने का केंद्र 'पुर' कहलाता था जहाँ लगान वसूल करने वाले अधिकारी रहते थे। इस अधिकारी को सूर ने सिकदार कहा है—

"ब्रज परगन 'सिकदार' महर तू ताकी करन नन्हाई।"[5]

मुगलकालीन कृषि व्यवस्था में भी जिलों को 'परगने' या 'महाल' में बाँटा जाता था।[6] 'सिकदार' परगने का अधिकारी था और उस पर शांति तथा सुरक्षा का उत्तरदायित्व था। लगान तथा जमीन संबंधी कार्य अमीन के आधीन थे और हिसाब की देखभाल करना 'मुस्तौफी' का कार्य था।[7] इनके अतिरिक्त लगान की जाँच करने वाले अधिकारी मोहर्रिर और लेखाकार या मुंशी का उल्लेख भी सूर ने किया है--

"नैन अमीन अधर्मिन कै बस, जहं को तहाँ छयौ"[8]
"चित्रगुप्त सु होत मुस्तौफी सरन गहूँ मैं साकी।"
"मोहरिल पाँच साथ करि दीने तिनकी बड़ी विपरीति।"[9]
"सांचौ सो लिखहार कहावै।"[10]

प्रत्येक गाँव की सीमा निर्धारित की जाती थी जिसे ग्वैंडे कहा जाता था।[11] गाँव की सीमा बाँधने के कार्य को चाकि या चाकना कहा जाता था। सूर ने एक रूपक द्वारा बंजर भूमि पर खेती करने का उल्लेख किया है। बंजर भूमि पर कठोर परिश्रम द्वारा खेती की जा सकती है जबकि ऊसर भूमि पर कोई भी श्रम कार्य व्यर्थ हो जाता है—

"प्रभु जू, यौ कीन्ही हम खेती,
बंजर भूमि, गाउंहर जोते, अरू जेती की तेती।
काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि रज तामस सब कीन्हौ।
अति कुबुद्धि मन हांकनहारे, माया जूआ दीन्हौ।"[12]

खेती करने वाले के लिए 'खेतीहर' या किसान शब्द का प्रयोग भी सूर ने किया है—

"जैसे प्रथम असाढ़ आंज तृन खेतिहर निरखि उपाटत।"[13]

यहाँ आषाढ़ की वर्षा होते ही खेत में उगी घास आदि को उखाड़कर बीज बोने के लिए खेत तैयार करने का उल्लेख किया गया है। इसी पद में 'खाल' का उल्लेख है। खाल खेतों में बन जाने वाले गड्ढे हैं जिन्हें समतल न किया जाए तो उनमें बारिश का पानी या बाढ़ का पानी रुककर खेती को नुकसान पहुँचा सकता है। इसी संदर्भ में 'निचली भूमि'[14] में खेती किए जाने को दुखदायी कहा गया है। इस खेती हो 'पाही खेती' कहते थे जो बाहर के गाँव से आने वाला किसान मार्ग के पास स्थित भूमि पर करता था। यह किसान निम्न श्रेणी के समझे जाते थे। भूमि तैयार करने के बाद हल से नालियाँ बनाकर बीज बोने और पानी देने के वर्णन द्वारा भी कृषि संबंधी ज्ञान का परिचय दिया गया है।[15]

खेती के परिणाम के लिए किसान वर्षा पर निर्भर रहते थे। "कीजै कृपा दृष्टि की बरषा"[16] से यही ध्वनि निकलती है। वर्षा के अतिरिक्त, कुँए के जल से सिंचाई का उल्लेख परमानंददास ने रूपक बाँधते हुए किया है।[17]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लगान व्यवस्था

इस संदर्भ में सूर ने फारसी की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है। मसाहत लगान निर्धारित करने के लिए खेती को नापने की विधि थी। सूरदास उसी को सच्चो लिखहार (पटवारी) कहते थे जो गाँव की मसाहत भूमि की पैदावार के आधार पर लगान निर्धारित करके लिखें—

"साँचों सो लिखहार कहावै
काया-ग्राम मसाहत करिके, जमा बाँधि ठहरावै।"[18]

मसाहत द्वारा जो राशि लगान के रूप में तय की जाती है उसे जमा कहा गया है। जमा के भी दो भाग होते थे—1. बकाया, 2. चालू वर्ष का लगान। 'असल' मालगुजारी के आधार पर वसूला जाने वाला भाग था। इसमें भिन्न कर्मचारियों का बट्टा या 'हिस्सा' शामिल नहीं था। इसके अतिरिक्त किसान से 'जहतिया' या फरूआत नाम का कर भी वसूला जाता था। असल और जहात किसान पर लगे मुख्य कर थे। मालगुजारी सामूहिक रूप से दी जाती थी जिसके जमा न होने पर गाँव के प्रमुख महतो, चौधरी आदि को कारागार में डाल दिया जाता था।

"मन महतो में करि कैद अपने ज्ञान जहतिया लावै।
मांडि-मांडि खरिहान क्रोध को पोता भजन भरावै।
वट्टा काटि कसूर भरम फरद तले लै डारे।
कारि अवारजा प्रेम-प्रीति को असल वहाँ खतियावै।"[19]

इसमें पूरी प्रणाली स्पष्ट है। 'मसाहत' से जमा तय होने के बाद खलिहान में कूट अनाज अलग लिया जाता था। राजकोष पोताखाना कहलाता था जहाँ अनाज जमा करने के बाद कर्मचारी अपना 'बट्टा' काटते थे और बची हुई राशि को 'अवारजा' (बही जिसमें हर किसान द्वारा दी गई राशि अलग-अलग लिखी जाती थी) में लिखा जाता था। 'फरद' वह बही थी जिसमें किसान की पैदावार उसका लगान तथा अन्य करों का विवरण लिखा जाता था। यह उच्च अधिकारियों को नहीं दिखाई जाती थी।

किसान कृषि व्यवस्था की लघुतम इकाई है इसलिए कष्टों व अत्याचारों का सबसे अधिक सामना उसी को करना पड़ता था। लगान अधिकारी खेती पकते ही लगान भरने के लिए सताते हैं, गाँव के भद्रजन या पंच उसकी अपेक्षा अधिकारियों का साथ देते हैं। लेखाकार की झूठी बहियों के सामने महाजन उसकी जमानत लेने को तैयार नहीं होता। अंत में ठाकुर या जमींदार उसका सर्वस्व लूट लेता है। शोषण की यह धारा सूर के युग से होती हुई आज भी ज्यों की त्यों प्रवाहित हो रही है—

"इन्द्रीय-मूल किसान, महान्नत-अग्रज बीज बइ।
जनम जनम की विषय वासना उपजत लता नई।
अधिकारी जम लेहा माँगे ताते हो आधीनै।
घर में गथ नहीं भजन तिहारौ जौन दिये मैं छूटौ।
धर्म जमानत मिल्यो न चाहें तातें ठाकुर लूटौ।"[20]

गाँव का पटवारी भी किसान को परेशान करता है। उसके खेत की भूमि के बारे में बही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में उल्टा सीधा लिखता है। जिससे विवश होकर किसान को गाँव छोड़ना पड़ता है—

"अहंकार पटवारी कपटी झूठी लिखत बहीं,
लागै धरम बतावै, अधरम, बाकी सबै रहीं।"[21]

ऐसे शोषकों से त्रसित होकर सूर ने स्वयं को किसान मानकर अपने प्रभु रूपी जमींदार से विनय की है कि वे अपने प्रभाव का प्रयोग करके निरीह किसान को गाँव छोड़ने पर विवश होने से बचाएँ—

"सोई करो जु बसते रहिये, अपनी धविये नाउँ।
अपने नाम की बैरख बाँधौ सुजस बसों इहि गाऊँ।"[22]

इससे स्पष्ट है कि अधिकारी शासक की अनभिज्ञता में ही साधारण प्रजा पर अत्याचार करते थे। इन्हीं लोगों के कारण ग्राम या नगर का सुधार नहीं हो पाता था—

"जनम साहिबी करत गयौ।
काया नगर बड़ी गुजायस नाहिन कछु बढ़्यौ।"[23]

ऐसे अधिकारी मालगुजारी निर्धारित करने और वसूल करने में विभिन्न प्रकार के उपाय अपनाते थे। राजा, वजीर का नाम लेकर अमीन और 'दगाबाज कोतवाल' किसान का सर्वस्व लूट लेते थे—

"हरि का नाम दाम खोटों लो झैकि झकि डारि दयौ।
विषया गाँव अमल कौ टोटो हंसि-हंसि लै उमयौ।
नैन अमीन अधर्मिन के बस यह कौ वहाँ छयौ।
दगाबाज कुतवाल काम रिपु सरबस लूटि लयौ।"[24]

'अहदी' नामक राजा के विश्वस्त घुड़सवार, किसानों के साथ उनके संबंधियों को भी पकड़कर अपना दमन व आतंक फैलाते थे। एक ही नदी चौरासी गाँवों में उनका आतंक फैला हुआ था। यहाँ चौरासी की संख्या ब्रज के 84 कोस की ओर संकेत करती है। वैसे मुगलकाल में बारह, बाइस, बयालीस, चौरासी गाँवों का लगान एक साथ वसूला जाता था। गाँवों की यह संख्या एक बिरादरी के आधार पर तय की जाती थी—

"पाप उजीर कहयौ सोइ मान्यौ धर्म-सुद्दन लूट्यौ।
घेरयाँ आई कुटुम लसकर में जम अहदी पठ्यौ।
सूर नगर चौरासी भ्रमि भ्रमि घर घर कौ जु भयौ।"[25]

इसी प्रकार सूर ने विविध बहियों में हिसाब लिखने के ढंग तथा अधिकारियों की बेईमानी, धूर्तता और उसके परिणामस्वरूप शामिल अथवा जागीर की 'तंगीरी' (स्थानांतरण) का वर्णन अपने भक्ति पदों में किया है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि सूर मुगलों की जागीर प्रथा से अच्छी तरह परिचित थे।[26] इस संदर्भ में कठिनतम फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ जैसे 'अमल, साविक, जामिन, जालिक, बासिल, बाकी, मुजमिल' आदि। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह शब्द लोक संस्कृति द्वारा ग्रहण कर लिए गए थे। विनय के इन पदों में किसानों की ही नहीं गाँव के महंतों, अमीन और ठाकुर की विषम स्थिति की ओर भी संकेत किया गया है। मुस्तौफी (लेखाकार) के अधर्मी होने की स्थिति में कष्ट से मुक्ति केवल प्रभु या बादशाह द्वारा ही हो सकती है क्योंकि जिन अधिकारियों से साधारण प्रजा या जमींदार ...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिकायत करते हैं वे उल्टे उन्हीं लोगों का साथ देते हैं और जागीरदारों के पास लगान न चुका पाने के कारण तगीरी का आज्ञापत्र आ जाता है।

खाद्यान्न व अनाज के नामों द्वारा भी ब्रज संस्कृति के स्तर का ज्ञान होता है।. सामाजिक पक्ष में पर्व व त्यौहारों में विभिन्न प्रकार के मिष्ठान्न तथा पेय पदार्थ पैदावार की ओर संकेत करते हैं। सूर ने स्पष्ट रूप से किसी अनाज की खेती का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। 'रोटी रूचिर कनक बैसन करी' कहकर गेहूँ जैसे प्रमुख अनाज का उल्लेख किया है। गेहूँ के विभिन्न रूप मैदा, सूजी और दलिया और उनके द्वारा बने अनेक पकवानों का उल्लेख किया है—

"मैदा उज्ज्वल करि कै छान्यौ।"[27]
"बेसन मिलै सरस मैदा सो।"[28]
"निम्नुआ लोन तेल तर सूजी।"[29]

धान तथा चावल प्राचीन काल से ही भारत का प्रमुख अनाज रहा है। सूर ने धान की खेती के लिए अन्य अनाजों की अपेक्षा अधिक पानी की आवश्यकता बतलाई है—

"सूखति सूर धान अंकुर सों बिनु बरषा ज्यों मूल तुई।"[30]

धान की खेती का पता पयार (धान के सूखे डंठल) देखकर लग जाता है—

"धान कौ गाँव पयार तैं जानो ज्ञान विषय रस मोरे।"[31]

एक ही खेत में धनिया, धान तथा कुम्हड़े के एक साथ न होने का तथ्य भी प्रगट किया है—

"सूरदास तीनौ नहिं उपजत धनिया धान, कुम्हाड़ै।"[32]

सूरदास और परमानंददास ने ऊख पेरने का उल्लेख किया है। जिससे पता चलता है कि ऊख की खेती भी उस समय ब्रज प्रदेश में हो रही थी—

"रस लै लै औटाइ करत गुर डारि देति है खोई।"[33]
"परमानंद स्वामी में बिछुरें बिरह कोल्हू भयौ तन भयौ ऊखरी।"[34]

जौ, चना, बाजरा की उल्लेख मोटे अनाजों में किया गया है। सूर ने चने का सीधा उल्लेख न कर चने के आटे में 'बड़ी', 'रोटी' आदि बनाने का उल्लेख किया है। उन्होंने मूँग, मसूर, उरद, चने की दाल को पछोरने की भी वर्णन किया है—

"मूँग मसूर उरद चनदारी, कनक-फटक धरि फटकि पछारी।"[35]

दाल से बने विविध व्यंजनों का उल्लेख भी सूर ने किया जो तत्कालीन समाज के अतिरिक्त आज भी ब्रज की रसोइयों में हो रहे हैं जैसे पकौड़ी, पापड़, बड़ी, मंगौड़ी (फुलौरी), कचरी, पीठी आदि। भारतीय भोजन के अंग अरहर, मोठ, मटर का उल्लेख सूर ने नहीं किया संभवतः ब्रज प्रदेश में इनका प्रयोग उस समय नहीं हो रहा था।

तिल और सरसों की खेती भी उन दिनों प्रचलित थी क्योंकि सूर ने दोनों का उल्लेख किया है। तिल के तेल का स्पष्ट उल्लेख है उसे निर्धनों द्वारा भोजन पकाने का साधन माना गया है—

"तिल तेल सवादी, स्वाद का जाने धृत ही री।"[36]

सरसों के तेल का स्पष्ट नाम न देकर, दिए में तेल के जलाए जाने का उल्लेख किया है। उत्तर भारत में सरसों की खेती होना और उसी से तेल बनाना समाज में प्रचलित था इसलिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाम देने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी होगी—

"तेल तूल पावक पुट मारि धरि, बने न बिना प्रकाशन।"[37]

यशोदा कृष्ण को प्रतिदिन तेल और उबटना (हल्दी आटे + तेल का मिश्रण) लगाकर स्नान करवाती थीं।[38] खाद्यान्न और खाद्य तेलों के अतिरिक्त व्यावसायिक पैदावार के रूप में कपास का उल्लेख मिलता है। तूल रुई का प्रयोग दीपक की बाती बनाने के संदर्भ में किया गया है। रुई के लिए आक रुई शब्द का प्रयोग भी किया है। और उससे सूत, धागा और डोर बनाने की बात कही है—

"गृह दीपक धन तेल तूल पिय सुख ज्वाला अति जोर।
उड़िये उड़ी फिरत नैनन संग फर फूटे ज्यों आकरूई।
सन अरु सूत चीर-पाटंबर ले लंगूर बंधाए।"[39]

सेमर के पेड़ का उल्लेख संसार की अस्थिरता तथा बाह्य आकर्षण के अर्थ में किया गया है। सूर ने आम रूपी कृष्ण की भक्ति के सामने सेवर की रुई में समान सांसारिक प्रपंचों के प्रति अपनी अनिच्छा व्यक्त की है।[40] सूर ने लोकजीवन के दृष्टांतों को ग्रहण करके अपने काव्य को ब्रज के सामान्य ग्रामीण जीवन के साथ जोड़ दिया था। कृषि और कृषि उत्पाद की दृष्टि से उनका ज्ञान किसी भी कवि से कम नहीं आंका जा सकता है। कम से कम शब्दों में उन्होंने अपने समय की कृषि व्यवस्था को उसके गुण-दोषों के साथ काव्य में उतार दिया है। अन्य अष्टछापी कवियों के विपरीत संस्कृति दिग्दर्शन के अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है।

गोचारण तथा पशुपालन

गोपालन या पशुपालन मनुष्य जाति की अत्यंत प्राचीन वृत्ति है। समाज की संरचना के बाद ही मनुष्य ने उपयोगी पशुओं को पकड़ना और बांधना शुरू किया। कालांतर में यही एक व्यवसाय और जीविका के साधन के रूप में परिवर्तित हो गया। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "कवियों को आकर्षित करने वाली गोपजीवन की सबसे बड़ी विशेषता है प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में विचरने के लिए सबसे अधिक अवकाश। कृषि, वाणिज्य आदि और व्यवसाय जो आगे चल कर निकले, वे अधिक जटिल हुए—उनमें उतनी स्वच्छंदता न रही।"[41]

अष्टछाप के आराध्य यद्यपि यदुवंशी क्षत्रिय हैं और वासुदेव देवकी के पुत्र हैं परंतु कंस के भय से गोकुल के अहीर राजा नंद के यहां पहुंचा दिए जाते हैं। अहीरों तथा आभीरों को भी यादव वंशी कहा गया है, परंतु अर्थव्यवस्था के आधार पर किस वर्ग के अंतर्गत रखा जाएगा, इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डाला गया है। अहीरों का प्रमुख व्यवसाय गोपालन अथवा पशुपालन था। इनकी आजीविका का साधन दूध और उससे निर्मित दही-मक्खन आदि बेचना था। अहीरों को निम्न समझने का संकेत सूर ने गोवर्धन पूजा के संदर्भ में दिया है। जहां इंद्र उन्हें ओछा और निम्न जाति का बताते हैं—

"अहिर जाति ओछी मति कीन्ही, अपनी जाति प्रकट करि दीन्हीं।"[42]

अष्टछाप के कृष्ण भगवान और मानव दोनों ही रूपों में जाति-पांति और वर्गभेद का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खंडन करते हैं। गोकुल में रहकर दीन और आर्त्तजनों को विभिन्न आपदाओं से मुक्त कराना उनका ध्येय है। ब्रज संस्कृति ग्रामीण संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए गोचारण एवं गोपालन का विशद चित्रण अष्टछाप में मिल जाता है। कृष्ण के जीवन का अपरिहार्य अंग होने के कारण भी प्रायः सभी कवियों ने उन्मुक्त भाव से इसका वर्णन किया है। गोचारण के संदर्भ में प्रकृति के कोमल और भयंकर दोनों प्रकार के रूपों का चित्रण किया गया है। अष्टछाप के समय में गोप, ग्वाले, गोचारण और पशुओं की रक्षा और देखभाल का कार्य करते थे तो उनकी स्त्रियां जनजीवन के मुख्य व्यवसाय दूध-दही वितरण में सक्रिय भूमिका निभाती थीं। लोक-संस्कृति की दृष्टि से यह पक्ष अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अष्टछाप कवियों ने अहीरिन, गोपी या ग्वाल को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया है। तत्कालीन आभीर समाज में स्त्री घर तथा बाहर के जीवन का केंद्र बिंदु है। वह परिवार की आर्थिक सम्पन्नता का एक प्रमुख उपादान है। जीवन के प्रति उसका दृष्टकोण व्यावहारिक है और वह समाज के लिए उपादेय कर्मशीला नारी की भूमिका निभाती है। मनुस्मृति की विचारधारा का अतिक्रमण कर ब्रज की गलियों, कुंजों और पनघट पर निःशंक विचरण करती है। अष्टछापी कवियों ने मटकियों में दूध-दही लिए मथुरा की ओर जाती ग्वालिनों का स्पष्ट चित्रण किया है—

"बेचन चली दधि ब्रजनारि,
सीस धरि धरि माट मटुकी बड़ी सोभा भारि।"[43]

दान लीला के प्रसंग में मथुरा जाती गोपियों का वर्णन अन्य कवियों ने भी किया है—

"गोकुल की ब्रजनारि दह्यौ नित बेचन आवैं।"[44]
"कहो किन कीनों दान दही को।
सदा सर्वदा बेचति इहि ब्रज है मारग नित ही कौ।"[45]
"गुजरिया गरब गहीली उतरू नाहीं देति।"[46]

कुंभनदास और सूरदास ने स्पष्ट रूप से दूध-दही बेचने को अहीरों का व्यवसाय बताया है।

"हम हैं जाति अहीर दह्यौ नितबेचन आवैं"
"हम अहीर माखन दधि बैचैं।"[47]

वितरण ही नहीं दूध से मक्खन, दही, छाछ आदि बनाने का पूर्ण उत्तरदायित्व भी स्त्रियों का था। साधारण गोपी से लेकर नंदरानी यशोदा तक स्वयं अपने हाथ से यह काम करती थीं, और गर्व का अनुभव करती थीं। कृष्ण की बाललीला वर्णन में यशोदा के दही मथने का उल्लेख किया गया है—

"प्रात समै गोपी नंदरानी
स्रम अति उपजत तेहि औसर दधि मथत माट मथानी।"[48]
"दधि मथति गवालि गरबीली रो।"[49]
"देखी हरि मथात ग्वाली दधि ठाढ़ी।"[50]

इसी प्रकार दूध दुहने आदि का वर्णन भी किया गया है।[51] उल्लेखनीय बात यह है कि रानी होते हुए भी यशोदा इन कामों में अपनी हेठी नहीं समझती थी बल्कि घर आए पाहुनों से भी इसका वर्णन करती थी। अहीर स्त्रियों में यह घरेलू कार्य आज भी प्रचलित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। हाँ, दूध-दही बेचना अवश्य बंद हो गया है। आभीर संस्कृति में 'गोपालन' का महत्व सर्वाधिक है। जीविका का प्रमुख आधार गौ होने के कारण अष्टछाप काव्य में विशदता से इसका वर्णन किया गया है। भारतीय संस्कृति में, उपयोगिता के कारण 'गाय' को माता की उपाधि दी गई है; परोक्ष तथा अपरोक्ष दोनों ही रूपों में वह आर्थिक सम्पन्नता की केंद्र है। ब्रज लोक-संस्कृति ने भी उसे इसी रूप में स्वीकार किया है और अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण कथा का अवलंबन लेकर आभीरों के धन के रूप में उसका वर्णन किया है। गाय के लिए गाइ, गौ, धेनु, सुरभि आदि शब्दों का प्रयोग किया है और रंगों के आधार पर घूमाई, धौरी, माजिरि, रानी, रौछी, पियरी, गैनी, खैरी, कजरी, दुलही, फलही, भौंरी, भूरी आदि नामों से भी संबोधित किया है। सूरदास, चतुर्भुजदास तथा गोविन्दस्वामी ने विभिन्न रंगों की गायों का उल्लेख किया है—

"धौरी घूमरि, राति रौछी बाल बुलाई चिन्हौरी
पियरी भौंरी गोरी गैन, खैरी कजरी जेती।
दुलही फलही भौंरी भूरि हांकि ठिकाई तेती।"[52]
"सांग बुलाई धूमरि धौरी टेरत बेनु बजाई।"[53]
"चढ़ि कदंब धौरी धूमरि काजरि और पियरी पूरत मधुरें सुर बेनु।"[54]
"बिफर गई धूमर अरू कारी।"[55]

ब्रज की लोक-संस्कृति के अनुसार कजरी गाय का दूध शिशु के स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम है। इसके पश्चात् कत्थई या लाल रंग की गाय का दूध आता है। इसलिए सूरदास की यशोदा कृष्ण को कजरी का दूध पीने का परामर्श देती है—

"कजरी को पय पियहु लाल, जासों तेरी बेनि बढ़ै।"[56]

गोवर्द्धन पूजा द्वारा कृष्ण ने गोवर्द्धन का मंत्र ब्रजवासियों को देकर गौ को ही उनका अमूल्य धन घोषित किया है। गोवर्द्धन को गोबर-धन भी कहा गया है और अप्रत्यक्ष रूप से गोबर की महत्ता ग्रामीण परिवेश में प्रतिपादित की गई है। केवल आंगन दुआर लीपने-पोतने में ही नहीं गोबर का प्रयोग खाद के रूप में भी किया जाता है। भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। ब्रज लोक-संस्कृति इसी कारण गाय से अभिन्न रूप से जुड़ गई है। पुत्र-जन्म, विवाहादि शुभ अवसरों पर, अनिष्ट निवारण तथा अनिष्ट के टल जाने पर गायों का दान देने का उल्लेख प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। दान में दी जाने वाली गायें उत्तम कोटि की तथा सोने-चांदी से मढ़े सींग और खुर वाली होती थीं—

"खुर तांबै, रूपै पीठि, सोने सींग मढ़ी।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक हरषि असीस पढ़ी।"[57]
"जुबतिन बहुविधि भूखन दीजै विप्रन को गोदान।"[58]
"हय गज धेनु अरथ अंबर धन दीन्हें धन भांडार।"[59]
"कपिला धेनु कनक सिंगी नाना बिधि में दान।"[60]

कृष्णदास ने विवाह के अवसर पर वस्त्राभूषण से सुसज्जित गायों के दान का उल्लेख किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"गोपनि के गोधन अति नीकी दीन्ही है लखचार
झूमरि झूम झूल मखतूलनि प्यारी धैरी धेनु सिंगार।
जगमग सोने सींग सबनि के गरे घटनि बड प्यार।
मोतिनि हार फवी पग पैंजनी चलत चपल झनकार।"[61]

दान की इस प्रथा के कारण गोपालन अहीरों का ही नहीं अप्रत्यक्ष रूप से उच्च समझी जाने वाली ब्राह्मण जातियों के लिए भी आवश्यक हो गया था।

कृष्ण के माध्यम से ब्रज के इस आधारभूत व्यवसाय का निरूपण किया गया है। कृष्ण बचपन से ही इस कार्य में रुचि लेते हैं। गोचारण के लिए जिद करते हैं और आज्ञा मिलने पर प्रसन्नता से सारे दिन के लिए गायें चराने जाते हैं। गोपालन के प्रमुख अंगों—गाय चराना, नजरों से दूर हो जाने पर आवाज़ देकर बुलाना, घाट पर पानी पिलाना आदि को अपने से बड़े गोपों द्वारा सीखते हैं—

"चले सब गाई चरावन ग्वाल।
हेरी टेर सुनत लरिकन के दौरि गए नंदलाल।"[62]
"गैयां गई दूरि टेरो जू कान्ह।"[63]
"हौ वाहि बाट पिवावत गैया जहां भरत पनिहारी।"[64]
"तनक कनक की दोहनी दी री मैया।
तात मोहि सिखवन कह्यौ दुहन धौरी गैया।"[65]

गाय के समान उनके बछड़ों को चराने का उल्लेख भी अष्टछाप काव्य में हुआ है। वे भी कृष्ण के स्नेहपात्र हैं—

"गो-सुत अरू नर नारि मिले अति द्वेत लाइ गर।"[66]
"चलो हरि बछरा चरावन माई।
टेरें पहिले तोक स्त्रीदामा लीने संग लगाई।"[67]

इस प्रकार गोचारण और उनकी सार-संभाल का दायित्व मुख्यतः पुरुष-वर्ग पर था। ब्रजमंडल के अनेक वनों में पशुओं के लिए पर्याप्त चारा उपलब्ध था। इसलिए पशुपालन का व्यवसाय ब्रज में खूब फूला-फला। गाय चराने किशोर गोपों के साथ बच्चे भी जाते थे। नंद के पुत्र के रूप में श्रीकृष्ण सामान्य बालकों की तरह गायें चराने जाते हैं। बाललीला के प्रसिद्ध पद "मैया मैं नाहिं माखन खायों" में वे स्वयं को निर्दोष सिद्ध करते हुए इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा करते हैं—

"भोर भयौ गैयन के पाछे, मधुबन मोहि पठायौ,
चारि पहर बंसीबन भटक्यौ, सांझ परै घर आयौ।"[68]

कृष्ण के मन में बचपन से ही गोचारण की इच्छा बलवती है और बड़े होने पर जब उन्हें इसकी आज्ञा मिलती है तो वे अत्यंत प्रसन्न होते हैं। परमानंददास ने तो कृष्ण के "गायें चराने कौ व्यसनु"[69] और "ग्वाल बाल के मध्य बिराजत टेरन ही धूमर गौरी"[70] का वर्णन भी किया है। पुष्टिमार्ग में वन में गए कृष्ण व उनके सखाओं के लिए छाछ भेजने का नियमित रूप से वर्णन है। 'प्रथम गोचारण' ब्रज की लोक-संस्कृति में एक विशिष्ट महत्व रखता है। प्रतिदिन गाय चराकर वापस आने का वर्णन भी इस काव्य में मिल जाता है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"बन तैं आवत धेनु चाइं।
संध्या समय सांवरे मुख पर गो पद रज लपटाए।"[71]

गोचारण के समय में ही कृष्ण का लोकरक्षक रूप प्रगट होता है। अपने साथियों को वे विभिन्न राक्षसी उत्पातों से बचाते हैं। धेनुक और प्रलंब असुरों का वध इसी समय हुआ है।

गोचारण के प्रसंग में ही ब्रज की अतुल प्राकृतिक संपदा का विवरण मिलता है। मधुवन, वृंदावन आदि ब्रज के अनेकों रमणीय स्थानों का वर्णन किया जाता है। प्रकृति का कोमल तथा भयंकर दोनों प्रकार का स्वरूप भी निरूपित किया गया है। कोमल रूप का चित्रण विभिन्न ऋतुओं के वर्णन में किया गया है और दावानल पान के प्रसंग में भयंकर रूप का—

"झहरात महरात दावानल आयौ
धेरि चहुं ओर करि सोर अंदखिन धरनि अकास चहुं पास छायौ।"[72]

प्रकृति के इस चित्रण में लोकपक्ष की उपेक्षा कवियों ने नहीं की है। कृष्ण को एक कुशल चरवाहे के रूप में भी सूरदास ने वर्णित किया है। उन्होंने 'गाई' शब्द का प्रयोग आधयात्मिक अर्थ में इंद्रिय के रूप में किया है और कृष्ण से अपनी गाय को भी, अपना लेने की प्रार्थना की है—

"माधौ नैकु हटकौ गाइई
भ्रमन निसि-वासर अपथ-पथ अगह गहि अगह गहि नंहि आइ"[73]
माधौ जू यह मेरी इक गाइ।"[74]

आध्यात्मिकता हटा देने पर कृष्ण ऐसे चरवाहे के रूप में प्रगट होते हैं जो हरहाई, स्वच्छंद, इधर-उधर मुंह मारने वाली, उदंड गाय को भी वश में कर सकते हैं। गोचारण व्यवसाय की यह छोटी-सी बात भी सूर की दृष्टि से बच नहीं सकी है। आज भी ऐसे बिगड़ैल पशुओं के मालिक अधिक पारिश्रमिक देकर अपने पशुओं को चरवाहों को सौंप देते हैं। वही उसके पशुधन की रक्षा का उत्तरदायी होता है। तत्कालीन ब्रजसंस्कृति में प्रचलित इस पद्धति का परिचय उपर्युक्त संदर्भ से मिल जाता है। गाय के अतिरिक्त दूसरा पालतू पशु वृषभ या बैल है। कृषि के लिए इसकी उपयोगिता ग्रामीण परिवेश में अपरिहार्य है। कृषि के अतिरिक्त इनसे बोझा ढोने का कार्य भी लिया जाता था। जोते जाने वाले बैल 'युग्म' कहलाते थे। वाहनों के अनुसार उनके नाम भी रखे जाते थे जैसे 'रथ्य' (रथ के बैल), 'शाकट' (शकट के बैल), 'हालिक' तथा 'सोरिक' (हल के बैल) आदि। अष्टछाप काव्य में इस प्रकार अलग-अलग नामों से बैलों का वर्णन नहीं हुआ है। विशेष पर्वों तथा मेले आदि में ले जाने से पूर्व बैलों का शृंगार मध्यकाल की तरह आज भी लोकजीवन में किया जा रहा है। परमानंद दास ने भी अपने समय में प्रचलित इस लोकरीति का उल्लेख किया है—

"धौरी धेनु सिंगारी मोहन बडरे वृषभ सिंगारे।"[75]
"घर घर गोपी मंगल गावैं सुरभी वृषभ सिंगारो लाल।"[76]

बैलों का उपयोग कोल्हू में तेल निकालने के लिए भी किया जाता है। सूरदास ने इस भाव का संकेत तथा उसके दुखद जीवन का उल्लेख माया में फंसे मनुष्य का उपमान देते समय किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"तेली के वृष लौं नित भरमत भजन न सारंग पानि।"[77]

"भक्ति बिनु बैल बिराने है हौ"[78]

कहकर भक्ति से रहित मनुष्य की तुलना दयनीय 'बिराने' बैल से की है।

दूध देने वाले पशुओं में बकरी का महत्वपूर्ण स्थान है, पर भारतीय लोकजीवन में इसे गाय से कम आंका गया है। अष्टछापी कवियों ने भी "कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै"[79] द्वारा इसी मान्यता की पुष्टि की है।

पालतू पशुओं में बिलाव, 'ऊंट-भैंसे' और 'मैंढे' की ओर इन कवियों ने संकेत मात्र किया है। बिलाव को काल के समान झपट लेने वाला ऊँट और भैंसे को बोझा ढोने वाला और मेढा को सामान्य रूप में वर्णित किया गया है—

"काल फिरत बिलार तनु धरि अब धरी तिहिं लेत।"[80]

सामान्य वर्ग के अतिरिक्त विशेष वर्ग द्वारा पाले गए घोड़े और हाथी जैसे पशुओं का उल्लेख भी अष्टछाप में हुआ है। यह दोनों पशु युद्धस्थल और सैन्य-व्यवस्था के प्रमुख अंग हैं। इसके अतिरिक्त वाहन के रूप में भी इनका प्रयोग होता है। घोड़े के लिए अश्व, तुरंग, बाजि जैसे संस्कृत शब्दों का और 'ताजी' (अरबी घोड़ा) जैसे फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'अश्वारोहण' विवाह संस्कार का आवश्यक अंग है। सूरदास ने इस अवसर पर 'जड़ाऊ जीन' और 'झूल' से सुसज्जित अश्व का वर्णन किया है—

"जीन जरित जराव, पाखरि लगी नव मुक्ता लरी।"[81]

परमानंददास ने भी घोड़े पर चढ़ने का उल्लेख विवाह के संदर्भ में किया है—

"सब सखा बरात चलैंगे हो अब चढ़ियो घोरी।"[82]

घोड़ों का प्रयोग आखेट में, लंबी यात्रा में तथा चौगान के खेल में किया जाता था। श्रीकृष्ण घोड़े पर चढ़कर मृगया के लिए जाते थे। (सारा. 665) चौगान के खेल के विभिन्न प्रकार के घोड़ों का उल्लेख सूरसागर में किया गया है।

"निकस सबै कुंवर असवारी 'उच्चैश्रवा' के जोर।
'नील', 'सुरंग', 'कुमैत', 'स्याम' तोहि पराले सबमन रंग।
बरन अनेक भांति भांतिनि के चमकत चपला ढंग।"[83]

हाथी राजन्य संस्कृति का प्रतीक है। 'गज सेना' के रूप में इसका विशेष महत्व सैन्य-व्यवस्था में है। संपन्न वर्ग द्वारा ही इसको पाला जाता था तथा आवश्यकतानुसार दांव-पेंच सिखलाए जाते थे। वैष्णव भक्ति साहित्य में गज-ग्राह की कथा द्वारा इसके महत्व को बढ़ाया गया है। गज-दान भी साधारण मनुष्य की अपेक्षा राजाओं द्वारा संभव था। इसलिए राजन्य संस्कृति के इस प्रतीक की ओर अष्टछाप कवियों का रूझान नहीं था। नंद के गजदान तथा उपमान के रूप में हाथी का उल्लेख उन्होंने अवश्य किया—

"हय गज अरथ अंबर धन दीन्हें धन भंडार।"[84]

"ज्यों गयंद अन्हाई सरिता बहुरि वहै सुभाय।"[85]

गज मोतियों की माला तथा 'हाथी दांत' का उल्लेख भी अष्टछाप काव्य में हुआ है—

"कीरति दिए रतन मनि भूषण गजमोतिनि की माल।"[86]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"कुंजर दंत कंध धर लीने रूधिर बिंदु लपटाने।"[87]

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूरदास ने सामान्य लोक में प्रचलित मस्त हाथी तथा सिंह की शत्रुता और मत्त हाथी के गंडस्थल से मद बहने का उल्लेख किया है—

"मानौ सिंह सैल तैं निकस्यो महामत्त गज जानि।"[88]

"स्याम सुभग तन चुवत गंडमद बरषत थोरे थोरे।"[89]

पशुपालन के इस अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन ब्रज समाज में समृद्धि और मान का प्रतीक पशुओं की संख्या थी। मुख्य रूप से गोधन मानदंड था "अधिक तुम्हारे हैं कुछ गैया" और "राई दामोदर गोधन के रखवारे" कहकर इसी मान्यता की ओर अष्टछापी कवियों ने संकेत किया है। आज भी ब्रजलोक संस्कृति में व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा उसके पालतू पशुओं (गायों, भैंसों) के आधार पर तय की जाती है।

वाणिज्य व्यापार

आर्थिक पक्ष के विवेचन में वाणिज्य व्यवसाय की चर्चा इसलिए आवश्यक हो जाती है कि प्रत्येक देश, प्रदेश अथवा समाज के वाणिज्य व्यवसायों के मूल में कोई न कोई सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अवश्य होती है सामान्यतः वाणिज्य व्यवसाय का चरम विकास उन नगरों में होता है जो आयात निर्यात की दृष्टि से सम्पन्न होते हैं।

अष्टछाप के कवियों की साधना भूमि ब्रज के ग्रामीण परिवेश तक ही सीमित थी इसलिए लोकसंस्कृति में सर्वमान्य व्यवसायों की चर्चा उनके काव्य में हुई है, भक्ति भाव प्रमुख होने के कारण भी वाणिज्य वर्णन की ओर से वे उदासीन रहे हैं। सूरदास, नंददास और परमानंददास को छोड़कर शेष कवियों ने इस विषय का स्पर्श लगभग नहीं किया है। दानलीला आदि के प्रसंग में औपचारिकतावश अप्रत्यक्ष उल्लेख कर दिया है। सूरदास ने ही बिना किसी क्रम के विविध प्रसंगों में वाणिज्य तथा व्यापार का संबंध नागरिक सभ्यता से मानकर निर्गुण जैसी बहुमूल्य वस्तुओं का मथुरा नगर में मिलने का उल्लेख किया गया है। वृन्दावन ग्राम में ही नहीं—

"यह निरगुन निरमोल गाठरी अब किन करन धरी।
यह व्यापार उहां जु समातौ, हुती बड़ी नगरी।"[90]

ग्रामीण संस्कृति में व्यापार के समुन्नत होने के अवसर अपेक्षाकृत कम रहते हैं। ब्रज के निवासी भी दैनिक उपभोग के जो उत्पादन उनकी आवश्यकता के अतिरिक्त होते हैं, उन्हें नगरों में ले जाकर बेचते हैं तथा उसके बदले में अन्य आवश्यक वस्तुएं खरीदते हैं। गांव में क्रय-विक्रय के स्थान पर वस्तु-विनिमय की पद्धति अधिक लोकप्रिय रही है। वस्तु-विनिमय भी समान मूल्य और महत्व की वस्तुओं में होता है। 'अनपढ़, गंवार' गोपियां निर्गुण को मूली के पत्ते के समान मानकर कृष्ण रूपी मुक्ताहल से बदलने को मना करती हैं—

"मूरी के पातन के बदले को मुक्ताहल दै हैं।"[91]

व्यापार करने वाले के लिए व्यापारी शब्द का प्रयोग किया गया है। सौदा शब्द भी व्यापार और खरीदी हुई वस्तु के लिए प्रचलित था। अष्टछाप में भी यह दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"सूर स्याम कौ सौदा सांचौ।"[92]

"देखि देखि सोभा ब्रज सुंदरि सौदा लेन लाल सों आई।"[93]

तत्कालीन व्यापार व्यवस्था में लाभ के लालच में कम तोलने की प्रवृत्ति भी पाई जाती थी। परमानंददास ने इसी कारण हटरी प्रसंग में कृष्ण से पूरी 'तोल' देने का उल्लेख किया है।

"सावधान है सौदा कीजै जौ दीजै तो 'तौल' पुराई"[94]

सूरदास ने बाजार के लिए 'पैंठ', लाभ के लिए 'नफा' और ग्राहकों की नब्ज पहचाने बिना लाए गए सामान को 'अकरी' कहा है। 'निरगुन' ऐसी ही वस्तु है—

"ऊधौ तुम ब्रज में पैंठ करी।
लै आए हो नफा जानि कै सबै वस्तु अकरी।"[95]

सूरदास ने बड़ी राजधानियों, नगरों तथा कस्बों के बाजारों, हाट या पैंठ में विविध वस्तुओं को क्रय-विक्रय करने वाले को व्यापारी कहा है।[96]एक स्थान से माल खरीदकर अन्यत्र ले जाकर बेचने वाले को सौदागर कहा है। बाजारों का वर्णन भी, बैलों पर आवश्यकता की वस्तुएं लादकर बेचने वाले व्यापारियों के रूप में किया है।[97] बड़े बाजारों में व्यापारियों के दलालों की चर्चा भी की है जो बेचे गए माल में से अपना हिस्सा वसूल करते थे—

"काम क्रोध मद लोभ मोह तू सकल दलाली देहि।"[98]

दलालों की संख्या बड़े नगरों के व्यापार में ज्यादा होती थी। अष्टछाप में धनी व्यापारी को 'साह' या साहूकार कहा गया है। वह अपनी 'छाप' देकर बनिज (वणिक) को विभिन्न स्थानों पर भेजता था। प्रायः ऐसे वणिक मामूली माल को प्रसिद्ध साहू का बताकर अधिक लाभ कमाना चाहते थे। भ्रमरगीत में गोपियों ने निरगुन की खेप को सामान्य वस्तु माना है जिस पर कृष्ण जैसे प्रतिष्ठित साहू की छाप लगाकर उद्धव ब्रज में बेचना चाहते हैं—

"आयो घोष बड़ौ व्यौपारी
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की ब्रज में आनि उतारी।
फाटक दै कै हाटक माँगत भोरों निपट सुधारी।"[99]

ऐसे व्यापारी अपने खेप (सामान), बैल, हाथी या घोड़े पर लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान 'गथ', गाठरी, 'गोन' या पिटारे में भरकर ले जाते थे।

"बैल गोन व्यापारी"[100] "तुम्हरौ गथ लादौ गयंद पर"[101] "करि हियाब यह सौंज लादि कै"[102] के द्वारा यही बात सिद्ध होती है। लोक में पटसन तथा काली ऊन के बने दोहरे बोरे को गोन कहा जाता था। हाट या पैंठ में दैनिक जीवन की प्रत्येक वस्तु उपलब्ध हो जाती थी। इनके अतिरिक्त सुदूर प्रदेशों से आने वाली वस्तुएँ भी वर्णित की गई हैं जो 'बनिज' की सीमा में आती हैं। गोपियों द्वारा इन्हीं का उल्लेख निम्न पद में किया गया है—

"लौंग नारियल दाख सुपारी कंह लादे हम आवै,
हींग मिरिच पीपरि अजवाइन ये सब बनिज काह वे।
कूट कायफल सोंठ चिरइना करजीरा कहुँ देखत।
आलम जीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसिहिं विधि अवरेखत।
बाइबिडंग बेहरा हर्रे बैल गोन व्यौपारी।"[103]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूर के इसी पद के आधार पर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "वैसे सूरदास के विद्यार्थी को यह पता लगाना भी बहुत मुश्किल नहीं है कि उस जमाने के परचूनी की दुकान पर क्या-क्या चीजें सुलभ थीं।"[104]

व्यापार पर नियंत्रण रखने की दृष्टि से स्थान-स्थान पर घाट बने हुए थे। इन घाटों पर शासकीय अधिकारी नियुक्त थे। व्यापारियों के नदी पार करते ही 'दान' या 'कर' वसूल करते थे। इसी को चुंगी, घटवारी या 'बट्टा' भी कहा जाता था।[105] इस पद्धति का सांगोपांग चित्रण दान-लीला के प्रसंग में किया गया है। कर या चुंगी वसूल करने वाले के पास शासकीय 'छाप' 'वीरा' या प्रमाणपत्र होता था। और उसे 'घटवार' या 'दानी' कहा जाता था। दान लीला का यह प्रसंग जहाँ ब्रज के प्रमुख व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करता है वहीं तत्कालीन वाणिज्य व्यवस्था के नियमों से भी परिचय कराता है। 'दानी' के लिए कर न वसूल करना एक अपराध माना गया है जिसके लिए शासन से 'गारी' खानी पड़ती है। कृष्ण ने इसीलिए गोपियों से कहा है—

"जिहिं बीरा दै मोहि पठायौ, सो मोसों कह लैहे।
तुम घर जाइ बैठि सुख करिहां नृप गारी को सैहे।"[106]

ब्रज का सामन्य मनुष्य इतना भोला नहीं है कि उसे ठगा जा सके। सीधी साधी ब्रज की गोपियाँ भी व्यवसाय कुशल हैं। कर्मचारियों की धमकी में आकर 'कर' वे चुकाने को तैयार नहीं होतीं। उल्टे कृष्ण से पूछती हैं—

"आपुही लेत किंधौ काहू लिखिं दीनों समुझायों धौ तैसे।"[107]

गोरस के व्यवसाय के सारे कायदे-कानून से गोपियाँ परिचित हैं इसलिए छाप देखकर संतुष्ट होने पर भी 'खिरक' से दुहे दूध को 'भुवन' को ले जाते हुए 'दान' न देने की घोषणा करती हैं। इसके लोक प्रचलित उस नियम का पता चलता है जिसमें खिरक के दूध पर कर लगने की बजाए दूसरे स्थान से लाए जाने वाले लौंग, सुपारी जैसे पदार्थों पर कर लगाया जाता था। गोविंद स्वामी ने इस नोंक-झोंक का चित्रण अनेक पदों में किया है—

"खिरक दुहाइ गोरस लिए जात अपने-अपने भुवन जावगें,
दान माँगत जैसे कहूं लादी हैं लौंग सुपारी।"[108]
"कहो जू दान लैहौ कैसे।
दूध दही गोरस को दान कबहूं न सुन्यों कान।"
"अब मानो लौंग लादी काहूं जैसे।"[109]

गोपियों के तर्कों को न मानने पर वे कृष्ण को झुंझलाकर व्यंग्य से 'अनोखे दानी' 'अचरगरौदानी'[110] कहती हैं और उनकी जिद को नई चाल घोषित करती हैं—

"दूध दही को दान कबहूं न सुन्यौ कान
तुम यह नई चाल चलाई।"[111]

परमानंददास ने भी कृष्ण को 'अनोखे दानी' की उपाधि दिलवाई है।[112] 'चतुर्भुजदास की गोपियाँ', "गिरिघटिया उठि भोर ही मारग रोकत आई"[113] कहकर कृष्ण के बलात् दान लेने का उल्लेख करती हैं। 'दान' को मध्यकालीन दरबारी भाषा में जगात, जहात या जकात कहा जाता था। इसलिए सूर की गोपियाँ कृष्ण को— "सूर [illegible] भए जगाती" कहती हैं तो कृष्ण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं को घटवारौ [114]—

"या वन मैं तमु बनिज कराते हो नहिं जानति मोकौ घटवारौ।"[115]

दान या कर घाट पर माल उतारने से पहले ही वसूल किया जाता था इसके प्रमाण भी अष्टछाप में मिल जाते हैं। गोविंद स्वामी के कृष्ण चंद्रावलि को इसी कारण घाट पर ही रोक लेते हैं—

"जमुना घाट रोकी हो रसिक चंद्रावलि।"[116]

दान या चुंगी बचाने की प्रवृत्ति वर्तमान युग की तरह तत्कालीन समाज में भी थी। इसलिए ऐसे कर चोरों से बकाया वसूल करने का उल्लेख भी अष्टछाप में मिल जाता है—

"हमारो दान दै गुजरेटी।
नित तू चोरी केवति गोरस आजु अचानक मेटी।"[117]
"दिन दिन दान मारि गाई जुहमारो, तब कबहूं पाले नहिं परिया।"[118]
"गुजरिया बावरी भई केउ बेर गई दान मारि।
आजु गहन पाई नंद की सौ लैहां दिन दिन को निरूवारि।"[119]

'घटवार' द्वारा एकत्र कर राजा के खजाने में जमा किया जाता था। मध्य काल में वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में काफी असुविधाओं और जोखिम का सामना करना पड़ता था। यातायात की असुविधा के साथ-साथ मार्ग में डाकू-लुटेरों का डर भी बराबर बना रहता था। सूर की पैनी दृष्टि इस पक्ष पर भी पड़ी है—

"घाट बाट कहुँ अटक होई नहिं सब कोउ देहि निबाहि।"[120]

व्यापार से संबंधित कई अन्य छोटी-छोटी बातों का उल्लेख भी किया गया है जैसे बड़े-बड़े व्यापारियों के अतिरिक्त, रोज सामान खरीदकर गलियों में फेरी लगाने वाले छोटे व्यापारियों का वर्णन। बच्चों को आकर्षित करने वाले छोटे-मोटे खिलौनों के अतिरिक्त यह फेरी वाले मौसमी फल व तरकारियाँ भी बेचते थे। सूरदास, परमानंददास ने ऐसी ही चकडोरी और आम तथा बेर बेचने वाली काद्दिनन का उल्लेख किया है—

"दे मैया भौंरा चकडोरी
जाइ लेहु आरे पर राख्यौ काल्हि मोल लै राखे कोरी।"[121]
"कोउ माइ आम बेचन आइ।"[122]
"ब्रज में काद्दिन बेचन आई
आन उतारी नंद गृह आंगन डयौढ़ी फलन सुहाई।"[123]

ग्वालिनों के गोरस बेचने का उल्लेख तो पहले हो ही चुका है यह सभी अपना माल समाप्त होने पर ही वापस लौटते थे। व्यापार में 'मोल तोल' का वर्णन किया गया है। इसके पीछे व्यापारियों और ग्राहकों दोनों की लाभ लेने की प्रवृत्ति छिपी हुई है। परमानंद और गोविंद स्वामी के कृष्ण रूप से दूध-दही के ठीक दाम बतलाने को कहते हैं।[124]

परमानंददास ने सही मोल बताने पर सारा सामान एक साथ खरीदने की बात कही है। फेरी वाले के लिए यह एक बहुत बड़ा प्रलोभन है और वह इसलिए कम दाम लगाने को भी तैयार हो जाता है।[125] व्यापारियों में 'बोहनी' का बड़ा महत्व है उसी के आधार पर बाकी दिन का व्यापार निर्भर करता है इसलिए सूरदास, परमानंददास की गोपियाँ बिना बोहनी किए दान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देने से साफ मना कर देती हैं—

"बिनु बोहनी तनक नहि दैहौं ऐसे छीनी लेहूं बरू सगरौ।"[126]

"बिनु बोहनी छुअन नहिं दैहौं यह सब छींन खाउ किन सगरौ।"[127]

व्यापार का माध्यम गाँव में वस्तु-विनिमय ही रहा है। नागरिक सभ्यता में उसका मूल्य चुकाया जाता है। तत्कालीन ब्रज में दोनों ही पद्धतियाँ प्रचलित थीं। परमानंद ने बेरो के बदले धान देने का उल्लेख किया है—

"सूखत धान पट्यौ आंगन में कर अंजुली बनाई।
परमानंद जसुमित आन दिए, फल खाये कुंवर कन्हाई।"[128]

इसी प्रकार गोविंद स्वामी ने निरमोलिक दही का मूल्य स्याम हीरा बतलाया है।[129]

परमानंद ने "आजु दधि कंचन मोल भई" और "दधि के पलटे दुलरी दीनी"[130] का उल्लेख किया है। वस्तु के अभाव में प्रचलित सिक्कों द्वारा चीज खरीदने का उल्लेख किया है। शासन और व्यापार में सर्राफ द्वारा परखे सिक्के को ही स्वीकार किया जाता था। मध्ययुगीन शासन में प्रचलित टका दमड़ी दाम और रूपा का उल्लेख अष्टछाप काव्य में है। टका और रूपया चाँदी का सिक्का है तो दाम और दमड़ी ताँबे का। इनके अतिरिक्त लोक व्यवहार में प्रचलित कौड़ी का मूल्य नगण्य था। गोकुल को कृष्ण के बिना कौड़ी के समान तुच्छ कहा गया है। कौड़ी का प्रयोग कृष्ण ने दान लीला के प्रसंग में 'कर' के अर्थ में भी किया है। जहाँ वह कौड़ी-कौड़ी वसूल करने की बात करते हैं।

अर्थशास्त्र के प्रमुख सिद्धांत माँग और पूर्ति के व्यावहारिक रूप से भी यह कवि परिचित थे। जिस वस्तु की माँग नहीं होगी, वह अनमोल होने पर भी व्यापारिक दृष्टि से कौड़ी के बराबर होगी। ऐसी स्थिति में व्यापारी को अपनी वस्तु घाटे में बेचनी पड़ेगी। गोपियां इसी सिद्धांत की ओर संकेत करके उद्धव से कहती हैं कि 'मुक्ति' का उचित बाजार ब्रजभूमि नहीं है यह तो मथुरा जैसे बड़े शहरों में ही बेची जा सकती है। माँग न होने के कारण ही उद्धव का अमूल्य जोग उनके लिए फाटक के समान है।[131]

व्यवसाय के संदर्भ में ही 'महाजनी व्यवस्था' की ओर संकेत किया गया है। सर्राफ का काम सोना-चाँदी के व्यापार के अतिरिक्त छोटे व्यापारी को ऋण पर रुपया देना था। हुंडियाँ देना और उनका भुगतान करना भी सर्राफ का काम है। छोटे कस्बों और गाँवों में लेन-देन का कार्य महाजन करता है वह अपने धन पर सख्ती से ब्याज वसूल करता है। ऋण शब्द की प्राचीनता से सिद्ध होता है कि व्यापार भी प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। वर्ग भेद समाज के जन्म से ही उससे जुड़ा हुआ है इसलिए निर्धन व्यक्ति को न चाहते हुए भी आवश्यकता पूर्ति के लिए महाजन का ऋणी बनना पड़ता है। महाजन की पूँजी को 'थाती' और ऋण चाहने वाले द्वारा जमा की गई वस्तु या धन या प्रभावशाली व्यक्ति से परिचय को, जमानत कहा जाता था—

"थाती प्रान तुम्हारी मो पै जनमत ही जो दीन्हो।"

"देहि जमानति लीन्ही।"[133]

जमानत न मिलने पर ऋण नहीं दिया जाता था। राजस्व वसूली के प्रसंग में जमानत न मिलने पर 'कर' की वसूली के रूप में ठाकुर द्वारा संपत्ति लूटे जाने का वर्णन किया जा चुका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है।

महाजन द्वारा दिए गए मूल धन पर ब्याज भी वसूल किया जाता था। अष्टछाप में ब्याज की दर का उल्लेख नहीं किया गया है। परंतु ब्याज वसूलने का वर्णन किया है—

"सूर मूर अक्रूर गये लै ब्याज निवेरत ऊधौ।"[134]

ब्याज मूल से पहले वसूला जाता है और उसे न चुका पाने की स्थिति में व्यक्ति को ऋण दास बनना पड़ता था। कृष्ण उद्धव से अपनी इसी स्थिति की चर्चा करते हुए कहते हैं—

"कैसे हूँ कर उरिन की जै गोपिकानि सौं मोहि,
सोई तुम उपदेसियों जेहिलहैं पद निर्वान।
जौ न अंगीकृत करै वै होइहो रिनदास।
सूर गाई चराइहौं मैं बहुरि बसि ब्रजबास।"[135]

वाणिज्य तथा व्यापार के इस विश्लेषण से तत्कालीन व्यवसायों तथा व्यापार की पद्धतियों का परिचय मिल जाता है। उल्लेखनीय बात यही है कि आदान-प्रदान की व्यवस्था को ही कृष्ण द्वारा मान्यता दी गई। दान लीला प्रसंग में यह तथ्य उजागर हुआ है। नगरों में अवश्य बड़ी मात्रा में रुपए-पैसे, बहुमूल्य मणियों का प्रयोग होता था, गाँवों में वस्तुओं का ही आदान-प्रदान लोकप्रिय था। इस विवरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि ग्राम्य परिवेश के प्रति जागरूक है।

समाजोपयोगी अर्थव्यवसाय

उपर्युक्त प्रमुख व्यवसायों के अतिरिक्त कुछ गौण व्यवसाय भी लोक में प्रचलित थे जिनका प्रतिनिधित्व अष्टछाप काव्य में हुआ है। श्रीकृष्ण के विवाह वर्णन में स्त्रियों द्वारा विविध वेश बनाकर कृष्ण को देखने की लालसा अभिव्यक्त की गई है। इसी के माध्यम से समाज में प्रचलित अन्य व्यवसायों का उल्लेख किया गया है जिनके द्वारा साधारण वर्ग अपनी जीविका का निर्वाह करता था—

"फूल गूंथ माला लै मालिन है जाऊँ
नंदनंदन प्यारे कौ बीरा करि लेउँ
चौलिनि है जाऊँ निरखि नैननि सुख देउँ
वृंदावन चंद को मैं भूषन गढ़ि लेउँ
है सुनारि जाउँ निरखि नैनानि सुख देउँ।
अपने गोपाल के मैं बागे रचि लेउँ
दरजनि है जाउँ निरखि नैननि सुख देउँ।
चंदन अरगजा सूर केसरि धरि लेउँ।
गंधिनि खै जाउँ निरखि नैननि सुख देउँ।"[136]

इस प्रकार मालिन, चौलनि, सुनारि, दरजिन, गंधिनी द्वारा विभिन्न व्यवसायों का वर्णन हुआ है। कृष्ण जन्मोत्सव पर ढाढ़ी-ढाढ़िन द्वारा बधाई गाना, नाइन का महावर लगाना, बढ़ई द्वारा पालना बनाकर लाना भी व्यवसाय की श्रेणी में आता है। फल-तरकारी बेचने वाली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाइन, बजाज और जौहरी का उल्लेख भी ब्रज समाज में प्रचलित व्यवसायों की ओर संकेत करता है। व्याध और कसाई के व्यवसायों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, अप्रत्यक्ष रूप से उपमान द्वारा या कथा प्रसंगों द्वारा संकेत किया गया है। इनके अतिरिक्त चित्रकार, मूर्तिकार, वास्तुकार भी अपनी कला के आधार पर जीविकोपार्जन करते थे परंतु उन्हें हम कलाकार ही मानना उचित समझते हैं क्योंकि कला मध्यकाल तक व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुई थी। सामाजिक दृष्टि से यह सभी व्यवसाय समाज के उपयोगी अंग हैं परंतु आर्थिक भूमिका में आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने वाले प्रमुख व्यवसायों को ही सम्मिलित किया गया है। गौण व्यवसाय जीविका के साधन और संस्कृति के वाहक हैं इसलिए इनका उल्लेख सामाजिक तथा कलात्मक पक्ष के अंतर्गत होगा। व्यापार करना या अधिकाधिक लाभ उठाना गौण व्यवसायों का लक्ष्य नहीं रहा है। उपर्युक्त कारण से तथा ग्रंथ विस्तार के भय से इनका उल्लेख मात्र यहाँ किया जा रहा है।

इस प्रकार ब्रज भूमि की सीमित क्षेत्र में वाणिज्य-व्यवसाय के जितने रूप प्रचलित थे उन सबका उल्लेख अष्टछाप कवियों ने अपने काव्य में किया है। ब्रज की लोक-संस्कृति में पशुपालन प्रमुख व्यवसाय था इसलिए सभी कवियों ने उन्मुक्त भाव से इसका वर्णन किया है। कृष्ण कथा भी ब्रज की आभीर संस्कृति की गोद में पल्लवित होती है इसलिए कृष्ण के मथुरा गमन तक के प्रसंगों में लोक संस्कृति की गूँज स्पष्ट सुनाई पड़ती है। दान लीला जैसे प्रसंग एक साथ कई उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। मध्यकालीन राजस्व नीति, मध्यकालीन काव्य के संदर्भ में कृष्ण और गोपियों की नोक-झोंक तथा पुष्टिमार्ग निरूपण में भक्त और भगवान के पक्ष को इसी प्रसंग के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। पशुपालन से संबंधित व्यवसाय दूध, दही, मक्खन, घी आदि बेचना भी विशदता से चित्रित किए गए हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य जो इस प्रसंग में उभरकर सामने आता है, वह है तत्कालीन समर्थ और आत्मविश्वास से भरपूर पुरुष की सहयोगी नारी का चित्रण। गोपियाँ कोमलांगी नहीं हैं वरन् वास्तविकता का सामना करने वाली साहसी नारियाँ हैं। अपने व्यवसाय के नियमों से परिचित हैं और सहज ही समर्पण करने वाली भी स्त्रियाँ नहीं हैं। मध्यकालीन समाज में जब विधर्मियों से अपनी स्त्रियों को बचाने के लिए पर्दा प्रथा का प्रचलन उच्च कहे जाने वाले समाज में हो रहा था, तब साहस के साथ अन्याय या अधर्म के सामने सिर न झुकाने वाली, राजा के मित्र उद्धव को भी बिना लाग-लपेट के सच बात कहने वाली नारियाँ वास्तव में वंदनीय हैं। लोक संस्कृति का यह उज्जवल पक्ष अष्टछाप के प्रत्येक कवि के काव्य में मुखर हुआ है।

कृषि भी ब्रज की आर्थिक समृद्धि में सहायिका है। उपजाऊ प्रदेश होने के कारण ही इसे एक व्यवसाय का रूप मिल चुका था। कृषि व्यवस्था के माध्यम से तत्कालीन लगान व्यवस्था, जमींदारी प्रथा और सामान्य कृषक के उत्पीड़न का चित्र खींचा गया है। सूरदास को छोड़कर अन्य किसी कवि ने इस ओर अपनी रुचि प्रदर्शित नहीं की है फिर भी सूर साहित्य से मध्यकालीन कृषि व्यवस्था का संपूर्ण विवरण मिल जाता है। लगान के संबंध में ठेठ फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है जो इस बात का प्रमाण है कि उस समय तक फारसी की यह शब्दावली ब्रज लोक-संस्कृति का अंग बन चुकी थी। ग्रामीण परिवेश में अन्य सामान्य व्यवसायों का उल्लेख भी अष्टछाप में हुआ है। नागरिक सभ्यता में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पलने वाले व्यवसायों उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से ही किया गया है। इसका कारण है कि अष्टछाप कवियों की साधना भूमि ब्रज में गाँवों की ही प्रधानता थी। उनके काव्य का केंद्र भी गोकुल वृंदावन था। इसलिए वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य और वहाँ के निवासियों के निश्छल भाव प्रकाशन में ही अष्टछापी कवि तन्मय रहे हैं। अपने ग्राम्य परिवेश के प्रति वे पूर्ण जागरूक रहे हैं। ग्राम्य संस्कृति का प्रत्येक पक्ष उनके काव्य में मिल जाता है। नागरिक संस्कृति में उभरने वाले स्थापत्य, वस्तु एवं चित्र को व्यवसाय का रूप देकर अपने काव्य में चित्रित नहीं किया है वरन् ललित कलाओं के रूप में ही स्वीकार किया है। इस वर्णन में मुगलकालीन सभ्यता और संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। संक्षेप में ब्रज प्रदेश की अर्थव्यवस्था का संपूर्ण चित्रण अष्टछाप काव्य में उपलब्ध हो जाता है। मुगलकालीन अर्थव्यवस्था और उसके दमन चक्र में पिसती हुई साधारण प्रजा का चित्रण भी अप्रत्यक्ष रूप से अष्टछाप काव्य में हुआ है। किसानों की कठिनाइयों के वर्णन द्वारा भी अपनी सामाजिक जागरूकता और साहित्यकार के धर्म का पालन इन कवियों ने किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप की लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति का राजनीतिक पक्ष

कोई भी संस्कृति राजनीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। संस्कृति समाज का अखंड धर्म है और राजनैतिक व्यवस्था, सामाजिक रीति-रिवाज, धर्म, दर्शन, कला सभी संस्कृति के अंग हैं। यह सभी परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। एक-दूसरे से संबद्ध हैं। इस दृष्टि से राजनैतिक व्यवस्था और परिस्थिति ने ब्रज-संस्कृति के विकास में अहम् भूमिका निभाई है। प्राचीन काल से ही ब्रज राजनीति के केंद्र में रहा है। ब्रज का पुरातन नाम शूरसेन था जिसकी गणना प्राचीन भारत के सोलह जनपदों में की जाती थी। बाल्मीकि रामायण में इस जनपद के शासक असुरराज मधु तथा उनकी राजधानी मधुबन का उल्लेख है। श्रीराम के भाई शत्रुघ्न ने मधु के पुत्र लवण को परास्त किया और मधुबन के एक भाग को साफ कराकर वहां मथुरा नगर की स्थापना की।[1] कालांतर में इसी मथुरा नगरी में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ जिनके कारण मथुरा ही नहीं, ब्रज के वन्य प्रदेश, गोकुल तथा वृंदावन भी इतिहास में प्रसिद्ध हो गए। इन शासकों के शासन काल में मथुरा का महत्व इतना बढ़ गया कि इस जनपद का नाम ही 'मथुरा राज्य' हो गया। महमूद गजनवी द्वारा मथुरा के शासक कुलचंद्र की पराजय होने के उपरांत 'मथुरा राज्य' का गौरव और उसका राजनैतिक महत्व समाप्त-सा हो गया। मुहम्मद गौरी के इस भू-भाग पर अधिकार करते ही यह गौरव एकदम नष्ट हो गया। इस समय वैष्णव धर्माचार्यों एवं संत-महात्माओं ने मथुरामंडल के जिस रूप का निर्माण किया, उसे 'ब्रज', 'ब्रजमंडल' अथवा 'ब्रज प्रदेश' कहा जाने लगा।

आचार्य वल्लभ तथा अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लोककल्याणकारी रूप प्रदान किया। इस्लाम के समर्थक कट्टर सुल्तानों एवं उनके अत्याचारों से पीड़ित साधारण मनुष्य के लिए कृष्ण एकमात्र संबल बने। अष्टछाप काव्य में अपने समय की राजनीतिक स्थिति का पूर्ण चित्रण किया गया है। अष्टछाप का समय लगभग सन् 1468 ई० से सन् 1585 ई० तक का माना गया है। ब्रजमंडल इस समय दिल्ली की मुस्लिम राजसत्ता के आधीन था। दिल्ली, आगरा राजनैतिक परिवर्तनों के केंद्र रहे परंतु उनका प्रभाव ब्रजमंडल पर पडता रहा। बहलोल लोदी से लेकर मुगल सम्राट अकबर तक विभिन्न सुलतानों ने ब्रजमंडल पर राज्य किया। इनमें अधिकांश शासक क्रूर, धर्मांध तथा पक्षपातपूर्ण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे। सुल्तानों की राजधानी दिल्ली ब्रजप्रदेश की परंपरागत सीमाओं के उत्तरी भाग से संलग्न थी इसलिए उनके शासनकाल में मथुरा तथा ब्रज के मंदिरों का ध्वंस किया गया। अराजकता और अव्यवस्था के कारण शासित प्रजा कष्टों व अत्याचारों को झेल रही थी। श्री वल्लभाचार्य ने इस राजनीतिक उत्पीड़न तथा तीर्थस्थानों, देवालयों की दुर्दशा का चित्र 'कृष्णाश्रय ग्रंथ' में खींचा है—

"म्लेच्दाक्रन्तेषु देशेषु पापैकनिलयेशु च,
सत्पीड़ाव्यग्रलोकेषु, कृष्ण एव गतिर्मम।
गंगादितीर्थ वर्येषु, दुष्टैरेवावृते ढिवह
तिरोहिताधिदेवणु, कृष्ण एवं गतिर्मय।
अपरिज्ञननष्टेषु मंत्रेणवव्रत योगिषु।
तिरोहितार्थवेदेषु कृष्ण एवं गतिर्मम।"[2]

ऐसी विषम परिस्थिति में भी श्री वल्लभाचार्य ने गिरिराज की पहाड़ी पर छोटा-सा कच्चा मंदिर बनवाकर, माधवेन्द्रपुरी के गोपाल को 'श्रीनाथ' अथवा 'गोवर्धननाथ', का नाम देकर प्रतिष्ठित किया। मंदिर बनवाया भी गया परंतु सिंकदर लोदी के आदेश से ध्वस्त कर दिया गया। श्रीनाथ गोपाल को गौड़ीय पुजारी 'टोड का घना' नामक बीहड़ वन में ले गए। सिकंदर लोदी की मृत्यु के बाद सं. 1576 में मंदिर पूरी तरह तैयार हुआ। सुल्तानी शासन में मंदिर स्थापना करना एक प्रकार की राजनीतिक धार्मिक विजय थी। अकबर के समय में राजनैतिक शांति स्थापित हुई और हिंदू प्रजा को कष्ट देने का सिलसिला समाप्त हुआ।

ब्रजलोक की भौगोलिक सीमा

ब्रजमंडल की भौगोलिक सीमा में बारह वन (मधुताल, कुमुद, बहुला, काम, खिदिर, वृन्दा, मद्र, भांडीर, बेल, लोह और महा) तथा 24 उपवन (गोकुल, गोवर्धन, बरसाना, नंदगांव, संकेत, परममन्द्र, अरींग, शेषशायी, माट, ऊँचागाँव, खेलवन, श्रीकुण्ड, गन्धर्ववन, परसौली, बिलछूं, बद्दवन, आदिबद्री, करहला, अजनोख, विसायोवन, कोकिला वन, दधिवन, कोटवन, और रावल वन)[4] माने गए हैं। वर्तमान काल में बहुत से वन काट डाले गए हैं परंतु उन नामों के गांव उनकी जगह बस गए हैं। अष्टछाप के समय ब्रजमंडल अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विख्यात था। सभी कवियों ने मुक्त कंठ से ब्रज प्रदेश की सुषमा का वर्णन किया है। अष्टछाप में ब्रज-महात्म्य के अंतर्गत ब्रज के पशु-पक्षी, लता-वृक्ष-कुंजों आदि का वर्णन किया गया है—

"शोभा माई अब देखन की बहार
गोवर्धन पर्वत के ऊपर मोरन की पतवार"[5]
"नन्हीं नन्हीं बुंदन बरषन लागे ब्रजमंडल में छाए।
नंददास प्रभुसंग सखा लिए कुंजनि मुरलि बजाए।"[6]
"ब्रज पर नीकी आजु घटा।
गरजत गगन मृदंग बजावत नाचत मोर नटा।"[7]
श्रवन देत गावत चातक पिक प्रगट्यो मदन भटा।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूरदास ने ब्रज के बाहर वनों में वर्तमान काल के नंदगांव, संकेत और माट उपवनों को परिगणित किया है। संभव है सूर के समय में 84 कोस का ब्रजमंडल इन्हीं बारह वनों से युक्त ब्रजमंडल रहा हो।[8]

इसी ब्रजमंडल की राजनीतिक उथलपुथल तथा नीति-सिद्वान्त इस अध्याय के विवेच्य विषय हैं। रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि तुलसी द्वारा जिस प्रकार राजा, राजधर्म, राज्यों का निरूपण किया गया है वैसा अष्टछापी कवियों में नहीं मिलता है। इसका कारण मर्यादा के बंधन से परे इन कवियों का शुद्ध भक्ति रस व पुष्टिमार्ग में निमग्न रहना है। फिर भी एक सतर्क साहित्यकार के उत्तरदायित्व को निभाते हुए राजनीति से संबंधित विषयों की ओर संकेत किया है विशेष रूप से सूरदास ने। अष्टछाप में कृष्ण के बालरूप को अधिक मान्यता प्राप्त हुई है तथापि अन्य रूपों की प्रतिष्ठा भी की गई है। बालरूप के अतिरिक्त कृष्ण के कर्मयोगी रूप, परब्रह्म रूप तथा कूटनीतिज्ञ रूपों की विस्तार से चर्चा हुई है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो कृष्ण का समस्त जीवन राजनीति के दांव-पेचों से घिरा हुआ है। कंस-वध के उपरान्त कृष्ण का राजनीति से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित हुआ और वे मथुरा की राजनीति में सक्रिय हुए। यह दूसरी बात है कि अष्टछाप कवियों की रुचि इस रूप के वर्णन में नहीं रही।

राजा तथा राजधर्म

अष्टछाप में कंस के अत्याचारों के माध्यम से मुस्लिम शासकों के अत्याचार का वर्णन किया गया है। दुर्योधन आदि की कथा में भी इसी भाव को अभिव्यक्त किया गया है। राजा या शासन के लिए 'नृपति', 'नृप', 'लोकपति', 'नृपराज', 'महपति', 'छात्रपति' 'युगपाल', 'महिपाल', 'भूपति', 'भूप', 'मुवाल', 'महाराज', 'नरपति' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है—

"भए 'छत्रपति' मधुबनवासी,"[9]
"नृपविदर्भ की कन्या रूक्मिनि अनुचर गनियै"[10]
नारद कह्यौ समुझाई कंस नृपराज कौं[11]
काकौ भरोसो करत भुपति बैरु करत किहि मांगै।[12]
वा भूपति के भवन कोउ दीप न बारत सांझ।"[13]

इनके अतिरिक्त समसामयिक शब्द 'राव', 'राइ', 'राउ', 'राणा', 'राजिक', 'ठाकुर', 'सिरमौर', 'सिरताज', 'सम्राट', 'साहिब', 'सुलतान', 'बादशाह' आदि शब्दों का प्रयोग राजाओं के लिए किया है—

"ब्रज में अति आनंद बढ्यौ है नंद राइ के द्वार।"[14]
"मोहि प्रतीति कंस की नाहीं सोम बंस को राउ"[15]
"तेज प्रताप राई केसों के तीनि लोक पर गाजैं[16]

राजा के पर्यायवाची इन शब्दों में छोटे, बड़े अथवा राजाओं के पदानुक्रमण का आभास नहीं होता है। 'छत्रपति', 'नरपति' जैसे प्रथम. वर्ग में शब्द महाराज दशरथ, रावण, कंस आदि के लिए भी प्रयुक्त हुए हैं और राजनैतिक दृष्टि से उनसे कमजोर नंद तथा वृषभानु जैसे राजाओं के लिए भी। [illegible] की संज्ञा प्रायः छोटे राजाओं या सामन्तों [illegible] दी जाती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थी।[17] तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में 'राय' शब्द का प्रयोग शक्तिशाली हिंदू राजाओं के लिए किया जाता था।[18] ब्रज मंडल का अधिपति होने के कारण नंद के लिए अष्टछाप में 'ब्रजराई' तथा 'ब्रजराज' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

"ब्रजजन देत असीस हैं जियो ढोटा ब्रजराज[19]
महाभागि 'ब्रजराज' तुम्हारै"[20]

कुल और वंश के आधार पर भी राजाओं को संबोधित किया गया है

"जनम लियौ जादौकुल राइ।"[21]

एक पद में सूरदास ने अपने लिए सुल्तान तथा अन्य राजाओं के लिए पतित शब्द का प्रयोग किया है।[22] इससे स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था में सुल्तान राजाओं के ऊपर होता था। मुस्लिम शासक अपने लिए सुल्तान तथा हिंदू शासकों के लिए 'राज' या उसके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करवाते थे।

विनम्रता अथवा दैन्य प्रदर्शन के लिए कवियों ने अपने लिए राजा शब्द का प्रयोग किया है—

"हारि हौं सब पतितन कौ राजा।"[23]

राजधर्म का पालन ही राजाओं को श्रेष्ठ तथा निम्न राजाओं के रूप में प्रतिष्ठित करता है। राजधर्म का आधार राजा का प्रजा के साथ संबंध है। भारत में प्राचीन काल से ही राजतंत्र संबंध का पालन किया गया है। अतः प्रत्येक युग तथा उसके साहित्य में राजा और प्रजा के संबंधों की व्याख्या बताई गई है। हर युग में प्रजा राजा से सुख-शांति की अपेक्षा करती आई है। इसलिए प्रजा वत्सलता राजा का सर्वाधिक प्रमुख कर्तव्य बतलाया गया है। प्रजा को दुष्टों से बचाना भी राजा का कर्त्तव्य है। दुष्टों के उपद्रव का प्रमुख कारण शक्ति का असंतुलित होना तथा समाज में उनकी संख्या सज्जन पुरुषों की अपेक्षा दस गुनी होना है। कुशल राजा अपने कौशल व चातुर्य से देश के विभिन्न भागों में राजनैतिक संतुलन स्थापित करते हैं जिससे कोई भी प्रांत राजा के प्रति विद्रोह न कर सके, और समाज के विभिन्न वर्गों को अपने-अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए प्रेरित करते है। जिससे सामाजिक मर्यादा अक्षुण्ण रह सके। कृष्ण ऐसे ही कुशल राजा के रूप में वर्णित किए गए हैं। बचपन से ही वे अप्रत्यक्ष रूप से अपने मित्रों तथा बांधवों को आसुरी-अत्याचारों से बचाते हैं तथा राजनीति में सक्रिय होने के पश्चात् राजनैतिक संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं। 'सूरसागर' के कृष्ण-दुर्योधन संवाद, पांडवों के राज्याभिषेक तथा जरासंध-वध के प्रसंगों में कृष्ण के इसी रूप में दर्शन होते हैं। अष्टछाप में कृष्ण के व्यक्तित्व में परब्रह्म की विशेषताओं का सन्निवेश भी कर दिया है। वे वास्तव में भक्तों पर कृपा करने के लिए तथा पृथ्वी से अधर्म तथा दुख का विनाश करने के लिए मानव शरीर धारण करते हैं। गीता में "यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" कहकर कृष्ण ने जो घोषणा की थी, अष्टछाप कवियों ने उसी का निरूपण अपने कृष्ण के चरित्र में किया है। कृष्ण का प्रधान लक्ष्य अधर्म का नाश और धर्म की संस्थापना है।

"गोकुल प्रकट भए हरि आई।
असुर उघाटन, असुर सहारन, अन्तरजामी त्रिभुवन सइ।"[24]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

इस प्रकार अष्टछाप के अनुसार श्रीकृष्ण धर्म तथा नीति के अवतार थे। किंतु उन्होंने

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोनों का अनुशीलन देश, काल एवं सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल किया था। कृष्ण के अतिरिक्त श्रीराम, राजा परीक्षित, युधिष्ठिर आदि को श्रेष्ठ राजाओं के रूप में वर्णित किया गया है। दुष्ट राजाओं के रूप में कंस, रावण, हिरण्यकश्यप, जरासंध आदि का वर्णन किया गया है।

भारतीय जनमानस राजा को ईश्वर का अवतार मानता है इसलिए उसकी शासन-व्यवस्था तथा नीति-सिद्धांतों में हस्तक्षेप न करता हुआ अपने लिए उसकी कृपा की आकांक्षा करता है। अपने राजा से उसकी अपेक्षा बस इतनी ही रहती है कि उसका जीवन बिना किसी विघ्न-बाधा के निर्बाध रूप से व्यतीत हो जाएं। लोकमानस की इस प्रवृत्ति का परिचय अष्टछाप में स्पष्ट रूप से मिलता है। सूर की गोपियां उद्धव से राजनीति का परिचय इन शब्दों में देती हैं।

"राजधर्म सुनि इहै सूर जिहिं प्रजा न जाहिं सताए।"[25]

भरत को राजनीति की शिक्षा देते हुए राम स्पष्ट रूप से प्रजा का कल्याण तथा गौ-विप्र का प्रतिपालन राजा का धर्म घोषित करते हैं—

"बंधु करियौ राज संभारे।
राजनीति अरू गुरु की सेवा, गाइ विप्र प्रतिपारे।
गुरु वशिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं परजा हेतु बिचारे।"[26]

नंददास ने राजा के कर्त्तव्यों पर विचार करते हुए धार्मिक समन्वय पर अधिक बल दिया है। यह संभवतः उस युग की ज्वलंत समस्या थी। विदेशी धर्म के अतिरिक्त हिंदू धर्म में ही उस समय अनेकों धर्म व संप्रदाय प्रचलित थे। भक्ति के क्षेत्र में भी विभिन्न मतों का प्रचलन था। प्रायः इन सबमें वाद-विवाद अथवा परस्पर दोषारोपण होता रहता होगा इसलिए नंददास ने प्रजा को श्रद्धानुसार अपने धर्मपालन की सुविधा राजा से चाही होगी—

"धर्मधीर तहं कर बड़ राजा प्रगट्यौ धर्मधरन के काजा।"[27]

राजा को 'देवी अवतार' मानने के कारण ही प्रजा उसके अत्याचारों को भी अपना भाग्य समझ कर सहन करती थी। उसमें कहीं न कहीं यह आस्था बनी रहती थी। किसी दूसरे के अत्याचार से रक्षा केवल उसका राजा ही कर सकता है। प्रजा के इस अंधविश्वास की परछाई कृष्ण-गोपी के उस संवाद में मिलती है जहाँ कंस के अत्याचारों से परिचित होने पर भी गोपी, कृष्ण के दान मांगने की आदत न छोड़ने पर कंस से फरियाद करने की बात कहती है—

"बरबस दान दही कौ मांगत वृंदावन की ठौर,
कहि हो जाय 'रावजू' के आगे करि है और सों और।"[28]

इसी प्रसंग में कृष्ण के माध्यम से ऐसे उद्दंड व अत्याचारी राज्य कर्मचारी का चरित्रांकन हुआ है जो शासक से अपने को ज्यादा सबल मानता है और साधारण जन की राजा से गुहार करने की बात पर कोई ध्यान नहीं देता। सुल्तानों के कारिंदे या सिपहसालार इसी प्रकार का अत्याचार साधारण प्रजा पर करते थे और ढीठ होकर स्वयं उनको (कंस सुल्तान) फरियाद करने को कहते थे जिससे सुल्तान उन्हें बुलाकर दंड दे। शाही सैनिकों के ऐसे अत्याचार दैनिक जीवन के अंग थे। कृष्ण अपने इस आचरण द्वारा प्रजा में अत्याचारी के प्रति प्रतिवाद-क्षमता उत्पन्न करना चाहते थे। संभवतः इसीलिए शिक्षा देने के लिए उन्होंने इस क्रूर राजन्यवर्ग का अनुसरण किया है। लोककथाओं और विश्वासों के अनुसार कृष्ण कोई भी कार्य उद्देश्य रहित होकर नहीं करते हैं। उनके संपर्क में आने के बाद ही ब्रजमंडल के निवासियों में साहस का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संचार होता है और उनके नेतृत्व में युवा गोप कंस के विरुद्ध एक होते हैं।

अन्याय व अत्याचार का विरोध करना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। उसे दबाया अवश्य जा सकता है। परंतु निर्मूल नहीं किया जा सकता। कंस-वध में यह प्रवृत्ति उभरकर सामने आ जाती है। वरना साधारण से गोपाल, केवल शारीरिक शक्ति के बल पर चक्रवर्ती राजा कंस का नाश नहीं कर सकते थे। कंस के अनुचर अवश्य मन ही मन उसके विरुद्ध होंगे, कृष्ण को उनसे अप्रत्यक्ष सहायता मिलती होगी तभी वे अपने उद्देश्य में सफल हो सके। प्रजा के इस साहस का एक और प्रमाण कृष्ण के प्रति गोपियों की उक्ति में भी मिलता है—

"सिर पर सौति हमारे कुबिजा चाम के दाम चलावै।"[29]

जहां चाम के दाम के माध्यम से एक ओर तो राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया है। दूसरी ओर इतिहास प्रसिद्ध उस घटना की जानकारी भी दे दी है जिसके अनुसार हुमायूं की जान बचाने पर आधे दिन की बादशाहत पाने पर भिश्ती द्वारा चमड़े के सिक्के चलाए गए थे।[30] चाम के दाम का लक्ष्यार्थ व्यभिचार की कमाई भी है। राजनैतिक क्षेत्रों में व्याप्त इस अनीति की ओर संकेत करना भी प्रजा की शक्ति का परिचायक है।

'अष्टछाप' के समय में अधिकतर राजा अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन थे इसलिए प्रजा को अनेकों कष्ट उठाने पड़ रहे थे। आदर्श राजाओं की चर्चा करके कवियों ने अपने युग में भी वैसे राजाओं की कामना प्रगट की थी। विद्यमान शासकों के प्रति अपनी खिन्नता का उल्लेख किया है—

"जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौ राजा राम कहैं।"[31]
"जिनको मुख देखत दुख लागे, तिनसों राजा राम कहे।"[32]
"जाको मुख देखत उपजै ताकों करनी परी प्रनाम।"[33]

इन तीनों उद्देश्यों में एक ही बात को शब्दों में हेर-फेर से अभिव्यक्त किया गया है और वह यह है कि उस समय ऐसा कोई राजा नहीं था जिसका मुख देखकर प्रसन्नता होती हो। जनसाधारण की यह विवशता ही थी कि ऐसे राजाओं को प्रणाम करना पड़ रहा था। इस प्रकार अष्टछाप में श्रीकृष्ण के राजोचित स्वरूप को प्रधानता न देते हुए भी राजा के वैयक्तिक गुणों और राजधर्म की अप्रत्यक्ष व्याख्या की गई है।

राजन्य वर्ग तथा राजकर्मचारी

राज्य के जिस नगर में राजा रहता है उसे 'रजधानी' या 'राजधानी' कहा गया है। ब्रजमंडल का केंद्र मथुरा रहा है इसलिए उसी का वर्णन राजधानी के रूप में किया गया है। कंस मथुरा में रहकर ही शूरसेन प्रदेश को उत्पीड़ित और आतंकित करता था। भगवत् के दशम स्कंध के इकतालीसवें अध्याय में मथुरा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मथुरा के प्रवेशद्वार स्फटिक पत्थर के थे तथा उस पर सोने के विशाल तोरण और किवाड़ थे। नगर के चारों ओर की दीवार तांबे और पीतल से मढ़ी हुई थी तथा उसके नीचे की खाई को पार करना कठिन था। उसमें अनेक बाग-बगीचे शोभायमान थे तथा वहां के सुवर्णनिर्मित चौराहों, महलों, सभाभवनों एवं पंक्तिबद्ध सुंदर हवेलियों के छज्जे और फर्श-विविध रत्नों के प्रकाश से जगमगा रहे थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप में मथुरा के सौंदर्य का अधिक वर्णन नहीं मिलता फिर भी कंस के वैभव का निरूपण करने के लिए मथुरा का वर्णन किया गया। मथुरा आना कृष्ण के जीवन की भी क्रांतिकारी घटना है और इतिहास की भी। इसलिए सूरदास और परमानंददास ने विशेष रूप से मथुरा प्रवेश पर पदों की रचना की है। मथुरा के संदर्भ में कृष्ण के जीवन से संबंधित घटनाओं का वर्णन अधिक है, उसके सौंदर्य का कम। परमानंद ने मथुरा का वर्णन इस प्रकार किया है—

"मथुरा देखिये नंदनंदन।
भले आवास रचे कंचन के कैसो कंस नंदन।
बैठे मोर झरोखा बोलत मारग सिंचित चंदन।
भले लोक सनमुख आवत है चरन कमल रज बंदन।"[34]

अष्टछाप में कृष्ण के नित्यलीला के केंद्र वृंदावन को भी 'रजधानी' कहा गया है। पुष्टिमार्ग में वृंदावन का महत्व अनेक पदों में वर्णित किया गया है।"[35]

राजा के निवास को महल कहा जाता है जो राजधानी के केंद्र में होता है। सूरसागर में 'सुफलक सुत' के महल में बुलाए जाने का उल्लेख है—

"सुनत बुलाई महल ही लीन्हौ सुफलक सुत गए धाइई।"[36].

महल में राजा के अतिरिक्त उसकी पत्नी भी निवास करती है जिसके लिए 'रानी' शब्द का प्रयोग किया गया है।

'काऊ हुती कंस की दासी कृपा करी भइ रानी।"[37]
"तब 'रानी' उठि दौरि पौरि ने मोहन लाई।"[38]

तत्कालीन राजाओं की अनेक रानियों का वर्णन अष्टछाप में मिलता है। कंस, वासुदेव की एक से अधिक रानियों के उल्लेख हैं। श्रीकृष्ण की आठ पटरानियां कही गई हैं। रानियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध रानी को पटरानी की संज्ञा दी गई है—

"कृष्णचंद्र को बेगि बुलावो संग सकल पटरानि।"[39]

रानियों के रहने का निवासस्थान 'अंतःपुर' कहलाता था[40] और उनका विलासगृह रत्नमहल कहलाता था। कुंभनदास ने रंगमहल शब्द का प्रयोग किया है—

"रंगमहल में रतन सिंघासन, राधारवन पियारौ"[41]

राजा का मंत्रणाकक्ष 'सभा', 'राजसभा' और दरबार कहलाता था। यहां बैठकर शासन-संबंधी समस्याओं का समाधान किया जाता था। दरबार शब्द तत्कालीन सुलतानी शासन के प्रभाव स्वरूप प्रयुक्त हुआ है ठीक वैसे ही जैसे राजा या ईश्वर के लिए 'साहिब', सुलतान आदि शब्द।[42] नंद के दरबार का चित्र प्रायः सभी प्रमुख कवियों ने खींचा है—

"राग रंग रंगि मंगि रह्यौ नंदराइ दरबार।"[43]
"जहां राखै तहां रहूं चरन तर परयौ रहूं दरबार।"[44]
"गृह गृह तें गोपनि सबै आए राइ दरबार।"[45]

छत्र, चामर और पताका राजाओं के लिए आवश्यक माने गए हैं। अष्टछाप में इन सबका वर्णन है। सभा में राजा के बैठने के स्थान को सिंहासन, राजसिंहासन और कनक या रतनसिंहासन कहा गया है।

"उग्रसेन बैठारि सिंहासन आपु जुहार कियौ,"[46]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"बैठे राम राज सिंहासन जग में फिरी दुहाई।"[47]
"रंग महल में रतनसिंहासन राधारवन पियारौ।"[48]

सिंहासन के ऊपर छत्र लगा रहता है जिसके भीतरी भाग को आत-पत्र कहते हैं।

"सीतल आतपत्र की छाया कर अंबुज सुखकारी जू।"[49]
"जाके छत्र अकास सिंहासन वसुधा अनुचर सहस अठासी।"[50]

सिंहासन पर बैठे राजा के ऊपर चंवर डुलाए जाने का उल्लेख भी किया गया है।

"उग्रसेन के राज देउं कर चंवर ढुराऊं"[51]
"चारु चक्र मनि खचित मनोहर चंचल चमर पताका।"[52]

पताका का स्थान राजभवन के ऊपर था। इसके अतिरिक्त राजा की यात्रा अथवा युद्धस्थल में भी पताका फहराई जाती थी।[53] इनके अतिरिक्त राजा का यशगान करने वाले बंदी, मागध, सूत आदि का उल्लेख भी किया गया। राजमहल में निसान-नौबत आदि भी बजाई जाती थी। इनका परिचय वाद्ययंत्रों के संदर्भ में दिया जाएगा।

"छरीदास बैराग विनोदी झिरकि बाहिरै कीन्है।"[54]

राजा के पास जाने के लिए प्रतिहार को संतुष्ट करना आवश्यक था। उसके अधिकार भी असीमित थे। राजा के निजी सेवक को 'खवास' कहा जाता था। कृष्ण को बुलाने के लिए अक्रूर को नियुक्त करने पर कंस खवास से ही उनके लिए 'सिरोपांव' मंगाता है।[55]

एक स्थान पर शंकर को परमेश्वर के खवास के रूप में वर्णित किया गया है। राजमहल की सेविकाओं के लिए चेरी, दासी और लौंडी शब्दों का प्रयोग किया है। दहेज के रूप में भी दासियों को देने का उल्लेख किया गया है—

"जाके कमला दासी पाय पलोटै"[56]
"इक तौ सहजहि हुती नृसंस पुनि चेरी करि प्रेरी कंस।"[57]

एक स्थान से दूसरे स्थान तक राजा के संदेश या आज्ञा ले जाने वाले व्यक्ति को दूत कहा जाता था। दशरथ की मत्यु का संदेश दूत द्वारा ही भरत तक पहुंचाया जाता है। इसी प्रकार काली दह के फूल भेजने की आज्ञा भी दूत के द्वारा नंद तक पहुंचाई गई है।

"कंस बुलाइ दूत इक लीन्हौं।
कालीदह के फूल मंगाए पत्र लिखाइ ताहि कर लीन्हो।"[58]

कुंभनदास ने दूत पर 'बसीठ' शब्द का प्रयोग किया है और दूत-कार्य को बसीठी कहा है।

"अब ए नैनाई करत बसीठी"[59]

शासन-व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए कई राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है। इनका कार्य राजा को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करना है तथा उसे उचित-अनुचित का ज्ञान कराना है। मन्त्रणा देने के कारण ही इन्हें मंत्री कहा जाता हैं और इनके समूह को मंत्री परिषद् या मंत्रीमंडल। मंत्रियों द्वारा ही राजा को स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश होने से बचाया जा सकता है। मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रत्येक राजा स्वतंत्र-शक्तिशाली होते हुए भी, मंत्री-परिषद् की सलाह के बिना महत्वपूर्ण निर्णय नहीं ले सकता था। शासन प्रबंध में योग्य मंत्रियों द्वारा उचित मंत्रणा देने पर ही राज्य की समृद्धि निर्भर करती है। हिंदी साहित्य के वृहत्

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इतिहास में मंत्रियों की संख्या दस बतलाई गयी है।[60] कहीं-कहीं सैंतीस मंत्रियों का उल्लेख भी हुआ है।[61] अष्टछाप में मंत्री के कार्य तथा उनकी संख्या का स्पष्ट चित्रण नहीं किया गया है। सूरदास ने ही रूपक के रूप में मंत्री या वजीर का वर्णन राजा के सलाहकार के रूप में किया है। जिस राज्य का मंत्री अपने राजा को उचित सलाह नहीं दे पाता उस राज्य में अव्यवस्था का फैलना स्वाभाविक है—

"मंत्री ज्ञान न औसर पावै कहत बात सकुचातौ।"[62]

"मंत्री काम क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति।
दुविधा दुंद रहै निसी बास उपजावत विपरीति।"[63]

विदेशी संस्कृति के प्रमाणस्वरूप सूर ने वजीर या उजीर शब्द का प्रयोग भी किया है।

"पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ धर्म सुधन लुट्यौ।"[64]

मंत्री के पश्चात् दूसरा प्रमुख राजकर्मचारी 'दीवान' होता है। दीवान के अधिकार में राजस्व व मालगुजारी का विभाग होता है। सूर ने दीवान शब्द का प्रयोग कर्मचारी के रूप में करते हुए ध्रुव को राम का दीवान[65] कहा परंतु परमानंददास ने कृष्ण को ही ठाकुर और दीवान दोनों कहा है।

"सांचौ दिवान है री कमलनयन।
तू मेरौ ठाकुर जसुदानंदन कै तू है जगत जीवन।"[66]

कृष्ण कथा के संदर्भ में राजपुरोहित की गणना राजकर्मचारियों में नहीं की गई है। सूर ने अवश्य रामकथा के संदर्भ में इसका उल्लेख किया है।"[67]

अष्टछाप कवियों के समय तक मुगल शासन स्थापित हो चुका था और उसमें स्थिरता आ चुकी थी विशेष रूप से अकबर के समय तक। इसलिए मुगल शासन-व्यवस्था की छाप इनके साहित्य पर पड़नी स्वाभाविक ही थी। मुगल शासन में मनसबदारों का महत्वपूर्ण स्थान था। अकबर ने चंगेजखां के समय से चलती आ रही मनसबदारी प्रथा को नया रूप प्रदान किया। दस से लेकर पचास हजार तक विभिन्न मनसबों की श्रेणियां बनाई और वेतन के रूप में मनसबदारों को जागीर देने का नियम बनाया। भक्त कवियों ने इस ओर ज्यादा ध्यान दिया। सूर काव्य में भी इसका केवल संकेत मात्र किया गया है। मुगलकालीन कोतवाल का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है। कोतवाल प्रशासन व्यवस्था का एक अंग था। और उसका कार्य नगर में शांति और सुरक्षा स्थापित करना था। एक तरह से वह नगर का शासक ही होता था क्योंकि उसकी आज्ञा के बिना व्यापार या व्यवसाय नहीं हो सकता था। उस समय अधिकांश कोतवाल मुस्लिम धर्म को मानने वाले होते थे इसलिए हिंदू प्रजा को उनके अत्याचारों का सामना करना पड़ता था। अपने कर्त्तव्य से च्युत पक्षपात करने वाला कोतवाल प्रजा के रक्षक के स्थान पर भक्षक हो जाता था। सूर ने ऐसे दगाबाज कोतवाल का चित्रण किया है जो प्रजा का सर्वस्व लूट लेता है—

"दगाबाज 'कुतवाल' काम रिपु सरबस लूटि लयौ।"[68]

'कोतवाल' के अतिरिक्त 'नायब' का उल्लेख भी शक्तिशाली कर्मचारी के रूप में किया गया है। जो सीधे बादशाह के संपर्क में रहता था। अबुल फजल ने आइने अकबरी में वजीर को बादशाह का नायब कहा है। इसी भाव को सूर की मथुरा कैकेयी को भयभीत करते समय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यक्त करती है—

"भरतु बंदिगृह रही है, लक्ष्मणा राम के नब"[69]

न्याय-व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए 'काजी' की नियुक्ति की जाती थी। धार्मिक रूप से भी 'काजी' की बात प्रमाण मानी जाती थी। यह पंडितों की तरह फतवा देते थे और निकाह भी कराते थे। काजी इस्लाम धर्म के अनुसार न्याय करता था। वास्तव में काजी का उपयोग सुलतान व बादशाह अपनी बात मनवाने के लिए करते थे इसलिए साधारण प्रजा इन्हें राजा का जी-हुजूरी करने वाला मानती थी और निष्पक्ष न्याय की अपेक्षा नहीं रखती थी। सूर ने रूपक बांधते हुए आंखों को ऐसे 'काजी' के रूप में वर्णित किया है जो राजा रूपी कृष्ण की हां में हां मिलाती हैं—

"इन सों तुम परतीति बहावत ये हैं अपने काजी।
स्वारथ मानि लेत रति करि कै, बोलत हां जी हां जी।"[70]

'दंड विधान' के विषय में काजी के अधिकारों की चर्चा अष्टछाप में नहीं की गई है परंतु कुछ दंडों का उल्लेख अवश्य किया है। कृष्ण के माखन चुराने पर बांधे जाने का दंड विख्यात है। इसके अतिरिक्त कोई अंग काट देना, दंड वसूलना और फांसी या सूली देने का उल्लेख भी सूर काव्य में मिल जाता है—

"चोरी के फल तुमहिं दिखाऊं।
कंचन खंभ डोर कंचन की देखौ तुमहिं बंधाऊं।
खंडौ एक अंग कछु तुम्हरौ, चोरी नाउँ मिटाउँ।
जो चाहौ सोई सब लैहों यह कहि डांड मनाऊँ।"[71]
"बधिक न छोरत फांसी।"[72]
"ताहि सूल पर सूली दियौ।"[73]

ये सभी अधिकारी राजा का आदेश पालन करने के लिए बाध्य थे परंतु प्रजा पर अत्याचार करने के लिए सर्वशक्ति संपन्न थे।

सुरक्षा का आधार दुर्ग एवं सैन्य व्यवस्था

राज्य की सुदृढ़ता और शक्ति के लिए सेना, कोष तथा दुर्ग का सुदृढ़ होना आवश्यक है। इनमें से कोष की संपन्नता आर्थिक नीति से संबंध रखती है इसलिए उसी अध्याय में उसका विवेचन किया जाएगा। सेना तथा दुर्ग दोनों ही विदेशी आक्रमणकारियों से राज्य की रक्षा करते हैं। अतः कोष का एक बड़ा भाग इनके रख-रखाव पर खर्च किया जाता है। दुर्ग तथा गढ़ सेना के निवास के लिए बनाए जाते थे। युद्ध के समय सेना ही इन दुर्गों की रक्षा करती थी। दुर्ग के पतन के साथ ही राज्य को जीता हुआ मान लिया जाता था।

बाल्मीकि रामायण में जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, नरदुर्ग और किला दुर्ग इन पांच प्रकार के दुर्गों का उल्लेख हुआ है जो रावण की राजधानी लंका की रक्षा करते थे।[74] दुर्ग निर्माण की कला भारत की प्राचीन कलाओं में से एक है। अष्टछाप के समय विदेशी आक्रमण हो रहे थे इसलिए दुर्गों को अधिक से अधिक सुरक्षित बनाने का प्रयास किया जा रहा था। मथुरा नगर की रक्षा के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए तीन ओर ऊँची सुदृढ़ प्राचीर बनी थी और चौथी ओर यमुना नदी का दुर्गम प्रवाह था। अष्टछाप के समय में अनेक दुर्ग अजेय समझे जाते थे। उनमें ग्वालियर, आगरा और मैनपुरी के दुर्ग प्रसिद्ध थे। मथुरा के सामने यमुना के दूसरी ओर महावन में तत्कालीन शासक कुलचंद्र की सैनिक छावनी थी। दुर्गों का वर्णन अष्टछापी कवियों में से सूरदास ने ही किया है। रामकथा का वर्णन करते हुए उन्होंने लंका के दुर्ग का वर्णन किया है। दुर्ग के बीच में रावण की सुरक्षित राजधानी लंकानगरी थी।[75] लंका का यह दुर्ग अपने वज्र किवाड़ों के कारण अभेद्य समझा जाता ।

"लंका गढ़ मांहि आकास मारग गयो चहुं दिसि लगे वज्रकिवारा।"[76]

वज्र किवाड़ों के अतिरिक्त लंका को सुरक्षित रखने के लिए उसके चारों ओर समुद्र के समान गहरी खाई थी जिसे लांघना मुश्किल काम था—

"लंक सौं कोटि देखि जनि गरबहि अरू समुद्रसी खाई।
आजु कान्हि दिन चार पंच मैं लंका होति पराई।"[77]

सूरदास ने द्वारिका दुर्ग का वर्णन भी किया है। मथुरा को छोड़कर कृष्ण ने समुद्र के बीच द्वारिका नगरी बसाई थी। अष्टछाप कवियों की भाव-भूमि का केंद्र ब्रज था। इसलिए द्वारिका के वर्णन में उनका चित्त रमा नहीं है। सूर के अनुसार द्वारिका में भी सोने का दुर्ग बना हुआ था। इसके बीच में बड़े-बड़े मैदान थे। एक ओर सागर तथा दूसरी ओर गहरी खाई उसकी रक्षा करती थी।

"सुनियत कहूं द्वारिका बसाई।
दच्छिन दिसा तीर सागर कैं कंचन कोट गोमती खाई।"[78]

सेना का उद्देश्य जहां एक ओर आक्रमणकारियों से देश या राज्य की सुरक्षा करना है वहीं दूसरी ओर राज्य विस्तार की इच्छा से आक्रमण करना भी है। इसलिए युद्ध सेना का अनिवार्य कर्त्तव्य हैं। युद्ध के लिए 'समर', 'संग्राम', 'जुद्ध', 'रन' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[78] युद्ध की कोई निर्धारित समय सीमा नहीं होती थी। कभी एक-दो दिन में और कभी कई दिनों में युद्ध समाप्त होता था। महाभारत के युद्ध का अठारह दिन तक चलना वर्णित किया गया है। "दस दिन लरे बली गंगा सुत"[80] कहकर सूर ने भीष्म पितामह का दस दिन तक युद्ध करने का वर्णन किया है। सामान्य युद्धों के अतिरिक्त मायावी युद्धों का वर्णन भी किया गया। पौराणिक आख्यानों में वर्णित युद्ध इसी प्रकार के हैं। शाल्व और दंतवक्र के युद्ध में अलक्षित होने, तिमिर बान छोड़ने, दीप्तिबान प्रद्युम्न द्वारा छोड़े जाने का उल्लेख किया गया है—

"असुर विद्या समर, बहुरि लाग्यौ करन, कबहूं लघु कबहूं दीरघसु होई,
गुप्त दै कबहूं कबहूं परगट देखियै कबहूं थर कबहूं नभ बसैं सोई।"[81]

मायावी युद्धों में ही बाणों से जल तथा रक्त-मांस की वर्षा का उल्लेख है।[82] शत्रुओं को विचलित करने के लिए 'मरीचिका' की रचना की जाती थी। शत्रु सैनिक जल को थल और थल को जल, समझ कर विनष्ट होते जाते थे।[83] युद्ध वर्णन के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अष्टछापी कवियों ने राज्य-विस्तार की दृष्टि से किए गये युद्धों का वर्णन नहीं किया है। पौराणिक युद्धों के विविधरूप की चर्चा की है, युद्ध का वर्णन नहीं किया है। कृष्ण कथा के अंग रूप में जिन युद्धों का वर्णन किया गया है वे भी आततायियों को सबक सिखाने

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के लिए अपनी रक्षा के लिए किए गए थे। कृष्ण की तो स्पष्ट रूप से घोषणा है कि "जहां धर्म है वहीं मैं हूं" इसलिए अन्याय के लिए किए गए किसी युद्ध को इन कवियों ने अपने काव्य में स्थान नहीं दिया। सभी युद्ध अन्याय के प्रतिकार के लिए किए गए हैं। राज्य विस्तार के स्थान पर आत्मरक्षा में हिंदू जनता को अपने बचाव में ही युद्ध करना पड़ रहा था।

सूरसागर में सेना के लिए दल शब्द का प्रयोग किया है। तो सारावली में 'कटक' और 'चमू' का।[84] फारसी शब्द फौज और लश्कर का प्रयोग भी मिलता है। इन शब्दों से मुगल बादशाहों की सेना और उसके अभियान की ओर संकेत किया गया है।

"घेरयौ आई कुटुम लसकर में जम अहदी पठ्यौ।"[85]

"फौज असत संगति की मेरे मुहकम लाई किवार।"[86]

सारावली में इन दोनों शब्दों का प्रयोग जरासंध की मागधी सेना के लिए किया गया है। जरासंध एक आक्रमणकारी राजा का प्रतिनिधित्व करता है। उसके माध्यम से तत्कालीन मुस्लिम आक्रमणकारियों की ओर संकेत किया गया है—

"मागध देस देस ते आयो साजे फौज अपार।"[87]

"मारि फौज सब ही मागध की जरासंध उर बारे।"[88]

परिमाण की दृष्टि से 'अक्षौहिणी सेना' का वर्णन कई स्थानों पर मिलता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अनुसार एक अक्षौहिणी सेना के अंतर्गत 1,08350 पैदल, 65610 घोड़े, 21,870 रथ और 21,870 हाथी होते थे।[89] महाभारत के युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना के भाग लेने की बात प्रसिद्ध है। सूर ने भी यही संख्या दी है—

"जुरे नृपति अच्छौहिनी अठारह भयो युद्ध अतिभारी।"[90]

सारावली में अतिश्योक्ति का सहारा लेते हुए कृष्ण और जरासंध के बीच हुए युद्ध में जरासंध की साठ अक्षौहिणी सेना का उल्लेख किया है—

"तीन बीस अच्छौहिनी पैदल जरासंध तहं आयो।
बलमोहन छिन मांझ संहारे करि बिनु चमू पठायो।"[91]

जरासंध के मित्र कालयवन के तीन कोटि भट लेकर युद्ध करने आने का वर्णन है।

"तीन कोटि भट जमन संग लै मथुरा पहुंच्यौ जाए।"[92]

श्रीराम की सेना में 'पद्मकोटि' सैनिक थे।[93] सूरसागर में युद्ध के प्रसंगों में चतुरंगिणी सेना का वर्णन किया गया है। यह वर्णन अप्रस्तुत विधान के रूप में भी किया गया है। पैदल सेना के लिए 'पायक' और घुड़सवार के लिए 'असवार'[94] शब्दों का प्रयोग हुआ है—

"धुरवा धूरि उड़ति रथ 'पायक' घोरनि की खुरतार।"[95]

'पाई पियादे' शब्द का प्रयोग उस पैदल सिपाही के लिए किया है जिसे राज्य की ओर से किसी कार्यवाही के लिए भेजा जाता था।

मानसिक प्रवृत्तियों की उपमा के माध्यम से चतुरंगिणी सेना का चित्र खींचा गया है—

"बाजि मनोरथ वर्गमत्त गज असत कुमत रथसूत।
पायक मन बानैत अधीरज सदा दुष्टमति दूत।"[96]

घुड़सवार सेना के संदर्भ में, 'तुर्की' तथा 'ताजी' घोड़ों का उल्लेख हुआ है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अब्दुल फजल ने 'आइने अकबरी' में अरबी और ईरानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घोड़ों के अतिरिक्त 'भुज' तथा 'तुर्की', 'ताजी', हिन्दुस्तानी घोड़ों को भी श्रेष्ठ बतलाया है।[87] यह वर्णन सूर की बहुज्ञता तथा अनुभव की गहनता की ओर संकेत करता है—

"तुरी ताजी बिना जातन चपल चपला श्री हरी।
जीन जरि जरावत पाखीर लगी सब मुक्ता लरी।"[89]

सेना का नेतृत्व करने वाले को सूर ने 'सेनापति' या 'फौजपति' कहा है—

"सेनापतिनि सुनाइ बात यह नृप मन भयौ उदास।"[99]
"निधरक भयौ चल्यौ ब्रज आवत, अग्र फौजपति मैन।"[100]

"फौजपति" शब्द मुगलकाल के 'फौजदार' से भिन्न है। फौजदार का संबंध जिले के शासन से था तो फौजपति का सेना से। फौजदार आजकल के जिला मैजिस्ट्रेट के समान होता था।[101]

सैनिकों की पहचान ही अस्त्र-शस्त्रों से होती है। यह उनके अविभाज्य अंग हैं। परंपरागत अस्त्र-शस्त्रों के साथ-साथ उस समय तक युद्धों में तोपों का प्रयोग भी बहुतायत से होने लगा था। बहुत से शस्त्रों का उल्लेख केवल पुराणों में ही किया जाता है। सूर ने परंपरागत और समसामयिक दोनों प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन किया है।

युद्ध के समय अपने शरीर की रक्षा के लिए सैनिक कवच या सनाह धारण करते थे।

"धन तन दिव्य कवच सजि करि अरु कर धारयौ सांरगा।"[102]

शस्त्रों के आघात से सिर को बचाने के लिए 'सिरस्त्राण' पहना जाता था। कवच और सिस्त्राण अपने परिवर्तित रूप में आज भी सैनिक की अनिवार्य आवश्यकता है—

"टूटत धुजा पताक छत्र रथ चाप चक्र 'सिरस्त्रान'!।"[103]

युद्ध के लिए प्रयुक्त साधनों को आयुध, शस्त्र और हथियार कहा है। हथियार तत्कालीन प्रचलित भाषा का शब्द है—

"अंतरिक्ष ते द्वैरथ उपजै 'आयुध' तुरंग समेत।"[104]
"डारि सस्त्र सर सेज्या सोए।"[105]
"धरे यंत्र हथियार।"[106]

मध्यकालीन युग में सर्वाधिक प्रचलित शस्त्र तलवार था। सूर ने उसके लिए असि, करवार[107] या तरवारि[108] शब्दों का प्रयोग किया है। करवाल शब्द का प्रयोग भी तलवार के अर्थ में किया गया है।

"दामिनि कर करवाल, बूंद सर, इहि, विधि साजै नैन।"[109]

तलवार की ही श्रेणी में आए अन्य शस्त्रों का प्रयोग भी उस समय युद्धों में किया जा रहा था। सूर ने उन सभी का उल्लेख अपने काव्य में किया है। उनमें प्रमुख छुरी,[110] सेल्ह,[111] सम्ति,[112] सांग,[113] नेजा, [114] सूल,[115] भालि, (माला) [116] और बरछी[117] हैं। बरछी भाले से बड़ी होती है तथा उसकी नोंक पर लोहे के तीन फलक होते हैं। जबकि भाला चार फल वाला होता है। इसकी मूठ लकड़ी की होती है और लोहे का बना होता है। नेजा भाले से छोटा होता है और छुरी इससे भी छोटी होती है। सेल्ह और शक्ति बरछी का ही दूसरा नाम है। इनमें से अधिकांश शस्त्र फेंककर मारे जाते थे। मध्यकालीन राजपूतों द्वारा उनका प्रयोग बहुलता से किया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राचीनकाल में प्रचलित कुछ शस्त्र भी प्रयोग में लाए जा रहे थे। यद्यपि उनका प्रयोग बहुत कम हो गया था। ऐसे अस्त्रों में मूसल,[118] मुग्दर,[119] गदा,[120] और आगर[121] आते हैं। यह सभी शुद्ध लोहे के बनाए जाते थे और अत्यधिक भारी होते थे। इनके प्रहार से शत्रु के विभिन्न अंगों को विशेष रूप से सिर को फोड़ा जाता था। इन अस्त्रों का उल्लेख प्राचीन कथाओं के संदर्भ में अधिक किया गया है। इनके अतिरिक्त अष्टछाप काव्य में सबसे अधिक चर्चा धनुष-बाण की हुई है।

धनुष के लिए 'कमान',[122] चाप,[123] कोदंड,[124] धनु,[125] धनुहियां,[126] पीनाक,[127] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। धनुष की डोरी खींचकर बाण छोड़े जाते थे जिनके मुंह पर लोहा लगा रहता था। राम-रावण युद्ध में धनुष-बाण का प्रमुख अस्त्र के रूप में वर्णन किया गया है। अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धुनर्धर घोषित किया गया है महाभारत काल का। बाण के लिए सर,[128] सायक,[129] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। अर्जुन का गांडीव जगप्रसिद्ध है।

पौराणिक शास्त्रों में कृष्ण के सुदर्शन चक्र का उल्लेख किया गया है। यह कृष्ण के द्वारा खोजा गया था। जो चक्र की आकृति में लोहे का बना था। इसे अंगुली पर घुमाकर फेंका जाता था।[130] नागफांस,[131] नागपाश सागर के अधिपति वरुण का विशेष ऐन्द्रजालिक फंदा था। मेघनाथ द्वारा इसका प्रयोग राम-लक्ष्मण को बांधने के लिए किया गया था।[132] ब्रह्मास्त्र[133] का उल्लेख अर्जुन और अश्वत्थामा के युद्ध के संदर्भ में किया गया है। दिव्य वाण तथा ब्रह्मबाण की चर्चा भी सूर ने की है—

"देख्यौ जब दिव्यबान निसिचर कर तान्यौ।"[134]
"ब्रह्मबान कानि करी, बल करि नहिं बांध्यौ।"[135]

मुगलकालीन शस्त्रों में गोला-बारूद का उल्लेख महत्वपूर्ण है। मुगलों के तोपखाने के कारण ही राजपूतों को पराजय का मुंह देखना पड़ा था। पलीता लगाकर छोड़े जाने वाले गोलों से दुर्ग को कम से कम समय में जीता जा सकता था। युद्ध की यह विधि ब्रजवासियों के लिए आजान नहीं थी। सूर के काव्य में इसी की अभिव्यक्ति अप्रस्तुत विधान द्वारा की गई है—

"जलद कमान बारि दारु भरि, तड़ित 'पलीता' देत।
गरजत अरु तड़पत मनु 'गोला' पहरक मैं गढ़ मैं गढ़ लेत।"[136]

युद्ध के परिणामस्वरूप, विजेता राजा विजित प्रदेश में अपनी दुहाई फेरता था। राम-रावण युद्ध के पश्चात् सूरदास ने 'राम दुहाई'[137] का उल्लेख किया है। आक्रमणकारियों के मुंह की खाने का उल्लेख जरासंध के आक्रमण के समय में हुआ है। जब कृष्ण द्वारा सेना का संहार कर दिए जाने पर उसे वापस लौटना पड़ा था।[138] जरासंध युद्ध के समय ही रणभूमि के लिए 'खेत' शब्द का प्रयोग हुआ है।[139]

युद्धक्षेत्र के भयंकर विनाश का वर्णन करके भी अष्टछापी काव्य में युद्ध के प्रति विरक्ति उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। युद्ध की विभीषिका का उल्लेख एक-दो स्थलों पर ही उन्होंने किया है—

"कहूँ भुज कहुँ धर कहुँ सिर लोटत मानौ मद मतवारो।
ममकत तरफत स्रोनित मैं तन नाहीं परत निहारौ।"[140]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

युद्ध की विभीषिका से बचने के लिए युद्ध रोकने के प्रयास भरपूर किए जाते थे। कृष्ण

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कथा के संदर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से सामने आता है। युद्ध को रोकने के लिए एक मध्यस्थ व्यक्ति का चुनाव होता था। महाभारत युद्ध से पूर्व कृष्ण ने स्वयं यह उत्तरदायित्व निभाया था। मध्यस्थ व्यक्ति को दूत की संज्ञा दी गई थी और उसे अवध्य माना जाता था। रावण के मंत्रीगण इसी मान्यता के आधार पर उसे हनुमान का वध करने से रोकते हैं—

"राजन कहौ दूत काहू कौ, कौन नृपति है मारयौ।"[141]

तत्कालीन राजशाही में अवसरवादी व्यक्तियों की कमी नहीं थी। जनसाधारण में भी येन-केन-प्रकारेण अपने को सुरक्षित रखने के लिए शासकों की जी-हुजूरी करने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। सत्ताधारी, प्रभावशाली व्यक्ति के संपर्क में आते ही लोग अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकते थे। गोपियों के उपालम्भ में इस प्रवृत्ति की ओर प्रच्छन रूप से संकेत किया गया है—

"सहायक सखा, राजपदवी मिली, दिन दस कछुक कमावते।"[142]

छल-बल की रीति को उस समय बाहुल्य था राजपूत सैनिकों जैसी वीरता और आमने-सामने युद्ध करने की, युद्ध के निर्धारित नियमों का पालन करने की प्रवृत्ति, समाप्तप्राय थी और उसके स्थान पर यवन पद्धति अपनाई जा रही थी। जिसमें निहत्थे या सोते शत्रु पर वार करना अनुचित नहीं समझा जाता था। महाभारत के युद्ध में यद्यपि कई अनीतियों का वर्णन हुआ था परंतु उसे भारतीय समाज में मान्यता नहीं मिली थी। तुर्कों ने युद्ध-प्रणाली को नहीं राजनीति को भी अनीतियों से भर दिया था। कंस के द्वारा कृष्ण को मथुरा बुलाने के प्रसंग में 'बकसीस' के बहाने कृष्ण को मरवाने के षड्यंत्र का उल्लेख है।[143] अक्रूर को भ्रम में रखने के लिए ऊपरी प्रसन्नता और प्रलोभन देने के लिए 'शिरोपाव' देने का वर्णन किया गया है। 'बकसीस' और 'सिरोपाव' दोनों शब्द मुगलकालीन राजनीति के अंग थे। इनके प्रयोग से लोक में प्रचलित विदेशी शब्दावली का परिचय भी दिया गया है।

कराधान

शक्तिशाली राजतंत्र के लिए भरे-पूरे संपन्न राजकोष का होना आवश्यक था। धन के अभाव में सुयोग्य राजा भी अपने राज्य से हाथ धो बैठता है। सेना दुर्ग, प्रजा जैसे राज्याडगों का पालन-पोषण किया जाता है। अतः शासन व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिए धन अनिवार्य है। राजकोष में धन की वृद्धि केवल राजा के प्रयत्नों से नहीं होती अपितु कई अन्य साधनों से भी होती है। कोष का अधिकांश पैतृक भाग संपत्ति के रूप में प्राप्त होता है। इसलिए प्रत्येक राजा अपने उत्तराधिकारी के लिए अधिक से अधिक धन खर्च करने का प्रयास करता है। अष्टछाप में संपन्न राजकोष के उदाहरण अधिकांश राजाओं के कोष है। नंद जैसे प्रांतीय शासक के धन-वैभव का वर्णन द्वारा उनके कोष की संपन्नता का परिचय दिया गया है। राजाओं के यहां पर्व-उत्सवों तथा विवाहादि के वर्णन के माध्यम से भी उनके कोष का परिचय मिलता है।

विजित राजाओं से दंड वसूलने की पद्धति से भी राजकोष में पर्याप्त वृद्धि होती है। दिग्विजय, राजसूय यज्ञ आदि के प्रसंगों में इसी प्रणाली का पालन किया जाता था। अकबर ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी अनेक हिंदू राजाओं से कर या दंड लेकर उनके राज्य उन्हें वापस कर दिए थे। हां, अपनी आधीनता स्वीकार करवा कर प्रतिनिधि के रूप में राज्य के किसी प्रमुख व्यक्ति का अपने दरबार में रहना अनिवार्य कर दिया था। जरासंध विजय के पश्चात् बंदियों को छोड़ना तथा उसके कोष पर अधिकार करने का वर्णन सूर ने किया है।

कोष की वृद्धि का मुख्य साधन कर के रूप में धन वसूलना है। यह धन राज्य का अंश कहलाता है। अक्रूर के साथ कृष्ण बलराम को मथुरा भेजने की अपेक्षा यशोदा कर या अंश को दुगुना करने का प्रस्ताव रखती हैं।[143]

"राज को अंस लिखि लेहु, दूनो देहुं मैं कहा करौं सुत दुंहनि दैके।"[145]

ब्रजमंडल का मुख्य व्यवसाय कृषि है। इसलिए अष्टछाप के समय में कृषि पर कर या लगान वसूल करना ही राज्य की आय का प्रमुख स्रोत है। चतुर्भुजदास,[146] नंददास,[147] कुंभनदास,[148] परमानंददास,[149] सभी ने वार्षिक कर वसूलने का उल्लेख किया है। दान के रूप में चुंगी जैसे कर का वर्णन मिलता है। गोविन्द स्वामी ने लौंग-सुपारी पर इस प्रकार के कर लेने का संकेत स्पष्ट रूप से किया है।[150] अष्टछापी काव्य में कर नीति का विशद विवेचन आर्थिक पंक्ष के अंतर्गत किया गया है।

राजा की कर नीति प्रजा के उपकार के लिए ही होनी चाहिए। कालिदास में राजा को सूर्य के समान कर लेने वाला बताया है।[150] जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से जल ग्रहण करता है और उसका सहस्र गुना वर्षा के रूप में वापस कर देता है। वैसे ही राजा भी जितना कर प्रजा से वसूलता है। उससे कहीं ज्यादा उसे वापस कर देता है। कर निर्धारण में भी राजाओं की नीति पृथक-पृथक होती हैं। श्रेष्ठ राजा फसल पकने पर उसके हिसाब से कर लगाता है। मध्यम राजा कच्ची फसल पर कर लगाता है और निम्न राजा खेतों की परिधि या जमीन की नाप पर ही कर लगा देता है। कर वसूलने की भी विभिन्न प्रकार की नीतियों का अनुसरण किया जाता है। प्रजावत्सल राजा कभी भी अन्याय से या बलात् कर वसूल नहीं करता। कृषिप्रधान देश में दैवी आपत्ति के समय राजा कर या लगान माफ भी कर देता है। खेती के अतिरिक्त फल-अनाज आदि पर भी कर लगाया जाता था। दान लीला के संदर्भ में गोपियों ने कर योग्य वस्तुओं की सूची प्रस्तुत की है।"[152]

राज्य के प्राकृतिक साधनों का उपयोग भी चतुर राजा राजकोष की वृद्धि के लिए करता था। जनता की सुविधा के लिए पुल, तालाब, कुंड, बावलियां, वाटिका तथा बाग राजाओं द्वारा विकसित किए जाते थे जो राज्य की आय का स्रोत बनते थे।

प्रशासन पद्धति

अष्टछाप काव्य के अनुशीलन द्वारा तत्कालीन प्रशासन पद्धति का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। राजा की सत्ता सर्वोच्च थी। उसके पश्चात् 'दीवान' या मंत्री शासन तंत्र का महत्वपूर्ण पदाधिकारी था। इसके आधीन राजस्व विभाग रहता था। सूरदास और परमानंददास ने दीवान पद की गरिमा का उल्लेख किया है—

"भक्त ध्रुव को अटल पदवी राम के दीवान।"[153]
"सांचो दीवान है री कमल नयन।"[154]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दीवान के अधीन 'मुस्तौफी' नामक कर्मचारी आय-व्यय का निरीक्षण करता था। राजस्व विभाग के अंतर्गत ही 'अमीन' नामक कर्मचारी का उल्लेख किया गया है जो जनता से कर वसूल करता था। साधारण प्रजा पर अमीन द्वारा किए गए अत्याचारों का वर्णन अष्टछाप में किया गया है—

"नैन अधीन अमीनन कै बस, जहां को तहां छयौ।"[155]

आय-व्यय का लेखा-जोखा करने वाला अधिकारी लिखहार कहलाता था, जो अशिक्षित जनता को परेशान करने की सामर्थ्य रखता था।

भूमिकर के अतिरिक्त हाट बाजार में जकात वसूल करने वाले कर्मचारी प्रायः निश्चित कर से अधिक धन प्रजा से वसूल करते थे। नदी के घाटों पर कर वसूल करनेवाला 'घटवारिया' क़हा जाता था। इसे 'दानी' भी कहते थे और व्यापारियों पर इसका आतंक छाया रहता था। मध्यकालीन प्रशासन के सभी छोटे-बड़े कर्मचारी अवैधानिक कर वसूल करते थे और प्रजा का शोषण करते थे। परगने के स्वामी 'सिकदार' कहलाते थे जो मालगुजारी सरकारी खज़ाने में जमा करते थे।

राजस्व के अतिरिक्त प्रशासन का दूसरा महत्वपूर्ण अंग न्याय विभाग था। जिसका प्रधान काजी कहलाता था। काजी के अधिकार भी बहुत अधिक थे। वही दंड विधान का निश्चय करता था। कोतवाल का कार्य आंतरिक-सुरक्षा-व्यवस्था का था। इनके अतिरिक्त सेनापति तथा दुर्गाधिकारी भी होते थे जो सैन्य व दुर्ग की व्यवस्था को देखते थे। प्रायः प्रशासन के विभिन्न अंगों का संचालन इन अधिकारियों द्वारा सुचारु रूप से किया जाता था। परंतु अष्टछाप के समय में इन कर्मचारियों की भ्रष्टाचार नीति तथा अक्षमता के कारण साधारण प्रजा के दुःख-दर्दों का चित्रण ही उनके काव्य का प्रमुख वर्ण्य विषय बना। इस समय की प्रशासन पद्धति राजकर्मचारियों के लिए आनन्ददायक थी परंतु सामान्य प्रजा के लिए उसमें कष्टों के अतिरिक्त कुछ नहीं था। मुस्लिम शासन का आतंक सामान्य जन-जीवन में इतना भर गया था कि प्रजा छोटे से छोटे राजकर्मचारी से भयभीत रहती थी।

इस प्रकार अष्टछाप के साहित्य में कौटिल्य द्वारा बतलाए हुए राज्य के सभी सातों अंगों सम्राट, आमात्य, जनपद, दुर्ग, सेना, कोष, राज्य का सम्यक् विवेचन पाया जाता है। अष्टछाप के कवि भक्त पहले थे राजनीतिज्ञ बाद में। इसलिए सूरदास को छोड़कर बाकी सभी कवियों ने राजनीति के प्रति निःस्पृह भाव अपनाया है। कृष्ण कथा से संबंधित सीमित प्रसंगों में ही उनके काव्य में राजनीति के अंगों व सिद्धांतों का समावेश हुआ है। ब्रज संस्कृति राजनीति के जो आघात-प्रत्याघात झेलती रही है उनकी गूंज अष्टछाप के काव्य में सुनाई देती है। ब्रज का साधारण जन भी अन्याय-अत्याचार को भुगत चुका था इसलिए लोकमानस में तत्कालीन शासकों के अत्याचार छाए हुए थे। इन सभी का समावेश अपने काव्य में करके इन कवियों ने अष्टछाप साहित्य को राजनीतिक दृष्टि से भी लोक की ओर उन्मुख कर दिया है। कंस के अत्याचार विधर्मी शासकों के अत्याचारों का प्रतिरूप बन कर आए हैं। ऐसी स्थिति में कृष्ण का चरित्र मात्र पौराणिक या भक्ति का आधार न होकर, साधारण जन के लिए उद्धारकर्ता का हो गया है। कृष्ण राजनीति के अत्याचारों का सामना अपनी कूटनीतिक क्षमता के बल पर करते हैं। प्रताड़ित मनुष्य उनके रूप में, आशा की एक किरण प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोकमानस को एक सबल संबल देने के अतिरिक्त अष्टछाप के कवियों ने अपनी जागरूकता का परिचय भी दिया है, विशेष रूप से सूरदास ने। उन्होंने अपने सागर में अपने समय का संपूर्ण इतिहास अप्रत्यक्ष रूप से गूंथ कर रख दिया है। सूरदास की भूमिका अष्टछाप में जागरूक साहित्यकार जैसी है राजनीति से संबंधित प्रत्येक अंग पर उन्होंने उसकी रूक्षता एवं इतिवृत्तात्मकता को समाप्त कर दिया है। अष्टछाप के ही नहीं तुलसी जैसे समर्थ कवि के लिए भी सूर ने राजनीति और काव्य के बीच सेतु बांध दिया है।

राजनीति के माध्यम से तत्कालीन इतिहास को प्रस्तुत करने के साथ ही साथ दो विभिन्न संस्कृतियों के निकट संपर्क में आने के तथ्य को अष्टछाप साहित्य ने उजागर किया है। अरबी-फारसी की शब्दावली को अपनाकर ब्रज के सामान्य लोक में प्रिय होती हुई विदेशी भाषा की ओर संकेत किया है। भाषा के धरातल पर यह स्वीकृति विदेशियों को अपना लेने की ओर संकेत करती है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता—विभिन्न संस्कृतियों को अपने में आत्मसात करना—को भी ब्रज की लोक-संस्कृति ने अपना लिया है। अतः राजनीतिक धरातल पर भी अष्टछाप के कवियों ने लोक का अनुसरण किया है। राजा-रजवाड़ों के विशद वर्णन के स्थान पर अष्टछाप काव्य में राजनीतिक त्रासदी को झेलता हुआ साधारण वर्ग प्रमुख है। लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति का यह उज्ज्वल पक्ष है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप की लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति का कलात्मक पक्ष

कलात्मकता ब्रज संस्कृति का प्रखर पक्ष है। प्रस्तुत अध्याय में इसी पक्ष का विवेचन किया जाएगा। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में, विशेष रूप से आचार्य वल्लभ की लोकोन्मुखी दृष्टि के कारण ब्रजमंडल की कलात्मकता की यह प्रवृत्ति अपने पूर्ण सौंदर्य के साथ अष्टछाप काव्य में उभरकर सामने आई हैं। सुल्तानी शासन की अराजकता और क्रूर-ध्वंस नीति के पश्चात् सम्राट अकबर के सामंजस्यपूर्ण विचारों और उदारवादी दृष्टिकोण ने, विभिन्न कलाओं के पल्लवित और विकसित होने के लिए आदर्श वातावरण का निर्माण किया। इस उपयुक्त वातावरण के कारण ही ब्रजमंडल की कलाओं ने उत्तर भारत में अनूठे कीर्तिमान स्थापित किए।

संस्कृति की भाँति 'कला' शब्द भी आजकल विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त हो रहा है। प्राचीन काल में 'कला' के स्थान पर 'शिल्प' प्रचलित था और उसे 'उपविद्या' के अंतर्गत परिगणित किया जाता था। 'विद्या' तथा 'उपविद्या' ज्ञान की दो शाखाएँ थीं। 'विद्या' पारलौकिक आनंद और मोक्ष की साधिका तथा 'उपविद्या' भौतिक सुख-समृद्धि प्रदान करने वाली थी। कालक्रम से इस मान्यता में परिवर्तन आया और 'कला' तथा 'शिल्प' अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त होने लगे। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में स्पष्ट रूप से इस भिन्नत्व का प्रतिपादन किया है—

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।"[1]

—अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नहीं, ऐसा कोई शिल्प नहीं, ऐसी कोई विद्या नहीं और ऐसी कोई कला नहीं जिसका समावेश नाट्य में न हो।

आजकल कला शब्द पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप सौंदर्य की कुशलतापूर्वक अभिव्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने कला को 'ललित कला' तथा 'उपयोगी कला' के दो वर्गों में विभाजित किया है। भरतमुनि द्वारा प्रयुक्त कला और शिल्प ही संभवतः पाश्चात्य विद्वानों के ललित और उपयोगी कला वर्ग हैं। कला का यह वर्गीकरण प्रयोग की दृष्टि से ही किया गया है। क्योंकि तात्विक दृष्टि से कला अखंड और अविभाज्य है। उपयोगी कलाओं को 'कौशल', 'हस्तकौशल' अथवा 'शिल्प' भी कहा जाता है। इनसे व्यक्ति या समाज की सेवा होती है। इनका मूल्य निर्धारित करना सरल है। ललित कलाओं का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मूल्यांकन कठिन है। वे उपयोगी कलाओं की अपेक्षा सूक्ष्म होती हैं। ललित कलाओं को आनंद प्रदान करने के अनुपात से वर्गीकृत किया गया है। एक वर्ग क्षणिक आनंद देने वाली कलाओं का है जिनका उद्देश्य मात्र मनोरंजन है। विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ, मनोविनोद की बातें और हास्य-व्यंग्य आदि इसके अंतर्गत आते हैं। दूसरा वर्ग स्थायी आनंद देने वाली कलाओं का है जिनका उद्देश्य व्यक्ति की उदात्त भावनाओं को प्रदीप्त करना है। स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य इसी वर्ग की कलाएँ हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ललित कलाओं का यह क्रम पाश्चात्य विद्वानों ने मूर्ताधार की स्थूलता एवं सूक्ष्मता के अनुसार निश्चित किया है। जैसे स्थापत्य कला स्थूल मूर्त्ताधारों से संबंधित हैं और इसके पश्चात् देव, मनुष्य, पशु आदि की आकृतियों और खिलौनों के निर्माण से संबंधित मूर्तिकला है जिसकी अभिव्यक्ति के लिए स्थापत्य से कम सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। चित्रकला-मूर्तिकला से सूक्ष्म है और इसमें केवल रंग-तूलिका तथा कपड़ों या कागज के आधार की ही आवश्यकता पड़ती है। संगीत इन तीनों से सूक्ष्म है जिसमें गायन-वादन या नृत्य द्वारा भावों को अभिव्यक्त किया जाता है। तत्पश्चात् काव्य का स्थान है, जहाँ केवल सरस तथा सार्थक शब्दों द्वारा कल्पना को साकार किया जाता है। यह वर्गीकरण कलाओं की श्रेष्ठता का एकमात्र निर्णायक नहीं है क्योंकि काव्य की कोई रचना स्थापत्य की किसी कृति से निम्न भी हो सकती है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक इमारतों के समक्ष कई काव्य रचनाएँ फीकी पड़ जाती हैं।

भारतीय मनीषियों ने काव्य को कला क्षेत्र से पृथक् रखा है। प्रसिद्ध चौंसठ कलाओं में काव्य का उल्लेख उन्होंने नहीं किया अपितु काव्य को साहित्य का पर्यायवाची मान, उसका विशद विवेचन कर एक पृथक् शास्त्र की रचना कर डाली। दृश्य काव्य के भेद नाट्य में विभिन्न कलाओं का समावेश किया और श्रव्य काव्य के कतिपय रूपों—समस्या पूर्ति, आशु कविता, चित्रबंध, दृष्टि कूट आदि को ही कला के अंतर्गत स्वीकार किया। 'ब्रज की कलाओं का इतिहास' ग्रंथ में श्री प्रभुदयाल मीतल ने कामसूत्र तथा अन्य ग्रंथों के आधार पर प्राचीन भारत में प्रचलित विभिन्न कलाओं की सूची इस प्रकार दी है—

1. गान (स्वर, ताल और लय के साथ गायन), 2. वाद्य (विविध बाजों का वादन), 3. नृत्य (नाच), 4. नाट्य (अभिनय), 5. आलेख्य (चित्रकारी), 6. मूर्तिनिर्माण, 7. राजगीरी, 8. बढ़ईगीरी, 9. आशु कविता, 10, मधुरकंठ से काव्यपाठ, 12. अंत्याक्षरी कथन, 13. भाषण, 14. वाद-विवाद, 15. सुलेख, 16. कठिन लेख और घसीट का वाचन, 17. किसी कथन की यथावत् पुनरावृत्ति, 18. पहेली बूझना, 19. कहानी कहना, 20. हास्य-व्यंग्य (हँसी-मजाक करना), 21. नकल बनाना, 22. घर सजाना और बिस्तर लगाना, 23. पूजा की सामग्री सजाना, 24. फूलमाला, गुलदस्ता आदि बनाना, 25. बालों में फूल गूँथना, 26. फूलों से नाना प्रकार की सजावट करना, 27. वस्त्रालंकार धारण करना-कराना, 28. अंग प्रसाधन करना-कराना, 29. अंग मालिश करना, 30. अंगों को सुडौल बनाना, 31. पान बीड़ा लगाना, 32. जल क्रीड़ा (जल में तैरना, गोता लगाना आदि), 33. द्यूत क्रीड़ा (चौपड़-पासें खेलना), 34. मनोविनोद के खेल करना (उछलना, कूदना, फाँदना, दौड़ना, गेंद खेलना आदि), 35. रथ, हाथी, घोड़े, ऊँट आदि की सवारी, 36. नौका व जलयान चलाना, 37. इंद्रजाल, हाथ की सफाई, 38. मुट्ठी में बंद वस्तुओं का ज्ञान, 39. बहरूपियापन (ऐयारी), 40. औषधों के विविध प्रयोग, 41. सूत, ऊन आदि की कताई,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by JKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

42. बुनाई, 43. सिलाई, 44. जाली की बुनाई, 45. बेलबूटों की कढ़ाई, 46. रफूगरी, 47. रस्सीनिवाड़ की बनाई, 48. वस्त्रों की रंगाई, 49. रंगसाजी, 50. क्षौर कर्म (हजामत), 51. खिलौने बनाना, 52. धातुओं के बर्तन, खिलौने और वस्तुएँ बनाना, 53. संग तराशी, 54. लकड़ी पर बेल-बूटे और आकृतियाँ बनाना, 55. आभूषण निर्माण, 56. धातुओं का शोधन एवं मिश्रण, 57. असली और नकली धातुओं की पहचान, 58. बढ़िया और घटिया तथा असली और नकली रत्नों की पहचान, 59. रत्नों को काँट-छाँटकर सुडौल बनाना, 60. कृत्रिम सोना बनाना, 61. कृत्रिम रत्न बनाना, 62. रसायन बनाना, 63. शराब बनाना आदि।[2]

प्राचीन भारत की यह सभी कलाएँ ब्रजभूमि में भी प्रचलित थीं। ब्रज में विभिन्न धर्मों की उन्नति एवं अवनति के साथ, उनकी धार्मिक भावनाओं के अनुरूप ही विभिन्न कलाओं का उत्थान तथा पतन होता रहा। ब्रज संस्कृति में कलाओं को धर्माश्रित माना गया और उनका संबंध इष्टोपासना से जोड़ दिया गया। अष्टछाप काव्य में कलाओं का निरूपण कृष्ण भक्ति की सापेक्षता में हुआ है। मध्यकालीन ललित कलाओं, वास्तु, मूर्ति, चित्र और संगीत का स्वरूप इस काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। ललित कलाओं के अतिरिक्त उपर्युक्त विवेचन के आधार पर प्रसाधन तथा वस्त्राभूषण, पाक कला तथा मनोविनोदात्मक कलाओं की चर्चा भी इस अध्याय में की जा रही है। 'पुष्टिमार्गीय' सेवा विधि में श्रृंगार तथा भोग के अंतर्गत प्रसाधन और पाक कला का विकास हुआ तो पूर्णकलावतार कृष्ण की कथा में मनोविनोद या मनोरंजन के प्रत्येक साधन को—चाहें वह बच्चों की कंदुक क्रीड़ा हो या युवकों का आखेट या जलविहार—कलात्मकता का स्वरूप प्रदान किया गया। इस दृष्टि से सामाजिक परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा, कलाओं के रूप में इनका विवेचन अधिक समीचीन है।

वास्तुकला

प्राचीनकाल से ही वास्तु या स्थापत्य कला के लिए ब्रज अत्यंत प्रसिद्ध जनपदों में से एक था और उसके उन्नत स्थापत्य व मूर्तिकला के प्रमाण पौराणिक ग्रंथों में बिखरे पड़े हैं। बाल्मीकि रामायण में मथुरा के संस्थापक मधु और उसकी राजधानी मथुरा का वर्णन मिलता है। उसका राजभवन अत्यंत ऊँचा तथा भव्य था। श्रीराम के शासन काल में शत्रुघ्न के अनुसार "उस काल में मथुरा नगर अपने भवनों, बगीचों तथा विहार-स्थलों से ऐसा सुंदर था कि वह मनुष्यों के साथ देवताओं को भी शोभायमान लगता था।"[3]

इसी मथुरा नगर में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। तत्कालीन मथुरा के सौंदर्य का वर्णन भगवत् पुराण में इस प्रकार किया गया है—"उस नगर के ऊँचे प्रवेश द्वार स्फटिक पत्थर के थे तथा उन पर सोने के विशाल तोरण और किवाड़ थे। नगर के चारों ओर की दीवाल ताँबे और पीतल से मढ़ी हुई थीं तथा उसके नीचे की खाई को पार करना कठिन था। उसमें अनेक बाग-बगीचे शोभायमान थे तथा वहाँ के सुवर्ण-निर्मित, महलों, सभाभवनों एवं पंक्तिबद्ध सुंदर हवेलियों के छज्जे और फर्श विविध रत्नों के प्रकाश से जगमगा रहे थे।"[4]

इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त पुराण में वृषभान के महल का वर्णन करते हुए उसे चार दीवारी से युक्त, चौकोर मंडपवाला तथा मणि से जड़े बीस द्वारों वाला बतलाया गया है। महल में रत्नसार

CC-0, Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के रंगों द्वारा बारीक कलम की उत्तम चित्रकारी का वर्णन है। उसके सोपान मार्ग पीले पाषाण से बने हुए थे।[5]

इस प्रकार वास्तुकला के क्षेत्र में ब्रज प्रारंभ से ही उन्नत अवस्था में था। इस क्षेत्र में 'मथुरा शैली' का अपना ही महत्व था। मध्यकाल तक आते-आते स्थापत्य कला में यह प्राचीन गौरव अक्षुण्ण न रह सका। सुल्तानों के शासन में तथा उससे पूर्व विदेशी आक्रांताओं ने स्थापत्य कला के प्रतीक मंदिरों और नगरों को ध्वस्त किया। महमूद द्वारा पराजित महावन के शासन कुलचंद्र का दुर्ग वास्तुकला का अनोखा उदाहरण था। मथुरा नगर भी कलात्मक तथा दर्शनीय भवनों से युक्त तीन ओर सुदृढ़ प्राचीर तथा एक ओर से यमुना से घिरा था। तत्कालीन स्थापत्य के यह प्रतीक विदेशियों द्वारा नष्ट कर दिए गए। ब्रजमंडल में जिस समय मंदिर टूट रहे थे और नए निर्माण पर रोक लगी हुई थी, वल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से गोवर्धन की गिरिराज पहाड़ी पर श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण प्रारंभ किया गया। सिकंदर लोदी द्वारा इस निर्माण को रुकवाया ही नहीं गया बल्कि बना हुआ भाग भी ढहा दिया गया। ब्रज के नगरों, ग्रामों और वहाँ के आवास गृहों की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। आतंक और उत्पीड़न से अशांत जनता में आवास गृहों के निर्माण में कलात्मक प्रदर्शन का उत्साह नहीं रह गया था।

अष्टछाप कवियों के समय तक राजनैतिक स्थिरता आ चुकी थी। मुगलों के शासन में फिर से वास्तुकला पर ध्यान दिया जाने लगा। अकबर ने आगरे का किला, फतहपुर सीकरी, बुलंद दरवाजा आदि बनवाया जिसमें ब्रज के शिल्पियों का योगदान एवं कला का संस्पर्श है। इसी काल में मैनपुरी, ग्वालियर आदि के दुर्ग भी बनवाए गए जो हिंदू वास्तुकला के प्रतीक थे। ब्रज में ही सती का बुर्ज गोवर्द्धन में हरिदेव का मंदिर, वृंदावन में गोविंद देव जी का मंदिर, मानसी गंगा तीर्थ का पुनरुद्धार तथा मथुरा के विशाल दुर्ग का निर्माण हुआ।

वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ के अधूरे मंदिर को पूर्ण कराया, मंदिर का बाह्य स्वरूप हवेली के सदृश रखा गया। ताकि वह विधर्मी शासकों की दृष्टि से बच सके। सूरदास, कुंभनदास, कृष्णदास आदि कवियों का इस मंदिर से घनिष्ठ संबंध था इसलिए उनके काव्य में, तत्कालीन वास्तुशिल्प की झलक मिल जाती है। नंद के निवास, मथुरा के भवनों तथा राजमहलों के वर्णन में तत्कालीन शिल्प कला का परिचय मिल जाता है। नगर की आभिजात्य संस्कृति का चित्रण करते समय वहाँ के भवनों की कलात्मकता का वर्णन भी किया गया है। वास्तुकला से संबंधित छज्जों, कंगूरों, अट्टालिकाओं और झरोखों का वर्णन सभी कवियों ने किया है। कंस की राजधानी मथुरा के वर्णन में सोने के भवनों का उल्लेख हुआ है—

"मथुरा देखियै नंदनंदन। भले आवास रचें कंचन कै।"[6]

भवनों में स्थापत्य की दृष्टि से झरोखों और कंगूरों का होना आवश्यक था। मुगलकालीन स्थापत्य की यह विशेषता अष्टछाप साहित्य में वर्णित की गई है।

"छज्ज तैं छूटति पिचकारी रंगि गई बारवरि महल अटारी।"[7]

"लाल गुलाल के खंभ मनोहर छज्ज की छवि भारी।"[8]

"काव्यों सिंधु कंगूरा ढरियों लंका आगम जनायो।"[9क]

यहाँ खंभों और अटारियों के साथ-साथ छज्जों का उल्लेख भी किया गया है। झरोखे और गवाक्ष भी भवन निर्माण कला के अंग थे—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"छिनु-छिनु झाँकि झरोखति पेखी।"[9ख]

"देख्यौ स्याम ग्वाच्छ पंथ है मथति एक दधि भोरी।"[10]

द्वारिका के वर्णन में वास्तुकला का संक्षिप्त परंतु स्पष्ट विवरण दिया गया है। इसमें तत्कालीन वैभव और ऐश्वर्य की झलक भी है। भवनों में स्वर्ण के मणि खचित प्रकोष्ठ, विद्रुम और स्फटिक मणियों की पच्चीकारी, उसके नीचे रहने वाले स्त्री-पुरुष तथा आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के प्रतिबिंब, जल तथा स्थल पर विचित्र प्रकार के रंग, आसपास के उपवन, फूल-फल, सरोवर, पक्षियों का कलरव और घर-घर संगीत की सरस ध्वनि का वर्णन किया गया है—

"दिन द्वारावति देखत आवत।
विद्रुम स्फटिक पची कंचन खचि, मनिमय मंदिर बने बनावत।
जितै तितै, नर नारि, मीन खग, सबाहिन के प्रतिबिंब दिखावत।
जल थल रंग विचित्र बहुत विधि अवलोकत आनंद बढ़ावत।"[11]

वास्तुकला का विवेचन अष्टछाप् में अधिक नहीं हुआ है परंतु तत्कालीन उन्नत स्थापत्य कला की झलक, सुनहरे अलंकरण विद्रुम तथा स्फटिक की पच्चीकारी, कनक मणि खंभ, काँच या स्वर्ण के सुंदर मंच आदि के समावेश में मिल जाती है। इस वर्णन द्वारा मध्यकालीन समृद्धि और वैभव का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

मूर्तिकला

मूर्तिकला का उद्भव आदिम मानव समाज की स्वाभाविक कलाभिरुचि को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से हुआ। पतंजलि ने सामान्य और पूजनीय दो प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख किया, प्रथम को उन्होंने प्रतिकृति कहा जिसमें पशु-पक्षी की अनुकृति, बच्चों के खिलौने, लोकरंजन के साधन रूप कलाकृतियों को सम्मिलित किया और द्वितीय को अर्चा कहा जिसमें इष्टदेव और उपास्य देवी-देवताओं की मूर्तियों का समावेश किया। अष्टछाप साहित्य में सामान्य वर्ग की मूर्तियों की ओर संकेत किया गया है, उनका स्पष्ट उल्लेख वहाँ नहीं है। कृष्ण की बाल लीला के संदर्भ में केवल इस विषय का अनुमान ही लगाया जा सकता है। पूजनीय मूर्तियाँ तत्कालीन मूर्तिकला का अविभाज्य अंग हैं। यद्यपि सुल्तानों द्वारा सुंदर और कलात्मक मूर्तियों को तोड़ा जा रहा था तथापि शांति स्थापित होते ही ब्रज का कलाकार अपनी कल्पना को मूर्ति के माध्यम से अभिव्यक्त करने में चूकता नहीं था। कृष्ण की विभिन्न भंगिमाओं में बनी मूर्तियाँ इसका प्रमाण हैं। कृष्ण लीला से संबंधित मूर्तियाँ भी बनाई जा रही थीं। अधिकतर मूर्तियाँ सुल्तानी कोप का शिकार बन चुकी थीं। अकबर के शासन काल में धार्मिक सौहार्द्र की स्थापना हुई और मंदिरों के निर्माण के साथ देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी निर्मित की गईं। वल्लभ संप्रदाय की श्रीनाथजी की मूर्ति प्रसिद्ध हैं, उनके नवनीत प्रिय बालकृष्ण और गोवर्धनधर श्रीनाथ को आधार बनाकर अष्टछाप कवियों ने जो वर्णन किया उसमें मूर्तिकला के संकेत मिल जाते हैं।

अकबर के समकालीन आचार्य गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सं. 1628 में गोकुल की नई बस्ती बसाई तथा वहाँ देवालयों का निर्माण और मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराई। अष्टछाप कवियों की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वृत्ति इस विवरण में अधिक नहीं रमी है फिर भी मान आदि के प्रसंगों में मूर्तिकला का अस्पष्ट उल्लेख मिल जाता है। मंदिरों के अतिरिक्त घरों के ठाकुरद्वारे में भी इष्टदेव की मूर्ति स्थापित करना तत्कालीन भक्ति पद्धति का अंग था। डॉ. माया रानी टंडन के अनुसार, "श्रीकृष्ण राधा आदि की विविध क्रीड़ाओं तथा भावभंगिमाओं का भावपूर्ण और सजीव जैसा अंकन उस युग की मूर्तिकला की ऐसी विशेषता है जो आज भी दर्शकचित्त को मुग्ध कर लेती है। अष्टछाप काव्य में तत्संबंधी वर्णन बहुत कम हैं, केवल पाहन की पूतरी जैसे उल्लेख कहीं-कहीं मिल जाते हैं।"[12]

सूरदास ने पूतरी शब्द का प्रयोग प्रतिमा के स्थान पर किया है—

"ऐपन की सी पूतरी (सब) सखियन कियौ सिंगार।"[13]
"वह जु हुती प्रतिमा समीप की, सुख संपति दुरिता चितई री।"[14]
"सालिग्राम तहां बैठायौ, धूप-दीप, नैवेद्य चढ़ायौ।"

अष्टछाप के अन्य कवि इस विषय के वर्णन के प्रति उदासीन रहे हैं।[15] तत्कालीन मूर्तिकला के विकास को देखते हुए यह वर्णन नगण्य है। वल्लभाचार्य जी तथा विट्ठलनाथ जी द्वारा प्रतिष्ठित स्वरूपों की अनेक मूर्तियाँ बनारस-सारनाथ के संग्रहालयों में विद्यमान हैं।[16]

चित्रकला

चित्रकला ब्रज लोक-संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। चित्र वह भावपूर्ण आकृति है जो रेखाओं द्वारा रंगों से या बिना रंगों के बनाई जाती है। ब्रज की प्राचीन चित्रकला के जितने भी उल्लेख मिलते हैं वे प्रायः पौराणिक ग्रंथों पर आधारित हैं। जैसे ब्रह्मवैवर्त पुराण में वृषभानु के महल को सुंदर चित्रकारों से अलंकृत बतलाया गया है। हरिवंशपुराण मे चित्रलेखा में चित्रकला संबंधी दक्षता का उल्लेख है जिसके कारण बाणासुर की पुत्री ऊषा अनिरुद्ध को पहचान सकी। ऊषा के साथ द्वारिका आकर चित्रलेखा ने यादवों को इस कला में पारंगत किया। बज्रनाभ के मथुरा आने पर ब्रज में भी इस कला का प्रसार हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से चित्रकला का विकास गुफाओं और मंदिरों में भित्ति-चित्रों के रूप में हुआ। इन चित्रों और वस्तुओं की प्रतिकृतियों के माध्यम से लोक संस्कृति और मानव की कल्पना को अभिव्यक्ति मिली। भित्ति-चित्र के अतिरिक्त ताल पत्र, भोजपत्र एवं पट चित्रों का प्रचलन भी हुआ। मध्यकाल में इस्लाम के चित्रकला विरोधी दृष्टिकोण के कारण इसका विकास अवरुद्ध हो गया पर रीतियों, पर्वों तथा गृहशोभा में इसका अस्तित्व बना रहा। मुगलकाल में अन्य कलाओं की भाँति चित्रकला का भी विकास हुआ। आगरा में दरबारी शैली की और गोकुल वृंदावरन में धार्मिक शैली की चित्रकला का विकास हुआ। दरबारी शैली, भारतीय और ईरानी चित्रकलाओं का मिश्रित रूप थी जबकि कृष्णोपासक धर्माचार्यों एवं भक्तों की कला साधना शुद्ध परंपरागत भारतीय शैली के अनुरूप थी। ब्रज की लोक कलाओं का विकसित रूप भी इस शैली में परिलक्षित होता है। काँकरोली के इतिहास में सिकंदर लोदी गके आदेश से आचार्य वल्लभ के चित्र बनाने का उल्लेख हुआ है परंतु उसकी सत्यता प्रमाणित नहीं है। दिल्ली के सुल्तान कट्टर मुसलमान थे और इसलिए कलाओं के विरोधी भी थे। विध्वंस के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उस युग में धर्माचर्या का चित्र बनाने का आदेश उनके लिए दुष्कर था। दूसरे चित्रकार का जो 'होनहार' नाम दिया गया है। वह शाहजहाँ के शासन काल में हुआ था। संभवतः सिकंदर लोदी के शासन काल में किसी हिंदू चित्रकार ने मूलचित्र बनाया होगा और उसी के आधार पर छविचित्र शाहजहाँ के काल तक बनते रहे होंगे। ऐतिहासिक तथ्य कुछ भी हों इस घटना से प्रमाणित हो जाता है कि मध्यकाल में ब्रजमंडल की अपनी एक निजी शैली दबी रही परंतु मुगल शासन में अत्यंत उन्नत अवस्था में पहुँच गई। कालांतर में औरंगजेब के कट्टर रुख के कारण ब्रज के चित्रकार राजस्थान के कई राज्यों में विशेष रूप से मेवाड़ और इसके आसपास जाकर बसे और वहाँ अपनी कला को नाथ द्वारा शैली के रूप में विकसित किया। राजस्थानी चित्रकला की जयपुर शैली और किशनगढ़ शैली को भी उन्होंने प्रभावित किया।

अष्टछाप काव्य में लोक संस्कृति की अभिव्यंजक इस कला का सम्यक् निरूपण किया गया है। विभिन्न पर्वों, उत्सवों और संस्कारों के वर्णन में जन-जीवन में व्याप्त इस कला के प्रति अनुराग को स्पष्ट देखा जा सकता है। आज भी लोकजीवन में चित्रकला का यह स्वरूप विद्यमान है। प्रसाधन कला के अंतर्गत भी लोकचित्र शैली का परिचय मिल जाता है जिसमें गुंजा, वनधातु आदि के प्रयोग से अंगों पर चित्रकारी की जाती थी—

"गाहि गुंजा घसि वनधातु अंगनि चित्र ठए।"[18]

भाषा का चित्रात्मकता अष्टछाप काव्य की विशेषता है, अकेले सूरसागर में ही ऐसे अनेकों पद उपलब्ध हैं जिनके आधार पर कुशल चित्रकार सुंदर चित्रों की रचना कर सकता है। उदाहरणार्थ "वनमाला तुमको पहिरावहिं धातुचित्र तनु रेखहिं।"[19]

भाषा के माध्यम से ऐसे चित्रों की संरचना कवियों की सामर्थ्य की परिचायक है। चित्रकला का परंपरागत रूप भित्ति चित्रों का है जिसका पूर्ण विकास अष्टछाप काव्य के समय में हो चुका था। अतः काव्य में उसका स्फुटन होना स्वाभाविक ही था। चित्र के लिए भित्ति का होना आवश्यक माना गया है—

"ऐसे कहैं नर नारि।
बिना भीति चित्रकारि काहे को देखैं मैं कान्ह कहा कहौ सहिए।"[20]
"जल बिनु तरंग चित्र बिनु भीतहिं बिनु चेतहिं चतुराई।"[21]

विरह के वर्णन में सूरदास ने गोपी द्वारा सिंह का चित्र उरेहने का उल्लेख किया है। जो भित्ति चित्र को ओर ही संकेत करता है—

"अति आतुर है सिंह लिख्यौ कर जेहि भामिनी को कर न टरै।"[22]

परमानंद ने भी द्वार पर चित्रालेखन का अप्रत्यक्ष वर्णन किया है—

"विरहाकुल भूली ब्रजनारी, द्वार पै चित्रलिखि ज्यों सारी।"[23]

चतुर्भुजदास ने इस कला का संकेत मात्र किया है—

"पूतरी सी लिखी चित्र नयो नेह नयो मित्र।"[24]

परमानंददास ने अपने युग के कश्मीरी शैली के स्तंभ चित्रों का वर्णन किया है—

"तहां रच्यौ हिंडोरो धवल बानी कासमीरी खंभ।
हीरा पिरोजा पांतिमुक्ता और अति अगंभ।
बनी चित्र विचित्र सोभा तीन धनु संधान।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसे राम रावन जुद्ध क्रीड़ा देखिए अनुमान।
जहां बहुत गोरस मांट मंथना चलत कंकत हीर।
तहां मल्लिका सिर गूंथ बैनी स्रवन सोभित वीर।"[25]

भित्ति-चित्र धार्मिक चित्रकला का प्राचीन रूप है। वल्लभ संप्रदायी मंदिरों को धार्मिक प्रतिबंधों के कारण साधारण घरों के भाँति बनाए जाने की प्रथा सल्तनतकाल और मध्यकाल में चली थी और उन्हें मंदिर न कहकर हवेली कहा जाता था। इस कारण बाह्य अलंकरण में अपनी कुशलता का परिचय देने का अवसर ब्रज के चित्रकारों को नहीं मिला था।

हिंदू चित्रकारों ने ईरानी चित्रकारों की तरह चटकीले रंगों का प्रयोग शुरू कर दिया। इस काल के मंदिरों में भित्ति चित्रों का संबंध जल और तरंग की भाँति अन्योनयाश्रित माना जाने लगा। ऊपर दिए गए "जल बिनु तरंग..."[26] के द्वारा सूरदास ने इसी लोक रीति का परिचय दिया है। ओरछा नरेश वीरसिंह द्वारा बनवाए केशव देव के मंदिर के कृष्ण लीला के भित्ति चित्र तत्कालीन चित्रकला के उत्कर्ष को सिद्ध करते हैं।

पर चित्रों में लीलाओं या इष्टदेव की आकृतियों का आलेखन कपड़े पर किया जाता था। इन्हें ठाकुर जी के पीछे टाँगने के कारण पिछवाइयाँ कहा जाता था। अष्टछाप साहित्य में इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में पिछवाइयाँ मंदिर के अभिन्न अंग होने के कारण अवश्य उपलब्ध हैं। फूलडोल के अवसर पर पिछवाइ का उल्लेख कृष्णदास ने किया है—

"फूलनि के गादी तकिया फूलन राजी चित्रि पिछवारी।"[27]

छवि चित्र धार्मिक चित्रकला का वह प्रकार था जो 'सादृश्य' के नाम से पहले से प्रचलित था। मुगल दरबार में उसे 'शबीह' कहा गया है। ब्रज के लोक चित्रकारों ने अपनी सांप्रदायिक मान्यताओं के अनुसार छवि चित्रों का आलेखन किया। आचार्य वल्लभ, गो. विट्ठलनाथ, हित हरिवंश, हरिदास स्वामी, सूरदास, रसखान, नागरीदास के चित्रों की मूल प्रतियाँ इसी समय तैयार की गई। वल्लभ संप्रदाय में गो. विट्ठलनाथ द्वारा बनाए गए बाल कृष्ण का चित्र आज भी विद्यमान है उन्होंने इस कला का पोषण ही नहीं किया इसमें दक्षता भी प्राप्त की है।[28]

अष्टछाप के समय तक कागज का आगमन ब्रज में हो चुका था जिसका उपयोग ग्रंथ लेखन और चित्रांकन दोनों कलाओं में किया जाता था। इसलिए ग्रंथ चित्रों की परंपरा भी इस काल के साहित्य में उपलब्ध है।

ब्रज की लोक-संस्कृति में भूमिचित्र या धूलिचित्रों का विशेष महत्व है। वास्तव में भूमिचित्र भारतीय संस्कृति की भी महत्वपूर्ण अंग है। इसे चौक भी कहा जाता था। लोक जीवन में चौक पूरने की परंपरा प्रत्येक शुभ अवसर पर प्राचीन काल से प्रचलित थी परंतु मंदिरों में इसका प्रवेश अष्टछाप के धर्माचार्यों द्वारा ही हुआ था। यहीं से प्रथा 'मांडना' (राजस्थान). 'रंगोली, रंगबल्ली' (गुजरात + महाराष्ट्र), अल्पना (बंगाल) और कोलम् (दक्षिण) के रूप में देश के विभिन्न भागों में फैली। अष्टछाप के साहित्य में ठाकुर जी के सामने की भूमि को 'चौक' द्वारा सजाने का उल्लेख किया गया है। सामान्यतः चौक का चित्रण सूखे रंग और गेहूँ अथवा चावल के आटे से किया जाता है। अष्टछाप कवियों ने "मात जसोदा करत आरती, गजमोतिन के चौक पुराए" कहकर [illegible]ओं ने चौक पूरने का उल्लेख किया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"गज मोतिन के चौक पुराये नाम करन विधि ठानी।"[29]

लोक जीवन में गजमोती के स्थान पर आटे की गोलियों को रंगकर चित्रसज्जा पूरी की जाती है। चौक के अतिरिक्त 'सथिये' और 'साँझी' भी ब्रज की लोक चित्रकला के रूप हैं। 'सथिये' स्वस्तिक का अपभ्रंश है। यह उत्सव-त्यौहार आदि पर बनाए जाते थे। बच्चे के जन्म के बाद छठी के उत्सव पर सथिए रखने की प्रथा आज भी प्रचलित है।

चित्रों में साँझी का महत्वपूर्ण स्थान है। लोकचित्रण की इस परंपरा का विकास मंदिरों और देवालयों में हुआ। इसके लिए कागज या साँचे या खाके काम में लाए जाते थे जिन पर कलात्मक ढंग से विविध प्रकार की आकृतियाँ कटी होती हैं। उन साँचों या खाकों की आकृतियों पर कई तरह के रंग छिड़ककर सुंदर चित्रकारी की जाती है। ये साँझी आश्विन महीने के कृष्ण पक्ष (पितृपक्ष) में ब्रज के मंदिरों में बनाई जाती हैं।"[30] अष्टछाप साहित्य में गोपियों द्वारा साँझी बनाए जाने का उल्लेख किया गया है। गोपियाँ सूखे रंग के साथ-साथ विविध प्रकार के पुष्पों का प्रयोग भी साँझी बनाने में करती थीं—

"राधा प्यारी कह्यौ रुसखिन सों 'सांझी' धरौ री माई।
बिटियां बहुत अहीरनि की मिलि गई जहं फूल अथाई।
कर सोकर राधा संग सोभित सांझी चीती जाई।"[31]

चित्रकला के कुछ अन्य आकर्षक प्रकार भी ब्रज की लोक संस्कृति में व्याप्त थे और उनका चित्रण करना अष्टछाप के कवि भूले नहीं हैं। वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में ग्रीष्माकाल तथा वसंतोत्सव की फूलमंडली तथा फूलडोल के समारोह में ठाकुर जी को फूल-पत्तियों एवं केले के बक्कलों से निर्मित बंगलों में पधराया जाता था। इस बंगले के निर्माण में भी चित्रकला का सौंदर्य देखने को मिलता था—

"फूलन के बंगला बने अति छाजे बैठे लाल गोबरधन धारी।
चंपक बकुल गुलाब निवारो अनार सुधारी।"[32]

कृष्णदास ने इसका और अधिक स्पष्ट व सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है—

फूलनि के पहिरें पट सुंदर फूलनि के भूषनक बनी।
फूलनि जारी, बने झुमका फुलनि की बारी बनी।
फूलनि के मोर चकोर चातक फूलनि की कोकिला बनी।
फूलनि के गेंदुक कर कोमल फुलनि कीन्हों लासी धनी।"[33]

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर ठाकुर जी का पालना तथा श्रावण के हिंडोरे और झूले भी फूल-पत्तियों की कलात्मक चित्रकारी के विविध प्रकार हैं जिनका वर्णन अष्टछाप के कवियों ने किया है। फूल-पत्तियों के स्थान पर मणि-मुक्ताओं का उल्लेख भी उन्होंने किया है—

"मनि कंचन के खंभ मनोहर विद्रुम डांडी सुहाइ हैं।
पटुली पिरोजा लाल के तहां रतन जराव जराई हैं।"[34]
"रतन जरित कंचन मनिमय नंदभवन मधि पालनों।
ता ऊपर गज मोतिन लट् लटकत अति तहँ झूलत जसोदा लालनो।"[35]

ब्रज की चित्रकला का यह लोकधर्मी रूप वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में झाँकियों के अवसर पर देखने को मिल जाता है। पूजा की थाली भी विभिन्न प्रकार से चित्रित करने की

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रथा है। सांप्रदायिक सेवा विधि के इस अंग को अष्टछाप काव्य में विशेष स्थान नहीं मिला है।

कृष्ण की रूपगुण-लीला के प्रति रागात्मिका वृत्ति के फलस्वरूप अष्टछाप के कवियों ने उनके सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। उपमानों के माध्यम से तथा बिना उपमानों की सहायता के केवल विभिन्न रेखाओं और वर्णों के योग से अंकित यह चित्र अनुभूति की मार्मिकता के कारण इन कवियों की कला का प्रमाण बन गए हैं। इनके शब्दचित्रों के आधार पर ही तत्कालीन चित्रकारों को एक सुदृढ़ आधार भूमि प्राप्त हुई। मध्यकालीन चित्रकला में अनेक विशेषज्ञों ने इस प्रकार के संकेत दिए हैं। कृष्ण चरित के विभिन्न अंगों तथा उनके रूपों का चित्रण तत्कालीन चित्रकला का मुख्य प्रतिपाद्य विषय था। राय कृष्ण दास के शब्दों में, "उस समय सगुण भक्तिमार्ग के मुख्य उपास्य कृष्ण की लीला और स्तुतियों के चित्रों की भी बड़ी माँग रही होगी।"[36] चित्रण शैली में भी उन्होंने कृष्ण के उसी रूप की प्रधानता मानी है जो उस समय की कविता में स्वीकार किया जा रहा था। उनके अनुसार ब्रज में राजस्थानी शैली की चित्रकला का केंद्र अवश्य रहा होगा। हम्जा चित्रावली में मीनाक्ष अर्थात् फड़कती हुई मछली की तरह बाँकी आँखें अनेक बार लिखी गई हैं। और जहाँ ये उरेही गई हैं वहाँ इनका पूरक भ्रू चाप भी मौजूद है। विकसित राजस्थानी शैली में सर्वत्र ऐसी आँखें पाई जाती हैं। यह आँख सोलहवीं शती के पूर्वार्ध में राजस्थानी शैली का एक दूसरा केंद्र बनने की सूचक है। यह केंद्र ब्रज होना चाहिए जहाँ उस समय वैष्णव पुनरुत्थान में पूरी सक्रियता आ चुकी थी। वहीं के कृष्ण-चित्रण में इन कटावदार आँखों का पहले पहल आलेखन हुआ होगा। क्योंकि यह उस काल के रसिकराय कृष्ण की छवि के अनुरूप है। अब भी नाथद्वारा के चित्रों में इसका अलेखन विशेष रूप से पाया जाता है। क्योंकि वहाँ के चित्रकार उसी परंपरा के हैं जो आरंभ से वल्लभसंप्रदाय से संबंधित हैं जिसका मुख्य केंद्र नाथद्वारा के पहले ब्रज था।"[37]

मध्यकालीन राजस्थानी चित्रकला के सभी चित्रों का विषय कृष्ण काव्य है अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि तत्कालीन कृष्ण काव्य और चित्रकला परस्पर अन्योन्याश्रित थे। काँगड़ा शैली के चीर हरण, निद्रामग्न नंद की रक्षा करते कृष्ण, बसौली चित्रशैली की विप्रलब्धा राधा, वासकसज्जा राधा, पुंछ शैली की उत्कंठिता अभिसारिका, वासकसज्जा, खंडिता आदि ऐसे ही चित्र हैं। इन दोनों कलाओं के विकास में भी आश्चर्यजनक समानता है। अष्टछाप कालीन चित्रकला में कारीगरी और चमत्कार कम काव्यात्मकता अधिक है जबकि इसके बाद से चित्रकला में स्त्रैणता और चमत्कार की प्रवृत्ति बढ़ती गई। पुरुषों के वस्त्रों में कंचुकी का प्रयोग होने लगा और स्त्री-पुरुष दोनों को जामे पहिनाए जाने लगे। अष्टछाप के कवियों की कला एक ओर स्वांतः सुखाय थी, दूसरी ओर भागवत तथा अन्य ग्रंथों से पौराणिक आधार उन्हें प्राप्त था। इसलिए इनकी शब्दचित्र योजना में रूढ़ियों तथा आत्मसंवेदना का अभूतपूर्व संयोग है। व्यक्ति चित्रों के रूप में राधा, कृष्ण तथा यशोदा को विषय बनाया गया है. तो सामूहिक चित्रों के लिए होली तथा अन्य पर्वोत्सवों को चुना गया है। शब्दों की यह अभिव्यक्ति मूर्तिकला तथा चित्रकला दोनों का आधेय बन जाती है—

"खेलत नंद आंगन गोविं।
निरखि निरखि जसुमति सुख पावति वदन मनोहर इंदु।
करि किंकिनी चंद्रिका मानिक, लटकन, लटकत भाल।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परम सुदेश कंठ केहरि नख विच-विच वज्र प्रवाल।
कर पहुंची पाइन में नूपुर तन राजत पट पीत।
घुटुरनि चलत अजिर महं विहरत मुख मंडित नवनीत।"[38]

इसी प्रकार प्रभातकालीन सौंदर्य तथा सात्विकता भी निम्नपद में बिखरी हुई है—

"जागिए ब्रजराज कुंवर कमल कुसुम फूले।
कुमुदवृंद संकुचित भये भृंगलता भूले।
तमचुर खगरौर सुनहु बोलत बन राई।
रांभिति गो खरकनि में बछरा हित धाई।
विधु मलिन रविप्रभास नर नारी।
सूर स्याम प्रात उठो बुज कर धारी।"[39]

बधाई आदि के रूप में सामूहिक उल्लास के चित्र, गोचारण के समय तथा वापस आते समय उन्मुक्त किशोर सौंदर्य के चित्र, ग्राम्य परिवेश का अंकन करते हुए चित्र, रास के समय नृत्यगान के वर्णन में ध्वनि, रंग और गति के चित्र संपूर्ण अष्टछाप काव्य में बिखरे हुए हैं। वर्णों का संयोजना पावस के चित्रों में उभरकर सामने आई है। बादलों की पृष्ठभूमि में कृष्ण की लहरदार पाग और राधा की चीर लहरिया शीतल पवन का चित्र प्रस्तुत कर देती है—

"लाल सिर पाग लहरिया सौ है।
तापर सुभग चंद्रिका राजत निरखि सखी मन मोहैं।
तैसाई चीर लहरिया पहने सोभित राधा प्यारी।
तैसाई घन उमड़ें चहुं दिसि तैं नंददास बलिहारी।"[40]

चतुर्भुजदास ने कृष्ण के पीतांबर और लाल पाग में प्रतिरूप रंग योजना का वर्णन किया है—

"आजु माई पीतांबर फहरात।
कुंडल लोल कपोल बिराजकत लाल पाग फहरात।"[41]

छीत स्वामी ने रंगों और ध्वनिजन्य सौंदर्य को निम्नपद में निरूपित किया है—

"रमकि झमकि झूलत में झमक मेह आयो।
नहिं सुरझत वातनि में।
नव पल्लव संकुलित फूल फल वरन वरन
द्रुम लतानि तर ठाढ़े भयो है बचाउ पातन में
मंद मंद झुलवति खंभनि लागि ओढ़े अंबर निज हातनि में।"[42]

गोविंद स्वामी के समय तक मध्यकालीन दरबारी वातावरण का प्रभाव काव्य पर पड़ना प्रारंभ हो गया था इसलिए स्वाभाविक सौंदर्य के साथ वैभव की झलक भी काव्य में दिखाई देने लगी थी। अष्टछाप के कवियों ने उस वैभव वर्णन में भी प्राकृतिक संस्पर्श द्वारा अपने काव्य को कृत्रिमता से दूर रखा है फिर भी यत्र-तत्र मुगलकालीन संस्कृति के चित्र स्पष्ट हो उठे हैं—

"सूथन रंग लाल अरू सेत चोलना कुल्है जरकसी अति मन भावत।
विविध भांति भूषन अंग सोभित के की भुजा पहिरावत।"[43]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

हिंडोरा, झूला आदि के प्रसंगों में भी राजसी वैभव का प्रदर्शन होने लगा था, शृंगार

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रसाधन चित्रों में सतरंगे लाल, सुनहले श्वेत और हेम वर्णों की संयोजना की गई है। रूपसज्जा में अलक तिलक को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। गोविंद स्वामी द्वारा प्रस्तुत चित्रों में 'मुगल कलम' का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। कुंभनदास ने भी वैभव और विभिन्न वर्णों का सामंजस्य प्रस्तुत किया है—

"पीत पट लाल सारी सुरंग सुछवि भरी।
तैसई मनि खचित खंभ भरुये विधि बनाई।"[44]

मध्यकालीन चित्रकला की सबसे प्रमुख विशेषता है हिंदू तथा यवन शैलियों का समन्वित स्वरूप। हिंदू नरेशों के दरबार में चित्रकला का विषय पौराणिक उपाख्यानों से ग्रहण किया गया है। तत्कालीन कृष्ण काव्य का योगदान इस क्षेत्र में सबसे अधिक है। कवियों ने कृष्ण के रूप में समसामयिक और परंपरागत वेशभूषा का मिश्रित प्रयोग बिना किसी संकोच के किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान की प्रतीति, प्राप्त करने, उनके रूप-सौंदर्य को ग्रहण करने के उद्देश्य से उन्होंने अपनी कविता का गठबंधन चित्रकला से जानबूझकर किया है। दोनों ही क्षेत्रों में प्रतिपाद्य और शैली की यह एकरूपता इस बात का प्रमाण है कि यह कवि चित्रकला में सिद्धहस्त थे। उनके भावना चित्रों में रूप-लावण्य,-रंगध्वनि आदि सभी तत्वों का समावेश मिल जाता है। संपूर्ण अष्टछाप काव्य में निर्मित यह चित्र राशि कवियों की उपलब्धि है। एक से एक सुंदर चित्र उपलब्ध हैं किंतु विस्तार के भय से उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता है।

संगीत कला

भारत में संगीत की अत्यंत प्राचीन परंपरा है। किंवदंती है कि शिव के डमरू से इसकी उत्पत्ति हुई और नारद ने सर्वप्रथम इसकी शिक्षा प्राप्त कर इसे विश्व में प्रचारित किया। नारद के अतिरिक्त तुंबरू, हा हा हू हू आदि संगीताचार्यों और ब्रह्मा, पार्वती, सरस्वती जैसे संगीत विशेषज्ञों का उल्लेख मिलता है। वैदिक युग में गान-वाद्य और नृत्य का प्रचार नाट्यकला के साथ हो गया था। रामायण काल में राम के पुत्र कुश और लव को वाल्मीकि द्वारा संगीत शिक्षा देने का उल्लेख है। महाभारत और पुराणों में संगीत का विशेद विवरण उपलब्ध है। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कहकर वेदों के साथ गान की महत्ता बतलाई है।

श्रीकृष्ण ब्रज संस्कृति के आधार पुरुष हैं। वे ब्रज की अन्य प्राचीन कलाओं की भाँति संगीत के भी प्रेरणा स्रोत हैं। श्रीकृष्ण द्वारा प्रचलित ब्रज का तत्कालीन संगीत पुराणों में वर्णित है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि संगीत विशिष्ट वर्ग तक सीमित न रहकर लोक अभिरुचि का परिचायक बन गया था। वीर योद्धा युद्ध कला के साथ-साथ संगीत में भी निपुणता प्राप्त करते थे। कृष्ण जैसे वेणु-वादन में प्रवीण थे, अर्जुन उसी तरह वीणा-वादन में। तत्कालीन साहित्य में एक ओर प्रद्युम्न, सांब, अनिरुद्ध, ऊषा जैसे अभिजात्य वर्ग की संगीतप्रियता का उल्लेख है तो दूसरी ओर ब्रजवासी गोप-गोपियाँ, राधा, ललिता, विशाखा तथा कृष्ण सखा श्रीदामा, तोष, सुबल आदि लोक संस्कृति के संवाहक वर्ग की संगीत कुशलता का उल्लेख है। कृष्ण का संगीत के क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान यही है कि उन्होंने वेदशास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत का समन्वय करने का प्रयास किया। कृष्ण का वंशीवादन, राधा का नृत्य, ललिता का वीणावादन और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विशारदा का मृदंगवादन ब्रज के लोक संगीत का आधार हैं। अष्टछाप साहित्य में इसकी गूँज प्रत्यक्ष सुनाई देती है।

वैष्णव धर्माचार्यों ने कृष्णोपासना के व्यापक प्रचार के साथ-साथ संगीत कला की उन्नति में उल्लेखनीय योगदान दिया। वल्लभाचार्य जी ने अपनी द्वितीय यात्रा में, गोवर्धन में श्रीनाथ जी की सेवा का शुभारंभ कर वहाँ कीर्तन के रूप में संगीत की सुनियोजित व्यवस्था की। गोवर्धन के ग्रामीण अंचल में ही कुंभनदास जैसे गायक उन्हें उपलब्ध हो गए। वार्ता में लिखा है—

"सो वे कुंभनदास कीर्तन बहोत नीके गावतो। गरो कुंभनदास कौ बाहौत सुंदर हतो।...सो कुंभनदास नित्य नए पद करिके श्री गोवर्धननाथ जी को सुनायौ करे।"[45]

इस घटना से स्पष्ट है कि कुंभनदास जो ब्रज के साधारण कृषक थे, संगीत की योग्यता रखते थे। कुंभनदास के गुरु का परिचय नहीं मिलता परंतु यह स्पष्ट हो जाता है कि संगीत विद्या की शिक्षा देने वाले ऐसे गुरु अवश्य थे जो जनसाधारण में संगीत का प्रसार करते थे। ब्रज का यह ग्रामीण तथा लोक संगीत ही मध्यकालीन संगीत के विकास की आधारशिला बना।

आचार्य वल्लभ ने कुंभनदास के सहयोग के लिए सूरदास और परमानंददास को नियुक्त किया। आचार्य संगीतज्ञ थे या नहीं इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता परंतु उनके ग्रंथों के कतिपय श्लोकों और गेय रचनाओं द्वारा यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि वे गायन कला से परिचित अवश्य थे। अष्टछाप की संगीत कला आचार्य विट्ठलनाथ के समय में चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

"उनकी योजना के अनुसार श्रीकृष्ण के लीला गुणगान (कीर्तन) और लीलानुकरण (रास) में संगीत को सम्मिलित किया गया। और उसे कृष्ण भक्ति का प्रमुख साधन बनाया गया था। इस प्रकार उन्होंने धर्मोपासना और धर्मप्रचार दोनों में संगीत का अनिवार्य रूप से उपयोग किया था। यह ब्रज के तत्कालीन संगीत के लिए उनकी महत्वपूर्ण देन थी।"[46]

अष्टछाप के आठों कवि कुशल संगीतज्ञ रससिद्ध गायक एवं आशु कवि थे। इन्होंने अपने भक्ति संगीत की भावधारा में समस्त देश को 'स्याम रस मज्जित' कर दिया। मानव जीवन की समस्त सौंदर्य भावना अष्टछाप के संगीत में साकार हो गई। संगीतज्ञ के रूप में गोविंद स्वामी का स्थान ऊँचा है परंतु अष्टछाप काव्य के माध्यम से संगीत को मुखर करने वाले सूरदास हैं। वे ब्रज के समस्त धार्मिक संगीतकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं। गोविंद स्वामी को मध्यकालीन संगीतज्ञ तानसेन का गुरु होने का गौरव प्राप्त है। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता के अनुसार तानसेन ने धमार गायकी गोविंद स्वामी से ही सीखी थी।

अष्टछाप के कवि रागों से सुपरिचित थे। भारतीय संगीत में रागों के भाव ऋतु व समय का वर्गीकरण किया गया है। जिसे इन कवियों ने पूर्णतः अपनाया है। विनय के पदों में विलावल कान्हड़ा, धनाश्री, नट केदार, सारंग, मल्हार, परज और विहगरो, सोरठ, आसावरी, देव गंधर, टोड़ी, झिंझोढ़ी, खंबावती, और मुल्तानी आदि दैन्य एवं विनय भाव प्रधान रागों का प्रयोग है। करुण प्रसंगों में केदार और गुणकली, शृंगार वर्णन में मालकोंस मालव विहाग विभास के द्वारा और हमीर, हर्षोल्लास और मनोविनोद के प्रसंगों में काफी, जैतश्री, कान्हरों, ललित गौडमलार, गौरी, भैरव, पूर्वी, संगरा और जै जैवंती और वीरता के प्रसंगों में मारू राग का प्रयोग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया गया है। शांत रस का राग जोगिया है।

अष्टछाप में समय और ऋतु सिद्धांत का पालन भी किया गया है। आठों झाँकियों और उनमें गाए जाने वाले कीर्तन पदों के सामयिक रागों की भी निश्चित व्यवस्था है। वल्लभ संप्रदायी मंदिरों में आज भी नित्योत्सव की झाँकियों के समय और कीर्तन पदों के राग निश्चित हैं। जैसे—

झाँकी / समय	राग
मंगला प्रातः 6 से 7 बजे तक	ललित भैरव विभास
शृंगार प्रातः 7 से 8 बजे तक	विलावल रामकली गुणकली
ग्वाल प्रातः 8 से 9 बजे तक	देवगंधार टोड़ी आसावरीं
राजभोग पूर्वाह्न 10 से 10 बजे तक	आसावरी सारंग
उत्थापन अपराह्न 3 से 4 बजे तक	धनाश्री भीम पलासी
संध्या भोग सायं 4 से 5 तक	गौरी पूरिया पूर्वी
संध्या आरती सायं 5 से 6 बजे तक	श्री जैतश्री
शयन रात्रि 6 से 7 बजे तक	यमन विहाग कामोद के द्वारा

उपर्युक्त यह विवरण परिवर्तनशील है।[47]

ऋतुओं के अनुसार भी तथा वर्षोत्सव की झाँकियों के अनुसार भी ररागों में परिवर्तन होता रहता है। जैसे होली के बाद ग्रीष्म की संधि में विभास, खट, भैरव आदि ठंडे राग गाए जाएँगे तो शिशिर में रामकली, ललित आदि उष्ण प्रकृति के राग। वर्षा में मेघमल्हार के पदों की अधिकता रहती है। बसंतऋतु में बसंतराग की प्रधानता रहती है, तो फागुन में महीने भर तक चलने वाली होली में, काफी राग की।

अष्टछाप में संगीत के सभी अंगों का उल्लेख पाया जाता है। संगीत का मूल नाद या ध्वनि में है। सूर काव्य में नाद प्रेम में बंधकर मृग के प्राण त्याग का उल्लेख है—

"जैसे मगन नाद रस सारंग बधत बधिक बनि बान।"[48]

परमानंद ने भी मुरली नाद के सम्मोहन में बंधी गोपियों का वर्णन किया है—

"वचन रसाल सुरति और भूली सुनि बन मुरलीनाद कुरंगी।"[49]

नाद पक्ष की विवेचना करते हुए अष्टछाप के कवियों ने संगीत के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है जैसे 'ग्राम' मूर्छना ताना राग आदि। संगीत के मूल सात स्वरों को ग्राम कहते

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक पहुँचने में स्वरों का आरोह-अवरोह मूर्च्छना कहलाता है। स्वरों का कलापूर्ण विस्तार या आलाप तान कहलाता है। स्कंद पुराण के काशी खंड में सात स्वर तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना, उनचास तान, एक सौ एक ताल, छह राग और प्रत्येक राग की पाँच-पाँच पत्नी रागिनियों का उल्लेख हुआ है।[50] सूरदास ने इसी भाव का वर्णन इस प्रकार किया है—

"तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छना कोटि उन्चास तान।
सर्व कला व्युत्पन्न अति यह समसरि को आन।"[51]

गोविंद स्वामी ने भी सुरों के प्रयोग से इस भाव को साकार किया है—

"सप्तसुर तीनि ग्राम इक्कीस मूर्च्छना बाइस सित मति राग मध्यरंग रख्यो।
सरगम प ध नि सा स स स स न न न न ध ध ध ध प प प प प
म म म म ग ग ग ग री री सा सा।"[52]

सूरदास ने सात सुरों को साधकर तान मिलाने का और कृष्णदास ने सुरों के गति भेद से स्वर संधान का उल्लेख किया है—

"सरगम सुनि कैं साधि सप्त सुरनि गाई।
अतीत अनागत संगीत बिच तान मिलाई।"[53]
"सप्तसुर गति भेद मिलवत बेनु सुरत संधान।"[54]
"सरिग मप धनि स्वर सप्त अलंकृत श्री राग गावै ब्रज भामिनी।"[55]

कुंभनदास, चतुर्भुजदास और गोविंद स्वामी ने भी सप्त स्वरों का उल्लेख किया है—

"स रि ग म प ध ध नि ग म प ध नि उघटित सप्र सुरनि।"[56]
"मुखर मधुकर निकर मिले मृदु सप्त सुर अधर पल्लव... ।"[57]
"षड्ज रिषभ गंधार 'सप्र सुरनि' मधिम लेत ग्र ग्र ल त त त होरी।"[58]

सप्त स्वरों से मूलतः हिंडौल, दीप भैरव, मालकोष श्री और मेघ रागों की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक की पाँच-पाँच रागिनियाँ मानी गई हैं इनमें भैरवी, नट, कान्हेड़ा, देश, केदारा, टोड़ी, गौरी, बसंत, आसावरी, बिलावली, भूपाली मुख्य हैं। प्रत्येक के अड़तालीस संतानियाँ मानी गई हैं। इस प्रकार संगीत का परिवार अत्यंत विशाल है। संप्रदाय में बत्तीस अथवा तैंतीस राग ही अधिक प्रचलित हैं। सूरदास ने "छहो राग छत्तीस रागिनी" कहकर रागनियों की संख्या 36 मानी है। सारावली में "ललिता ललित बजाई रिझावति" से लेकर "भोर भयो दाऊ जान्यो" तक[59] इन राग-रागिनियों का उल्लेख किया गया है।—ललित, पंचम, षट, मालकोष, हिंडोल, मेघ, मालव, सारंग, नट, सावंत, भूपाली, ईगन, कान्हरौ, अड़ाना, नायकी, केदारौ, सोरठ, गौडमलार, भैरव, विभास, बिलावल, देवगिरी, देशाख गौरी, श्री, जैतश्री, पूर्वी, टोड़ी, आसावरी, रामकली, गुनकली, सुधराई, जै जैवंती, सूहा सिंधूरा और प्रभाती।

नाममात्र की हेर-फेर के साथ चतुर्भुजदास ने भी 36 रागिनियों के नाम गिनाए हैं—मलार, ललित, पंचम, आसावरी, भैरव, मालव, टोड़ी, कल्याण, गुर्जरी, मालवा, गेडी, बिलावल, धनाश्री, रंगीली, खंमाच, देशाख, कान्हरों, गौड़ मल्हार, केदारौ, षट्मंजरी, रामकली गंधार, बराड़ी कुंकुम, कामोद नट, गुनकली माधवी, देस, विभास, हास, काफी, सोरठ, ईमन, जैजैवंती और सारंग

अष्टछाप काव्य में अनेक पदों में नाम से विभिन्न रागों का उल्लेख हुआ है, जैसे

"गावत केदारौ राग सप्त सुरनिसाज।"[61]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"राग कान्हरो सप्तसुर राजत गावत गीत रसाल।"[62]

"गावत नट नारायन राग जुवति जन खेलत फाग।"[63]

"वन में आवत गावत गौरी।"[64]

इसी प्रकार अहीरी, ईमन, कान्हारो, काफी गुंड मलार, गूजरि, मारू, मलार, मल्हार, विभास, बिलावल, श्री, सारेठ टोड़ी आदि रागों का भी नामोल्लेख हुआ है।

सूरदास ने ऐसे रागों का उल्लेख भी किया है जो वर्तमान काल में प्रयुक्त हो रहे हैं, जैसे—देसाख, सानुत, कर्नाट, वैराठी, पटपढी, रामगिरी राज्ञी, हठीली आदि। मुंशीराम के अनुसार "ऐसी राग-रागनियाँ या तो सूर की अपनी सृष्टि हैं या उनका अब प्रचार नहीं है।"[65]

गायन शैली में 'ध्रुपद' और 'धमार' शैली को अपनाया गया है। ध्रुपद शास्त्रीय गायन है तो धमार ब्रज के लोक जीवन का चित्रण है। चतुर्भुज स्वामी, छीत स्वामी, कुंभनदास और गोविंद स्वामी की रचनाएँ तो अधिकतर ध्रुवपद या ध्रुपद में ही हैं। इन रचनाओं के ऊपर रागों के साथ ध्रुवपद के अतिरिक्त चौताल और अठताल का सर्वत्र उल्लेख मिलता है। ध्रुवपद गायन में मृदंग की संगत की जाती है इसलिए कवियों ने उन्हीं के अनकूल ध्वनियों का समावेश किया है। जैसे—

"सुलभ संच गति लेत ग्रगत किट धिधिकिट द्रुम
द्रग द्रग द्रग बाजत मृदंग..."[66]

"ग्र ग्रत किट धु धु धृ धृ धृ न न न न।"[67]

"धि धि कर सुधिकर मृदु मृदंग बाजे।"[68]

सूरदास के अधिकांश पद ध्रुपद शैली में गाए जा सकते हैं। इन पदों में संगीतात्मकता की गहराई है। यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह कवि ध्रुपद गायन की शैली से भली-भाँति परिचित थे और संभवतः ध्रुपद गायन में कुशल भी थे। वल्लभ संप्रदाय में मंदिरों में गायन पद्धति का जो स्वरूप प्रचलित है वही इसका प्रमाण है। राग कल्पद्रुम में कृष्ण भक्त कवियों के नाम से उनके ध्रुपदों की रचनाएँ सम्मिलित हैं प्रामाणिक लिखित स्वरूप नहीं मिलता है परंतु विभिन्न घरानों में उनका परंपरागत रूप चला आ रहा है। पदों की योजना में जो बड़ी-बड़ी पंक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि ये पद गायक की दीर्घ श्वास युक्त स्वर साधना की कसौटी के रूप में लिखी गई है। स्वर की साधना ही ध्रुपद गायन की विशिष्टता है। ऐसे कतिपय पद द्रष्टव्य हैं—

"राजत री वनमाल गरे हरि आवत वन तैं।
फलनि सौं लाल पाग, लटकि रही वाम भाग सो छवि लखि सानुराग टरति न मन तैं।
मोर मुकुट सिर श्री खंड गोरज मुक मंजु मंड, नटवर वर भेष, धरैं आवत छवितैं।"[69]

"अति मंजुल जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरणि नंदिनी।
स्याम वरन झलकत रूप लोल लहर वर अनूप सेवित संतत मनोजवायुमंदिनी।
कुमुद कुंज वन विकास मंडित सुवास कूजत अति हंस कोक मधुर छंदिनी।
प्रफुलित अरविंद पुंज कोकिल कल सार गुंज गावन अलि मंजु पुंज विबुध वंदिनी।"[70]

"आलस उनींदे नैना घूमत आवत मूंदै,
अधिक [illegible]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जागे हो सुंदर स्याम ! रजनी के चारों जाम,
नेकहूं न पाये मानो पलक परन।
अधरनि रंग रेख उरहिं चित्त विसेख,
सिथिल अंग डगमगत चरन।
चतुर्भुज प्रभु कहां वसन पलटि आये,
सांचीये कहो गिरीराज धरन।"[71]

मध्यकालीन गायन प्रणाली में धमार का महत्वपूर्ण स्थान था। होली से संबद्ध गीतों में धमार ताल का प्रयोग किया गया है। इसके माध्यम से लोक संस्कृति के संगीतात्मक रूप को निरूपित किया गया है। इस शैली में लय का चमत्कार प्रधान है। विलंबित लय से शुरू करके इसे दुगुन, तिगुन और चौगुन में गाया जाता है। सूरदास ने धमार के पदों में होरी, कान्हरों, आसावरी, गौरी, काफी, सारंग, टोड़ी, धनाश्री, नट, नारायण आदि रागों का प्रयोग किया है। संगीतात्मकता के समावेश के लिए पुनरुक्ति का प्रयोग किया गया है। लोकगीतात्मक शैली में 'हो' 'री' आदि शब्दों की टेक ली गई है—

"खेलत हैं अति रसमसे रंगभीने हो, अति रस केलि विलास लाल रंग भीने हो।
जागत सब निसि गत भई रंगभीने हो, भले जु आये प्रात लाल रंग भीने हो।
सकुचन हो कत लाड़िलै रंग भीने हो, बहुनायक विख्यात लाल रंग भीने हो।"[72]

नंददास ने सूरदास की अपेक्षा धमार पदों में अधिक दीर्घ चरणों की संयोजना की है इनमें वसंत ललित टोडी, काफी, सारंग, मारू विहाग, गौरी कान्हरा आदि रागों का प्रयोग हुआ है—

"सुनि निकसी नव लाडिली श्री राधा राज किसोरि,
ओलनि युदुप पराग भरी रूप अनूपम गोरी, रंगन रंग हो हो होरी।
संग अली रंगरली कनक की लै पिचकारी,
मोहन मन की मोहिनी देति रंगीली गारी,
रंगन रंग हो हो होरी।"[73]

संगीत के क्षेत्र में गोविंद स्वामी का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनके धमार पदों की प्रसिद्धि बहुत अधिक थी। लय का चमत्कार उनके पदों में सर्वत्र मिलता है। टेक के अंतिम अंश की आवृत्ति उन्होंने प्रत्येक पंक्ति के साथ की है, कहीं-कहीं चरणों के बीच में भी इसका प्रयोग किया है। जिससे वे द्रुत लय में गाये जाने के योग्य बन गए हैं—

"सत ब्रजकुल के राइ लाल मन मोहना।
मन मोहना निकसे हैं खेलन फागु लाल मन मोहना।
नवल कुंवर खेलन भूषम सजे ॥मन.॥ विमल बसन पहिराई ॥लाल ॥[74]
स्याम अंग चले ।मन.॥ मुदित सखा संग ॥लाल ॥

धमार गायकी का गायन तानसेन ने गोविंद स्वामी से ही सीखा था। वार्ता साहित्य में इस विषय का उल्लेख किया गया है। धमार के गायन में लोकगीत शैली के तत्व भी सन्निहित हैं। गायन कला के विकास की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों के नाद सौंदर्य को संगीत का मूल मानते हुए अपनाया है। संसार में जिस शब्द अथवा नाद या नाम से भक्त की रसात्मकता की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रतीति होती है वह उसी को भगवान के नाद रूप की और प्रेरित करने वाला समझता है। इस नाते वह रसात्मक शब्द से अनुराग करता है। इसी सिद्धांत को लेकर भक्ति के आचार्यों ने अपनी भक्ति पद्धति में नाद-सौंदर्यपूर्ण संगीत को भक्ति के अंतर्गत एक साधन माना है। कृष्ण के नाम गुणादि का श्रवण-कीर्तन तथा उनके मुरली-नाद का संसार के नादों के बीच ध्यान ही शब्द योगियों के अनहद नाद-श्रवण मार्ग के अनुरूप भक्तों के नाद का रसीला मार्ग है।[75]

नाद मार्ग के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति की यह संकल्पना संगीत द्वारा प्राप्त अलौकिक आनंद की ओर संकेत करती है। संगीत की प्रधानता स्वीकार करने के कारण ही अष्टछाप कवियों ने मुक्तक शैली का अनुकरण किया है। विभिन्न राग-रागिनियों, लय-ताल, शब्द आदि द्वारा अपने विशद संगीत ज्ञान का परिचय दिया है।

संगीत, वास्तव में गायन-वादन और नृत्य का समाहार है। गायन का निकट संबंध वादन से है और इन दोनों का घनिष्ठ संबंध नृत्य से है इसलिए अष्टछाप में इन तीनों ही अंगों का विशदता से चित्रण किया गया है। बजने वाले उपकरणों का विधिवत् प्रयोग ही वादन है। गान और वाद्य यद्यपि अन्योन्याश्रित हैं तथापि 'वाद्यकला' का स्वतंत्र प्रयोग भी किया जाता है। वाद्य यंत्रों का उल्लेख अधिकतर श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव तथा उनकी लीलाओं से संबंधित बसंतोत्सव, डोलोत्सव, रासोत्सव और होलिकोत्सव के पदों में है। विभिन्न उत्सवों में लीला के अनुरूप वाद्य यंत्रों का चयन किया गया है। उदाहरणार्थ जन्मोत्सव में हर्ष व उल्लास को प्रकट करने वाले, उच्च ध्वनि वाले वाद्यों का वर्णन है तो रास के समय आनंद उत्पन्न करने वाले मंद और मधुर ध्वनि वाले वाद्यों का। इसी प्रकार होली के अवसर पर तुमुल ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्यों का उल्लेख किया गया है।

मुख की वायु, हाथ की अँगुली अथवा किसी अन्य साधन से स्वर करने वाले उपकरण यंत्र अथवा बाजे कहलाते हैं। परमानंद और चतुर्भुजदास दोनों ने "पंच सबद बाजे बाजत..."[76] कहकर वाद्य यंत्र और बाजे को समानार्थी माना है। सूरदास और कृष्णदास के पदों में अनेकों वाद्ययंत्रों के नाम मिलते हैं। सारावली में 26 वाद्ययंत्रों का उल्लेख है—

"रूंज मुरज, डफ, ताल, बाँसुरी, झालर, बीन, रबाव, किन्नरी, अमृतकुंडली, यंत्र, स्वरमंडल, चलतरग, पखावज, आवज, उपंग, शहनाई, सारंगी, कांस्य ताल, कठ ताल, शृंगी, मुख चंग, खंजरी, पटह, प्रणव और नफीरी।"[77]

कृष्णदास द्वारा रचित धमार के एक पद में इससे भी अधिक 28 वाद्य यंत्रों का नाम दिया गया है—

"बीन, रबाव, किन्नरी, अमृतकुंडली, यंत्र, बाँसुरी, स्वरमंडल, पिनाक, महुवरि, जलतरंग, मदन भेरी, राय गिड़गिड़ी, शहनाई, कठताल, ताल, झाँझ, खंजरी, झालर, शृंगी, शंख, मुखचंग, डफ, डिमडिम, मृदंग, निशान, नगाड़ा और दुंदुभी।"[78]

चतुर्भुजदास ने षट ऋतु वार्ता ग्रंथ में कृष्णदास से भी अधिक 36 वाद्य यंत्रों का उल्लेख किया है—

"बीनाची, मुरली, अमृतकुंडली, जलतरंग, मदन भेरी, धोंसा, दुंदुभी, निशान, नगाड़ा, शंख, घंटा, मुख बंग, शृंगी, खंजरी, ताल, कठताल, मंजीरा, मुहवरि, थाली, झालर, ढोल, ढाक, डिमडिम, डफ, मृदंग, गिड़गिड़ी, पिनाक, रबाव यंत्र, शहनाई, स्वरमंडल, सारंगी, दुवारी, करताल, तुरही और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किन्नरी।"—[79]

बसंत के एक पद में कृष्णदास द्वारा विभिन्न वाद्ययंत्रों का आकर्षक वर्णन किया गया है—

"तहां बाजत ताल मृदंग चंग, बाजै ढफ सहनाई अरू उपंग।
बीन रबाव किन्नरी की घोर, बिच श्री मंडल मुरली की शेर।
तंबूरा सारंगी सितार संग, खंजरी कठताल ढलोकी रंग।
अछवट महुवर सुर मिलाह झांझ झमक बाजै गिने न जाई।"[80]

अष्टछाप काव्य में वाद्य के उल्लेख के साथ उनके बोलों का भी वर्णन किया गया है। कृष्णदास ने अनेक पदों में इस प्रकार के नाद-सौंदर्य को अभिव्यक्त किया है—

"छिलांग धिलांग तकि तकि धी धीकर, धी धीकर,
थुं थुं ना ना गिड गिड बाजै हो मृदंग।"[81]
"धिधिकर धिधिकर बाज मृदंग, डि डि मक डमक डफ मिलहि संग
ठ ठ ठन न ठनन करै ताल रंग गग गनन गनन बाजै उपंग।"[82]

इन पंक्तियों में एक साथ मृदंग, डफ, ताल और उमंग के बोल वर्णित किए गए हैं।

वाद्य यंत्रों की चार जातियाँ तत्, सुषिर, आनंद एवं घन होती हैं। अष्टछाप में वर्णित वाद्य इन सभी जातियों के हैं इनमें से अधिकांश भारतीय वाद्य हैं। कुछ विदेशी वाद्य भी हैं जिनका वर्णन यह प्रमाणित करता है कि मुगलकालीन संस्कृति के प्रभाव से ब्रज की लोक संस्कृति अछूती नहीं रह सकी थी। अष्टछाप के काव्य में भी लोक-संस्कृति के माध्यम से मुगलकालीन वाद्य प्रवेश कर चुके थे और संप्रदाय द्वारा मान्यता भी प्रदान कर दी गई थी।

तत वाद्य पीतल या लोहे के तार अथवा तांत की डोरी से बंधे होते हैं। इन्हें अँगुली, लकड़ी, हाथी दाँत या मिजराब से बजाते हैं। अष्टछाप में वर्णित अमृत कुंडली, किन्नरी जंत्र, तुंतुर बीन, रबाव सुर इसी श्रेणी के हैं जिनका उल्लेख अधिकांश कवियों ने किया है—

"अमृत कुंडली और सुरमंडल आउझ सरल उपंग।"[83]
"बाजत बेनु रबात किन्नरी··· ।"[84]
"बाजत ताल मृदंग झांझ डफ आवाज बीना किन्नेरस।"[85]
"बेनु बीना ताल उघटित मुरज मृदंग रबाव।"[86]

इन सभी वाद्यों में वीणा प्रमुख है जिसके अनेक प्रकारों का प्रचलन ब्रज में था। उस समय सामान्य रूप से इसे बीन कहा जाता था। कीर्तनकारों ने वीणा और बीन दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। वीणा के विविध प्रकारों में से रुद्र वीणा ही अष्टछाप कवियों की बीन या बीना है। इसमें सात तार और बाइस श्रुतियों को बताने वाले बाइस पर्दे लगे रहते हैं। किन्नरी और पिनाक भी वीणा के प्रकार थे। यंत्र और दुलारी वाद्य भी क्रमशः पंचतंत्री और द्वितंत्री वीणा थे। आइने अकबरी में भी यंत्र नामक वाद्य का उल्लेख मिलता है। वीणा के वादन में कठिनाई होने पर उसके स्थान पर सारंगी और रबाव का प्रचलन हुआ। सारंगी नाम के अनुरूप भारतीय वाद्य है परंतु रबाव निश्चित रूप से विदेशी वाद्य है। यह दोनों ही अष्टछाप कवियों के प्रिय वाद्य हैं।

वायु के दबाव से बजने वाले वाद्यों को सुषिर वाद्य कहते हैं। इनका भीतरी भाग पोला होता है जैसे वेणु, अलगोजा, शंख, शृंगी, विषाण, तुरही, शहनाई, महुवरि, मुखचंग आदि। इनमें सहनाई विदेशी वाद्य है। अष्टछाप कवियों ने सर्वाधिक उल्लेख बाँसुरी का मुरली, बेनु, बंसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आदि नाम देकर किया है—

"महुवरि चंग जो बांसुरी बजावत गिरिधर लाल।"[87]
"बेनु धरयौ कर गोविंद गुननिधान।"[88]
"गावत मुरली नीकें गति मिलवत।"[89क]
"बाजे बहुविधि बाजें ताल मृदंग उपंग झांझ झालरी, किन्नरी, मुरली डफ मुख चंग।"[89ख]
"ऐसी बंसी बाजै वन घन में।"[90]
"बाजत ताल मृदंग झांझ डफ तूर भेरि सहनाई।"[91]

आनद्धवाद्य लकड़ी, मिट्टी अथवा धातु के पोले खोल पर चमड़ा मढ़कर बनाए जाते हैं। इन्हें हाथों से अथवा किसी वस्तु के आघात से बजाया जाता है। अष्टछाप में ऐसे वाद्यों के रूप में, आवज, उपंग, चंग, डफ, डमरू, डिमडिमी, डौंडी, दुंदुभि, धौंसा, निसान, पखावज, पटह, पनव भेरी, मृदंग, मुरंज और रूंज आदि का उल्लेख किया गया है—

"बाजत आवझ उपंग बाँसुरी मृदंग चंगा।"[92]
"मधुर जंत्र बाजत मुख चंगा।"[93]
"बाजै ताल मृदंग झांझ डफ मधि मुरली धुनि थोरी हो।"[94]
"संख बंस झांझ डफ मृदंग ढोलना।"[95]
"बीन रबाव बांसुरी आवाज झांझ ताल मुख चंग।
भेरी पटह अधौटी महुबरि बाजत सरस मृदंग।"[96]
"बाजत दुंदुभि भेरी पटह नीसान सोहाये।"[97]
"बाजत चंग मृदंग अघोटी पटह झाँझ झालर सिर घोरी,
ताल रबाव मुरलिक बीना मधुर सबद उधटत धुनि धोरी।"[98]
"मधुर खंजरी पटह प्रनव मिली सुख पावत भंग।"[99]

अष्टछाप के प्रत्येक कवि ने अनेक पदों में भिन्न-भिन्न वाद्यों का नामोल्लेख किया हैं। विषय-विस्तार के भय से उसका संकेत करना ही पर्याप्त है। मृदंग और पखावज को कुछ विद्वानों ने एक ही माना है। परंतु अष्टछाप में अलग-अलग वाद्यों के रूप में इनका उल्लेख हुआ। लोक-संस्कृति में आवाज को हुडुक भी कहा गया है।

धन-वाद्य, पीतल, लकड़ी, कांसे के बने हुए वाद्य है। जिन्हें किसी वस्तु से चोट करके बजाया जाता है। यह ताल वाद्य भी कहलाते हैं।धन वाद्यों के रूप में अष्टछाप के कवियों ने करताल, गिड़गिड़ी, घंटा, झांझ, झालरी, करकरी, जलतरंग, ताल और घुंघरू आदि का वर्णन किया है—

"मदन भेरि अरू आई गिरगिरी सुरमंडल झनकार।"[100]
"बाजत घंटा ताल बीन झालरी संख मृदंग मुरली।"[101]
"बाजत झांझ झालरी महुवरि उड़त गुलाल अबीर सुबासी।"[102]
"ताल, पखावज भेरि संख धुनि गावत।"[103]
"बाजे बहुत बजाव ही डफ दुंदुभी कठताला हो।"[104]
"सुर सुरमंडल जलतरंग मिली करत मोहिनी मंद।"[105]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"मदन भेरि सुरबीन गिड़गिड़ी झांझि उपंग।[106]

इस प्रकार वादन कला के अंतर्गत विभिन्न वाद्यों के उल्लेख से अष्टछाप के कवियों में अपने विस्तृत ज्ञान और सूक्ष्मपर्यवेक्षण क्षमता का परिचय दिया है। नृत्योत्सव के रूप में उन्होंने अधिकतर वीणा, मृदंग, वंशी, झांझ और शंख का प्रयोग किया है। विशेष अवसरों पर वाद्यों की संख्या में वृद्धि है।

नृत्यकला का संगीत से घनिष्ठ संबंध है। गायन तथा वादन से यह और भी अधिक आकर्षक हो जाती है। नृत्य सार्वभौमिक आदिम कला है। अपने उल्लास व आनन्द को अभिव्यक्त करने की यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया जब ताल, लय और भाव प्रदर्शन के साथ संपन्न की जाती है तभी उसे नृत्य कहा जाता है। नृत्य में मुख से गीत का गायन, हाथों की विभिन्न मुद्राओं से अर्थ का प्रकाशन, नेत्रों से भाव का स्पष्टीकरण और पैरों से ताल व लय का अनुसरण किया जाता है। नृत्य तथा नाट्य ब्रज की लोक-संस्कृति का अभिन्न अंग हैं।

श्रीकृष्ण ब्रज की अन्य प्राचीन कलाओं की भांति नृत्य एवं नाट्य के भी प्रेरणा स्रोत रहे हैं। इन कलाओं में दक्षता के कारण ही उन्हें 'नटनागर', 'नटवर', 'नृत्यगोपाल' आदि नामों से संबोधित किया गया है। ब्रज की लोक-संस्कृत में उस समय भी 'तांडव' और 'लास्य' नृत्य के रूप में प्रचलित थे। कृष्ण बाल्यकाल से ही दोनों प्रकार के नृत्यों में पारंगत थे। कालिय नाग के फणों पर बालकृष्ण का नृत्य, तांडव नृत्य का तथा गोपियों के साथ रास, लास्य नृत्य का उदाहरण है। अष्टछाप में भी इन दोनों प्रकारों का उल्लेख किया गया है—

"लास्य-चरित बहु तांडव-भेद विपुल सप्त स्वर सहित मुरली सुर गान।
तत्त थेइ थोंगनि सब्द सचु अलापे जुबति-बृंद सुरति बंधान।"[107]

ब्रज के सभी धर्माचार्यों एवं भक्तों ने नृत्य एवं नाट्य को भी अपनी उपासना पद्धति में सम्मिलित किया था। इनके सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों अंगों में समुचित अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को कृष्ण के माध्यम से आभिव्यक्त किया था। इन्होंने रास के परंपरागत रूप का पुनरुद्धार किया। श्री वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी के मंदिर में धार्मिक प्रवचन के अवसर पर 'रास पंचाध्यायी की कथा-वार्ता और वर्षोत्सव संबंधी पदों में रास के गायन की परंपरा प्रारंभ की। अष्टछाप के सभी कवियों ने रास का कलात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। सूरदास ने विनय के पद 'अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल" में नर्तक की वेषभूषा, गले में माला, पग में नूपुर, माथे पर तिलक, कमर में कसकर फेंटा बांधना, पखावज आदि वाद्यों की ताल पर नृत्य का उल्लेख किया है।[108] नृत्य के बोलों के साथ संगीत के पारिभाषिक शब्द का तथा अंग संचालन का सुंदर वर्णन इन कवियों ने प्रस्तुत किया है। कतिपय उदाहरण इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। इन सभी उदाहरणों में नृत्य के साथ मृदंग आदि वाद्यों के बजने का उल्लेख भी विस्तार से किया गया है—

"सुलप उरप तिरप बंद बदन जोति थकित चंद
गिडि गिडि ता गिडि गिडि ता थेई मिलइ तान।
द्रं द्रं द्रण द्रण मृदंग तिति किट तालावलि,
षडजादिक सुघर विमल स्वर जाति संधान।"[109]
"त त थेई ता ता थेई सब्द सकल उघट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उरप तिरप गाति परै पग की पटक।"[110]

"नागर नंदलाल कुंवर मोरनि संग नाचै, कूचन कटि किं किनि कल नूपुर पग सांचै।
उरप तिरप सुलप लेत धरत चरन सांचै, बार बार हरखि निरखि चंचल गति राचै।"[111]

"अग्रत किट धुं धुं धुं धुं धुं न न न न नृतत रसिक वर आवत गोधन संग।
लाल काछनी कटि किंकिनी पग नूपुर रूनझुनात सीस टिपारो अति खरोई सुरंग।
उरप तिरप चंद चाल मुरलिका मृदंग ताल, संग मुदित गोप बाल गावत तान तरंग।"[112]

नृत्य करने वाली ब्रजबालाओं के वस्त्राभूषणों की चर्चा भी अष्टछाप काव्य में की गई है। आर्कषक वेशभूषा नृत्य के सौंदर्य को द्विगुणित कर देती है—

"पहिरे चीर सुरंग सुरी चुह चुह चूनरि बहु रंगनो।
नील लंहगा लाल चोली कसि केसरि अंग सुरंगनौ॥
नवसत साजि सिंगार नागरी मनिमय भूषन मंग नौ॥[113]

"आजु स्यामा बनी री। स्याम रंगे।
पहिरि तन कंचुकी नील सारी जरी,
विविध मोतिनि गुही सुभग भंगे।"[114]

अष्टछाप कवियों ने रास के माध्यम से नृत्य एवं कला को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया। रास के पदों को लीला कहा गया और इनमें अभिनय तत्व को विशेष रूप से सम्मिलित किया गया। रास का प्रादुर्भाव और आरम्भिक विकास एक लोकनृत्य के रूप में हुआ। ब्रज का यह प्राचीन नृत्य मंडलाकार रूप में एक नर्तक और अनेक नर्तकियों के साथ संपन्न होता था। प्रायः उसे हल्लीसक नृत्त का एक प्रकार मान लिया जाता है। परंतु पर्याप्त समानताएं रखते हुए भी दोनों में अंतर है। अष्टछाप काव्य में रास के जिस रूप में जिस नृत्य का वर्णन किया गया है। वह हल्लीसक नहीं है। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार, "हल्लीसक शब्द का उद्‌गम यूनानी इलीशियन नृत्यों से ई. सन् के आसपास हुआ जान पड़ता है। कृष्ण के रास नृत्य और हल्लीसक नृत्य इन दोनों की परंपराएं किसी समय एक-दूसरे से संबद्ध हो गई थीं।"[115]

'रास' लास्य नृत्य का प्रतिरूप था। यह श्रृंगार प्रधान सुकुमार नृत्य है जिसके प्रचार एवं प्रसार का पूरा श्रेय कृष्ण काव्य को है। श्री विट्ठलनाथ जी के प्रयासों से इसका विकास शीघ्रता से हुआ। अष्टछापी कवियों ने रास नृत्य से संबंधित अनेक सुंदर पदों की रचना की। नृत्य की विविध भंगिमाओं और उल्लास की अभिव्यक्ति इन पदों में दर्शनीय है—

"उचटत अवतंस, उघटत तत्त थेई थेइ थेई थेइ
बोलत डोलत है बौं जोरिघन जु दामिनी।
होडा होडी लाग निरखत सुख नैन देत,
उरप सुलप लेत दोउ सरस भामिनी।
कृष्ण दास प्रभु की प्यारी चक्रितमान फिरती न्यारी… ।"[116]

रास का पारंपरिक रूप में वर्णन अष्टछाप काव्य में हुआ है। मंडलाकार नृत्य के चित्र यहां उपलब्ध हो जाते हैं—

सप्त सुरमि की जाति अनेक, नीकै मिल वति राधा एक, मन कोह्यौ पिय कौ सुधर।
छंद सुबानि के भेद अपार, भरति कुंवरि मिले झपतार, कह्यौ सबै संगीत में"[117]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"रास रंग नृत्य मान, अद्‌भुत गति लेत तान"[118]
"ब्रज बनिता मधि रसिक राधिका बनी सरद की राति हो,
निरतत तत थेइ गिरधर नागर गौर स्याम अंग कांति हो।
इक इक गोपी विच-विच माधो बनी अनपूम भांति हो।[119]
"नृत्तति सुधंग अंग संग-संग राधिका, गिडि गिडि ता तत् थेई थेई रास रंगिनी।
मंडल मध्य नाइक नाचत मधुर-मधुर मुरलि बाजत सप्त स्वर सुतान मान वर सुधंगिनी।
नागर नागरी उरप लेत षड़जादिक स्वर हिं देत
चचचचचच चुपटि चुपटि बर उपंगिनी।
गिडि गिडि थोंग थोंग थोंग थोंग तितिकट तालावली
दो दो दो दुननि दुननि तालमृदंगिनी।"[120क]
"नृत्य गुनी अनेक गुन भरे गावत जिय है है आवेस।"[120]

रास को नृत्य के अतिरिक्त नाट्‌य से अथवा लीला से संबद्ध करने वाले कवियों में सूरदास और नंददास प्रमुख हैं। सूरदास ने रास संबंधी सर्वाधिक पदों की रचना की। इन पदों में लीला तत्व विपुल परिमाण में विद्यमान हैं। नाट्‌य तत्व और रसात्मकता की दृष्टि से यह पद बेजोड़ है। "बूझति स्याम कौन तू गौरी"[121] पद इसका प्रमाण है। नंददास के कीर्तन पदों में भी रास के सुंदर पद हैं। उन्होंने रासलीला विषयक रचनाएं भी लिखी हैं। गोवर्धन लीला, दशम स्कंध आदि रचनाएं इसी कोटि की हैं। स्याम सगाई, रुक्मिणी मंगल, सुदामा चरित में भी लीला-तत्व प्रचुरता से उपलब्ध है। भागवत पुराण की रास पंचाध्यायी से ज्ञात होता है कि जब रास के मध्य श्रीकृष्ण अंतर्धान हो गए तब उनके विरह में गोपियों ने उनकी लीलाओं का अनुकरण किया। यह अनुकरण ही रासलीला या नृत्य नाट्‌य का प्रेरणा स्त्रोत बना। अष्टछाप साहित्य में रास और रास लीला दोनों ही विषयों का सम्यक् चित्रण पाया जाता है। अष्टछाप में वैसे भी कृष्ण और उनसे संबंधित घटनाओं की प्रमुखता है अतः लीला तत्व स्वतः आ गया है। फिर भी माखन चोरी, दान लीला, पनघट लीला में यह तत्व अधिक मुखर हुआ है। नाट्‌य और काव्य के माध्यम से संस्कृति एवं लोक-संस्कृति दोनों का उद्‌घाटन करते हुए अष्टछाप काव्य में इन दोनों की अभिन्नता का निरूपण किया गया है।[122] अष्टछाप के कवि भक्त थे इसलिए उनके काव्य का विषय अपने आराध्य का लीला वर्णन रहा है। लीला वर्णन में ही उत्तम काव्य के सभी लक्षणों का समावेश करके उन्होंने अपनी भाव प्रवणता का परिचय दिया है।

प्रसाधन कला

स्वयं को सुसज्जित और आकर्षक बनाना मानव मन की स्वाभाविक दुर्बलता है। सभ्यता के विकास के साथ यह प्रवृत्ति कला के रूप में परिवर्तित हो गई। प्रसाधन के अंतर्गत परिधान, आभूषण तथा मंडन की कलाएं आती हैं। प्रसाधन अपने संकुचित अर्थ में अंग संस्कार का द्योतक है। अंग संस्कार शृंगार के लिए आवश्यक है। अंग संस्कार अथवा मंडन के पश्चात वस्त्र तथा आभूषण धारण किए जाते हैं। पुरातन ब्रज में आकर्षक वस्त्राभूषण के निर्माण के साथ ही उन्हें धारण करने की कला भी प्रचलित थी। अष्टछाप काव्य में लोक जीवन में व्यापक रूप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रवृत्ति का प्रतिनिध्वि किया है। सेवा विधि के अन्तर्गत शृंगार को सम्मिलित करके प्रसाधन कला का विकास किया गया है और ठाकुर जी के साथ उसे संबंद्ध करके ब्रज की जीवन पद्धति का अंग बना दिया।परिधान तथा आभूषण किसी भी समाज की भौतिक उन्नति को प्रदर्शित करते हैं इस दृष्टि से ब्रज समाज के वस्त्राभूषण तत्कालीन वैभव और संपन्नता को प्रदर्शित करते हैं। प्रसाधन से संबंधित परिधान, आभूषण और मंडन कलाओं का विवेचन ही अब किया जा रहा है।

परिधान कला

इस कला का संबंध वस्त्रों की संरचना से है। वस्त्र व्यक्तिगत रुचि और सामाजिक स्थिति के सूचक हैं। प्रत्येक देश व समाज की वेशभूषा पृथक-पृथक होती है और वह उस समाज की दैनिक जीवन पद्धति को अभिव्यक्त करती है। ब्रजलोक के संदर्भ में भी यह तथ्य शत-प्रतिशत सही है। ब्रज की जलवायु उष्णता प्रधान है और उसी के अनुरूप वस्त्रों का विधान किया गया है। अष्टछाप काव्य में सामान्य जन-जीवन में प्रचलित वेशभूषा में सभी प्रकारों का वर्णन मिल जाता है। उन्होंने अपने आराध्य कृष्ण और स्वामिनी राधा के लिए ऋतुओं के क्रम तथा पर्वों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के सूती, रेशमी व ऊनी वस्त्रों का उललेख किया है। उनके वर्णन में राजन्य और लोक दोनों प्रकार की संस्कृतियों की झलक हैं, इसके साथ ही तत्कालीन मुगल संस्कृति का प्रभाव भी वर्णित किया गया है। गोप, ग्वालों तथा उनके बालकों के वस्त्रों के वर्णन द्वारा साधारण प्रजाजनों की वेशभूषा पर भी प्रकाश डाला गया है। परंतु इस ओर इन कवियों का झुकाव अधिक नहीं है। हां, बाल कृष्ण, किशोर कृष्ण और गोप-गोपियों के परिधानों का विस्तृत वर्णन अवश्य मिल जाता है।

वस्त्र के लिए 'बसन', 'अम्बर', 'कापर', 'पर' या 'पांटबर' तथा 'चीर' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'कापर' या 'कापरा' शब्द का प्रयोग बिना धुले कोरे कपड़े के लिए किया जाता था। इस शब्द का प्रयोग सूरदास ने किया है—

> *"काठौ मोर कापरा"*
> *'कापर दान पहिरि तुम आए।"*[123]
> *"पाट पांटबर" खासा झीनों जैसो आदि मन भायौ"*[124]
> *कनक बसन कंचन के भूषण"*[125]
> *"ब्रजजन देत विविध पर भूषण फूले अंग न समाई।"*[126]
> *"संपति देहु लेहुं नहि एकौ अन्न वस्त्र किहि काज।"*[127क]

चीर शब्द संस्कृत के चरि से बना है यह प्रायः लंबे और बड़े वस्त्र के रूप में चुनरी या साड़ी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

> *"पहिरै आभूषण चीर"*[127ख]
> *" लै सब चीर कदम चढ़ि बैठे...*[127ग]

वस्त्र भी अनेक प्रकार के वर्णित किए गए हैं। सूती वस्त्रों में 'तनसुख' [illegible] और खासा नाम के प्रकारों का उल्लेख किया गया है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"तनसुख सारी पहिरि झीनी "
"गादी सुरंग सिर ताफता सुंदर लरे बांह छवि न्यारी"
"पाट पाटंबर खासा झीनो"[127घ]

रेशमी वस्त्रों के लिए पट पाट पटोरे शब्दों का प्रयोग हुआ है रेशम शब्द का प्रयोग फारसी प्रभाव को दर्शाता है—

"आके मति नंदनंदन से ढकि लइ पीति पटोले"
"अंग अरगजी पटोरी राजति छबि निरखत रीझत ठाठे हरि"
"पंच रंग रेशम लगाउ हीरा मोतिनि मढ़ाउ"[127छ]

ऊनी वस्त्रों में कमरी या 'कामरि' उल्लेखनीय है। कृष्ण के साधारण ग्वाल-बालों की तरह कंबल या 'कामरि' धारण करने का उल्लेख किया गया है—

"देहु कान्ह कांधे को कंबर"
"बन बन गाय चरावत डोलत कांधे कामरिया राजे।"[127ज]

यह काली कामरि निर्धनों का जाड़ा काटने का साधन थी। चर्म कपड़ों, मृग-छालादि का उल्लेख किया है।[128]

वल्लभ संप्रदायी शृंगार विधि के अनुसार ठाकुरजी के श्रीमस्तक के आठ प्रमुख परिधान निश्चित किए गए हैं। 'मुकुट', 'सेहरा', 'टिपारा', कुल्हा, पाग, दुमाला, फेंटा और 'पगा' (ग्वाल पगा)। इनके अतिरिक्त 'कलगी', 'तुर्रा', 'कतरा', 'चीरा', 'लूम', टोपी और 'खोई' भी हैं। ऊर्ध्वांगों के परिधानों में अंगरखा बाधा, जामा, केछिनी, झगुली, एकलाई एवं पटका है। अधो अंग के परिधानों में जांघिया, तनिया, धोती, पीताम्बर, परदनी, आड़बंद, मल्लकाछ, सूथन और मोजा है।

स्वामिनीजी के परिधान में धोती, साड़ी, ओढ़नी, चोली, अंगिया, अंतरौटा तथा घाघरा का उल्लेख है। इन सब वस्त्रों के निर्माण में पर्याप्त कुशलता तथा चातुर्य का प्रयोग किया जाता था। उस समय तक जरी और कमख्वाब जैसे वस्त्रों का प्रचलन पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ था और लोकजीवन में उन्हें वैभव के प्रतीक रूप में स्वीकार कर लिया गया था। इसलिए सूर ने कुछ स्थानों पर इसका वर्णन भी किया है जैसे—

"पंचरंग रेसम लगाउ हीरा मोतिनि मढ़ाउ बहुविधि
जरि जराउ ल्याउ रे जरैया।"[129]

जड़ैया द्वारा अपनी कला का प्रदर्शन कृष्ण के पालने-बनाने के संदर्भ में किया गया है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण की 'ताजी घोड़ी' की जीन पर जरी के काम का वर्णन भी मिलता है—

"जीन जरित जराव पाखरि लगी सब मुक्ता लरी।"[130]

सेवा विधि में वर्णित वस्त्रों के साथ-साथ अष्टछापी कवियों ने राधाकृष्ण तथा गोप ग्वालिनों के माध्यम से लोक-संस्कृति में प्रचलित वस्त्रों का उल्लेख भी किया है। आराध्य के बाल्यावस्था तथा युवावस्था के चित्रों का वर्णन करते समय तत्कालीन ब्रज समाज में बालकों, किशोर, किशोरियों के वस्त्रों का विवरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार नंद, यशोदा और गोप-गोपियों की वेशभूषा का वर्णन करते समय धनी तथा सामान्य वर्ग के स्त्री-पुरुषों के परिधानों का वर्णन किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन करते हुए बालकों के वस्त्रों का वर्णन विशदता से अष्टछाप के कवियों ने किया है। यह वर्णन इतना स्वाभाविक है कि पीत ढगुलिया पहने कठुला बघनहा धारण किए बालकृष्ण करधनी और पैजनि बजाते हुए ब्रज के घर-घर में घुटनों चलने लगे। बालकों के वस्त्रों में उपरैन, काछनी, चोलना, झंगा, झंगुलि या झंगुलिया[131] तनिया, निचोल, पटुका, पामरी, पिछौरी, पीतांबर, बगा और सूथन का उल्लेख किया गया है—

"सिर पर मुकुट पवीत उपरैना ... कोटि पीताम्बर लाल उपरना माथे पाग"[132]
"सीस मुकुट काछिनी पीत बसन उर धारो।"[133]
"काछनी कटि अति सुदेस लाल अंबर सोहै।"[134]
"पीत चोलना स्याम कटि सोभित पहिरें पीत झगुलिया सुदेस"[135]
"पीत झगुलिया लाल तनियां ... ।"[136]
"आढ़ै पीरी पामरी पहिरे लाल निचोल ... ।"[137]
"पहिलो दाव परयौ स्यामा कौं पीत पिछौरी हारी ... ।"[138]
"माथे कै चढ़ाइ लीनो लाल की बगा ... ।"[139]
"सूथन लाल सेत चोलना कुल्है जरकसी अति मन भावत।"[140]
"सूथन कटि चोलना अरुन रंग पीतांबर की गाती ... ।"[141]

पुरुषों के परिधान में मुख्यतः दो या तीन प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है। ऊष्ण जलवायु के कारण अधिक वस्त्रों की आवश्यकता इस प्रदेश में नहीं होती है। परंतु वस्त्रों के कटाव-छटाव में विविधता अवश्य मिलती है। आकर्षक वस्त्रों का निर्माण ब्रज की परिधान कला की विशेषता है। धोती, काछनी या पट शरीर के अधोभाग में पहनने वाले वस्त्र हैं। जबकि ऊपरी भाग में दुपट्टा उपरना, पिछौरी उढ़निया, चादर पहने जाते थे। बालकों की वेशभूषा के अंतर्गत इनमें से अधिकांश का उल्लेख हो चुका है। धोती, पिछौरी, काछनी, पट या कमरबंद कृष्ण की वेशभूषा का प्रधान अंग हैं। धोती को मल्लकाछ लगाकर बांधने का उल्लेख भी किया गया है—

"सीस टिपारो धरे ठाढ़े स्याम कदम तरे, मल्लकाछ फेंट बांधि जमुना के तट री।"[142]
"आज धरे गिरिधर पिय धोती।"[143]
"माथे कनक बरन को टिपारो ओढ़े पीत पिछोरा।"[144]
"सीस टिपारो कटि लाल काछिनी पीताम्बर वनमाला।"[145]
"पीत उढ़निया कहां बिसारी ..."[146]

चोलना एक प्रकार का ढीला कुर्ता है जो गले से टखनों तक होता है। साधु-संतों के वस्त्रों के रूप में यह आज भी पहना जा रहा है।

'नवरंग चोलना की चटक कुचित भ्रुकुटी की मटक ... ।"[147]

चोलना के समान ही कथा नामक वस्त्र भी वैरागियों द्वारा तत्कालीन समाज में पहना जा रहा था—

"बिरह भसम चढ़ाइ बैठी सहज कथा चीर।"[148]

अष्टछाप काव्य में बंगा अथवा काबा नामक वस्त्र का उल्लेख भी हुआ है। यह अंगरखे के समान ढीला, लंबा वस्त्र है जो विदेशी प्रभाव स्वरूप ब्रज समाज में प्रचलित हो गया था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE, 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तत्कालीन हिंदुओं ने मुसलमानों से कुछ भिन्न रूप में काबा या बंगा को स्वीकार किया था—

"माथै कै चढ़ाइ लाल कौ बंगा।"[149]

सिर पर धारण करने वाले वस्त्रों में पगा या पगड़ी प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति का अंग रही है। पगड़ी को टेढी बांधने की प्रथा भी तत्कालीन समाज में प्रचलित थी। अष्टछाप काव्य में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है—

"नाना विधि सिंगार पाग जरकसी लागों पहरन छंद।"[150]

"तिपेची पाग टेढी सोहति स्याम धारी।"[151]

"पीत बसन तन बन्यौ है पिछौरा टेढी पाग ढौरो लटकाय।"[152]

अनेक रंगों वाली यह पगा दो पेंच और तीन पेंच डालकर पहनी जाती थी—

"देखहु पाग ढरकि रही दिसिदच्छिन।
चंपकली पेंचनि में उरसि रही तापर मोर के पच्छिन।"[153]

'पाग' को फूलों से सुसज्जित भी किया जाता था—

"पीत पाग पर फूल सेहरौ फूल बागौ छूटे बंध कोरी।"[154]

"चंपकली की पगा बनावत भाल तिलक नव बंदन को।"[155]

टिपारो, चौंतनी तथा कुल्ही भी सिर पर धारण करने वाले वस्त्र थे। टोपी के रूप में यह आज भी ब्रज समाज में विद्यमान हैं। चौंतनी संभवतः कली काट कर बनाई गई टोपी थी। बनावट के प्रकार-भेद से ही इनके नाम भेद भी किए गए थे। कसीदाकारी अथवा कढ़ाई से भी इन वस्त्रों को आकर्षक बनाया जाता था। हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्मावलम्बी सिर पर वस्त्र धारण करना अनिवार्य मानते थे इसलिए इन वस्त्रों के निर्माण में भी विशेष कलात्मकता का परिचय दिया जाता था। वर्तमान काल में सिर पर वस्त्र धारण करने की प्रथा समाप्त हो रही है परंतु विवाह आदि के शुभ अवसरों पर सुसज्जित पगड़ी धारण करना आवश्यक माना जाता है। मृत्यु के पश्चात् परिवार के सबसे बड़े सदस्य को पगड़ी बाँधने की प्रथा के रूप में आज भी यह ब्रज समाज में विद्यमान हैं। कुछ वर्षों पूर्व तक टोपी पहनना या सिर ढंकना पुरुषों के लिए अनिवार्य था। टिपारो, कुल्ही आदि पगा या पगड़ी की तरह विभिन्न रंगों से सजाई जाती थी—

"माथे कनक बरन कौ टिपारो।"[156]

"सीस कुलहिया चौतनिया।"[157]

"कुलह सूल फूलन भरी सुभज सेत कुलही सीस राजति।"[158]

"पगियासेत कुलही दवी अरू मोतिन के अवतंस।"[159]

पुरुषों की वेशभूषा के अंतर्गत पैरों में पदयात्रा अथवा खड़ाऊँ का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। अष्टछाप में भी सूरदास ने युवावस्था में ही नहीं बाल रूप वर्णन में अन्य परिधानों के साथ पनही या पदत्राण व जूते का उल्लेख किया है। पाँव की जूती के लिए पांवरी पनहियाँ का प्रयोग हुआ है—

"पहिरि पितम्बर चरन पांवरी ब्रज वीथिन में जात।"[160]

"खेलत फिरत कनकमय अंगन पहिरे लाल पनहियां।"[161]

पनही का संस्कृत शब्द पदत्राण भी उस काल में प्रचलित था इसलिए विलाप करते हुए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

दशरथ राम-लक्ष्मण के बिना पदत्राण वन जाने पर दुखी होते हैं। पांवरी के लिए खड़ाऊ शब्द

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का प्रयोग भी सूरसागर में किया गया है—

अब सुनियत हैं धोती पहिरे चढ़ें खड़ाऊँ न्हात।"[162]

श्री राधा की किशोरावस्था तथा युवावस्था की वेशभूषा और यशोदा तथा गोपियों के वस्त्रों के वर्णन द्वारा तत्कालीन बालिकाओं तथा स्त्रियों की वेशभूषा का परिचय मिल जाता है। परमानंद, चतुर्भुजदास, गोविंद स्वामी ने राधा के जन्मोत्सव का वर्णन किया है परंतु उसमें उनके वस्त्रों का उल्लेख नहीं है इसलिए शिशु रूप में उनके वस्त्रों का उल्लेख नहीं मिलता। सूरदास ने भी किशोरी राधिका का परिचय ही कृष्ण से कराया है—

"नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठ रूलति झकझोरी।"[163]

अष्टछाप साहित्य में स्त्रियों के मुख्य तीन परिधान वर्णित किए गए हैं। साड़ी, लहंगा, ओढ़नी और सूथन। चोली या कंचुकी, लहंगे के साथ पहनी जाती थी। रंगीन साड़ी के साथ उसी रंग की अथवा दूसरे रंग की कंचुकी पहनी जाती थी। आज भी भारतीय नारियों का यह मुख्य पहनावा है।

आकर्षक प्राचीन भारतीय परिधान साड़ी का विशद विवरण अष्टछाप कवियों ने किया है। संभवतः यह शाटिका का ही परिवर्तित रूप है। समाज के प्रत्येक वर्ग की आर्थिक स्थिति के अनुसार साड़ी को भी विभिन्न रूपों में वर्णित किया गया है—"लाल सारी पहिरि बैठि प्यारी"[164] द्वारा सामान्य साड़ी का उल्लेख भी किया गया है जो प्रत्येक के लिए सुलभ थी। विशेष वर्ग द्वारा पहनने वाली या विशेष पर्व-त्यौहार पर पहने जाने वाली सुरंग साड़ी और पंचरंग साड़ी का वर्णन भी किया गया है—

"तैसीये सुरंग साड़ी पहिरे सुभग अंग।"[165]
"पगनि जेहरि लाल लहंगा अंग पंचरंग सारि।"[166]

लाल रंग स्त्रियों का प्रिय रंग है। उस समय भी ब्रज प्रदेश में लाल किनारी की साड़ियों का प्रचलन रहा होगा इसलिए सूरदास और परमानंद दास ने लाल ढिगनि की साड़ी का उल्लेख किया है—

"लाल दिगनि की सारी ताकौ पीत उड़नियां कीन्ही।"[167]
"ये तो लाल ढिगनि की ओढ़े है काहू की सारी।"[168]

अष्टछाप काव्य में विविध प्रकार की साड़ियों का वर्णन मिलता है। जैसे तनसुख साड़ी, झूमक साड़ी, डंडिया तथा पटोरी या पटोले की साड़ी। जैसे—

"तनसुख सारी पहिरि झीनी।"[169]
"छापे री झूमक अंग साजे चहुं दिसि लगी किनारी।"[170]
"झूमक सारी पीत अंगिया।"[171]
"पंचरंग बरन पाट की डांडी अति ही सौंज बनाई।"[172]
"अंग मरगजी पटोरी राजति।"[173]

इन सभी साड़ियों के तैयार करने में विशेष कौशल और कल्पना की आवश्यकता पड़ती थी इसलिए इनके माध्यम से ब्रज लोक संस्कृति की कलात्मकता का पता चलता है। चूनरी, साडी संभवतः आधुनिक बंधेज की साडी थी जिसमें साड़ी को विशेष रूप से बांधकर रंगा जाता है। झूमक साड़ी में गोटा टांककर बनाई जाती थी और पटोरी रेशमी साड़ी थी। दक्षिण के चीर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से बनी रेशमी साड़ी उत्तम मानी जाती थी। साड़ियों के यह सभी प्रकार आज भी प्रचलित हैं। पटोरी या पटोले के रूप में कुछ परिवर्तन अवश्य आया है। रेशमी साड़ी के स्थान पर अब गुजरात, महाराष्ट्र की विशेष कला के पल्लू वाली साड़ी के लिए यह शब्द प्रयुक्त हो रहा है। लाल पाड़ की साड़ी आज भी स्त्रियों में विशेष लोकप्रिय है। बंगाल में आज भी लाल पाड़ की साड़ी के विविध रूप देखने को मिल जाते हैं।

साड़ी तथा लहंगे के साथ शरीर के ऊपरी भाग में अंगिया पहनी जाती थी। अष्टछाप काव्य में इसके लिए आंगी, चोली और कंचुकी आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। समानार्थी होते हुए भी बनावट तथा सिलाई के आधार पर इनमें पर्याप्त अंतर होता था। सूरदास ने विभिन्न प्रकार के कटाव वाली नग जड़ी अंगिया का उल्लेख किया है।[174]

परमानंददास ने कंचन के सूत और रत्नों के धागों से निर्मित आंगी का वर्णन किया है—

"सकल सूत कंचन के लागे बीच रतनन की धागी।"[175]

अंगिया के सामने के त्रिकोण को मांडनी या लहर कहते थे। अंगिया और मांडनी में अलग-अलग रंगों का प्रयोग किया जाता था—

"अंगिया नील मांडनी राती।"[176]

"चंपक तन कंचुकी खुली स्याम सुदेस सुढारी हो।
मांडनि प्रिय पट पीत की ता उपर मोतिनि हारीहो।"[177]

अंगिया के सामने उदर को ढंकती हुई पट्टी का नाम अंतरोटा है। माया के वर्णन में सूरदास ने और होरी के पद में कृष्णदास ने इसका उल्लेख किया है—

"अंतरोटा अवलोकि कै असुर महामदमाते हो।"[178]

"उनके अतरौटा अतलस कौ लाल अंग दरसाई।"[179]

"कसत कंचुकि बंद"[180] कहकर सूरदास ने कंचुकी को अंगिया से अलग कर दिया है। कृष्णदास ने सुरतान में इन बंदों के तरक-तरक कर टूटन का उल्लेख किया है—

"कंचुकि के बंद तरकि तरकि टूटे।"[181]

चोली में बंद के स्थान पर विशेष प्रकार के कटाव का प्रयोग किया जाता था जिस पर विभिन्न प्रकार की कढ़ाई आकर्षक बनाने के लिए की जाती थी—

"पहिरि कुंसुमी कटाव की चोली।"[182]

"कंचुकी सोभित कसीदा सुंदर।"[183]

परमानंददास और कुंभनदास ने 'चोली चारूतनी'[184] कहकर चोली में बंद या तोनियाँ होने का उल्लेख किया है। यह चोली का एक विशेष प्रकार था। सूरदास ने भी इस प्रकार का वर्णन किया है और कृष्ण द्वारा 'चोली बंद' तोड़े जाने की बात भी कही है—

"सूर सुतहि बरजौ नंदरानी, अब तोरत चोली बंद डोरि।"[185]

लहंगा तथा ओढ़नी परंपरा से चली आ रही वेशसज्जा है। भारतीय साड़ी की तरह आज भी कई प्रदेशों में यह पहना जाता है। विशेष रूप से हरियाणा, राजस्थान, पर्वतीय प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश व तमिलनाडू में। लहंगे या घाघरे की लंबाई तथा घेर प्रत्येक काल में रुचि और सुविधा के अनुसार बदलती जा रही है। प्रायः बालिकाओं और किशोरियों के द्वारा भी इसे अपनाया जाता है। सूरसागर में वर्णित राधा और ब्रजनारियों द्वारा पहना लहंगा प्रायः चौबीस से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीस पाट तक का होता था। दक्षिण से मंगाए वस्त्र का लहंगा कीमती माना जाता है—

"दच्छिन चीर तिपाड़ को लहंगा पाहिरि पर भोलनि महंगा।"[186]

"लहंगा पीत हरे और राते सारी स्वेत सुहाई।"[187]

लहंगे के साथ उपरना, ओढ़नी, उढ़निया, चुनरी, चीर या दुपट्टा सिर तथा शरीर के उर्ध्वभाग को ढंकते तथा जड़ाऊ काम की चुनरी का वर्णन किया गया है। लहंगा, चोली तथा ओढ़नी तीनों के वर्णन में रंगों के सामंजस्य का अद्भुत ध्यान रखा जाता था। जिससे काव्य में चित्रात्मकता का सन्निवेश होता था—

"लियो उपरना छीनि दूरि डारनि अटकाऔं।"[188]

"लहंगा लाल झूमक की सारी पचरंगी ओढ़नी बनाई।
नवरंग उर तनसुख की चोली, कसूं भी बरन पिय हेतु रंगाई।"[189]

"सुरख चुनरिया भिजोई तेरो भीज्यो पिछोरा।"[190]

"आजु तेरी चुनरी अधिक बनी।"[191]

"नीलांबर पाटंबर सारी सेत पीत चुनरी अरूनाए।"[192]

"पीत उढ़निया कहां बिसारी।"[193]

अष्टछाप काव्य में विदेशी प्रभाव के फलस्वरूप समाज द्वारा स्वीकृत कुछ पोशाकों का वर्णन है। सूरसागर में महारास के प्रसंग में ब्रज गोपियों की विविध वेशभूषा के साथ नाराबंद सूथनी का वर्णन इसी प्रकार का है—

"सूथन जंघन बांधि नाराबंद तिरनी पर छवि भारी।"[194]

"सूथन सेत पाइनि पहिरें सोभाबढ़ी अपार।"[195]

नाराबंद पायजामों का प्रचलन ब्रज प्रदेश में संभवतः हूण-शकों के आगमन के साथ ही साथ हो गया था। इसी प्रकरा पेशवाज इजार का प्रचलन भी विदेशी संस्कृति के प्रभाव को दर्शाता है—

"नूपुर कुनित दूजार पीत पट तनसुख पेस बाज छूटे बंद।"[196]

"नीकी बनी सुरंग इजार।
स्याम छींट विरचित तनसुख थकित रसिक विचार।"[197]

इस प्रकार विभिन्न परिधानों के वर्णन द्वारा जहाँ ब्रज की लोक कला का परिचय मिलता है वहीं तत्कालीन समाज द्वारा अपनाए गए विभिन्न वस्त्रों और पोशाकों का भी पता चल जाता है। वस्त्र निर्माण तथा उनकी सजावट में ब्रज के कलाकारों का चातुर्य प्रकट होता है।

आभूषण निर्माण कला

परिधान कला की भाँति इस कला का संबंध भी शृंगार विधि के अंतर्गत ठाकुर जी और स्वामिनी जी के विविध आभूषणों की निर्माण कला से है। इस कला के प्रदर्शन के माध्यम से तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न आभूषणों का परिचय दिया गया है। बहुमूल्य धातुओं के रत्नजटित आभूषणों के द्वारा तत्कालीन संस्कृति के अलौकिक वैभव क प्रदर्शन हुआ है। आराध्य के ऐश्वर्य प्रदर्शन में भी इस कला की प्रमुख भूमिका रही है। मध्यकालीन समाज में आज के युग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के विपरीत स्त्रियों तथा बच्चों के साथ-साथ पुरुष भी विविध आभूषण धारण करते थे। गोपों और कृष्ण के आभूषण वर्णनों से इस बात की पुष्टि हो जाती है। यह सभी आभूषण केवल सोने के या सोने के साथ-साथ मोती, माणिक्य, पन्ना, जवाहरात से जड़े हुए बनाए जाते थे—

"कुंडल कनक जड़ें मनि मरकत।"[198]
"कंचन नगनि जटित आभूषण।"[199]

ब्रज समाज की आभूषणप्रियता का प्रमाण काँच की मणियों के आभूषण रूप में प्रयोग से मिल जाता है। सामान्य जन बहुमूल्य आभूषणों के अभाव में गुँजा आदि धारण करता था। परमानंददास के कृष्ण गोचारण के समय साधारण चरवाहे का प्रतिनिधित्व करते थे। इसलिए माता से बहुमूल्य आभूषणों के स्थान पर सहज सुलभ आभूषणों की माँग करते हैं—

"मैया भूषन अपने लैरी।
मोर चंद्रिका कांच की मनियां गुंजा फल मोहि दैरी।"[200]

अष्टछाप काव्य में श्रीकृष्ण के आभूषणों की ही विस्तार से चर्चा की गई है। यत्र-तत्र नंदादि गोपों के आभूषणों का उल्लेख है। इस प्रकार बालक, किशोर और पुरुषों के आभूषणों का विवरण उपलब्ध हो जाता है। श्री मस्तक के आभूषणों में मोरमुकुट, किरीट मुकुट तथा सेहरा है—

"मोर मुकुट कुंडल छवि काछिनी बनी विचित्र"[201]
"मोरपंख किरीट कुंडल ग्रीव मटक जनावतौ।"[202]
"मोरमुकुट मुरली पीताम्बर अरू गुंजा वनमाल।"[203]
"सीस सेहरौ बन्यौ है लाल के गज मोतिन के हार।"[204]

और माथे पर लट के साथ गजमोतियों की लटकन का उल्लेख भी किया गया है—

"घूंघरवारे बार स्याम के लट लटकत गजमोती।"[205]
"सीस मुकुंट की लटक मोपै बरनि न जावै।"[206]
"कटि किंकिनी चंद्रिका मानिक लटकन लटकत भाल।"[207]

कानों के आभूषणों के रूप में कुंडलों तथा ताटंक का वर्णन किया गया है। कुंडल मीन, मकर, मयूर एवं शुक की आकृतियों के बनाए जाते थे परंतु सामान्य रूप से मकराकृति कुण्डलों का प्रचलन अधिक था। कनकफूल का उल्लेख भी किया गया है।

"कुंतल कुटिल मकर कुंडल भ्रुव नैन बिलोकनि बंक।"[208]
"स्रवन स्रुति विमोहन चल कुंडल ताटंक।"[209]
"कुंडल स्रवन कपोल विराजत सुंदरता बन आई।"[210]
"कानति कनिक फूल"[211]

कनछेदन के अवसर पर दुर नामक आभूषण का उल्लेख भी मिलता है—

"कंचन के द्वै दुर मंगाई लियो कहो कहौं छेदनि आतुर की।"[212]

नाक के आभूषणों में बुलाक और बेसर का वर्णन है। यद्यपि सामान्य जन-जीवन में पुरुषों द्वारा नाक के आभूषणों का प्रयोग नहीं होता था। परंतु कृष्ण के स्वरूप वर्णन में गजमोती और बेसर का उल्लेख मिलता है।

"स्रवन कुंडल भाल तिलक बेसरि [illegible]।"[213]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh / Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"विमल कपोल नाक मुक्ताफल" [214]

कंठ के आभूषणों में कठुला, पदिक, बघनखा, चौकी, माला तथा हार का विविध प्रकार से वर्णन किया गया है। बालकृष्ण के स्वरूप वर्णन में कठुला का विशेष उल्लेख है। यह एक प्रकार का कंठहार है। जिसमें बच्चों को बुरी नजर से बचाने के लिए बाघ का नख, चांदी की चौड़ी पत्ती या पदिक या अर्द्धचंद पिरोया जाता था। इसे जन्त्रहार भी कहा जाता था—

"कंचन को कठुला मनि मोतिन विच बघनखा हैरह्यौ पोहरी।" [215]

"काजर तिलक कंठ कठुला।" [216]

"कंठ कठुला ललित लटकन भ्रकुटि मन कौ फंद।" [217]

"कारवासोती हंसुली धारे मोहन पीत झंगुलिया सोहै।" [218]

श्रीहस्त के आभूषणों में कंगन, वलय, बाजूबंद, अंगद, केयूर, मुद्रिका, चूरा और पहुंची का उल्लेख किया गया है—

"कर कंकन अतिराजै रतन जटित सोभा ऐसी।
बेल कल कंजन छुटी लट बाजूबंदन की।" [219]

"कटि किंकिनि कर कंकन अंगद।" [220]

"तन झगुंली सिर लाल चौतनी चूरा दुंहुकर पाई।" [221]

"कठुला कंठ रूचिर पोहोंची कर।" [222]

"वलय कंकन बाजूबंद आजनु भुज मुद्रिका कर दल विराजित नवरत्नावली।" [223] कटि के आभूषणों में कटिपेंच, छुद्रघंटिका, मेखला प्रमुख हैं—

"जटित छुद्रघंटिका कनक हीरा भई।" [224]

"रूनन झुनन धरत पांव किंकिनी विचित्र राव।" [225]

"नूपुर किंकिनि स्वर सम्मिलित" [226]

"तनक कटि पर कनक करधनि छीनि छवि चमकाति।" [227]

"चरन गति डगमगत नूपुर मेखला।" [228]

पैरों के आभूषणों में नूपुर, पैंजनी, नखभूषण का उल्लेख हुआ है। नुपूर के प्रमाण उपरोक्त उदाहरणों से मिल जाते हैं। नखभूषण का प्रयोग कम है। यह अधिकतर मंदिरों में श्रृंगार के अवसर पर प्रयुक्त होता था। संभवतः यह भी स्त्रियों द्वारा ही अधिक पहना जाता था। पैंजनी या पायल बालवर्णन का आवश्यक अंग है—

"रूनुक झुनुक पग बाजत पैंजनियां।" [229]

श्रीराधाजी के आभूषण पर्याप्त संख्या में बताए जाते रहे हैं। इसका कारण प्रतिदिन प्रतिप्रहर श्रृंगार को बदलना था। शीश से लेकर चरण तक के आभूषणों के नाम इस प्रकार हैं, चंद्रिका, शीशफूल, बेनीबंदी, तिलक, लर, अलकावली, चोटी, पानड़ी, झूमरबारी, झेला, कर्णफूल, तरकी, झूमका, पत्ता, चौकड़ा, बेसर, बुलाक, सींक फूल, भोगली नथ, हंसली हमेल तिमनिया, दुलड़ी, तिलड़ी, मुक्तामाला, नौसर, हार, चंपाकली, बरा, बाकड़ा, जोसन, बाजूबंद, कड़े, छेड़े, कंकण, हथफूल, छन्न, पछली, रतन चौक, सांकड़ा, मुद्रिका, करधनी, पेंजनी, पायल, लच्छे, झांझन, जेहर, नूपुर, छल्ला, अनवर, बिछुआ।

अष्टछापी कवियों ने स्त्रियों के मुख्य सोलह आभरणों का उल्लेख किया है [230] परन्तु

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वामिनी जी के उपरोक्त आभूषणों में से अधिकांश का उल्लेख उनके काव्य में मिल जाता है। आज भी ब्रज के लोक जीवन में प्रायः सभी आभूषणों थोड़े बहुत स्वरूप भेद के साथ विद्यमान है।

शीश तथा माथे के आभूषणों में सर्वाधिक उल्लेख शीशफूल और बेंदा या बेंदी का हुआ है। सामान्य जीवन में इसे टीका भी कहा गया है। मोतियों की लड़ से बालों के बीच इसे टांका जाता था—

"मांग जटित सेंदुर बिंदिया हो कनक मयूर सीस फूल।[231]
"टूटत चुरी खिसत सिर फूल।"[232]
"झूत अलंक तेरे बदन कमल पर।"[233]
गूंथी लर केस हेत कुसमावलि अरू सुरंग कचडोरी।"[234]
"मांग मोतिनि छटा... ।[235]
"सुनि राधे तेरे माथे पै सोभित अद्भुत बेंदी।"
हीरक मनिका विविध रतन मनि कनक खचित वर बैंदी।"[236]

झूमर बारी, झेला, शीशफूल का ही परिवर्तित रूप है जो मांग से हटकर पहने जाते थे। चोटी बारीक काम का आभूषण था जो सिर के पीछ गूंथी चोटी में पहना जाता था।

कान के आभूषणों में अवतंस, खुंभी, ताटंक, तरौना, कर्णफूल, झूमका प्रमुख हैं। इनका अधिकांश कवियों ने प्रयोग किया है। कुंडल स्त्री-पुरूष सभी पहनते थे। कर्णफूल और तांटक कान में पहनने वाला आभूषण है—

"कनक करन फूल मृकुटि गति मोहत कोटि अनंग।"[237]
"ताटंक मनि जटित"[238]
"खुटिला खुंभी हीरा जड़े हो।"[239]
"करन फूल झूमका गजमोतिनि विथुरि रहे लपटाने।"[240]
"फूलन के तरौना कुंडल फूलन की किंकनी सरस संवारी।"[241]

नाक के आभूषणों में नथ बेसरि बुलाक अथवा तिल फूल लौंग आदि का वर्णन किया गया है नाक की लौंग का फूल सुहाग का प्रतीक माना ज़ाता है नथ या बेसरि भी प्राचीन काल से आज तक सौभाग्य सूचक आभूषणों में गिनी जाती रही हैं—

"तिल सुमन सम नासिका हो मुक्ता बेसरि अमेल।"[242]
"नासानथ मुक्का के भारहिं रह्यो अधर नट जाइ।"[243]
"नासा सुभग निपट सुढारी बेसर सिखी आकारी।"[244]
"नक बेसरि सुबनी सुहाग की निधि।"[245]

गले के आभूषणों की विविधता अष्टछाप काव्य में विद्यमान है। मुख्य हार है जिसमें बनावट के अंतर के कारण नाम में भिन्नता आ जाती है। एक ही आभूषण के अलग-अलग नाम भी कवियों ने दिए हैं जैसे कि कंचनहार, नौसरहार, कंठसिरी, खंगवारो, दुलड़ी-तिलड़ी माला, हमेल, हंसुली, जुगनी, पदिक आदि। कंचनहार में माणिक, हीरा, पन्ना, रत्न का जड़ाव होने का उल्लेख सभी कवियों ने किया है। मोती का हार एक से नौ लड़ी तक का होता था और इसी आधार पर उसे दुलड़ी, तिलड़ी व नौसरहार कहा जाता था। हंसुली हंसुली की हड्डी तक आने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाला हार था। चंपाकली भी गले से चिपका आभूषण था। सकरी, सोने की लंबी शृंखला थी जिसमें जड़ाऊ लटकन लगाई जाती थी। मध्यकालीन आभूषण आज भी थोड़े बहुत नाम-भेद और रूप-भेद के साथ लोक-संस्कृति में विद्यमान हैं—

"कंठ मुक्ता ब्रज खचित हारावली।"[246]
"कंठ कंठ सिरी सो है कनक बाजू बंद हाथ मुक्तिनि की माल गरे।"[247]
"रतन जटित खंगवारौ गर कौ जसुमति लै पहिरायौ।"[248]
"उर गजमोतिनि हार।"[249]
"चौकी बनी जराइ दूरि करत रविकांति।"[250]
"टीका टीक टिकावली हीरा हार हमेल।"[251]
कंठ सिरी, दुलरी तिलरी उर मानिक मोती हार"[252]
"कंठसिरी उर पदिक बिराजत गजमोतिनि के हार।"[253]
"पहिरि लेहि सोने के तरिका रतन जटित कौ हांसुरी।" [254]
"चंपाकली पेंचनि मैं जुउरसि रही··· "[255]

बाहु और हाथ के आभूषणों में बाजूबंद, बहुंटा, टांड, कटक, कंगन, पहुंची, चूरा, चूरौ चुरी तथा मुद्रिका या मूंरी का उल्लेख है। चूरा, चूरौ, चूड़ी प्रायः पर्यायवाची है जो आज भी पहने जा रहे हैं। चूड़ीं स्वर्ण की तथा चूड़ा हाथी दांत का बनाया जाता था। आजकल दोनों ही चीजें लाख की बनने लगी हैं। कोहनी के ऊपर पहनने वाले आभूषण बाजूबंद बहुंटा और टाड हैं। टांड कंगन की आकृति का होता है और बहुंटा टाड की तरह ढाई या तीन मोड़ का होता है। कटक कंगन के पहले पहने जाने वाला आभूषण है—

"कर कंकन ते भुज टांड भई।"[256]
"बहुंटा कर कंकन बाजूबंद एते पर तौकी।"[257]
"बलय कंकन चुरी मुद्रिका।"[258]
"वलय कंकन बाजूबंद हीरा जटित।"[259]
"मुद्रिका अंगुली विच··· ।"[260]
"बाजूबंद जटित कर पहुंची।"[261]
"रूनक झुनक कर कंकन बाजे बांह हलावति ढीली री।"[262]
"बांहनि बाजूबंद कड़ा जटित कर अंगुरिनि मुंदरी राजै।"[263]
"कर कंकन चूरा गजदंती··· ।"[264]
"नौग्रही कर पहुंचिया हो··· ।"[265]
"पल्लव पानि मुद्रिका सोभित छुद्रावलि गजगति चाली हो।"[266]
"नवग्रह गजरा जगमगै नव पौहोंचि चुरियन आगे।"[267]

कटि के आभूषणों में मेखला या करधनी का वर्णन किया गया है। यह भी मणि जड़ित अनेक आकारों की बनाई जाती थी। छोटे-छोटे घुंघरू लगे होने के कारण चाल के साथ इसका स्वर भी धीमा या तीव्र होता था। करधनी, दाम, किंकिनी, छुद्रावली, छुद्रघंटिका, कांची, रसना अदि नामों से इसका उल्लेख अनिवार्य रूप से किया गया है—

"कुस कटि रसना विसाल।"[268]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"कुनित किंकनी चरन नूपुर धुनि।"[269]
"छुद्रघंटिका पगनूपुर जेहरि विछिया सब लेखौं।"[270]
"छुद्रावली उतारति कटि तै··· ।"[271]
"मेखला रच चल बिराजु।"[272]

पैरों के आभूषणों में घुघरू, झांझन, जेहरि, पायल, पेंजनि, छल्ल, अनवर और विछुए का उल्लेख सभी अष्टछापी कवियों ने किया है—

"पग जावक बिछुआ बाजने हो, पायल जेहरि जु जुराइउ।"[273]
"जेहर तेहर पायन सों अनवर कुंदन हीरा वलिता।"[274]
"पांय पैंजनि मेंहदी राजति··· ।"[275]
"झंकृति कोकिल रव मर्दन करि नूपुर बिछिया बोले।"[276]
"जेहर तेहार पाय बिछुवन छवि उपजायल।"[277]

आभूषणों के इस वर्णन द्वारा ब्रजसमाज की आभूषणप्रियता तथा उनकी पारखी दृष्टि का परिचय मिलता है। विभिन्न आभूषणों के निर्माण में उनकी कल्पना और दक्षता दर्शनीय है।

मंडन कला

मंडन शब्द यदि व्यापक रूप में परिधान आभूषण मंडन को समेटे है तो संकुचित अर्थ में मंडन कला का सूचक है। शृंगार से संबंधित प्रसाधन कला प्राचीन काल से ही ब्रज में प्रचलित रही है। नर नारियों एवं बालक बालिकाओं की शृंगार सज्जा के उपकराणों में वस्त्राभूषण के अतिरिक्त प्रसाधन अर्थात् अंग संस्कार का महत्वपूर्ण स्थान था। इसे वस्त्राभूषण धारण करने से पहले किया जाता था इसलिए इसको शृंगार की पूर्व पीठिका भी कहा जा सकता है। प्रसाधन के अंतर्गत अंगों को कोमल, स्निग्ध तथा केशों को काला व सुवासित बनाया जाता था। जिसके लिए शरीर पर सुगंधित द्रव्यों से बने अनुलेप का तथा केशों पर आमलक कल्क का प्रयोग किया जाता था। इसके बाद केतकी-गुलाब से सुगंधित जल से स्नान किया जाता था। स्नान के बाद शरीर को लोध्र चूर्ण से और केशों को अगरू, कपूर आदि की धूप से सुखाया जाता था। इसके पश्चात् शरीर पर सुवासित अंगराग और केशों पर तेल लगाते थे। महिलाओं की कई प्रकार की केश-सज्जा प्रचलित थी, केशों को फूलमालाओं तथा मोती की लड़ियों से गूंथा व सजाया जाता था। उनके होंठ मुख व पांवों को मिस्सी तथा अलक्तक से रंगा जाता था। नेत्रों के सौंदर्य के लिए अंजन का प्रयोग किया जाता था।

कृष्ण के समय में भी प्रसाधन एवं पूर्ण कला के रूप में समाज में प्रतिष्ठित था। इस कला के प्रशिक्षित पुरुषों को मर्दनक तथा पारंगत स्त्रियों को प्रसाधिका कहा जाता था। अंग संस्कार के कार्य में स्त्रियां अधिक कुशल मानी जाती थी इसलिए राजा, महाराजा तथा आभिजात्य वर्ग अंग मर्दन, विलेपन और प्रसाधन प्रसाधिकाओं से ही कराता था। महाभारत में अज्ञातवास के प्रसंग में द्रौपदी का सैरंध्री के रूप में विराट राजमहिषी तथा राजपुत्री के प्रसाधन व केशसज्जा का उल्लेख किया गया है। कृष्ण कथा के अंतर्गत मथुरा जाने पर कुब्जा द्वारा कृष्ण बलराम के प्रसाधन करने का वर्णन किया गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मध्यकाल में अर्थात् अष्टछाप के समय में भी यह कला अपनी चरम सीमा पर थी। राजन्य वर्ग में तो यह लोकप्रिय थी ही सामान्य वर्ग में भी शृंगार के अंतर्गत प्रयुक्त की जा रही थी। कृष्ण की लीलाओं के मंचन में तथा रास लीला के प्रसंगों में मंदिरों में भी इसका प्रयोग हो रहा था। सामान्य जीवन में विवाह तथा अन्य संस्कारों के समय सामाजिक जीवन में विवाह तथा अन्य संस्कारों के समय सामाजिक उत्सवों में तथा विभिन्न पर्वों तथा त्यौहारों को मनाते समय भी इस कला का प्रयोग लोक जीवन में प्रचलित था। लोक का प्रतिनिधित्व करने के कारण ही अष्टछाप साहित्य में इस कला का विस्तार से विवेचन किया जाता है। इस कला में सोलह अंगों को सम्मिलित किया गया है—उबटन, लेपन, स्नान, केश-सज्जा, इत्रफुलेल का मर्दन, मांग में सिंदूर माथे पर तिलक एवं बिंदी, चंदन की खौर, आंखों में अंजन, कपोलों पर श्याम बिन्दुका, मुख में पान, दांत्तों में मिस्सी, ओष्ठों को लाल रंग से रंगना, ठोड़ी पर तिल बनाना, हाथों में मेंहदी रचना तथा पांवों में महावर लगाना।[278] प्रामाणिक हिंदी कोश में शृंगार के सोलह अंगों में वस्त्राभूषण के साथ प्रसाधन के अंगों को परिगणित किया गया है। उबटन, मंजन मिस्सी, स्नान, सुवसन, केश विन्यास, मांग भरना, अंजन, महावर, बिंदी, ठोड़ी पर तिल बनाना, मेंहदी, गंधद्रव्य , आभूषण, फूलमाला और पान रचाना।[279]

अष्टछाप में मंजन और मिस्सी को छोड़कर प्रसाधन के प्रायः अंगों का वर्णन किया गया है।

उबटन

स्नान से पूर्व उबटन का प्रयोग प्रतिदिन किया जाता था। विवाहादि संस्कार पर्वोत्सवों तथा विशिष्ट अवसरों में विशेष प्रकार से निर्मित उबटन का लेप किया जाता था। श्रीकृष्ण को स्नान से पूर्व यशोदा सदैव उबटन लगाती थी—

"केसरि कौ उबटनों बनाऊँ रचि-रचि मैल छुड़ाऊँ।"[280]
"अमित सुगंध सुबास अंग करि उबटन गुन गाऊँगी।"[281]

बचपन के संस्कारों के अतिरिक्त सगाई विवाह संस्कार में भी वर-वधू के उबटन लगाती थी—

"इत उबटि खोरि सिंगार सखियन कुंवरि चौरी अनियों।"[282]
"कान्है उबटि न्हवार जसोदा रतन जटित भूषन पहिराई।"[283]

तेल उबटन के पश्चात स्नान किया जाता था। धार्मिक अनुष्ठान के रूप में गंगा या यमुना स्नान किया जाता था। दैनिक जीवन में ऋतु के अनुरूप उष्ण या शीतल सुगंधित जल से स्नान किया जाता था। विशेष अवसरों पर स्नान के लिए पानी में केसर तथा अष्टगंध घोली जाती थी—

"तातो जल आनि समोयो अन्हवाइ किया मुख धोयो।"[284]
"उष्ण सीतल अन्हवाइ खोर जल चंदन अंग लगाऊँगी।"[285]
"केसर सौंधी धोरि जननी प्रथम लाल अन्हवायो री।"[286]
"अष्टगंध उष्णोदक सौं अस्नान करायो।"[287]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केश विन्यास

केश सज्जा के विभिन्न रूप स्त्रियों के शृंगार के संदर्भ में मिलते हैं। लंबे, घने और काले बाल सौंदर्य का प्रतीक माने जाते थे। राधा के लंबे बालों का उल्लेख किया गया है—

"बड़े बड़े बार जु एड़नि परसत स्यामा अपने अंचल में लिए।"[288]

केशों को चिकना व चमकीला बनाने के लिए गोपियों द्वारा कनक कटोरा भर कर तेल मर्दन का वर्णन सूरदास ने किया है।

"जै कच कनक कटोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल।
"लटै घुंघरारी रही छूटि छूटि आनन पै भींजी हैं फुलेलनि सौ"[289]

विरहिणी स्त्रियां केश विन्यास में रुचि नहीं लेती थीं इसलिए खुले बाल रोग शोक सूचक माने जाते थे। एक चोटी भी विरह का प्रतीक मानी जाती थी। घुंघराले बाल सुंदर माने जाते थे और उनके लिए अलक कुंतल के साथ-साथ मुगल संस्कृति के प्रभाव-स्वरूप जुल्फों शब्द का प्रयोग किया जाता था—

"अलक मधुप सम राजहीं अरू मुक्तावलि भाल।"[290]
"कुंतल अलिमाल तावै मुरली कल रटना।"[291]
"लटकत केस जुल्फ घुंघरारी बोलत सबद हलाहल कूटे।"[292]

अष्टछाप में वेणी गूंथने की कला का वर्णन भी किया गया है। इसके लिए कबरी, चोटी, बेनी शब्दों का प्रयोग किया गया है तथा इसके विभिन्न प्रकार से सजाने का उल्लेख भी किया गया है। चोटी में फंदना लटकने का तथा पुष्पों से वेणी गूंथने का वर्णन मिलता है। कई चोटियां गूंथकर मेडियां बनाने का वर्णन भी मिलता है—

"बेनी ललित ललित कर गूंथत सुंदर मांग संवारत।"[293]
"बेनी चंपक बकुलन ग्रंथित रूचि रूचि सखिन संवारी।"[294]
"मृगमद तिलक अलक घुंघराले गुही है जसोदा मेढ़ी।"[295]
"कबरी लज्जित फनी।"[296]

मांग भरना

बालों को सुलझाकर दो भागों में बांटने के लिए मांग निकाली जाती है इसके लिए सीमंत और मांग शब्दों का प्रयोग हुआ है—

"गजमोतिनि सुंदर लसत मंग।"[296]
"बेनी गुही विच मांग संवारी⋯ ।"[297]
"सिर सीमंत संवारी⋯ ।"[298]

मांग निकालने को पटिया, पाटी, पारना भी कहा जाता था। मांग को मोतियों से तथा सिंदूर से भरा जाता था—

मोतिन मांग बिथुरी ससि मुख पर मानहुं नछत्र आए करन पुजा।"'[299]
"मुख मंडित रोरी रंग सेंदुर मांग छुही।"[300]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंजन

नेत्रों के स्वास्थ्य व सौंदर्यवर्धन के लिए अंजन का प्रयोग किया जाता था। अष्टछाप कवियों ने आंखों में बारीक अंजन-रेखा का उल्लेख किया है। आधुनिक कला की तरह उसे आंखों के आकार-प्रकार के परिवर्तन के लिए प्रयुक्त नहीं किया है—

"मुखहिं तबोल नैन भरिकाजर सेंदुर मांग सुदेसजू।"[301]
"बसीकरन रस सों भिजीं रचि पचि अंजन रेख बनाई।"[302]
"चिघुन बिंदु बर खुंभी नैन अंजन धरि··· ।"[303]

महावर

जावक या महावर प्रसाधन कला का विशेष अंग था। सौभाग्यवती स्त्रियों आज भी कई प्रांतों में दैनिक शृंगार प्रसाधन के रूप में इसका प्रयोग करती हैं—

"पीन पिंडुरिया तैसोउ चरनन जावक दीनों ललिता।"[304]

बिंदों तिलक तिल

बिंदी के लिए सिंदूर, रोली, चंदन तथा तिलक या टीके के लिए मृगमद और केसर का प्रयोग किया जाता था। इन्हें भी विभिन्न प्रकार से सज्जित किया जाता था—

"गोर ललाट सोहै सेंदुर को बिंदु।"[305]
"बंदन बिंदु निरखि हरि रीझै।"[306]
"तिलक केसरि को, ता बिच सेंदुर बिंदु बनायौ।"[307]
"काजल तिलकु दियो नीकी विधि··· ।"[308]
"ताटंक तिलकु सुदेस झलकत खचित चूनी लाल।"[309]
"गोरोचन दूध दधि माथे शेरी अच्छत लाय।[310]

चिबुक पर तिल अथवा काजल बिंदु का प्रयोग सौंदर्य तथा बुरी नजर से बचने के लिए किया जाता है। तिल के अतिरिक्त कपोलों पर चित्रकारी भी की जाती थी। वर-वधू के शृंगार में इस प्रकार की चित्रकारी का प्रयोग प्रायः सभी अष्टछाप में कवियों ने किया है—

"चिबुक मध्य सामल बिंदे राजे मुख सुख सदन स्यानी।"[311]
"काजर आंजे नैन रोरी हरद कपोल।"[312]
"स्याम सुभग तन धातु चित्र अंग बंदन प्रखन्न मनुहासि।"[313]
"प्यारी के मुख पर चोवा कौ राजत रुचिर डिठौंना"[314]

मेंहदी

हाथ-पैरों की शोभा बढ़ाने के लिए मेंहदी का प्रयोग किया जाता था। अष्टछाप के समय में इस कला का पर्याप्त विकास हुआ। मुगलकालीन संस्कृति में भी मेंहदी का प्रयोग सौंदर्यवर्धन के लिए किया जा रहा था, इसलिए लोक-परंपरा और विदेशी संस्कृति दोनों के प्रभाव से मेंहदी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचाने की कला में निखार आ गया। चतुर महिलाएं हाथ पैरों पर मेंहदी का प्रयोग अष्टछाप काव्य में नाममात्र को हुआ है। संभवतः विदेशी संस्कृति की लोकप्रियता इसके प्रति देखकर उन्होंने मेंहदी के प्रति उपेक्षा भाव धारण कर लिया है—

"अचल सुहाग भाग्य की लहरें हस्त हैं मेंहदी दागे।"[315]
"पाइ पैंजनि मेंहदी राजति पीठि पुरट के पान।"[316]

गंध द्रव्य

सुगंधित द्रव्यों के प्रति आसक्ति मनुष्य में प्राचीन काल से ही चली आ रही है। शृंगार के रूप में आकर्षण के लिए इनका प्रयोग किया जाता रहा है। अष्टछाप में भी स्नान तथा स्नान के पश्चात विभिन्न सुगंधित द्रव्यों का उल्लेख किया गया है जैसे चंदन, चोवा, अरगजा, अगरू कपूर, मृगमद, केसर आदि। शरीर को सुगंधित बनाने के लिए इनका प्रयोग अवश्यंभावी था।

"चंदन अरगजा सूर केसरि धनि लेऊँ।"[317]
"कस्तूरी के पत्र कुंकुम किलकिलात बढ़ी सिंदूर के।"[318]
"चोवा केसरि मृगमद धोरी··· ।"[319]
"चंदन चोवा अगर अरगजा··· ।"[320]
"मृगमद मलय कपूर कुंकुमा··· ।"[321]

होंठों को रँगने के लिए बूल का प्रयोग किया जाता था—

"मुखहि तंबोल जैन भरि काजर।"[322]

प्रसाधन के इस वर्णन द्वारा प्रमाणित हो जाता है कि तत्कालीन ब्रज में यह शृंगार के अंग के रूप में होते भी एक स्वतंत्र कला के रूप में विकसित था। आज भी सौंदर्य वर्धन के लिए प्रसाधन कला में दक्ष होना नितांत आवश्यक है।

पाक कला

पाक कला का संबंध भोजन निर्माण से है। सभ्यता के प्रारंभ में मनुष्य खानपान के लिए दूध, फल, फूल, मधु, वनोपज और मांस पर ही आश्रित था। अग्नि की उत्पत्ति के साथ विभिन्न स्वादों से युक्त पकवानों की रचना प्रारंभ हुई। अपनी विशिष्टता के कारण ही पाक कला पाक विद्या कहलाने लगी और भोज्य पदार्थों की निर्माण विधि के विकास के साथ पाक शास्त्र के रूप में परिवर्तित हो गई। षटरस व्यंजन और छप्पन प्रकार के भोग पाक शास्त्र का परिणाम हैं। पाक कला दैनिक जीवन का एक अंग है और इसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है। सामान्य मनुष्य का अधिकांश समय भोजन तथा उसकी व्यवस्था करने में व्यतीत हो जाता है।लोकजीवन के इस तथ्य को हृदयंगम करके अष्टछाप में अष्टछाप सेवाविधि के अंतर्गत भोग को प्रधानता दी गई है। भोग से तात्पर्य है उत्तम एवं स्वादिष्ट व्यंजनों को शुद्ध रूप से निर्मित करके विधिपूर्वक ठाकुरजी को समर्पित करना। समर्पित भोग ही बाद में प्रसाद रूप में भक्तों द्वारा ग्रहण किया जाता है। भोग तैयार करने के लिए इसी कारण शुद्धता और पाक चातुर्य पर बल दिया जाता था। भोग और प्रसाद की यह परंपरा आज भी मंदिरों में तथा लोकजीवन में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रचलित है। लोकोन्मुखी होने के कारण ही वल्लभ संप्रदाय में भोग को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है।

बालकृष्ण वल्लभ संप्रदाय के आराध्य इसलिए उन्हें कई बार भोग अर्पित किया जाता है। सामान्य जन-जीवन में व्याप्त भोजन प्रणाली ही श्रीनाथजी का भोग तैयार करने में अपनाई जाती थी इसलिए भोग की विवेचना द्वारा लोक में प्रचलित विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का परिचय मिल जाता है।

मुगलों के आगमन और राज्य के कारण विभिन्न विदेशी व्यंजन भी समाज में प्रचलित हो गए थे। मांसाहार का प्रचलन बढ़ गया था और कसाइयों की दुकानें भी खुल चुकी थीं (दादू आदि संतों ने महाकाल की तुलना कसाई से की है) परंतु अष्टछापी कवियों ने यादवराज नंद-यशोदा के ग्राम्य परिवेश के सात्विक जीवन और निरामिष भोजन का ही वर्णन किया। पाक कला संबंधी उनका ज्ञान इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है।

बालकृष्ण के प्रायः चार प्रहर के भोजन का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जिसमें सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ सम्मिलित किए गए हैं। प्रातक़ालीन भोग, कलेवा या कलेऊ कहलाता था जो मुखारी (दांत-मुंह साफ करना) के बाद यशोदा द्वारा कृष्ण को दिया जाता था। सभी कवियों ने कलेऊ में कृष्ण के प्रिय व्यंजन माखन-रोटी को प्रमुखता दी है। परंतु कलेवे में इसके अतिरिक्त नाना प्रकार की मेवा खारि (छुहारा), दाख, चिरौंजी, किशमिश, बादाम, खोपरा आदि दूध और रस की खीर, घेवर, फेनी, चिउरा आदि मिष्ठानों तथा दही के साथ पूरी का उल्लेख भी किया है। आम और केले के फल आदि के बाद पान खाने की प्रथा का वर्णन भी किया है।[323]

"द्वार ठाढ़े ग्वाल लाल करो हो कलेउ लाल मीसी रोटी छोटी माखन सों खाइये।"[324]

सायंकाल के भोजन को बियारी अथवा बियारू कहा जाता था। दिन के शेष भाग में श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ वन में गोचारण करते थे इसलिए उन्हें छाक भेजा जाता था। जिसे गोप या गोपी कोई भी ले जा सकता था। पर सामान्यतः यह काम स्त्री वर्ग का ही होता था—

"अरी छाकहारी चार पांच आवति मध्य ब्रजराज लला की।"[325]

छाक में भी विभिन्न प्रकार के व्यंजन भेजे जाते थे जिन्हें कलात्मक ढंग से थाल में सजाया जाता था। चतुर्भुजदास ने यहां भी छप्पन भोग और छत्तीस व्यंजनों का उल्लेख किया है।[326] परमानंददास ने यशोदा द्वारा कांवर भर कर छाक जगमगाते हुए स्वर्ण थाल में भेजने का वर्णन किया है—

"कांवर द्वय भरिकैं छाक पठाई नंदरानी आप।"[327]

परमानंददास ने मधुवन, कुमुदवन, श्यामढाक के नीचे और गिरिराज के ऊपर ग्रीष्म काल में अरोगी छाक का वर्णन किया है। छाक में मुख्यतः ताजा मक्खन, दही, शिखरन, पकवान, मिष्ठान्न तथा विभिन्न प्रकार की सब्जियां भेजने का उल्लेख मिलता है—

"सद माखन साजो दधि मीठो मधु मेवा पकवान।"[328]
"पातनि पे धरत भात दधि सिखरन लिए हाथ।"[329]
"टेंटी साक संधानों रोटी गोरस सरस महेरी।"[330]

छाक भोजन में उल्लेखनीय बात यह है कि वहां वर्गभेद जैसी कोई बात नहीं है। सभी ग्वाल-बाल निस्संकोच एक साथ छाक का आनन्द लेते थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बियारी में लुचई, दधिबाटी, बेसन की बनी कढ़ी, उरद की दाल, करौंदा आदि के साथ मिष्ठान, जलेबी, घेवर, मालपुआ, मोतीचूर के लड्डू आदि परोसे जाते थे। भोजनोपरांत औटाया हुआ दूध बियारी का आवश्यक अंग था। सूरदास ने तेल में छोंके और कपूर आदि से सुवासित किए विभिन्न प्रकार के सालनों का उल्लेख किया है—

"हींग हरद मिर्च छौंके तेल अदरख और आंवले मेले।
सालन सकल कपूर सुबासत स्वाद लेत सुंदर हरि ग्रासत।"—[331]

अन्य कवियों ने भी ब्यारू के विविध व्यंजनों का वर्णन किया है—

"ब्यारू कीजै मोहनराय।
मधु मेवा पकवान मिठाई बिजन सरस बनाय।
दार भात और कढ़ी बरी की मिस्सी पनो छनाय।"[332]
"फेनी पापर खुरमा खाजा गुंजा मिस्त्री लड्डुवा लीजै।"[333]
"बहु मेवा पकवान मिठाई व्यंजन करे मधुर रस पागे।
दार भात धृत कढ़ी संधानौ। रुचिकर मुख सों मांगे।"[334]

बालकृष्ण के खाते-खाते ऊंघने का स्वाभाविक वर्णन सूरदास ने किया है।[335] उपरोक्त वर्णन नित्योत्सव के क्रम का अंग है। वर्षोत्सव के अंतर्गत जन्माष्टमी, अन्नकूट, कुंडवारा, छप्पन भोग प्रमुख हैं। इन सबके लिए बहुसंख्यक व्यंजनों को तैयार करने का विधान है। दोपहर के भोजन अथवा ज्यौनार के समय भी व्यंजनों की लंबी सूची प्रस्तुत की गई है। फलतः जितने प्रकार के भोज्य पदार्थ वल्लभ संप्रदायी मंदिरों में परंपरा से प्रस्तुत किये जाते रहे हैं उतने अन्यत्र दुलर्भ हैं। प्राचीन भारत में छत्तीस, छप्पन और चौंसठ प्रकार के व्यंजन माने गए हैं। पर अष्टछाप कवियों में विशेषतः सूरदास शताधिक व्यंजनों का उल्लेख किया है। इन सब व्यंजनों के नाम सूरदास के कलेवा और बियारी के प्रसंग में पाए जाते हैं।[336] सूरदास ने ज्यौनार के वर्णन में सर्वाधिक व्यंजनों के नाम गिनाए हैं।[337] गोवर्धन पर्वत की पूजा के अवसर पर मध्यकालीन भारत में प्रचलित सत्रह सौ व्यंजनों का उल्लेख किया है—

"सत्रह सौ भोजन तहँ आए।"[338]

स्वाद की दृष्टि से व्यंजनों को 6 प्रकार का माना जाता है—मधुर, कटु, अम्ल, तिक्त, कषाय तथा लवण। इन छह स्वादों में से सूरदास ने मधुर, खट्टे, मीठे, कषाय, चटपटे या चरपरे तथा नमकीन व्यंजनों को प्रमुखता दी है। मधुर स्वाद के लिए गुड़, मिश्री व शीरे का प्रयोग किया गया है—

"फेनी घुरि मिसि-मिली दूध संग मिस्त्री भई एक रंग।
साज्यौ दही अधिक सुखदाई ता ऊपर पुनि मधुर भलाई।"[339]

खट्टे स्वाद के लिए इमली, नींबू और करौंदे के प्रयोग का वर्णन है। कषाय या कसैले स्वाद वाले व्यंजनों को सरस बनाने के लिए भी नींबू का प्रयोग किया जाता था। सरसों, मेंथी, सोया, पालक, अदरख तथा आँवले ऐसे ही शाक हैं। अजवायन, इमली, जीरा, राई, मिर्च, लोन, सोंठ और हींग आदि मसालों के साथ तेल या घी में इन व्यंजनों को तैयार किया जाता था। पाक कौशल ऐसी साग-सब्जियों को सरस बनाने से प्रगट होता था—इसप्रकार स्वाद-पाक की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जु मिलायो।"[340]

"हींग लगाई राइ दधि सांध्यौ।"[341]

"भले बनाइ करेला कीने लोन लगाइ तुरत तरि लीने।"[342]

"कितिक भाँति केरा लीने दै करवँदा हरदि रँग भीने।"[343]

सूरदास के अतिरिक्त परमानंददास ने भी गोवर्धन लीला के संदर्भ में विभिन्न व्यंजनों का उल्लेख किया है।[344] अष्टछाप साहित्य में प्रातःकालीन कलेवा या छाक बनाने के लिए रसोई शब्द का प्रयोग नहीं किया है। केवल बियारी या ज्यौनार के लिए ही कच्ची व पक्की रसोई का प्रयोग हुआ है। अष्टछाप में वर्णित सभी व्यंजनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **दूध के पदार्थ**—दधि, मक्खन, अधौटा दूध, मलाई, पेड़ा, बरफी, सिखरन (श्रीखंड), बांसौधी और छाछ।

2. **अनसकड़ी रसोई के व्यंजन**—"पूरी, बेसन की पूरी, मैदा की पूरी, कचौड़ी, लड्डू, सेब के लड्डू, मोतीचूर के लड्डू, खिर लाडू (लौंग लगे लड्डू), खुरमा, इमरती, घेवर, फेनी, जलेबी, सीरा (मोहनभोग)।

'मधु, मिसरी, गूंझा, अंदरसे, पुआ, शकरपारे, खजूरी, मालपुआ, इलायची पाक, पेठा पाक, गांद पाक, गालमसूरी, सुहार, मठरी, खाझा, चिउड़ा, सेब, पकौड़ी, दूध पकौड़ी, मूँग पकौड़ा, बड़ा और बरी।

3. **सकड़ी (कच्ची) रसोई के व्यंजन**—रोटी, बेसन की रोटी, मूँग की दाल, उड़द की दाल, चना की दाल, मूँग मसूर भात, पंचभात, बेंगन भात, कढ़ी, खिचड़ी, खीर, महेरी, लपसी, अंगाखड़ी, बाटी, लुचई, ढोंकला, भुंजैना, उड़द बड़ी, तिलबड़ी, टेंटी, ग्वाल की फली, करेला की कचरी, तोरई की कचरी, पापड़ तथा दही बड़ा।

साग-सब्जियों तथा फल और मेवा के नाम इस प्रकार हैं—

साग-सब्जी—आलू, तरालू, सूरन, शकरकंद, तोरई, बेंगन, बेंगन का भरता, करेला, सेम, सेंगरी, सोवा पालक, भिंडी, मूली, चौलाई, मेथी, बथुआ, अरबी, अमरस, ऊख रस, इमली का पना, रायता, सहजना की कली, सरसों का साग, पेठा, पाकर की कली, कचनार की कली, चिंचोड़ा, ढेंडस, चना का शाक, केला, करोंदा, ककोड़ा, आस्त की फली, अदरख, नींबू अचार और कांजी।

फल—श्रीफल, आम, केला, अनार, नारंगी, सेब, अमरूद, शुमानी ककड़ी, तरबूजा, खरबूजा और खीरा।

मेवा—किशमिश, द्राक्षा, चिरोंजी, बादाम, खोपरा, खरिक (छोहारा), पिश्ता और पिंडखजूर।

इन व्यंजनों में से अधिकांश आज भी उत्तर भारतीय भोजन के अनिवार्य अंग हैं। अष्टछाप साहित्य में इन व्यंजनों को तैयार करने की विधि का वर्णन भी किया गया है। उसी विधि का पालन आज भी लोक जीवन में किया जा रहा है जैसे पुआ, मालपुआ, घेवर, फैनी, दूध की रबड़ी, मलाई, खोवा, सक्करपारे, सुहार, सुहारी (मीठे-नमकीन), जलेबी, गुँझिया, लपसी लड्डू, खजूरी, इमरती, तथा दूध से बनी मिठाइयाँ। इसी प्रकार नमकीन पकौरी या पकौड़ी (आधुनिक) के विविध प्रकारों के निर्माण की विधि भी वर्णित की गई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप में वर्णित मध्यकालीन पाककला के द्वारा विभिन्न संस्कृतियों के अपूर्व समन्वय को प्रदर्शित किया गया है। वल्लभ संप्रदायी आचार्यगण मूल रूप से आंध्रप्रदेश के निवासी हैं इसलिए रसोइयों में दाक्षिणात्य भोजन का प्रचलन रहा है। मंदिरों के रसोइए मुख्यतः गुजराती ब्राह्मण रहे हैं इसलिए अपने प्रदेश के विशिष्ट व्यंजनों को भी उन्होंने ठाकुरजी की रसोई में शामिल कर लिया है। श्रीखंड व दही के अन्य मिष्ठान्न इस तथ्य के प्रमाण हैं। मुगल संस्कृति के प्रभाव स्वरूप भी अनेक व्यंजनों और तरकारियों को सम्मिलित किया गया है। 'माँडे' का उल्लेख मुगल संस्कृति के प्रभाव स्वरूप हुआ है। विदेशों से आने वाली मेवाएँ भी जैसे बादाम, छुआरा, किशमिश, दाख, मुनक्का, आदि तत्कालीन ब्रजलोक भोजन का अंग बन गई थीं। ब्रज लोक जीवन के भोज्य पदार्थों का उल्लेख तो स्वाभाविक ही था। पूरी, खीचरी, कढ़ी सालन, बरी मँगोड़ी, मिथौरी, काँजी, रायता आदि आज भी ब्रज प्रदेश के नित्य भोजन के अंग हैं। इस प्रकार इन सभी संस्कृतियों के संस्पर्श ने ब्रज की पाककला को एक व्यापक तथा भव्य रूप प्रदान किया है।

मनोविनोदात्मक कलाएँ

ब्रज के लोक जीवन में उल्लास और आनंद की अभिव्यक्ति भी किसी न किसी रूप में कलाओं से जुड़कर हुई है। मनोविनोद या मनोरंजन मनुष्य की भावनात्मक अपेक्षाएँ हैं। संस्कृति के विकास के साथ उनका रूप परिवर्तन होता गया है। प्रारंभ में नृत्य, संगीत, मल्लयुद्ध आदि मनोविनोद के साधन बने तो बाद में नाटक-कहानी, आखेट-द्यूत आदि भी उसमें जुड़ते चले गए। कुछ साधनों का विकास शारीरिक श्रम और शक्तिवर्धन के लिए किया गया तो कुछ का मानसिक प्रखरता प्राप्त करने के लिए। इसी प्रकार मनोविनोद के कुछ साधनों में प्रभूत धन की आवश्यकता पड़ती है और वे राजन्य वर्ग द्वारा ही अपनाए जा सकते हैं इसके विपरीत उपलब्ध प्राकृतिक अथवा आर्थिक साधनों द्वारा प्राप्त मनोविनोद जनसाधारण द्वारा स्वीकार किए जाते हैं। मनोविनोद के साधनों की यह विभिन्नता प्रत्येक युग और समाज में देखी जा सकती है।

कलात्मकता के दृष्टिकोण से मनोविनोद के साधनों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे साधन आते हैं जिनमें कलात्मकता का अंश मनोविनोद से अधिक होता है। प्राचीन काल से ही इनका विकास एक कला के रूप में हो रहा था और मध्यकाल तक आते-आते कला और मनोविनोद के संतुलन द्वारा यह समाज के अभिजात्य व ग्राम्य दोनों ही संस्कृतियों का अभिन्न अंग बन गए। इस वर्ग में मल्लयुद्ध, आखेट, चौगान, जलविहार, चौपड और द्यूतक्रीड़ा आदि आते हैं। द्वितीय वर्ग में वे साधन आते हैं जिनमें कला की अपेक्षा तो होती है परन्तु प्रथम वर्ग की तरह सूक्ष्मता की आवश्यकता नहीं होती। यत्किंचित अभ्यास से इन साधनों के निर्वाह में कुशलता प्राप्त की जा सकती है। इनमें से कुछ साधन शरीरिक संतुलन पर आधरित हैं इन्हें संपन्न करने वाले कलाकारों और दर्शकों को इनमें समान रूप से आनन्द मिलता है। नट बाजीगरों की कलाएं इसी श्रेणी में आती हैं। उनके अतिरिक्त कुछ साधन ऐसे हैं जिनमें मानसिक कला-कौशल की आवश्यकता पड़ती है जैसे पहेली बूझना, कहानी कहना या बुझाना आदि। बच्चों व बड़ों के मनोरंजन के साधन रूप में प्रचलित पतंग उड़ाने में शारीरिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संतुलन और पेंच आदि लड़ाने काटने में बुद्धि कौशल की आवश्यकता समान रूप से होती है। तृतीय वर्ग के मनोविनोद के साधन पूरी तरह से बाल जगत से संबंधित हैं। इनमें मनोरंजन या मनोविनोद की भावना प्रधान रहती है कलात्मकता की गौण। बच्चों के शारिरीक विकास और स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रकृति की गोद या घरों के खुले आंगनों में खेले जाने वाले इन साधनों का महत्व अनुपेक्षणीय है। इनके अंतर्गत आँख-मिचौनी, छुआ छुऔवल, चढ़ाचढ़ी, गोवृषभानुकरण, कंदुक क्रीड़ा, चौगान बटा आदि खेल आते हैं। इन सभी को खेलने की एक विशेष कला और पद्धति होती है जिसमें दक्ष होने पर ही बालक या किशोर अपने समवयस्कों पर विजय प्राप्त कर सकता है। भागदौड़ के इन खेलों में मनोविनोद के साथ-साथ शरीरिक क्षमता और स्फूर्ति में बढ़ोत्तरी होती है। शिशुओं के मनोरंजन के रूप में खिलौनों का प्रचलन प्रत्येक समाज में है। इनके निर्माण में भी कलात्मक दृष्टि की आचश्यकता होती है। सामान्य रूप में इनमें कवला की बारीकियों पर ध्यान नहीं दिया जाता इसलिए खिलौनों को भी इस वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है। कृष्ण का मुरली वादन भी इसी वर्ग में आता है जिसका प्रारंभ शुद्ध मनोविनोद की दृष्टि से हुआ होगा। सतत अभ्यास से कृष्ण इसमें पारंगत हो गए और मुरली वादन इस प्रकार एक कला के रूप में परिगणित होने लगा। चतुर्थ वर्ग में मनोविनोद के वे साधन आते हैं जिनमें कलाएँ एकदम पृष्ठभूमि में चली जाती हैं। जनसाधारण द्वारा अपनाया गया संगीत उद्यान क्रीड़ा या परिभ्रमण तथा मनोविनोद के लिए पशु-पक्षियों को पालना इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इनमें शुद्ध मनोरंजन की प्रवृत्ति ही प्रधान रहती है। अष्टछाप काव्य में इन सभी मनोविनोदात्मक कलाओं का निरूपण किया जा सकता है।

मल्लकला अथवा नियुद्ध

यह अत्यंत प्राचीन कला है। सृष्टि के प्रारंभ में अस्त्र-शस्त्रों के प्रभाव में द्वंद्व के आधार पर ही जय-पराजय का निर्णय किया जाता था। पौराणिक सूत्रों के आधार पर विष्णु ने मधु-कैटभ और उनके अवतार वाराह तथा नृसिंह ने हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु को द्वंद्व में पराजित किया था। धीरे-धीरे 'द्वंद्व' एक कला के रूप में विकसित हुआ और उसके प्राणघातक, अंगभंजक, मूर्च्छक और भूपातक भेद किए गए। इनमें से प्रथम तीन को 'युद्ध' और चौथे को नियुद्ध कहा गया है। यह नियुद्ध ही मल्ल कला है जिसकी शिक्षा रंग मंडल या अखाड़ों में दी जाती है। व्यायाम पौष्टिक भोजन, अंगमर्दन, विभिन्न दाँव-पेंच और उनकी 'काट' इसके प्रमुख अंग हैं। यह कला आर्यों के साथ असुरों, राक्षसों, यक्षों, नागों और अन्य वन्य जातियों में समान रूप से प्रचलित थी। आर्यों की मल्लकला के आचार्य वृहस्पति और अगस्त्य थे तथा असुरों के शुक्राचार्य। रामायण काल में रावण और कुंभकरण प्रसिद्ध मल्ल थे। वन्य जातियों के मल्लों में बाली, सुग्रीव, अंगद, हनुमान और जाम्बवन्त थे। इनमें हनुमान और जाम्बवन्त की शैली के आधार पर कुश्ती की हनुमंती और जाम्बवंती पद्धतियों का विकास हुआ जिनका प्रचलन आज भी है। महाभारत काल में बलराम, कृष्ण, भीम, बकासुर, चाणूर-मुष्टिक, जरासंध, जीमूत आदि प्रसिद्ध मल्लों का उल्लेख मिलता है।

ब्रजमंडल में मल्लकला प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रही है। महाभारत में नियुद्ध

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुशल लोगों का उल्लेख करते हुए यवन और काम्बोज के साथ मथुरामंडल के निवासियों को भी इस कला में पारंगत बताया गया है।[346] कृष्ण और बलराम बाल्यकाल में ही इस कला के दाँव पेंचों से परिचित हो गए थे। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में पलने के कारण उनके शरीर भी हृष्ट-पुष्ट थे, इसी कारण अपने से कहीं अधिक बलशाली और प्रौढ़ मल्लों को वे पराजित कर सके थे। बचपन में गोचारण के समय विभिन्न बलशाली पशुओं (और उनका रूप धारण किए राक्षसों) तथा कालिय जैसे नाग जातीय मल्ल को उन्होंने अपने दाँव-पेंचों से ही बिना शस्त्रों की सहायता के पराभूत किया।[347] उनकी कला का प्रमाण मथुरा में कंस के रंग मंडल में मिलता है जहां उन्होंने पहले कुबलयापीड हाथी और फिर चाणूर और मुष्टिक जैसे मल्लों को क्षणभर में परास्त कर कंस का वध किया। कंस स्वयं मल्ल विद्या में निपुण तथा मल्लों का प्रेमी था। उसके संरक्षण में विभिन्न प्रदेशों के मल्ल रहते थे। आधुनिक मथुरा में एक मोहल्ले का नाम ही 'मल्लपुरा' है। संभवतः इसी स्थान पर, कंस के मल्लों का निवास रहा होगा।

अष्टछाप काव्य के समय में ब्रज में मल्ल कला का प्रचार अन्य कलाओं की अपेक्षा कम था। इसका कारण मध्यकालीन राजनीतिक अराजकता थी। मल्लकला के लिए उपयुक्त वातावरण न मिलने के कारण साधारण जनता इसके प्रति उदासीन थी। इसे प्रश्रय देने वाले आश्रयदाता अपने अस्तित्व के लिए युद्धरत थे। इन विपरीत परिस्थितियों में भी ब्रज के ग्रामीण परिवेश में कहीं न कहीं यह कला सुरक्षित थी क्योंकि अष्टछाप कवियों ने इसका विशेष उल्लेख किया है। दाँव-पेंचों की बारीकी में वे नहीं पड़े हैं परंतु इस विषय में अपने ज्ञान का प्रमाण उन्होंने दे दिया है। संभव है ब्रज के गाँवों में आत्मरक्षा और अन्य विषम परिस्थितियों का सामना करने के लिए अखाड़ों में मल्लकला की व्यवस्था हो। सारावली में कृष्ण और बलराम से कंस का कथन और उसके प्रत्युत्तर में उन दोनों को कंस के मल्लों से मल्लयुद्ध करना इसका प्रमाण है। कृष्ण बलराम के दाँव-पेंच देखकर नंद के आनंदित होने का उल्लेख भी किया गया है—

"जब उन कह्यौ मल्लक्रीड़ा तुम करत गोप के संग।
वृंदावन में हम सुनियत है क्रीडत हौ बहुरंग।"
"तब हरि भिरे क्रीड़ा करि बहुविधि दाँव देखाये।"
"मल्लयुद्ध हरि करि गोपनि सों लखि फूले ब्रजराज।" [348]

सूरसागर में कंस के योद्धाओं की ललकार पर कृष्ण बलराम के मल्लयुद्ध का वर्णन किया गया है जिसमें कुश्ती के दाँव पेंच प्रदर्शित किए गए हैं—

"काल सौं भिरैं हम कौन तुम बापुरे"
"स्याम चानूर बलबीर मुष्टिक थरे, सीस सौं सीस भुज-भुज मिलावैं।
वै उन्हैं गहत वै दौरि उनकौं गहत करत बल छल नहिं दाँव पावैं।
धरि पछारयौं दूहू बीर दूहँमल्ल कौं हरषि कह्यौ हते ये नंद दुहाई।" [349]

परमानंददास ने गोकुल वृंदावन में पले-बढ़े कृष्ण बलराम द्वारा मथुरा में कंस की रंगशाला में धनुष तोड़ने, कुबलया को मारने और अनेक मंल्लों को पछाड़ने का उल्लेख करके उनकी मल्ल कला में निपुणता का परिचय दिया है—

"तोरयौं धनुष कुवलया मारयौ चारयौ मल्ल पछारे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"मल्ल पछारि कंस सिर तोरयो नौतन भूषन साजे।"
"रंगभूमि में मल्ल पछारे कंस बाहु बल मारयो।"[350]

इन उद्धरणों में कृष्ण बलराम की शारीरिक शक्ति की ओर भी संकेत किया गया है। नंददास ने "कबहूँ मल्लयुद्ध मिलि खेल मद गजज्यों ठेलत पगपेलत"[351] कहकर छोटे बालकों में क्रीड़ाविनोद के रूप में इस कला के प्रचलित होने का वर्णन किया है। आज भी ब्रजमंडल में विद्यमान अनेक अखाड़े और बागीचियां इस कला के प्रति ब्रजवासियों के अनुराग का प्रमाण हैं परंतु उपयुक्त और समर्पित शिक्षार्थियों के अभाव में ब्रज की यह प्राचीन कला विलुप्त होती जा रही है।

आखेट कला

द्वंद्व की तरह आखेट भी प्राचीन काल से प्रचलित कला है। प्रारंभ में हिंसक पशुओं से आत्मरक्षा के लिए तथा बाद में मांसाहार की प्राप्ति के लिए इसे अपनाया गया। कालांतर में मनोविनोद का उद्देश्य भी इसके साथ जुड़ गया। सामान्य मनुष्य आदि आजीविका के रूप में उसे अपनाता था तो राजन्य वर्ग मनोविनोद की दृष्टि से। कौटिल्य ने इस कला को राजा के लिए आवश्यक और उपयोगी कला माना है।[352] घने वनों में हाथी, घोड़े पर बैठकर राजागण आखेट या मृगया को जाते थे। आखेट कला के अंतर्गत पशुओं के साथ, विषम परिस्थितियों में युद्ध करने की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। यह कला शारीरिक बल तथा क्षमता की अपेक्षा रखती है। इसके साथ ही विभिन्न पशुओं के मर्मस्थान का ज्ञान भी आवश्यक है।

ब्रज सघन वनों का क्षेत्र है और इस कारण जंगली पशुओं की भी वहां बहुतायत है। कृष्ण को अपने बाल्यकाल में ही अनेक जंगली पशुओं से युद्ध करना पड़ा था। कृष्ण और बलराम ने अपने कला कौशल से राक्षसी शक्ति वाले अनेक जंगली जानवरों—बैल (अरिष्टासुर), घोड़ा (केशी दैत्य), जंगली गधा (धेनुकासुर) और मथुरा में उन्मत्त कुबलयापीड़ हाथी का वध किया। कृष्ण के जाम्बवान से युद्ध का वर्णन भी कृष्ण कथा में किया गया है। हरिवंश पुराण में ब्रज के गोपों का वृषभों से लड़कर उन्हें उत्तेजित करने का वर्णन है। महाभारत के विराट पर्व में भीमसेन द्वारा विराट के निवासियों के मनोरंजनार्थ सिंह तथा हाथी से द्वंद्व युद्ध करने का वर्णन है।

"कुबुधि-कमान चढ़ाइ कोप करि धुधि तरकस रितयौ।
सदा सिकार करत मृग-मन कौं रहत मगन भुरचौ।"[353]
"विषम जाल बल बाँधि व्याध लौं नृप खग अवलि बटोरी।"
"सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधि कर छूटयौ संधान।"[354]

आखेट पर जाने के लिए अश्व, रथ आदि का प्रयोग किया जाता था। 'सारावली' में अश्व और सूरसागर में रथ पर आरूढ़ होकर मृगया पर जाने का उल्लेख किया गया है—

"कहुं मृगया को चले अस्व चढ़ि श्री वसुदेव कुमार।"[356]

नंददास ने अहेर खेलने का संकेत मात्र ही किया है—

"अस अहेर नित खेलै जोई सो अचरज होई।"[357]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रामकथा के संदर्भ में 'सारावली' में सामान्य रूप से चारों भाइयों की मृगया का उल्लेख किया गया है—

> *"कबहुँक चार भ्रात मिलि मृगया जात परम सुख पावत।*
> *हरिनि आदि बहु जंतु किए बध निज सुर लोक पठावत।"*[358]

मृगया के इस उल्लेख से अष्टछाप कवियों की इस विषय की में उदासीनता प्रकट हो जाती। भक्त कवि होने के कारण वे हिंसा के, अकारण प्राणिमात्र को कष्ट देने के विरुद्ध थे। दूसरे लोक जीवन में इसका प्रचलन कला के रूप में समाप्त हो रहा था। साधारण जनता अपनी ही चिन्ताओं से जूझ रही थी और राजन्य वर्ग निरन्तर युद्धों में फंसा हुआ था। मृगया कला का प्रयोग केवल आजीविका साधन के रूप में किया जा रहा था। 'ब्याध कर्म अपनाने वाले व्यक्ति पक्षियों को पकड़कर, बेचकर, अथवा उन्हें मार, खाकर अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे। समाज में ऐसे लोगों को सम्मानित स्थान प्राप्त नहीं था। इसलिए अष्टछापी कवियों ने मृगया का उल्लेख केवल पौराणिक प्रसंगों में ही किया है।

चौगान

गेंद से खेले जाने वाला यह खेल अभिजात्य वर्ग का प्रिय खेल था। आधुनिक पोलो इसी का रूपान्तर है। इस खेल में अश्व संचालन आदि के कारण विशेष दक्षता की आवश्यकता पड़ती थी इसलिए सामान्य वर्ग प्रायः इसके प्रति उदासीन रहता था। अष्टछाप कवियों में से केवल सूरदास और परमानंददास ने ही इस खेल का वर्णन किया है। परमानंददास का वर्णन क्षेत्र मुख्यतः गोकुल, वृन्दावन था इसलिए उन्होंने वृंदावन में ही घोड़े पर चढ़े श्रीकृष्ण के, अपने मित्रों के साथ चौगान खेलने का वर्णन किया है। उनके इस वर्णन से स्पष्ट है कि तत्कालीन ब्रज लोक संस्कृति में भी यह खेल लोकप्रिय होने लगा था। इसकी सीमा राजवर्ग तक नहीं रह गई थी—

> *"गोपाल माई खेलत है चौगान।*
> *ब्रजकुमार बालक संग लीने बृंदावन मैदान।*
> *चंचल बाजि नचावत आवत होड़ लगावत यान।*
> *सब ही हस्त लै गेंद चलावत करत बाबा की आन।"*[359]

सूरदास ने कथा सूत्रों को भागवत के अनुसार विकसित किया है और भागवत में वृंदावन में कृष्ण के अश्व पर चढ़ने का उल्लेख नहीं है इसलिए मथुरा जाने से पहले कृष्ण के अश्वारोहण का उल्लेख नहीं किया। मथुरा में राजपुत्र के लिए अनिवार्य अश्वसंचालन कृष्ण ने अवश्य सीखा होगा पर राजनीतिक समस्याओं के कारण इस राजसी क्रीड़ा में दक्ष नहीं हो सके होंगें या अवकाश नहीं निकाल पाते होंगें अतः सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर द्वारिका में यादव वीरों के साथ , उत्तम जाति के कुम्मैत घोड़ों पर चढ़कर कृष्ण के चौगान खेलने का वर्णन किया गया है। चौगान के खेल में घोड़े पर चढ़कर गेंद पर काबू किया जाता है। आधुनिक 'गोल' की तरह उस समय भी 'हाल' करने का उल्लेख किया गया है जो विजय के लिए निर्णायक तत्व है। कृष्ण की कुशलता इसी बात से प्रमाणित हो जाती है कि वे हलधर आदि वीरों के द्वारा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यवधान डालने पर भी 'हाल' करने में सफल हो जाते हैं—

"मनमोहन खेलत चौगान।
द्वारावती कोट कंचन में रच्यौ रूचिर मैदान।
नीले सुरंग कुमैत स्यातेहि परदे सब मन रंग।
बरन अनेक भांति भांतिनि के चमकत चपला दंग।
जबहीं हरि लै गोइ कुदावत कंदुक कर सौं लाइ।
तबहीं औचकहीं करि धावत हलधर हरि के पाँइ।
कुँवर सबै घोड़े फेरे पै छाँडत नहिं गोपाल।
बलै अछत-छल-बल करि जीते सूरदास प्रभू हाल।"[360]

इस वर्णन से स्पष्ट है कि चौगान खेलने की कला में 'अछ्त बल' के साथ अश्वारोहण में दक्षता तथा बुद्धि चातुर्य की आवश्यकता पड़ता थी। आज भी 'पोलो' के रूप में परिवर्तित यह खेल इन तत्वों की अपेक्षा रखता है।

जलविहार

यह एक अत्यंत प्राचीन कला है जिसमें स्त्री-पुरूष बालक-बालिकाओं की समान रूप से रुचि रहती है। प्राचीन साहित्य में इनकी अलग-अलग व सम्मिलित क्रीड़ाओं के वर्णन मिलते हैं। पौराणिक साहित्य में चित्ररथ गंधर्व का जल विहार व सहस्त्रार्जुन की नर्मदा में जल क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है। कालिदास ने रघुवंश में शिव-पार्वती के मनोरम जलविहार [361] का वर्णन किया है। जैन ग्रंथों में इस कला क्रीड़ा का और इसमें हाथी की विभिन्न क्रियाओं का चित्रण किया गया है। [362] विशाल प्रासादों और राजभवनों में जलविहार में इस कला क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है। विशाल प्रासादों और राजभवनों में जलविहार के लिए पानी के बहाव को रोककर उससे क्रीड़ा योग्य पुष्करणियों का निर्माण किया जाता था। कालिदास ने इन्हें गृह दीर्घिका की संज्ञा है।[363]

ब्रज की लोक संस्कृति में यह कला प्रारंभ से ही घुली-मिली है। ब्रज के संपूर्ण क्षेत्र में यमुना अपनी अनेक शाखाओं, प्रशाखाओं के साथ प्रवाहित होती है। इसके अतिरिक्त सरोवर, पुष्करिणी और बाबिड़ी आदि का भी यहाँ प्राचुर्य है। इस उपयुक्त वातावरण में तैराकी की यह कला सदैव उन्नतिशील रही है। कृष्ण ने अन्य कलाओं के साथ-साथ इस कला को भी प्रोत्साहन दिया। महाभारत के आदि पर्व में कौरव पांडवों की जलक्रीड़ा का विशद वर्णन मिलता है।[364] अष्टछाप काव्य में भी ब्रज की इस कला और मनोविनोद का चित्रण किया गया है। बालकृष्ण प्रारंभ से ही यमुना में क्रीड़ा करने को उत्सुक रहते हैं परंतु नंद और यशोदा अनहोनी के भय से उन्हें इसकी आज्ञा नहीं देते थे। उनकी इसी वर्जना को ध्यान में रखते हुए कृष्ण प्रथम गोचारण पर जाते हुए यमुना में क्रीड़ा न करने की शपथ खाते हैं—

"सूरदास हैं साखि जमुन जल सौंह देहु जु नहैहौं।"[365]

श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में रास लीला के पश्चात् जल क्रीड़ा का उल्लेख किया गया है। इस प्रसंग में कृष्ण व गोपियां दोनों ही इस कला में निपुण चित्रित किए गए हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'रासरस' से 'श्रमित' ब्रज बालाओं के साथ कृष्ण यमुना में जलविहार द्वारा उनकी श्रांति को दूर करते हैं—

"स्यामा स्याम सुभग जमुना जल निर्भ्रम करत बिहार।
पीत कमल इंदीवर पर मनु भोर भएं नीहार।
श्री राधा अंबुज कर भरि भरि छिरकति बारंबार।
कनक लता मकरंद झरत मनु हालत पवन संचार।"[366]

जलक्रीड़ा में यौवन की उद्दाम भावना का प्रगटन होता है। इस अभिव्यक्ति में शरीर की सुधबुध भूली राधा तथा गोपियों के सौंदर्य का चित्रण भी किया गया है—

"राधे छिरकति छींट छबीली।
कुच कुंकुम कंचुकि बंद छूटे लटकि रही लट गीली।
बंदन सिर ताटंक गंड पर रतन जटित मनि नीली।
मच्यौ खेल जमुना जल अंतर प्रेम मुदित रस झीली।"[367]

जल के अंदर विभिन्न मुद्राओं में, भीजिपढ लपटचौ सुभग उर[368]वाली गोपियों का चित्रांकन भी किया गया है—

"राजत हैं दोउ बाहाँजोरी दंपति अरू ब्रज बाम।"
"कोउ ठाढ़ी जल जानु जंघ लौं कोउए कटि हिरदय ग्रीव।"
"मलयज मपंक कुकुभा मिलि कै जल जमुना इक रंग।"[369]

नंददास ने जलक्रीड़ा के अन्तर्गत कृष्ण राधा की अनेक कलाओं का वर्णन किया है उन्होंने इस क्रीड़ा को 'गजक्रीड़ा' के सामानान्तर वर्णित किया है—

"धाय जमुन जल धँसे लसे छबि परति न बरनी।
बिहरत मनु गजराज संग लिये तरूनी करिनी।"[370]

इस क्रीड़ा में एक दूसरे पर जल छिड़कने और कलात्मक ढंग से लुकाछिपी का खेल खेलने का भी वर्णन किया गया है—

"छिरकत छैली छैल जमुन जल अंजलि भरि-भरि।"
"जमुना जल में ढुरि-ढुरि कामिनी करत कलोलैं।
मानो नव घन मध्य दामिनी दमकत डोलैं।"[371]

सूरदास की तरह नंददास ने भी भीगे वस्त्रों के शरीर से चिपटकर उसके सौंदर्य को उभारने का उल्लेख किया है—

"भीजिबसन तन लिपटि निपट छबि अंकित है अस,
नैननि के नहिं बैन बैन के नै न ही जस।"[372]

अष्टछाप के अन्य कवियों ने इस विषय का उल्लेख तो किया है परंतु विशद वर्णन नहीं किया है। परमानंददास ने कृष्ण तथा ग्वाल-बालों की जलक्रीड़ा का वर्णन किया है, जिसमें उन्मुक्त मनोरंजन के साथ ग्रामीण बालकों की तैरने की कला का प्रदर्शन भी है—

"करत गोपाल जमुना जल क्रीड़ा।"
"लाल को छिरकत हैं ब्रज बाल।"
जमुना जल उछलत चहुँदिसि तें हँसत हँसावत ग्वाल।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाँह जोरी फिरत परस्पर पीत कमल मनिभाल।"[373]

गोविंद स्वामी ने जलविहार के वर्णन में एक-दूसरे पर पानी छिड़कने और भीगे वस्त्रों से झलकते शारीरिक सौंदर्य का उल्लेख किया है—

"गोबिंद छिरकत छींट अनूप।
उत बृषभानु नंदिनी राजत इत घनस्याम स्वरूप।
पावन जल जमना कौ निरमल करत बिबिध इस केलि।
सजल बसन सोभितअंगनि मैं उठत तरंगनि रेलि।"[374]

जल विहार के साथ-साथ तैरने, गोता लगाने और नौका विहार का प्रचलन भी ब्रज में प्राचीन काल से रहा है। तैरने और गोता लगाने का अप्रत्यक्ष प्रमाण तो उपरोक्त उदाहरणों से मिल जाता है पर नौका विहार का नहीं मिलता है। अष्टछापी कवियों में से केवल परमानंददास ने कृष्ण को इस कला में पारंगत वर्णित कर उनके नौकायन का उल्लेख किया है—

"बैठे घनस्याम सुंदर खेवत हैं नाव।
जमुना गंभीर नीर अति तरंग लोलै।
बीच धार माँझ रोकि मिष ही मिष डुलाई।"[375]
"जमुना जल खेवत हैं हरि नाव।"[376]

जल विहार के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन ब्रज में इसे एक कला के रूप में मान्यता मिली हुई थी। सामान्य व्यक्ति भी, ब्रज में, तैराकी की इस कला में निपुण होता था। दैनिक नदी स्नान और ग्रीष्म ताप निवारण के लिए इस कला का ज्ञान प्रत्येक के लिए अनिवार्य था। पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ और बच्चे भी इस कला से परिचित थे। ब्रज लोक संस्कृति की यह विशेषता अष्टछाप काव्य में मुखर हो उठी है। आधुनिक ब्रज में भी यह कला फल-फूल रही है। वर्षा ऋतु में जब यमुना में प्रभूति जलराशि रहती है, तब अनेक व्यक्ति सामूहिक रूप से अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। इसे 'तैराकी का मेला' कहा जाता है।

चौपड़

यह ब्रज का प्राचीन मनोविनोद है। इसे चौसर भी कहा जाता था। धनी तथा निर्धन समान रूप से इसे खेल सकते थे। आज भी, घरों में खेला जाने वाला मनोरंजन का यह प्रमुख साधन है। कपड़े की बिसात बिछाकर पाँसों और गोटों की सहायता से इसे खेला जाता है। कम से कम दो और अधिक से अधिक चार खिलाड़ी इसे खेल सकते हैं। पाँसों के स्थान पर नौ कौड़ियों से भी इसे खेला जाता है। इनकी सहायता से प्राप्त अंकों के आधार पर गोटें बिसात पर बिछायी जाती हैं। प्रत्येक खिलाड़ी के पास एक ही रंग की चार गोटियाँ होती थीं। दूसरे खिलाड़ियों को गोटों के प्रहार से बचते हुए अपनी गोटों को लक्ष्य तक पहुँचाने वाला खिलाड़ी ही विजयी घोषित किया जाता है। इस बचाव तथा दूसरों की गोटों पर प्रहार के रूप कलात्मकता की आवश्यकता पड़ती है। और इसी कारण इसे कला के रूप में भी स्वीकार कर लिया गया है। अष्टछाप काव्य में केवल सूरदास ने इस कला का वर्णन किया है। उन्होंने इसे खेलने की विधि भी समझाई है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"साधु संगति डारि पासा, फेरि रसना सारि।
दाँव अबके परचौ पूरौ, उतरि पेली पारि।
राखि सत्रह सुनि उठारह, पंच ही को मारि।
दूरि हों तजि तीनि काने चतुर चौकर बिचारि।"[377]

सूरसागर में चौपड़ की कला से संबंधित एक विशाल पद मिलता है जिसमें पाँसों से प्राप्त होने वाले विभिन्न अंकों का प्रतीकात्मक अर्थ लगाया जा सकता है। जैसे पाँच—कामदेव से पीड़ित होना; सात—सात द्वीप वाली पृथ्वी; आठ—आठ प्रहर और सिद्धियां; नौ—नौ द्वार वाला शरीर; दस—दसों दिशाएँ आदि। चौपड़ के खेल का चौगान के समान ही विस्तार से वर्णन सूर ने इस पद में किया है—

"चौपरि जगत मड़े जुग बीते।
गुन पाँसे क्रम अंक चारि गति सारि न कबहूँ जीते।
सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी।"[378]

यहाँ पौ के महत्व का बखान किया है जिसके बिना खिलाड़ी अपनी पहली गोट को बिसात पर बिठा ही नहीं सकता है। 'सारावली' में द्वारिकावासी कृष्ण का अनेक युवतियों के साथ चौपड़ खेलने का उल्लेख किया गया है—

"कहुँ चौपर खेलत जुवतिनि संग पाँच-सात उच्चार।"[379]
"चौपर खेलत भवन आपने हरि द्वारिका मँझार।
पाँसे डारि परम आतुर सों कीन्हे अनत उचार।"[380]

कृष्ण के अतिरिक्त युधिष्ठिर के भी चौपड़ खेलने का वर्णन किया गया है—

"सभा रची चौपर क्रीड़ा करि कपट कियौ अति भारी।
जीति युधिष्ठिर भइ सब जानी तउ मन में अधिकारी।"[381]

सारावली के उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि चौपड़ का खेल राजन्य वर्ग में अधिक प्रिय था। वहीं इसका कलात्मकता रूप भी निखरकर सामने आता है। सामान्य व्यक्ति भी इस खेल से और उसके नियमों से भली-भाँति परिचित था इसलिए सूरदास ने अध्यात्म जैसे विषय को स्पष्ट करने के लिए चौपड़ के उपमान का चुनाव किया।

द्यूतक्रीड़ा

प्राचीन समाज में ही नहीं आधुनिक समाज में भी द्यूत मनोरंजन का प्रमुख साधन है। द्यूत में 'बाजी' निश्चित करके ही पाँसे फेंके जाते हैं इसलिए हार-जीत का निर्णय तत्काल हो जाता है। चौपड़ और द्यूत में यही अंतर है। युधिष्ठिर ने चौपड़ को भी द्यूत के समान खेला था और कौरवों के कपट से सब कुछ हार दिया था, यह सारावली (762) के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। "रामायण में द्यूत क्रीड़ा से संबंधित तीन शब्दों का प्रयोग किया गया है—"अक्ष, (2-75041), 'देवन' (509-31) और पण (6-61-4)। अक्ष का अर्थ है पाँसा, पाँसों से जुआ खेलना 'देवन' कहा जाता था और पण उस वस्तु को कहते हैं जो जुए के दाँव पर लगाई जाती थी।"[382]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार—"अष्टध्यायी में 'द्यूत' अथवा 'अक्षद्यूत' नाम मिलते हैं। जुआरी को 'आक्षिक' कहा गया है। पंतजलि के अनुसार, जुए की आदत वाला व्यक्ति 'अक्ष कितव' या 'अक्ष धूर्त' था। 'कितव' या जुआरी प्राचीन वैदिक शब्द है। ये शब्द इसी अर्थ में बौद्ध साहित्य तथा 'महाभारत' महापर्व (58/9) में मिलते हैं 'अष्टाध्यायी' तथा 'अर्थशास्त्र' के अनुसार यह खेल "अक्ष तथा 'शलाका' दो प्रकार से खेला जाता था।"[383]

महाभारत काल में शकुनि इस कला के विशेषज्ञ के रूप में वर्णित हुआ है। अष्टछापी कवियों में केवल सूर ने ही इस कला का उल्लेख पौराणिक प्रसंगों के अंतर्गत किया है। कौरव-पांडवों के प्रसिद्ध जुए में युधिष्ठिर के सर्वस्व हार जाने का उल्लेख उन्होंने किया है—

"कौरव पासा कपट बनाए धर्म पुत्र कौं जुआ खिलाए।
तिन हारयौ सब भूमि भँडार। हारी बहुरि द्रौपदी नार।"[384]

सामाजिक बुराई के रूप में द्यूत की निंदा करने से भी सूर नहीं चूके हैं। हारे हुए जुआरी की दयनीय मानसिक और शारीरिक स्थिति का वर्णन भी उन्होंने किया है—

"अधोमुख रहत उरध नहिं चितवत ज्यौं गथ हारे थकित जुआरी।"[385]
"चितवत नंद ठगे से ठाढ़े मानो हारे हेम जुआर।"[386]

जुए में हारने की पीड़ा से सर्वसाधारण भी परिचित रहा होगा क्योंकि धनी तथा निर्धन दोनों अपने-अपने ढंग से द्यूत खेलते हैं। सूरदास ने भक्तिहीन जन्म को जुए में अमूल्य वस्तु को हार जाने के समान बताया है—

"आछोगात अकारथ गारयौ।
करी न प्रीति कमल लोचन सौं जनम जुवा ज्यौं हारयौ हारचौ।"[387]

उन्होंने स्पष्ट रूप से इसे अधम कर्म माना है और परीक्षित के मुक से कलियुग के निवास-स्थान के रूप में वर्णित किया है—

"कही, हरी बिमुख अरू बैस्या जहाँ सुरापान बधिकन ग्रह तहाँ।
जुआ खेलत जहाँ जुआरी, ये पाँचों हैं ठौर तुम्हारी।"[388]

समाज में इसके कुप्रभाव को देखते हुए ही सूर आदि अष्टछापी कवियों ने कृष्ण या उनके अवतारों के जुआ खेलने का वर्णन नहीं किया है। समाज में इसके प्रचलन को देखते हुए केवल मनोविनोद के रूप में इस कला को अपने काव्य का विषय बनाया है इस स्थिति में हार-जीत होने पर अनिष्ट की संभावना नहीं रहती है। विवाहादि मंगल प्रसंगों में द्यूत का उल्लेख अष्टछाप में हुआ है। इसके अतिरिक्त परमानंददास ने परंपरा पालन की दृष्टि से, कृष्ण बलराम को, यशोदा द्वारा द्यूत खेलने को कहा है इसमें शुद्ध विनोद की भावना ही मुख्य है—

"आज कुहू की राति माधौ दीपमालिका मंगल चार।
खेलौ धूर सहित संकर्षन मोहन मूरति नंद कुमार।"[389]

दीपमालिका के मंगलाचार में जुआ खेलने की रीति ब्रज लोक में आज भी विद्यमान है। पारस्परिक विनोद के रूप में राधा-कृष्ण के पाँसा खेलने का उल्लेख भी उन्होंने किया है। इसमें किसी के सर्वस्व हरण की कोई बात नहीं है जैसा कि कौरव-पांडवों के द्यूत में थी—

"पासा खेलत हैं पिय-प्यारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहलौ दाँव परयौ स्यामा कौ पीत पिछौरी हारी।
अबकी बेर पिय मुरली लगावो तो खेलो संग भारी।
परमानंददास कौ ठाकुर जीती हैं वृषभानु-दुलारी।"[390]

इस प्रकार द्यूत वर्णन के प्रसंग में जहाँ तत्कालीन लोक जीवन में व्याप्त द्यूत का परिचय अष्टछाप कवियों ने दिया वहीं लोक मंगल की दृष्टि से सामाजिक बुराई मानकर इस प्रवृत्ति को त्यागने का उपदेश दिया और केवल मनोविनोदात्मक कला के रूप में इसे अपनाने का परामर्श दिया।

उपर्युक्त साधनों से संबंधित कलाओं में दक्षता अनिवार्य थी। मनोरंजन के दूसरे वर्ग में कला की सूक्ष्मता का अनुपात कुछ कम हो जाता है। इसमें अभ्यास पर बल दिया जाता है। इनमें नट विद्या, भगर विद्या, पहेली बूझना, कहानी सुनाना और पतंग उड़ाना आते हैं। यह सभी कलाएँ साधारण व्यक्ति द्वारा सरलता से सीखी जी सकती हैं—

नटविद्या तथा भगर विद्या

नट तथा बाजीगर ब्रज के लोक जीवन के अंग थे और उनकी कलाएँ भी लोक कलाओं के अंतर्गत आती थीं। रस्सी बाँधकर, ढोल बजाकर शारीरिक संतुलन के कला प्रदर्शन द्वारा यह लोग समाज का मनोरंजन करते थे। अभ्यास ही इस कला की सफलता का मूल है। सूरदास ने नटनी की तुलना नाना वेशधरे इंद्रजाल फैलाने वाली माया से की है—

"ताके मूँड चढ़ी नाचति है मीचति नीच नटी।"[391]

नट और बाजीगर के इंद्रजाल का उल्लेख भी उन्होंने किया है—

"कै कहूँ रंग कहूँ ईश्वरता नट बाजीगर जैसे।"[392]

नट और नटनी के अनेक रूप भरने और अपनी कला दिखाने का वर्णन भी किया गया है—

"ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै लोभ न छूटत नट कैं।"[393]

इसी संदर्भ में सूर की गोपियों ने स्वयं को अदृश्य डोर से बँधी गुड़िया या कठपुतली के रूप में वर्णित किया है। जिसकी डोर कृष्ण के हाथ में है। निम्न उदाहरण द्वारा कठपुतली नचाने जैसी लोक कला की ओर संकेत किया गया है—

"हम दासी बिन मोल की ऊधौ ज्यौं गुड़िया बिनु डोर।"[394]

नंददास ने अनेकार्थ मंजरी में भगर विद्या का उल्लेख किया है जो संभवतः इंद्रजाल की द्योतक थी—

"जाल भगर-विद्या जगत दिखि न भूलि नंद नंद।"[395]

अष्टछाप के अन्य कवियों ने इन कलाओं का वर्णन किया है।

पहेली बूझना

इस कला का प्रचलन मानसिक क्षमता के विकास की दृष्टि से किया गया है, इसका उपयोग बच्चों को अपने आस-पास की वस्तुओं का सूक्ष्म निरीक्षण करने के लिए किया जाता है इसमें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शारीरिक श्रम की जरा भी आवश्यकता नहीं होती है। बच्चे घर के अंदर व शारीरिक दौड़-धूप से थक जाने पर घर से बाहर भी इस खेल को खेल सकते हैं। गाँव में चौपालों पर अलाव तापते हुए वयस्क भी इसके द्वारा अपना मनोरंजन करते हैं। अष्टछाप काव्य में केवल सूरदास ने ही कृष्ण और ग्वाल-बालों को वन में पहेली बूझते हुए वर्णित किया है—

“और सखा सब जुरि-जुरि ठाढ़े आपु दनुज संग जोरि।
फल कौ नाम बुझावन लागे हरि रहि दियौ अमोरि।”[396]

अन्य कवियों ने इस ओर उदासीन भाव धारण कर रखा है। संभवतः तत्कालीन परिस्थितियों में इस कला की ओर जनसाधारण की रुचि समाप्तप्रायः हो और लोक-भावना का आदर करते हुए कवियों ने इस विषय को छोड़ दिया हो। वैसे दृष्टिकूट पदों में पहेली बूझने की कला का संस्पर्श है। सूर, परमानंद जैसे कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया है।[397]

कथा वाचन या कहानी सुनाना

कहानी सुनाने की कला अत्यंत प्राचीन है। इसी कला के आधार पर लोक कथाओं का प्रचलन हुआ और आज भी अनेकों ऐसी कहानियाँ हैं जो गाँव तथा घरों के बुजुर्गों द्वारा कही और सुनी जा रही हैं। इस कला का उद्देश्य भी मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान की वृद्धि करना था। व्यवहार की शिक्षा भी कहानी द्वारा सरस ढंग से दी जा सकती है। साहित्य में पंचतंत्र की कहानियों का मूल उद्देश्य नीति का उपदेश देना ही था। कहानी सुनाने की एक विशेष कलात्मक पद्धति होती है जिसके द्वारा नीरस से नीरस विषय को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। बालकों को सोते समय कहानी सुनाना ब्रज की लोक संस्कृति की विशेषता है और अष्टछाप में इस लोक तत्व को भी वर्णित किया गया है। इसका उद्देश्य बालकों की कल्पना शक्ति तथा विषय पर ध्यान केंद्रित करने की क्षमता का विकास करना है। अष्टछाप कवियों ने कहानी सुनाते समय हुँकारी भरने का उल्लेख किया है। उन्होंने वयस्कों को कहानी सुनाने का वर्णन नहीं किया है। सूरदास ने कृष्ण को रामकथा सुनाए जाने का तथा सीताहरण सुनकर उनकी नींद समाप्त हो जाने का वर्णन किया है—

“सुनि सुत एक कथा कहौं प्यारी।
कमल-नैन मन आनंद उपज्यो चतुर सिरोमनि देत हुंकारी।
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकै प्रगट भए सुत चारी।
रावन हरन सिया कौं कीन्हौ सुनि नंद नंदन नींद निवारी।”[398]

परमानंददास ने कहानी सुनाने से संबंधित दो पद लिखे हैं। एक पद में सूरदास के उपर्युक्त पद से मिलते-जुलते भाव प्रगट किए हैं। शब्दों का थोड़ा हेरफेर है। उन्होंने सीता हरण सुनकर नींद में ही 'लछमन' से 'चाप' माँगने का उल्लेख किया है—

“परमानंद प्रभु रटत, चाप कर लछमन दै, जननी श्रम भारी।”[399]

दूसरे पद में कृष्ण-बलराम को सुनाने के उद्देश्य से यशोदा के कहानी कहने और दोनों भाइयों के ध्यान से कथा सुनने का वर्णन किया है—

“राम [illegible] भाई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी कहत जसोदा रानी सुनत हैं दोऊ अति ही मन लाई।
जब जान्यो हरि सोय गयेरी तब चुप रही जसोदा माई।" [400]

सामान्य जीवन में समय काटने के लिए तथा लंबी यात्राओं के बीच भी कहानी सुनाने की रीति प्रचलित थी परंतु अष्टछाप कवियों ने ऐसी किसी पद्धति का संकेत नहीं दिया है।

पतंग उड़ाना

पतंग प्रत्येक आयु और प्रत्येक वर्ग के मनोरंजन का साधन बनी हुई है। थोड़े अभ्यास से इसमें पारंगत हुआ जा सकता है। बालकों की कुशलता इसे छुड़ाने में देखते ही बनती है। हाथ-पैरों के संचालन से शरीर का तथा सुदूर आकाश में टकटकी लगाकर देखने से आँखों का व्यायाम इसमें होता है। पेंच लड़ाने में अपनी पतंग को लड़ने से बचाने में तथा कटी हुई पतंग को अपनी पतंग से लपेटकर हथियाने में विशेष कला-कौशल की आवश्यकता होती है जो अभ्यास द्वारा प्राप्त की जाती है। अष्टछापी कवियों में परमानंददास ने पतंग उड़ाने का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है—

"कान्ह अटा पर 'चंग' उड़ावन, मैं इतते उन आँगन हैरयौ।
परमानंद प्रभु यहै अचंभो खेंचत डोर किंधौ मन मेरो।" [401]

उन्होंने ग्वाल-बालों के साथ भी 'गुडी' या पतंग उड़ाने का और पेंच लड़ाने का उल्लेख किया है—

"गुड़ी उड़ावन लागे बाल।
सुंदर पतंग बाँधि मनमोहन नाचत हैं मोरन के ताल।
कोउ पकरत कोऊ ऊँचत कोऊ देखत नैन बिसाल।
कोउ गुड़ी ते उरझावत आपुन ऐंचत डोर रसाल।" [402]

सूरदास ने पतंग उड़ाने का स्पष्ट वर्णन नहीं किया है परंतु 'डोर' व 'गुडी' के उपमान रूप में प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि इस कला से वह परिचित थे और तत्कालीन ब्रज समाज में मनोरंजन व कला दोनों रूपों में पतंग का प्रचलन था—

"बँधी घेर दृष्टि यों डोर गुडी बस पाछे लागति धावति।"
"परबस भई गुड़ी ज्यों डोलति परति पराये कर ज्यों।" [403]

पतंग का प्रचलन तत्कालीन समाज में अधिक नहीं होगा इसलिए अष्टछाप के बाकी कवियों ने इस विषय में मौन साध रखा है।

बाल-जगत् से संबंधित मनोविनोद के साधनों में हर्ष और उल्लास की अभिव्यक्ति अधिक है कलात्मकता के प्रति आग्रह कम। शारीरिक व्यायाम के रूप में अपनाए जाने वाले इन साधनों, भागने-दौड़ने की कला की आवश्यकता अधिक पड़ती है। जो बालक इस कला में निपुण होता है वही अन्य सबों में अग्रणी रहता है। यद्यपि घर-आँगन में भी इन साधनों को अपनाया जा सकता है तथापि बड़े और हरे-भरे मैदान इनके लिए उपयुक्त होते हैं। अष्टछाप में ग्वाल-बालों का ही ऐसे खेलों में भाग लेने का वर्णन है; बालिकाओं का नहीं। इस वर्ग में आँख मिचौनी, कुआ-छुऔवल, चढ़ा-चढ़ी, गो-वृषभानुकरण, कंदुक क्रीड़ा, चौगान, बटा आदि आते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह सभी खेल प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में ग्राम्यपरिवेश में खेले जाते हैं।

आँख-मिचौनी

इस खेल में कला का अंश केवल इतना ही है कि कौन-सा बालक छिपे हुए बालकों को कितनी शीघ्रता से ढूँढ़ पाता है। आँख-मिचौनी प्रत्येक युग में बालकों का प्रिय खेल रहा है। आज भी इसे खेलने के नियमों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। एक बालक आँख मूँदकर चोर बनता है। बाकी के इधर-उधर छुप जाने के बाद चोर बालक उन्हें छूने दौड़ता है और उनमें से एक को छूकर 'चोर' बनाता है। बाल-क्रीड़ा के प्रसंग में सूरदास ने इस खेल का सांगोंपांग चित्रण किया है। उन्होंने यशोदा द्वारा कृष्ण-बलराम से मित्रों के साथ घर में ही खेलने का अनुरोध किया है। उनका मातृ हृदय इसे उचित नहीं मानता कि छोटे बच्चे घर से बाहर जाकर खेलें—

"बोलि लेहु हलधर भैया कौं।
मेरे आगे खेल करौ कुछ सुख दीजै मैया कौं।
मैं मूँदौ हरि आँखि तुम्हारी बालक रहैं लुकाई।
हरषि स्याम सब सखा बुलाए खेलन आँख मुँदाई।
हलधर कह्यौ आँखि कौ मूँदै हरि कह्यौ मातु जसोदा।" [404]

इस प्रसंग में यशोदा का वात्सल्य दर्शनीय है। कृष्ण को जिताने के लिए वे उन्हें बलराम के छुपने का स्थान बता देती हैं परंतु कृष्ण अपने प्रतिद्वंद्वी श्रीदामा को ही चोर बनाना चाहते हैं इसलिए माता के परामर्श को नहीं मानते—

"तब हरि अपनी आँखि मुँदाई।
सखा सहित बलराम छपाने जहँ तहँ गए भगाई।
कान लागि कह्यौ जननि जसोदा वाहार मैं बलराम।
बलदाऊ को आवन दैहौं श्रीदामा सौं काम।
सब आए रहे सुबल श्रीदामा हारे अब कैं तात।
सोर पारि हरि सुबलहिं धाए गह्यौ श्रीदामा जाई।" [405]

सारावली में भी आँख-मिचौनी खेल का संकेत किया गया है—

"कहुँ खेलत मिलि ग्वाल आँख मींचनी खेल।" [406]

परमानंददास ने इस खेल का उल्लेख मात्र किया है। अन्य कवि इस प्रसंग में मौन हैं—

"मूँदे दृग दुरि हो ग्वाल तुम दोने कहाँ बताई।" [407]

आँख-मिचौनी के इस वर्णन में बालकों का सहज उल्लास ही अभिव्यक्त हो रहा है। दौड़-भाग की क्षमता शारीरिक व्यायाम व संतुलन की कलात्मकता ही इसका प्राण है।

छुआ छुऔवल

यह खेल भी आँख-मिचौनी की तरह खेला जाता है। अंतर यही है कि इसे गृह की सीमित चारदीवारी के स्थान पर खुले मैदानों की आवश्यकता पड़ती है। इस खेल द्वारा भी दौड़ने की कला की ही अभिव्यक्ति होती है। सूरदास ने इस प्रसंग का वर्णन भी बाल मनोविज्ञान के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुसार किया है। कृष्ण के उत्साह का वर्णन द्रष्टव्य है—

"खेलत स्याम ग्वालनि संग।
सुबल हलधर अरू श्रीदामा करत नाना रंग।
हाथ तारी देत भाजत सबै करि-करि होड़।"[408]

कृष्ण की कोमल अवस्था देखकर बलराम अपने दायित्व का अनुभव कर उन्हें दौड़ने से मना करते हैं परंतु कृष्ण अपने को किसी से कम मानने के लिए तैयार नहीं है। वे श्रीदामा के चुनौती देते ही भागने को तैयार हो जाते हैं और श्रीदामा द्वारा पकड़े जाने पर खिसियाकर स्वयं ही खड़े हो जाने का बहाना बनाने लगते हैं—

"बरज हरधर स्याम तुम जनि चोट लागै गोड़।
तव कह्यौ मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात।
उठै बोलि तबै श्रीदामा जाहु तारी मारि।
आगैं हरि पाछैं श्रीदामा धरचौ स्याम हंकारि।
जानि कै मैं रह्यौ ठाढ़ौ छुवत कहा जु मोहि।"[409]

खिसियाये कृष्ण को चिढ़ाने में सभी साथियों को आनंद आता है। बलराम भी कृष्ण का पक्ष न लेकर उन्हें बालक कहकर वापस भेज देते हैं—

"सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहि आप बलकि भए ठाढ़े अब तुम कहा रिसाने।
बीचहिं बोलि उठे तब हलधर याके माइ न बाप।
हारि जीत कछु नैंक न समुझत लरिकनि लावत पाल।
आपुन हारि सखनि सौंझगरत यह कहि दियो पठाई।"[410]

परमानंददास ने आँख-मिचौनी की तरह ही इस खेल का संकेत ही किया है—

"कहाँ कहाँ खेले बालक लीला छुवत परस्पर धाई"[411]

इन खेलों में गोप बालकों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का संस्पर्श है। स्पर्धा की यह भावना ही व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास में सहायक सिद्ध होती है।

चढ़ाचढ़ी

यह खेल वृक्षों पर चढ़कर उतरकर खेला जाता है। विभिन्न वृक्ष ही यहाँ मैदान के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। शारीरिक संतुलन की कला इसका मूल है। वृक्षों पर तेजी से चढ़ने, डाल से नीचे कूदने और एक डाल से दूसरी डाल पर झूलकर जाने में इस कला की आवश्यकता पड़ती है। मर्कट की तरह तीव्रता से यह सब क्रियाएँ संपन्न करने के कारण श्री हरिदत्त शास्त्री ने इसे मर्कटोत्प्लवन क्रीड़ा भी कहा है।[412] सारावली में इस खेल का वर्णन किया गया है—

"चढ़ाचढ़ी का खेल सखन में खेलत हैं रस रेल।
कहूँ आमरू डार बिटप की खेलत सखनि मँझार।
कूदि कूदि धरनी सब धावत दाँव देत किलकार।"[413]

ग्राम्य परिवेश में आज भी यह खेल बालकों के बीच लोकप्रिय है, शारीरिक व्यायाम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की दृष्टि से यह लाभप्रद है।

गोवृषभानुकरण

मनोरंजन के इस साधन के माध्यम से अनुकृति अथवा अनुकरण की कला का विकास होता है। गोचरण करते समय इस खेल के खेलने का वर्णन अष्टछाप काव्य में हुआ है। अन्य पशु-पक्षियों का अनुकरण भी इसमें किया जाता था। इस खेल के द्वारा सूक्ष्म पर्यवेषण की क्षमता का विकास भी होता था। नंददास ने कृष्ण की इस लीला का उल्लेख करते हुए गोप-ग्वालों के कृत्रिम गो वृषभ बनने और वैसे ही शब्द या ध्वनि निकालने का वर्णन किया है—

"कहुँ कृत्रिम गो-वृषभ बनावत तै सेई नादत तिनहि लरावत।" 414

परमानंददास ने अन्नकूट के अवसर पर ग्वालों के विशेष शृंगार का वर्णन किया है जो अनुकरण की लोकप्रियता की ओर संकेत करता है—

"गायन के अनुकरन ते गोकरन धारे सीस।
गोप बेष अद्भुत बन्यौ जै जै गोकुल ईस।" 415

गायों को बुलाने, कूक देने और टेरने का उल्लेख प्रायः सभी कवियों ने किया है। इसमें भी गाय के बछड़ों की ध्वनि अथवा किसी ध्वनि विशेष का अनुकरण किया जाता है। जिससे गायें संकेत ग्रहण कर एकत्रित होती थीं। अनुकरण की यह कला बालकों में छिपी अभिनय प्रतिभा के विकास में सहायक सिद्ध होती थी।

कंदुक क्रीड़ा

प्राचीन काल से ही मनोरंजन का यह साधन बच्चों और वयस्कों में समान रूप से लोकप्रिय है। आज भी गेंद को आधार बनाकर विभिन्न खेलों का विकास किया गया है। क्रिकेट, फुटबाल का मूलाधार गेंद है। अष्टछाप काव्य में यह बालकों की क्रीड़ा के रूप में वर्णित किया गया है। इस खेल में गेंद द्वारा बालकों को मारने के द्वारा निशाना लगाने की कला का विकास होता है। कृष्ण के राजनीतिक जीवन में इस कला का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। केवल शस्त्रों से ही नहीं कूटनीतिक चालों द्वारा भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति में उनकी इस कला का हाथ है. कृष्ण कंदुक प्रेमी हैं, बालकों को स्वयं गेंद खेलने के लिए बुलाते हैं—

"गेंद खेलत बहुत बनिहै आनौ कोऊ जाई।" 416

सखाओं के मान जाने पर स्वयं गेंद चलाने की पहल करते हैं। लोक संस्कृति में बालकों का यह खेल 'गेंद तड़ी' के नाम से प्रचलित है। गेंद द्वारा भागते बच्चों पर निशाना लगाने और इस निशाने से बचने के इस खेल में दौड़ने की कला व उसके अभ्यास की आवश्यकता है। कृष्ण बचपन से ही इस कला में पारंगत हैं—

"खेलत स्याम सखा लिए संग।
इक मारत, इक रोकत इक भाजत करि नाना रंग।
मार परस्पर करत आपु मैं अति आनंद भए मन माहि।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मारि भजत जो जाहि वाहि सो मारत लेत आपनो दाउँ।"[417]

गेंद का निशाना लगाने में कृष्ण चतुर हैं तो वार बचाने में उनके प्रमुख प्रतिद्वंद्वी श्रीदामा भी सतर्क हैं, उनकी बाड़ हटने के कारण ही गेंद यमुना जल में गिर जाती है जिसे लाने के लिए कृष्ण जमुना में कूद जाते हैं और फिर कालिय नाग दमन की लीला संपन्न होती है—

"स्याम सखा कौं गेंद चलाई।
श्रीदामा मुरि अंग बचायो गेंद परी काली दह आइ।"[418]

सूरदास के अतिरिक्त इस क्रीड़ा का वर्णन अष्टछाप के अन्य कवियों ने नहीं किया है। पौराणिक आख्यानों तथा रामायण काल में इसे स्त्रियों के विशेष खेल के रूप में वर्णित किया गया है परंतु अष्टछाप काव्य में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। तत्कालीन ब्रज में गेंद का यह खेल सामान्य तथा राजन्य दोनों वर्गों में प्रचलित था।

चौगान बटा

कृष्ण का प्रिय खेल है यह। इसमें 'बटा' या गेंद को 'चौगान' से मारा जाता था। चौगान एक लंबा डंडा होता है जो एक सिरे से मुड़ा होता है। बालकों का यह खेल संभवतः 'गुल्ली-डंडे' का मूल रूप था। बचपन से ही कृष्ण की अभिरुचि इस खेल में थी। माता उनका चौगान बटा सँभालकर रखती थीं—

"बार बार हरि मातहिं बूझत कहिं चौगान कहाँ है।
दधि मथनी के पाछें देखौं लै मैं धरचौ तहाँ है।
लै चौगान बटा अपनें कर प्रभु आए घर बाहर।
सूर स्याम बूझत सब ग्वालनिं खेलैंगे किहिं ठाहर।"[419]

सूरदास ने दो दलों में बंटकर 'बटा' को धरती पर डालकर ढरकाने का वर्णन किया है—

"कान्ह हलधर बीर दोऊ भुजाबल अति जोर।
सुबल श्रीदामा सुदामा, वे भए इक ओर।
और सखा बटाई लीन्हे गोप बालक वृंद।
चले ब्रज की खोरि खेलत अति उमंगि नंद नंद।
बटा धरनी डारि दानौं चले ढरकाइ।"[420]

ब्रज की गलियों में 'बटा' ढरकाते खेल में निमग्न बच्चे आज भी मिल जाएँगे। सूरदास ने इस खेल में भी हारते हुए कृष्ण द्वारा 'पेल' करने का वर्णन किया है। अन्य कवियों ने इसमें रुचि नहीं ली। लोक संस्कृति के इस पक्ष का उद्‌घाटन करके सूर ने अष्टछाप के लोक स्वरूप को और अधिक स्पष्ट कर दिया है। इस वर्णन में कोई अनहोनी या अकल्पनीय बात नहीं है। आधुनिक परिवेश में भी खेलों के माध्यम से विभिन्न कलाओं के विकास का प्रयास जारी है। अन्य कवियों की उदासीनता का कारण भक्तितत्व को प्रधानता देना है। कतिपय खेलों में संकेत द्वारा अपनी जागरूकता उन्होंने प्रमाणित कर दी है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खिलौना कला

'खिलौना' निर्माण की कला भी प्राचीन कलाओं में से एक है। शिशु को बहलाने के लिए विभिन्न प्रकार के खिलौनों का निर्माण प्रत्येक समाज में होता है। प्रत्येक वर्ग अपनी आर्थिक स्थिति के आधार पर यह खिलौने शिशुओं के लिए उपलब्ध करता है इसलिए इनकी माँग सदैव बनी रहती है। इनका निर्माण करने वाले कलाकार भी इन खिलौनों के माध्यम से अपनी कल्पनाशीलता का परिचय देते रहते हैं। अष्टछाप काव्य में भी शिशुओं और बालकों के विभिन्न खिलौनों की चर्चा की गई है। शिशु के पालने, उसमें लटकती रत्नों, खिलौनों और मोतियों की झालरें अपने कलाकार की कला का बखान करती हैं—

"रेसम बनाइ नव रतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा लाल।
मोतिनि झालरि नाना भाँति खिलौना रचे बिस्वकर्मा सुतहार।
देखि देखि किलकत दँतिया द्वै राजत क्रीड़त बिविध बिहार।" 421

पालने से खिलौने बाँधकर लटकाने की प्रथा आधुनिक समाज में भी यथावत् बनी हुई है। सूरदास ने 'सोने की चिरैया' बाँधने का उल्लेख किया है जिससे शिशु का मनोविनोद होता है

"किन सोने की उरत चिरैया बाँधि खिलाइ।" 422

नंदकुमार कृष्ण यदि सोने की चिरैया' से आनंदित होते हैं तो साधारण बालक मिट्टी या कागज की चिरैया से भी वैसा ही आनंद प्राप्त करता है। परमानंददास ने पलने में झूलते कृष्ण को मोतियों की लड़ को देखकर किलक का वर्णन किया है—

"रतन जटित कंचन मनिमय नंद भवन मधि पालों।
ता ऊपर गज मोतिन लर लटकत अति तहँ झूलत जसोदा लालनो।
किलकि किलकि विलसति मन ही मन चितवन नैन बिसालानो।" 423

पालने के अतिरिक्त 'झुनझुना' बजाकर शिशु को हँसाने का प्रयास भी लोक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। नंददास न इसी का वर्णन किया है—

"सुंदर स्याम पालने झूले।
जसुमति माय निकट अति बैठी, निरिखि निरखि मन फूले।
झुनझुना ले के बजावत रुचि सों लाल ही के अनुकूल।" 424

सूरदास ने कृष्ण के हाथों में 'खुनखुना' होने का उल्लेख किया है—

"खुनखुना कर हँसत हरि, हर रचत डमरू बजाइ।" 425

खिलौनों के निर्माण में विविधता मथुरा की नागरिक सभ्यता में अधिक रही होगी। राजसी वैभव के उपयुक्त बहुमूल्य खिलौनों की माँग गोकुल ब्रज के ग्राम्य परिवेश में कम होगी अतः उनका निर्माण भी वहाँ सीमित होगा या नहीं होगा। यही कारण है कि ऐसे खिलौने खरीदने के लिए नंद के मथुरा जाने का उल्लेख सूरदास ने किया है—

"नाना बिधि के बिविध खिलौना रतननि अधिक अमोले।
ताको लेन गए मथुरा को।... ।" 426

बालकृष्ण के प्रिय खिलौनों में भौंरा चकडोरि... मुख है। यह ब्रज बालकों का प्रिय खेल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, चकई के बीच भाग में धागा लपेटकर हवा में इस तरह फैंका जाता है कि वह पुनः 'चकई' पर ही लिपट जाता है। गोपियों ने अपना और कृष्ण का संबंध इसी खेल के आधार पर वर्णित किया है—

"ऊधौ हरि गुन हम चकडोर।
चकडोरि की रीति यहै फिरि गुनहीं सौ लपटाइ।
सूर सहज गुन ग्रंथि हमारैं दई स्याप उर माँहि।"[427]

कृष्ण की चकडोरी यशोदा सदैव सँभालकर रखती थीं। इस खेल में निर्माण कला का ही सौंदर्य था। धागा टूटने से यह जल्दी नष्ट होने वाला खिलौना था इसलिए इसे कई बार खरीदना पड़ता होगा। यशोदा के निम्न कथन से यही ध्वनि निकलती है—

"दे मैया भौंरा चकडोरी।
जाहि लेहु आरे पर राख्यौ काल्हि मोल लै राखै कोरी।"[428]

'चंद खिलौने' के लिए मजलने वाले कृष्ण चकडोरी का नाम लेते ही शांत ही जाते हैं—

"ऐसौ हठी बालगोबिंदा।
अपने कर गहि गगन बतावत खेलन कौं माँगे चंदा।
चकई डोरि पाट के लटकन लेहु मेरे लाल खिलौना।"[429]

परमानंददास ने भी चकडोरी खेलते कृष्ण का वर्णन किया है—

"गोपाल माई खेलत हैं चकडोरी।
लरिका पाँच सात सँग लीने निपट साँकरी खोरी।"[430]

परमानंददास ने 'बंगी' नचाते हुए कृष्ण को भवन के भीतर ही खेलते हुए वर्णित किया है। बंसी संभवतः लट्टू के समान कोई खिलौना होगा जिसे नाचते हुए बच्चे हाथ पर उठा लेते हैं। वंगो को विविध रंगों को सजाने में निर्माण की कला और उसे हाथ पर उठाकर रखने में चलाने वाले के कला-कौशल का परिचय मिलता है। परमानंददास ने कृष्ण की इसी कुशलता की ओर संकेत किया है—

"गोपाल फिरावत हैं बंगी।
भीतर भवन भरे सब बाल नाना विधि बहुरंगी।
सहज सुभाव डोरी खेंचत हैं लेत उठाय कर पैसंगी।"[431]

इनके अतिरिक्त कुछ और खिलौनों का उल्लेख परमानंददास ने किया है। इनके निर्माण में विशेष कला की आवश्यकता नहीं पड़ती है—

"लाल आज खेलत सुरँग खिलौना।
काम सबद उघरत हैं पपीहा बड़ी मधुर मिलौना।
प्रेम घुमेरें लेत है फिर की झुँझना मनहि सलौना।
चट्टा बट्टा चौबत चकई हित जु सबही करौना।
झूमिरि झूमि झुकि घाट देखत हथबंगी मनु जौना।"[432]

इनमें पपीहा या पपैया, ग्रामीण बालकों का प्रिय खिलौना है जिसे आम की गुठली से बनाया जाता है। फिरकी, झुनझुना, चकई, चट्टा-बट्टा (लकड़ी का बना खिलौना), बंगी और चौबत आदि खिलौने मिट्टी या काठ के बनाए जाते थे। कम लागत से बनने वाले इन खिलौनों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का मूल्य इतना रखा जाता था कि प्रत्येक वर्ग का बालक इसे खरीद सके। कलात्मकता का स्वर यहाँ धीमा रहता था।

कृष्ण को अपने सभी खिलौनों में सर्वाधिक प्रिय मुरली थी। बचपन से ही इसके प्रति उनका लगाव सर्वाधिक था। मुरली के अतिरिक्त विषान वाद्य भी कृष्ण को प्रिय था। कृष्ण का मुरली वादन कालांतर में उनके संगीत विशारद होने का प्रमाण बना। यशोदा से अपने खिलौनों को सँभालकर रखने की बात कृष्ण उद्धव द्वारा कहलवाते हैं—

"नोई बौंत बिषान बाँसुरी द्वार अबेर सबेरैं।
लै जनि जाय चुराय राधिका कछुक खिलौना मेरे।" [433]

राम कथा के प्रसंग में बालकों के लिए बनाए जाने वाले छोटे धनुष बाणों का वर्णन किया गया है—

"करतल सोभित बना धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन पहिरे लालपन दियाँ।" [434]

अष्टछाप कवियों ने बालकों और किशोरों के मनोविनोद का जितना वर्णन किया है उतना बालिकाओं के मनोविनोद का नहीं। संभवतः तत्कालीन समाज में बालिकाओं का घर से बाहर खेलना वर्जित हो। राधा के माध्यम से उनका अपनी ही पौरी पर खेलने का वर्णन उन्होंने अवश्य किया है—

"काहे कौं हम ब्रज तन आवति खेलति रहति आपनी पौरी।" [435]

नंददास ने बालिकाओं के प्रिय खेल गुड्डे-गुड़िया का उल्लेख किया है। घर में ही इन्हें बनाने, सजाने-सँवारने, वस्त्राभूषण बनाने आदि के द्वारा, गृहस्थ जीवन के लिए उपयोगी कलाओं की शिक्षा ब्रज की बालिकाओं को दी जाती थी—

"गुड़ागुड़ी के ब्याह बनावै। लाज गहे जब संग सुवावै।" [436]

विभिन्न खिलौनों के इस उल्लेख से ब्रज की लोक संस्कृति में पनपती खिलौना निर्माण कला पर प्रकाश डाला गया है।

मनोविनोद के कुछ साधन ऐसे भी हैं जिनमें प्रत्यक्ष रूप से मनोरंजन ही प्रधान है। कलात्मकता पृष्ठभूमि में है। इस वर्ग में संगीत, उद्यान क्रीड़ा और पशु-पक्षी पालन आते हैं।

संगीत

संगीत का कला के रूप में विशद विवेचन पूर्ववर्ती पृष्ठों में किया जा चुका है। ब्रज संस्कृति मूलतः संगीत प्रधान है। अष्टछाप कवियों ने उसे रागमयी भी बना दिया है।

संगीत के तीनों अंग गायन-वादन और नृत्य-कीर्तन पद्धति अपनी चरमसीमा पर पहुँच गए थे। कला के इस मुखर उन्नत रूप को अपनाने वाले कलाकार अपने साथ-साथ सुनने व देखने वाले साधारण से साधारण मनुष्य को भी समान आनंद प्रदान करते थे। मनोरंजन के साधनों के इस वर्ग में सहृदयों द्वारा अपनाया जाने वाला संगीत आता है। वह सहृदय कला की बारीकियों की व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं परंतु सुर या बेसुर में गाकर अपने उल्लास और आनंद की अभिव्यक्ति कर सकते हैं। लोक संगीत शैली में यह रूप देखा जा सकता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विभिन्न पर्वों, उत्सवों और मांगलिक अनुष्ठानों में समवेत स्वर में गाने वाले नर-नारियों द्वारा अपनाया गया संगीत इसी श्रेणी में आता है। नृत्य कला विशारद कृष्ण गोपियों के अतिरिक्त सामान्य वर्ग द्वारा भी नृत्य गान के माध्यम से उल्लास की अभिव्यक्ति अष्टछाप काव्य में मिलती है।

उद्यान क्रीड़ा

उद्यानों अथवा कुंजों में विहार भी तत्कालीन समाज में मनोरंजन का एक साधन था। इस भ्रमण अथवा विहार में किसी प्रकार की कला नहीं थी परंतु उद्यानों तथा कुंजों के निर्माण में कल्पना और कलात्मकता का अंश देखा जा सकता है। यमुना के किनारे वृंदावन में बने अनेक कुंजों के सौंदर्य का चित्रण अष्टछाप में हुआ है। इन कुंजों में विभिन्न फूलों के पौधे और उनका उचित संयोजन कला की अभिरुचि का परिचायक है। परमानंददास ने कुंजों की शोभा का सरल रूप में ही वर्णन किया है—

"आज नव कुंजन की अति सोभा।
नीकी वानिक नवल निकुंज की।
बरन बरन प्रफुलित डुम बेली मधुमाडे अलिगुंज की।"[446]

कृष्णदास ने लयात्मक भाषा में कुंजों के सौंदर्य का वर्णन किया है—

"कुंजनि की सोभा भारी बिलुलित तरूडारी।
त्रिविध पवन झकझोरत है सुखकारी।"[438]

गोविंद स्वामी ने भी विविध फूलों से सुसज्जित और सुगंधित कुंजों का वर्णन किया है—

"तैसोई तरनि तनया तीर तै सोई सीतल सुगंध मंद बहत पवन,
तै सेई सघन फूली जुही निवारी।
तै सेई प्रफुल्लित बन राजीव तैसेई अलिकुल राजैरी।"[439]

आकर्षण की वृद्धि के लिए कुंजों तथा उद्यानों में विभिन्न प्रकार के पक्षियों को भी पाला जाता है जिनके मधुर स्वर द्वारा कुंजों में भ्रमण करने आए व्यक्तियों का मनोरंजन होता है। सारावली में ऐसे पक्षियों में सारस, हंस, मोर, पारावन आदि का उल्लेख किया गया है—

"सारस हंस पारावत बोलत अमृत बानि।"[440]

कृष्णदास ने भी मोर कोयल और पपीहे का वर्णन किया है—

"बोलत मोर सुहाए, लागत कोयक कूक सुहाई।"
"बोलत पिक पपीहा बैठे मुख नृत्तत मोर।"[441]

अष्टछाप कवियों ने संयोग श्रृंगार के अंतर्गत राधाकृष्ण की विलास भूमि के रूप में कुंजों का वर्णम किया है—

"नवल निकुंज नवल नवला मिलि नवल निकेतन रुचिर बनाए।
बिलसत बिपिन बिलास बिबिध बर बारिज बदन बिकच सचु पाए।"[442]
"नवरँग निकंज बृंदाबिपिन जमुना तट मधुप कुलकीर पिक गावत समाजै।"[443]
"कुंजभवन में मंगलचार।"[444]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उद्यानों की संरचना समाज की कलाप्रिय सृजन शक्ति का प्रमाण है। तत्कालीन ब्रज समाज का सौंदर्यबोध भी इस वर्णन द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

पशु-पक्षी पालन

अपने आनंद के लिए मनुष्य पशु-पक्षियों को भी पालता है जो उसके एकांत के साथी होते हैं। अष्टछाप काव्य में पशुओं के रूप में कृष्ण गायों को पालने का उल्लेख हुआ है। यद्यपि समाज के लिए उपयोगी अन्य पशुओं को भी पाला जाता रहा होगा। गाय खिलाने के उत्सव में इन गायों के विभिन्न खेलों का वर्णन भी किया गया है। कृष्ण स्वयं अपनी गायों का शृंगार करते थे और उनका विशेष ध्यान रखते थे। मथुरा जाकर भी उनका ध्यान रखने का संदेश भिजवाते हैं—

"अरू जब मिल्यौ नंद बाबा सौं तब कहियौ समुझाइ।
तौ लौं दुखी होन नहि पावैं धौरी धूमरि गाइ।"[445]

पशुओं के अतिरिक्त "सुवा पढ़ावति गनिका तारी"[446] द्वारा शुक-सारिका आदि को पढ़ाने का संकेत किया गया है। ग्वाल मंडली द्वारा खगों को खिलाए जाने का उल्लेख भी किया गया है—

"नाहिन मोर बकत पिक दादुर ग्वाल मंडली खगनि खिलावति।"[447]

मनोरंजन के इन साधनों में आनंद प्राप्त करने की भावना प्रधान है। कलात्मकता का अंश इसमें इतना ही है कि पशु-पक्षियों को विभिन्न कलाएँ किस प्रकार सिखाई जाती हैं। जैसे तोता-मैना के बोलने या अनुकरण की कला और गायों के खेलने की कला। इन पक्षियों को रखने वाले पिंजरे आदि के निर्माण में भी कला का स्वरूप ढूँढा जा सकता है अन्यथा इनका उद्देश्य व्यक्तिगत मनोरंजन ही है।

उपरोक्त कलाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी कलाएँ हैं जिनका प्रचलन तत्कालीन ब्रज समाज में था परंतु अष्टछाप काव्य में इनका अलग से उल्लेख नहीं किया गया। परिधान तथा आभूषण कला के अंतर्गत अप्रत्यक्ष रूप से इनके महत्व को स्वीकार कर लिया गया है। ऐसी कलाओं में कसीदाकारी, जरदोजी, जरकशी, नक्काशी, पच्चीकारी, स्वर्णकारी, मीनाकारी आदि हैं। इन सब कलाओं के विकास में मुगल संस्कृति का बहुत बड़ा हाथ है। ब्रज के कलाकारों ने उनकी इस संस्कृति को ग्रहण कर अपनी कलाओं का बहुमुखी विकास किया। आज भी मथुरा, वृंदावन के ठाकुर जी के परिधान, मुकुट, आभूषण आदि अपनी विशेषता बनाए हुए हैं। ब्रज के मंदिरों की चित्रकारी भी दर्शनीय है।

ब्रज की प्राचीन कला 'युद्ध कला' को भी अष्टछाप काव्य में अप्रत्यक्ष रूप से ही स्थान मिला है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल से मध्यकाल की युद्ध कला में पर्याप्त अंतर आ चुका था। विदेशी संस्कृति के प्रभावस्वरूप युद्ध के नियम तथा अस्त्र-शस्त्रों में भी परिवर्तन आ चुका था। रथी, महारथी, अतिरथी आदि की संकल्पना समाप्तप्रायः थी। श्रीकृष्ण अपने समय के रथ संचालन कला के विशेषज्ञ थे परंतु अष्टछाप के समय इस कला की उपयोगिता समाप्तप्रायः थी। सेना में चारों प्रमुख अंग थे परंतु अश्व सेना को ही सर्वाधिक महत्व दिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था। पौराणिक प्रसंगों में ही युद्धकला का वर्णन किया गया है। तत्कालीन युद्ध शैली का भी यथावसर उल्लेख किया गया है।

पर्वोत्सवों से जुड़ी सजावट कला भी ब्रज में अष्टछाप के समय में विकसित हो रही थी इसका भी अप्रत्यक्ष चित्रण अष्टछाप काव्य में किया गया है। इसका संबंध उत्सव से संबंधित उपकरणों की रचना विधि से है। आज भी वल्लभ संप्रदायी मंदिरों में फूल-पत्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार के कलात्मक नमूनों का निर्माण किया जाता है। अष्टछाप के सभी कवियों ने सजावट की इस कला के अंतर्गत फूल डोल, फूल बँगले, हिंडोरा और झूले आदि के निर्माण का वर्णन किया है। इन अवसरों पर पुष्पों के बने वस्त्राभूषण धारण करने का उल्लेख भी किया गया है। पर्वोत्सवों के विवेचन में इनका वर्णन किया जा चुका है।

अष्टछाप काव्य में कलात्मकता पर विशद विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अष्टछापी कवियों ने उन्हीं कलाओं का तन्मयता से निरूपण किया है जिनका संबंध उनके आराध्य तथा संप्रदाय से था। प्रत्येक कला को लोकपक्ष से जोड़कर ही उन्होंने वर्णित किया है। तत्कालीन परिस्थितियों में वास्तु तथा मूर्तिकला का विकास संभव नहीं था। मुस्लिम शासक मंदिरों और मूर्तियों को धड़ाधड़ तोड़ रहे थे। उनकी इस नीति के पीछे धार्मिक उन्माद के साथ-साथ प्रभूत धनराशि प्राप्त करना भी था। अकबर जैसे मुगल शासकों ने धार्मिक समन्वय का परिचय देकर मंदिरों के निर्माण के लिए उपयुक्त वातावरण अवश्य बनाया मगर तब तक मथुरा और ब्रज के सुंदर मंदिर व मूर्तियाँ नष्ट हो चुकी थीं। उनका निर्माण उसी रूप में फिर नहीं हो पाया। श्रीनाथ जी तथा अन्य स्वरूपों की जो मूर्तियाँ वल्लभ संप्रदायी मंदिरों में स्थापित की गईं उनमें कलात्मकता का अंश पहले से कम था।

वल्लभाचार्य जी ने समाज की सृजन-शक्ति को कृष्ण की ओर मोड़ दिया। प्रत्येक कला का केंद्र कृष्ण को बना दिया और इस प्रकार सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर दिया। संगीत, नृत्य, वादन, सजावट आदि कलाएँ इसका प्रमाण हैं। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने आमोद-प्रमोद के सभी साधनों को कलाओं के रूप में विकसि किया। शिशुओं के लिए निर्मित खिलौनों से लेकर वयस्कों के चौगान तक के साधनों को कला का रूप दे दिया। लोक संस्कृति को ध्यान में रखकर अभिजात्य अथवा राजसी खेलों के प्रति उन्होंने उपेक्षा भाव धारण किया। जल विहार जैसे खेलों को भी ग्रामीण परिवेश में वर्णित किया। राजसी ठाठ-बाट का वहाँ अभाव है। आराध्य कृष्ण के बाल सुलभ खेलों का वर्णन किया और उनमें भी किसी न किसी कला को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जोड़ दिया। एक सशक्त समाज की रचना करने का स्वप्न देखा और इसी नींव डालने के लिए बालकों के समुचित शारीरिक, मानसिक क्षमताओं के संवर्धन का प्रयास किया। लोक कलाओं को प्रश्रय देकर एक ओर मृतप्रायः लोक ललित कलाओं में नव जीवन का संचार किया, दूसरी ओर ब्रज के कलाकारों को आजीविका के साधन उपलब्ध कराए। कलाकारों को अपनी कलाओं के उत्कृष्ट प्रदर्शन का एक अवसर तथा एक सशक्त आधार मिल गया। कलाओं के विकास ने समाज की आर्थिक समृद्धि को द्विगुणित कर दिया। अष्टछाप काव्य में वर्णित नंदादि गोपों का ऐश्वर्य वैभव इसका प्रमाण है। इस प्रकार कलाओं का स्वरूप भी अष्टछाप काव्य में लोकोन्मुखी होकर ही अभिव्यक्त हुआ है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपसंहार

अष्टछाप काव्य में वर्णित लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति के विश्लेषण के बाद यह प्रमाणित हो जाता है कि यह काव्य लोक के साथ एकाकार होकर रचा गया है। लोक के साथ जुड़े होने के कारण ही यह भारतीय संस्कृति का भी प्रतिनिधि काव्य बन गया है। अपने युग की प्रत्येक परिस्थितियों और विषमताओं को अभिव्यंजित करता हुआ यह काव्य समकालीन ज्ञान-विज्ञान के विकास, विचारों और संस्कारों के संघर्ष और जन-जीवन की रुचि-अभिरुचि तथा जीवन पद्धति को उद्घाटित करता है। अष्टछाप काव्य में साधना के माध्यम से लोकपक्ष को अभिव्यक्त किया गया है। साधना कृष्ण रस और भक्ति रस की है जिसमें सभी लौकिक रस लीन हो जाते हैं, काव्य को लोक जीवन का पर्याय बना देते हैं। अष्टछाप कवियों की भक्ति साधना का क्षेत्र ब्रज मंडल है इसलिए ब्रजलोक से जुड़ी प्रत्येक वस्तु उनके काव्य का विषय है। ब्रजरज उनका प्राण है और ब्रज से एक क्षण का वियोग भी उन्हें सह्य नहीं है। "बिरज की रज मह क्यों न भए" और "ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहिं" जैसी उक्तियों द्वारा उन्होंने इस ब्रज की महिमा का गान किया है। ब्रज उनकी तपोभूमि है, साधना भूमि है और साक्षात् गोलोक है। ब्रज का पर्याय और केंद्र श्रीकृष्ण हैं। वे राजपुत्र हैं परंतु साधारण बालकों की तरह रहते हैं। साँटी खाते हैं, ऊखल में बँधते हैं और प्रकृति की गोद में विचरण करते हैं। गोप बालकों के साथ बैठकर छाक खाते हैं, आँख-मिचौनी खेलते हैं और ब्रज के प्रत्येक जन को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। वे ब्रज के प्राण हैं। ब्रजलोक रंजक ही नहीं लोक रक्षक भी हैं। बाल्यकाल से ही ब्रजवासियों को आतताइयों के चंगुल से बचाते हैं। पूतना, केशी, तृणावर्त आदि राक्षसी उपद्रवों का सामना करते हैं। यमुना को कालिय नाग के आतंक से मुक्त करते हैं। गाय तथा गोपालों को चुराने वाले ब्रह्मा तथा ब्रजवासियों को संत्रस्त करने वाले इंद्र के गर्व को नष्ट करते हैं। वैदिक देवता इंद्र के स्थान पर लोकदेवता के रूप में गोवर्धन की प्रतिष्ठा करते हैं और गौ-धन के महत्व को स्थापित करते हैं। श्रीकृष्ण ने ब्रज के निवासियों को संगठित करके निरंकुश कंस की सत्ता का अंत किया और लोकजीवन में कर्म सिद्धांत की स्थापना की। कृष्ण का यह निष्काम कर्मयोग आज ब्रज के लोकजीवन का ही सत्य बनकर नहीं रह गया अपितु समस्त विश्व के लिए भी आकर्षण केंद्र बना हुआ है। उनकी धार्मिक तथा आध्यात्मिक व्यवस्थाओं की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप काव्य में वर्णित ब्रज संस्कृति आभीर संस्कृति है। दूध, दही, मक्खन का महत्व वहाँ बहुत अधिक है और वही उनकी सम्पन्नता का आधार भी है। गोचारण तथा गोपालन के महत्व की संस्थापना द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से वनों के महत्व को निरूपित किया है। वनों के विनाश से उत्पन्न जिन समस्याओं का सामना आज समाज कर रहा है, कृष्ण ने उन्हीं वनों, को प्रकृति को जन-समाज का पालक घोषित किया । प्रकृति में प्रत्येक उपादान को पूज्य बनाकर मनुष्य से उनकी अंतरंगता स्थापित की। मनुष्य के जीवन में उनकी उपादेयता को प्रमाणित किया। आभीर संस्कृति पूर्णतः लोक संस्कृति है उसमें नागरिकता का आडम्बर नहीं है। इस संस्कृति का मूल मानव कल्याण है और इसके लिए वह अनेक विश्वासों मान्यताओं के साथ विभिन्न देवी-देवताओं की मनौतियों को साथ लेकर चलती है। अष्टछाप काव्य में नागरिक संस्कृति का वर्णन भी इस लोकोन्मुखी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। नंदभवन का वैभव कंस के तथा द्वारका के राजसी वैभव से कम नहीं है। सजीवता का जो संस्पर्श गोकुल ब्रज के वैभव वर्णन में है। वह नागर संस्कृति के यांत्रिक वर्णन में नहीं है। लोक जीवन किसी भी जाति की पृष्ठभूमि है वह उसकी संपूर्ण चेतना को स्वचालित करता है। लोकजीवन की प्रत्येक मान्यता को वैज्ञानिकता के आधार पर नहीं कसा जा सकता। लोक संस्कृति के चित्रण के लिए उन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना पड़ता है। अष्टछाप के कवियों ने इसी पद्धति को अपनाया है। यहाँ के लोकगीतों, व्रत, उपवास, तीर्थ आदि का पूरा-पूरा उपयोग अपने काव्य में किया हैं इसी कारण तादात्मयता के गुण को भी प्राप्त किया है। लोकभाषा ब्रजभाषा के माध्यम से लोक जीवन और लोक संस्कृति को अपने काव्य द्वारा प्रदर्शित करके अष्टछाप के कवियों ने आचार्य वल्लभ और विट्ठल की लोकोन्मुखी दृष्टि को, उसकी प्रासंगिकता ओर उपादेयता को अभिव्यक्त कर अपने काव्य को सही अर्थों में लोककाव्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। कृष्ण भक्ति के माध्यम से उन्होंने सरलता से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। बालकृष्ण के अनुपम सौंदर्य वर्णन द्वारा प्रत्येक बालक में ईश्वर के निवास की अप्रत्यक्ष घोषणा की। साधारण बालक कृष्ण में केवल प्रेम की दृष्टि से ही जिस सौंदर्य की सर्जना उन्होंने की उससे यह भी प्रमाणित कर दिया कि सौंदर्य केवल दृष्टि प्रेम का परिणाम है। युग की परिस्थितियों को देखते हुए उन्होंने नारी-जागरण की भावना का विकास किया। ब्रज की गोपियों के माध्यम से जिस स्त्री-समाज की संरचना की वह निरंतर कर्मशील तथा अपने आप में समर्थ और सशक्त नारियों का समाज है। अपनी रक्षा के लिए किसी पुरुष की आवश्यकता उन्हें नहीं है वह निर्भीकता के साथ दूध, दही बेचने मथुरा जाती हैं और मार्ग में आने वाली बाधाओं का सामूहिक रूप से सामना करती हैं। पर्वों, उत्सवों, रास, हिंडोला आदि लीला वर्णनो द्वारा लोक संस्कृति के प्राण, उल्लास को अभिव्यक्त किया है। उनके वर्ण्य विषय के बाद तथा अभिव्यंजना पक्ष के बाद में आने वाले मुख्य काव्य के लिए प्रेरणा स्त्रोत बने। नंददास का काव्य इस दृष्टि से रीतिकालीन कवियों का मार्गदर्शन सिद्ध हुआ। श्रृंगार के जो उन्मुक्त और सरल चित्र उन्होंने खींचे वे रीतिकाल के कवियों के मुख्य विषय बन गए। इसी प्रकार उनकी भाषा की कलात्मकता रीतिकालीन भाषा सौंदर्य की प्रेरणा बनी।

पर्वेत्सवों लोकोत्सवों, फाग, बसन्त, तीज, विभिन्न संस्कारों के निरूपण द्वारा ब्रज संस्कृति को जीवित कर दिया गया है। सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत इन सबका विशद विवेचन किया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जा चुका है। आज भी अष्टछाप काव्य में वर्णित इन पर्वों का सांस्कृतिक महत्व अक्षुण्ण है और वे अपने परंपरागत रूप में मनाए जा रहे हैं। कृष्ण जन्माष्टमी पर दही-हल्दी छिड़काव, मन्दिरों में झांकियों और झूलों की रचना इसी काव्य के आधार पर की जा रही है। ब्रज होली समस्त भारत में प्रसिद्ध है और इसका कारण ब्रजवासियों का उन्मुक्त तथा निश्छल उल्लास है। सभी कवियों ने एक से बढ़कर एक सुंदर चित्र खींचे हैं। रसिक फाग खेलें नवल जागरी सों, "(छीतस्वामी) "आयो आयो रितु बसंत दम्पति मन सुख विरह अंत," (सूरदास), "खेलत फाग गोर्वधनधारी हो होरी बोलत ब्रज बालक संगे", (कुंभनदास) "लीनो अरगजा कुंकुम धौरि कै प्यारी उर लपटाये" (गोविन्द स्वामी), "चोवा", चंदन और कुंकुम मुख मांडति लै-लै रोरी, (परमानंददास) आदि पंक्तियों से होली के अवसर पर अभिव्यक्त सामाजिक उल्लास का प्रगटन किया गया है। गोवर्धन पूजा के अवसर पर ब्रज के मुख्य धन गोर्वधन के संवर्धन पर बल दिया और ग्रामीण संस्कृति के अनुरूप इस अवसर पर गाय खिलाने के खेल को वर्णित करके लोक-मनोरंजन को अपने काव्य में स्थान दिया। ग्रामीण युवकों के लिए यह खेल आज भी शक्ति और चातुर्य का प्रतीक है। दीपावली के वर्णन में भी ग्राम्य संस्कृति को नागरिक संस्कृति की अपेक्षा महत्व दिया। तीज, हिंडोरा, गणगौर जैसे पर्वों द्वारा लोकपर्वों को प्रतिनिधित्व किया और इस प्रकार अपने काव्य के लोकपक्ष में पुष्ट किया। वर्णाश्रम धर्म को मान्यता देकर काव्य में वर्णित अवश्य किया पर भक्ति के क्षेत्र में उसका निराकरण कर एक ऐसे समाज की संरचना करने का प्रयास किया जहां सब एक बराबर हों। सामाजिक आचार-विचार, अतिथि सत्कार, परस्पर आदर-सम्मान और स्नेह की भावनाओं को वर्णित करके यह सिद्ध कर दिया है कि ब्रज समाज ग्रामीण परिवेश में रहते हुए भी सभ्य व सुसंस्कृत था। और भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों को समेटे था। उसकी विभिन्न प्रथाओं तथा रीति-रिवाजों में लोकमंगल की भावना प्रधान थी। लोक चित्रित करने के लिए ही समाज के प्रत्येक वर्ग का उल्लेख उन्होंने किया है।

ब्रज संस्कृति के लोकोन्मुखी होने के प्रभाव स्वरूप उन्होंने ब्रज के लोकमानस को अपने काव्य में पूरा-पूरा स्थान दिया। विभिन्न लोकाचारों, लोकविश्वासों और मान्यताओं द्वारा अपने काव्य और लोक को एकाकार कर दिया। लोकपरंपराओं का निर्वाह भी उन्होंने किया। संस्कारों तथा पर्वों के वर्णन में स्थानीय विश्वासों के अनुकूल आचारों का पालन किया। कृष्ण लीला के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों के प्रत्येक कोण को उभारा है। सामाजिक विश्वासों के फलस्वरूप विकसित धार्मिक विश्वासों का वर्णन भी उन्होंने किया है। ब्रज का धर्मभीरू जनमानस किसी भी धर्म का अनादर नहीं कर सकता। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ब्रज में अनेक राजवंशों का शासन रहा और हरेक का अपना धर्म अलग था। इन सभी धर्मों के विभिन्न विश्वासों ने ब्रज के लोकमानस को प्रभावित किया और इस तरह लोकजीवन में धर्म का जो रूप प्रचलित हुआ उसमें विभिन्न संस्कृतियों के तत्वों का समावेश हो गया। इन्द्र, विष्णु, शिव, यक्ष, पीर, नागर आदि सभी ब्रज संस्कृति में पूज्य हैं। प्राचीन मातृ देवी की सत्ता भी इस धर्म का अंग है। 15वीं सदी के विभिन्न भक्ति संप्रदाय भी ब्रजभूमि में फल-फूल रहे थे परंतु ब्रज के जनमानस ने किसी एक का अंधानुकरण नहीं किया। सभी को यथोचित आदर-सम्मान देकर अपनी प्रकृति के अनुरूप उनके प्रमुख तत्वों को ग्रहण कर लिया। वल्लभ संप्रदाय का प्रभाव [illegible] सर्वाधिक रहा और इसका संपूर्ण श्रेय अष्टछापी काव्य को है। आचार्य वल्लभ ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुदूर दक्षिण से आकर ब्रज भूमि को अपनाया और अपने सिद्धांतों का विकास इस लोकमानस को अच्छी पहचान कर उसी के अनुरूप किया। गोस्वामी विट्ठल ने संप्रदाय की लोकप्रियता की वृद्धि के लिए चार अपने चार और अपने पिता के शिष्यों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की और श्रीनाथजी की सेवाविधि में विस्तार करके संप्रदाय में रागात्मक तत्व की स्थापना की। स्वामिनीजी की स्वरूप स्थापना द्वारा इस तत्व का तथा प्रेम भक्ति का विस्तार किया। अष्टछाप के कवियों ने उनके दृष्टिकोण को, अपनाकर सुंदरतम काव्य की रचना की और जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। कृष्ण के साथ जुड़कर हर व्यक्ति अपनी समस्त भावनाओं को उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में देखने लगा। लोक से जुड़े होने के कारण इन कवियों ने लोकभाषा ब्रजभाषा को अभिव्यक्ति का माध्मय बनाया और सौंदर्य को स्थानीय शब्दों, लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से द्विगुणित कर दिया। इन कवियों की कला का ही परिणाम था कि वल्लभ संप्रदाय, उसके सिद्धांत तथा उसके नित्योत्सव और वर्षोत्सव ब्रज-समाज का अनिवार्य अंग बन गए। लोकमानस और अष्टछापी काव्य इस तरह एक-दूसरे में घुल-मिल गए कि दोनों को अलग-अलग करना कठिन हो गया। काव्य में लोककथा, लोकगाथाओं और लोकगीतों का प्रयोग किया गया तो ब्रज तथा सुदूर प्रांतों में सूरदास आदि कवियों के पदों ने लोकगीतों का स्वरूप प्राप्त कर लिया। उनकी लोरियां, फाग, रसिया आदि के पद लोक द्वारा स्वीकार कर लिए गए। इस संश्लिष्टता ने ही दोनों को एक-दूसरे का पर्याय बना दिया।

राजनीतिक तथा आर्थिक चित्रण द्वारा अष्टछाप काव्य में युगवर्ग का निर्वाह किया गया है। कोई भी साहित्यकार युग-निरपेक्ष काव्य की रचना नहीं कर सकता। वह चाहे या न चाहे युगीन परिस्थितियों का प्रभाव उस पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पड़ना आवश्यक है। अष्टछाप कवियों का कला-नैपुण्य इसी में है कि उन्होंने भक्ति के कलेवर में भक्ति से सर्वथा भिन्न विषय को समाहित कर दिया। कृष्ण कथा का विस्तार इस प्रकार से किया गया कि मध्ययुगीन अव्यवस्था, अराजकता के साथ वाणिज्य व्यवसाय की झलक भी उसमें आ गई है। राजकर्मचारियों द्वारा साधारण प्रजा को किस प्रकार संत्रस्त किया जा रहा था, इसका सम्यक् चित्रण उन्होंने किया है। राजन्य वर्ग के राजसी वैभव के मूल में यह शोषण ही था। आचार्य वल्लभ ने इसी शोषण के विरुद्ध जनशक्ति को एक करने का स्वप्न देखा था। कृष्ण भक्ति ही उनके विचार से एकता का सशक्त सूत्र थी। अष्टछाप कवियों ने इसी कृष्ण के माध्यम से यह संदेश जनसाधारण तक पहुंचाया, उन्हें अपनी शक्ति, कला और चतुरता की पहचान कर स्वावलंबी बनने का मार्ग दिखाया। गोवर्धन पूजा के अवसर पर व्यक्त कृष्ण के विचारों में इसी संदेश की अनुगूंज है। इंद्र वहां निरंकुश राजसत्ता का प्रतीक है जो केवल कर वसूलना जानता है, प्रजा का कल्याण करना नहीं चाहता था। कृष्ण ने स्पष्ट घोषणा की कि हम ऐसे राजा को पूजा या कर नहीं देंगे। उन्होंने इंद्र के स्थान पर ब्रजवासियों को शरण देने वाले, उनके पशुधन का पालन और संवर्धन करने वाले गोवर्धन पर्वत को ही लोकदेवता के रूप में प्रतिष्ठित किया। आभीरों को एक ही स्थान पर रहकर अपनी शक्ति बढ़ाने का मंत्र दिया। जिससे उनमें आर्थिक संपन्नता आ सके। अपने सुदर्शन चक्र और बलराम के हल-मूसल द्वारा यह संदेश दिया कि आभीरों को अपने आस-पास उपलब्ध शकट के पहिए को अपनी रक्षा का साधन बनाना है और कृषि-व्यवसाय को अपना कर आत्मनिर्भर बनना है। कृष्ण के क्रांतिकारी व्यक्तित्व के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फलस्वरूप, आभीर युवक राजशक्ति का अंत उनके नेतृत्व में कर सके। मुस्लिम अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को देखकर कृष्ण ने 'दान नीति' का आदर्श सामने रखा। वे गोपियों से दान लीला में केवल दूध, दही का एक अंश ही मांगते हैं द्रव्य नहीं। आभीरों को केवल उतना ही दूध, दही, मक्खन मथुरा ले जाने की आज्ञा देते हैं जितना ब्रज समाज की आवश्यकता से अधिक होता है। अपने गाय-बैल, गोप-ग्वालों के मुख से छीनकर कोई भी वस्तु मथुरा नहीं ले जाने देते। कृष्ण की नीतियों के कारण ही यदुवंशियों के वैभव में वृद्धि हो सकी। गोपियों के माध्यम से अष्टछाप कवियों ने यह भी आदर्श प्रतिष्ठित किया कि राजनैतिक अव्यवस्था के युग में स्त्रियों को अपने मान-सम्मान की रक्षा स्वयं ही करनी होगी। ब्रज की होली में स्त्रियों द्वारा डंडे के प्रयोग के माध्यम से पुरुषों से अपने स्वाभिमान की रक्षा की शिक्षा दी गई है। ब्रज की गोपी इस शिक्षा के कारण ही आत्मविश्वास से भरकर अकेली ही मथुरा तथा आस-पास के प्रदेशों में व्यापार के लिए जा सकती हैं। ब्रज की यह नारी परंपरागत भारतीय नारी नहीं है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों की छाया में जीवन काटती है। वह अपने समाज का अनिवार्य अंग है और पुरुषों से अधिक परिश्रम करके अपनी उपादेयता को प्रमाणित करती रहती है। आर्थिक संपन्नता का आधार सहकारिता की भावना मानकर कृष्ण चले हैं। अष्टछाप काव्य में ब्रज समाज में, राजा-प्रजा दोनों एक-दूसरे के सुख-दुख में समान रूप से भागी हैं। अलग-अलग रहते हुए भी सब एक सूत्र में गुंथे हुए हैं। कृष्ण संपूर्ण समाज के प्रिय हैं। और कृष्ण के लिए ब्रजलोक ही मुख्य है। वे कोई भी कार्य केवल अपने या अपने परिजनों के लिए नहीं करते, मानव कल्याण के लिए करते हैं। कल्याण के इस मार्ग में अपने व्यक्तिगत मान-सम्मान की चिन्ता नहीं करते। कृष्ण कथा के माध्यम से अष्टछाप कवियों ने इस प्रकार तत्कालीन अव्यवस्था का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मुखिया या राजा का प्रथम कर्त्तव्य प्रजापालन घोषित किया है। अपनी लोकोन्मुखी दृष्टि के कारण लोककल्याण के विषय में अपनी चिन्ता को प्रगट किया है, और कृष्ण के आदर्श को मानकर समस्त ब्रजवासियों को एक हो जाने का आह्वान किया है। आर्थिक संपन्नता और राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कृष्ण भक्ति को ही एकमात्र साधन माना है।

ब्रजलोक की शोचनीय अवस्था देखभाल कर ही आचार्य वल्लभ ने अपने संप्रदाय के सिद्धांतों का गठन किया। उन्होंने ब्रज के कलात्मक विकास की पीठिका का निर्माण किया। ब्रज के कलाकारों का सहयोग ब्रज के पुनर्निर्माण में माँगा और श्रीनाथजी को केंद्र बनाकर विभिन्न कलाओं का विकास किया। अष्टछाप काव्य में कलात्मकता का स्वर इसी कारण मुखर है। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने सेवाविधि में विस्तार करके छोटे से छोटे कलाकार को भी समाज के लिए सार्थक बना दिया। पाक विद्या जैसे दैनिक गृहकार्य को भी कला के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। अष्टछाप के कवियों ने श्रीनाथजी के शृंगार, भोग और राग से जुड़ी अनेकों कलाओं का प्रतिनिधित्व अपने काव्य में किया। वहां कोई पंक्ति या कोई विषय ऐसा नहीं है जो किसी कला से रहित है। आभूषण निर्माण और ब्रज की कलाएं अपने शीर्ष पर प्रहुंच गईं। वस्त्राभूषणों के वर्णन में मुगलशैली का प्रभाव भी कवियों पर पड़ने लगा। मध्यकालीन वेशभूषा के अनुरूप कृष्ण को भी पाग और सूथन पहनाया गया—"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"स्वेत जरी सिर पाग लटक रही, कलंगी तामें लाल।
तनसुख को बागो अतिराजत कुंडल झलके रसाला।"[1]

चतुर्भुजदास ने कृष्ण को छापेरी सूथन पहनाकर गुलाब के फूल से उनके मुकुट को सज्जित किया है। इस समय तक रत्नों में विदेशी प्रभाव स्वरूप पिरोजा भी परिगणित होने लगा था। अष्टछाप काव्य में इसका वर्णन भी बहुलता से किया गया है। गोविन्द स्वामी ने बालकृष्ण को पालने में भी 'सेत कुलही' पहना दी है, 'कलंगी तुर्रे' का उल्लेख भी किया है—

"सेत कुलही सीस राजति सोभित घुंघरे बाल।
चिबुल अलकावलि अनुपम लटकै लटकन लाल।
कलंगी तुर्श कनक मनिमय तिलक मृगमद भाल।"[2]

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में मोर पंख और 'गुंजा' का उल्लेख नहीं होता तो कृष्ण को पहचानना ही कठिन हो जाता—

"सूथन लाल अरु सेत चोलना कुल्है जरकसी अतिमन भावत।
विविध भांति सूथन अंग सोभित केकी भुजा पहिरावत।"[3]

मध्यकालीन सामंती वैभव का चित्र कुंभनदास ने भी खींचा है। "खसखाने में पिछोरा और कुलहा धारण किए कृष्ण, पृष्ठभूमि में सुगंध के छूटते फुहारे और फूलों की अतिशयता मुगल वैभव की ओर संकेत करती है—

"टीक दुपहिरी में खसखाने रचे ता मधि बैठे लाल बिहारी।
खासो को कहि बन्यो पिछोरा चंदन भीजीं कुलहं संवारी।
विविध सुगंध के छुटत फुहारे कुसुमनि के विजबा ढोरत पियारी।
सघन लता द्रुम झरत मालती सरस गुलाब माल गूंथति है प्यारी।"[4]

लोकसंस्कृति के रंग में ढलकर विदेशी संस्कृति पूर्णतः ब्रज की अपनी हो गई। कलाकारों ने समन्वय की इस भावना का पखार किया। भोग के वैभवपूर्ण आयोजन में भी यही प्रवृत्ति पृष्ठभूमि के रूप में विद्यमान रही। कला के क्षेत्र में अष्टछाप काव्य की सर्वप्रमुख देन ललित कलाओं का विकास है। संगीत की ध्रुपद-धमार शैली को अपनी कीर्तन पद्धति द्वारा उन्होंने चरम सीमा तक पहुंचा दिया। अष्टछाप के आठों कवि गायक व संगीतज्ञ थे। गोविन्द स्वामी की संगीतज्ञता तो सर्वप्रसिद्ध थी। परंतु बाकी कवि भी इस कला में पारंगत थे। ध्रुपद और धमार गायकी के अनुरूप रागों में विभिन्न पदों की रचना प्रत्येक कवि ने की है। वादन में उपयुक्त, विभिन्न वाद्यों को निर्मित करने के लिए जनसाधारण को आजीविका के साधन उपलब्ध हुए और इस प्रकार उनकी नैराश्य भावना में कमी आई। वाद्ययंत्रों को बजाने वाले कलाकारों को भी अपनी कला के प्रदर्शन का अवसर मिला। नृत्य के अंतर्गत हल्लीसक रास आदि नृत्यों का प्रचलन हुआ। मुगल प्रभाव स्वरूप नृत्य की कत्थक शैली का विकास हुआ। कृष्ण के नृत्य के आधार पर विकसित 'नटवरी नृत्य' की कत्थक नृत्य बन गया। रासलीला के पद-संचालन को इस नृत्य में स्वीकार कर लिया गया। नृत्य में भी मुगलकालीन दरबारी वातावरण की झलक अष्टछाप काव्य में कहीं-कहीं मिल जाती है—

"गावति गिरधरन संग परम मुदित रास रंग;
उरप तिरप लेत तान नागर नागरी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चर्वन ताम्बूल देत ध्रुव तालहिं गतिहिं लेत।
गिड़ि-गिड़ि तत थुंग थुंग थुंग अलग राग री।"[5]

रासनृत्य के समय 'ताम्बूल देना' पूर्णतः दरबारी वातावरण का प्रभाव है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि ब्रज की लोकसंस्कृति में यह तत्व प्रवेश कर चुके थे और जनसाधारण द्वारा सामान्य रूप में स्वीकार कर लिए गए थे। वंशीवादन की कला भी अष्टछाप के माध्यम से ही लोकप्रिय हो सकी। साधारण बांस से बने इस वाद्य का माधुर्य भारतीय संगीत की निजी विशेषता है। अष्टछापी कवियों ने युग की मांग को देखते हुए मनोरंजन को भी शुद्ध मनोरंजन के रूप में वर्णित न करके किसी न किसी कला से जोड़ दिया है। मल्ल कला, आखेट कला का विकास, शारीरिक शक्ति के विकास की दृष्टि में रखकर किया गया। इसी प्रकार किशोरों द्वारा अपनाए गए मनोरंजन के साधनों को बुद्धि चातुर्य तथा शारीरिक क्षमता से युक्त कर दिया। मनोरंजन के द्वारा भी ऐसे युवकों के निर्माण का लक्ष्य रखा जो विषम परिस्थितियों में अपनी तथा अपने परिजनों की रक्षा में सफल हो सकें। इस प्रकार कलाओं के विकास में भी अष्टछाप कवियों की लोकोन्मुखी दृष्टि ही प्रधान थी।

लोकमंगल और लोककल्याण की भावना को अष्टछाप के समकालीन और परवर्ती कवियों ने समान रूप से अपनाया। गोस्वामी तुलसीदास ने लोक-संस्कृति को आत्मसात् कर मानस की रचना की जो आज भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ माना जाता है। अष्टछाप कवियों में से सूरदास उनके समकालीन थे। उनसे प्रभावित होकर तुलसीदास ने राम का बाल-वर्णन किया और कौशल्या के मातृहृदय की भावनाओं को यशोदा के हृदय के समान ही अभिव्यक्त किया। सूर का अनुकरण करते हुए विभिन्न काव्य प्रकारों, लोकोक्ति मुहावरों, संस्कारों का समावेश अपने काव्य में किया। राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी हित हरिवंश जी ने भी लोकसंस्कृति के अनुरूप अपने सिद्धांतों का प्रसार किया। राधा के शृंगार वर्णन में सूरदास से भाव-प्रभाव ग्रहण किया। अष्टछाप कवियों ने अनुकरणों पर रसखानि, ताज बीबी जैसे कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रज और ब्रजलोक संस्कृति को पूर्णतः स्वीकार कर लिया। ब्रज लोकजीवन में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों में प्रयोग से उन्होंने अपनी भाषा के सौंदर्य को बढ़ाया। फाला, रास और वसंतोत्सव जैसे उत्सवों के वर्णनों में लोकोन्मुख ब्रज संस्कृति को साकार करके अष्टछाप काव्य की परंपरा को आगे बढ़ाया। लोक-संस्कृति के विकास में ऐसे कवियों के योगदान के प्रति भारतेंदु हरिश्चंद्र के शब्दों में, "इन मुसलमान हरिजननवर कोटिन हिंदू वारिए' कहकर ही आभार प्रकट किया जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास ने समकालीन आचार्य केशवदास के भी अपने काव्य में कहीं-कहीं लोकतत्वों का निर्देशन किया है। राम-विवाह के अवसर पर गाई जाने वाली 'गारी' में सूर का स्पष्ट प्रभाव उन पर परिलक्षित होता है—

"अब गारि तुम कहं देहि हम कहि कहा दूलह राम जू।
कछु बाप प्रिय परदार सुनियति करी कहत कुबाम जू।
को गनै कितने पुरुष कीन्हे कहत सब संसार जू।
सुनि कुंवर चिन्ता दै वरणि ताकौ कहिय सब व्यवहार जू।"[6]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

केशव की इन पंक्तियों के साथ ब्रजनारियों की निम्न 'गारी' स्वतः सामने आ जाता है—

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"तो सौं गारि कहि दीजै, जप जगु नावैं कौन सी लीजे।
तेरी माइ सकल जग खोयो, सोको जो इहि मिलि न बिगोयो।"[7]

रीतिकाल का काव्य अपने विजय और अभिव्यंजना पद्धति के लिए भक्ति काल का ऋणी है। नंददास के काव्य में जिस रीतिकालीन प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ था, रीतिकाव्य ने उसी को ग्रहण कर विकसित किया। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में—"प्रेम के क्षेत्र में प्रेम का ही पतन हुआ उसमें सांसारिक और पार्थिव आकर्षण की दूषित गंध आ गई। फल यह हुआ कि कृष्ण सूरदास के 'प्रभु बाल संघाती' न रहकर गोपियों द्वारा होली खेलने के लिए बार-बार निमंत्रित किए जाने वाले 'लाला फिर आइयो खेलन होरी' वाले श्रीकृष्ण हो गए।" इतना होने पर भी रीतिकाल के प्रमुख कवियों ने लोकसंस्कृति से अपना संपर्क बनाए रखा। अष्टछाप काव्य में रास-फाग, होली, बसंत के वर्णनों में शृंगार का उन्मुक्त चित्रण किया गया था। जिसका केंद्र कृष्ण भक्ति था, रीतिकाल में यह भक्ति का तत्व हट गया और यह पर्व शुद्ध शृंगार का विषय बनकर रह गए। भक्ति समर्थक कवियों ने लोकसंस्कृति की परंपरा का निर्वाह इस वातावरण में किया है। देव ने सूरदास के जन्म वर्णन प्रसंग से प्रभावित होकर श्रीकृष्ण से संबंधित लोक-संस्कृति को अपने काव्य में प्रस्तुत किया। ब्रजलोक में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से अपनी भाषा में लोक-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास किया है। घनानंद की पदावली लोकसंस्कृति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उसमें अष्टछाप काव्य की भांति पदशैली को अपनाया गया है और विविध राग-रागिनियों में सोहार, बधाई, वर्षगांठ, विवाह, रास, गोवर्धन पूजा, हिंडोरा, झूला आदि विषयों का निरूपण किया गया है। उन पर सूरदास का प्रभाव सर्वाधिक है। होली के वर्णन में सूर की तरह ही गोपियों द्वारा कृष्ण को घेरा व पकड़ा गया है—

"आवौ सखि घेरि गहि लीजै कीजै अपनी मनभाई।
गुलचि बनाय, नचाय, चुहुटियन छांडि दहिकरि अधिकाई।"[9]

इसी प्रकार—"आज कान्ह कुंवर की बरसिगांठ है आवो री, मंगल गावो सब नारी"[10] तथा सूरदास के वर्षगांठ वर्णन—"अरी मेरे लालन की आजु वरसगांठी, सबै सखिनी कौं बुलाई मंगल गान करावौ।"[11] में अद्‌भुत भाव साम्य तथा भाषा साम्य स्पष्ट है। धनानंद ने लोकजीवन में गाए जा रहे कजरी, फाग और रास के लोकगीतों की शैली को अपना अपने काव्य का संबंध लोक से जोड़ा है। पद्माकर ने होली वर्णन में सूरदास की तरह ही लोकसंस्कृति के तत्वों के उन्मुक्त क्रिया-कलापों को दर्शाया है। फाग के अतिरिक्त अन्य सांस्कृतिक तत्वों का वर्णन भी शृंगार की पृष्ठभूमि में ही इन्होंने किया है। बोधा ठाकुर ने अष्टछाप की लोकोन्मुखी दृष्टि से प्रभावित होकर बुंदेलखंड जनपद की संस्कृति को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया। ब्रजवासीदास ने भी अष्टछाप काव्य की लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति का वर्णन दोहा-चौपाई शैली में किया। रामचरितमानस की तरह उनका 'ब्रजविलास' भी लोकसंस्कृति का संवाहक ग्रंथ बन गया है। रीतिकाल के अन्य कवियों—बिहारी, रसनिधि, सूदन लाल, ग्वाल, दूलह आदि के कृष्ण काव्य में भी लोकसंस्कृति के तत्व यत्र-तत्र मिल जाते हैं।

आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ब्रजभाषा में कृष्ण काव्य का सृजन कर अष्टछाप काव्य की परंपरा को आगे बढ़ाया। वे वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे इसलिए उनके काव्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में अष्टछाप काव्य की विशेषताएं स्वतः आ गई हैं। उनके काव्य में वर्णित ब्रजलोक से स्मृति भक्तिकालीन कवियों की तरह ही है। रत्नाकर ने गंगावतरण में धार्मिक आस्थाओं के माध्यम से लोकसंस्कृति को अभिव्यक्त किया है। सत्यनारायण कविरत्न ने लोकोक्तियों और मुहावरों के रूप में लोकसंस्कृति को अपनाया है। हरिऔध के प्रियप्रवास और मैथिलीशरण गुप्त के द्वापर में लोकसंस्कृति के लिए अधिक अवकाश नहीं था। श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' महाकाव्य के माध्यम से लोकसंस्कृति को निरूपित किया है। कृष्ण जन्म की लोकरीतियां तथा गोवर्धन पूजा के प्रसंग वहां पूर्णतः अष्टछाप काव्य से प्रभावित होकर रचे गए हैं। संक्षेप में अष्टछाप कवियों की लोकोन्मुखी दृष्टि अनेकों रचनाकारों को आकृष्ट करने में सफल रही है।

अष्टछाप काव्य ने लोक से अभिन्न संबंध स्थापित कर कृष्ण और कृष्ण भक्ति के प्रसार में अभूतपूर्व योगदान दिया। ब्रजलोक से जुड़े प्रत्येक तत्व को काव्य का विषय बना दिया। ब्रज संस्कृति की विशेषताएं भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषताएं हैं। इसलिए यह काव्य भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला काव्य बन गया है। विदेशी संस्कृति के प्रति समन्वय और सहिष्णुता की भावना अपनाकर दो विभिन्न संस्कृतियों को निकट लाने का प्रयास भी इस काव्य में किया है। विदेशी शब्दावली को ब्रजभाषा में माधुर्य के ढाल लिया है। मध्यकालीन लोकसंस्कृति को प्रमुखता देते हुए भी राजन्य संस्कृति की उपेक्षा नहीं की है। अष्टछाप के कवियों ने वल्लभ संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतों और पुष्टिमार्गीय सेवाविधि को संस्कृति से जोड़कर इतने मोहक रूप में अभिव्यक्त किया है कि जनमानस को उन्हें ग्रहण करने में कोई झिझक नहीं हुई। उन्मुक्त शैली में संस्कृति के विभिन्न तत्वों को निरूपित करना एक कठिन कार्य था पर अष्टछापी कवियों ने अत्यंत सरलता और कलात्मकता से इस कार्य को संपन्न किया है। अष्टछाप काव्य लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति का प्रतिनिधि काव्य बन गया है। यह सही है कि अष्टछापी कवि भक्त थे परंतु यह कहना कि भक्ति के कारण समाज से वे निकट संबंध स्थापित नहीं कर पाए, इन कवियों के साथ अन्याय है। भक्त होते हुए भी जिस निपुणता से उन्होंने लोकजीवन के साथ अपना नैकट्य स्थापित किया है वह उनके सतर्क और सचेतन दृष्टिकोण का परिणाम है। भक्ति सिद्धांतों और लोकसंस्कृति के तत्वों का अन्योन्याश्रित संबंध स्थापित कर उन्होंने अपने काव्य को भक्तों और जनसाधारण दोनों के लिए ग्राह्य बना दिया। काव्य सौंदर्य की दृष्टि से तो उसका महत्व अक्षुण्ण है ही, ब्रज के लोकमानस का प्रतिनिधित्व भी वह सफलतापूर्वक करता है। अष्टछाप काव्य को लोकोन्मुखी ब्रजसंस्कृति का वृहदकोश निःसंकोच कहा जा सकता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग्रंथानुक्रमणिका

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय भाग 1, भाग 2, डॉ. दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

अष्टछाप, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण

अष्टछाप सं. प्रो. कंठमणि शास्त्री, संचालक, विद्याविभाग, कांकरौली।

अष्टछाप परिचय, श्री प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, द्वितीय संस्करण

अष्टछाप पदावली, श्री प्रभुदयाल मीतल

अष्टछाप पदावली, डॉ. सोमनाथ गुप्त

अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, डॉ. मायारानी टंडन, प्रथम संस्करण

अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल, प्रथम संस्करण, प्रकाशक, लखनऊ विश्वविद्यालय

अशोक के फूल, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, द्वितीय संस्करण

आर्य संस्कृति के सिद्धांत, डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, संस्करण 1952 ई.

आर्य संस्कृति के आधार ग्रंथ, श्री बलदेव उपाध्याय, नंदकिशोर एंड संस, चौक वाराणसी प्र. स. 1962

आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकषर्ण, श्री महादेव शास्त्री दिवेकर

उत्तरी भारत की संत परंपरा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग, प्रकाशक, प्रो० कंठमणि शास्त्री, सं. गो श्री ब्रजभूषण शर्मा

कुंभनदास पद संग्रह, विद्याविभाग, कांकरौली, राजस्थान, प्र. सं.

कृष्णदास, सं. गो. श्री ब्रजभूषण शर्मा, प्रकाशक प्रो. कंठमणि शास्त्री, विद्याविभाग, कांकरौली

कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव, डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी

कला और संस्कृति, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल 1958

कविवर परमानंददास और वल्लभ संप्रदाय, डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़

कृष्ण काव्य में लीला वर्णन, डॉ. जगदीश भारद्वाज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कृष्णाश्रय, महाप्रभु वल्लभाचार्य

केशव और उनका साहित्य, डॉ. विजयपाल सिंह, राजपाल एंड संस, 1961

कालिदास के ग्रंथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति, डॉ. गायत्री वर्मा, हिन्दी पुस्तकालय, वाराणसी

गोविन्द स्वामी, सं. गो श्री ब्रजभूषण शर्मा, प्रकाशक प्रो. कंठमणि शास्त्री, विद्याविभाग, कांकरौली

चौरासी वैष्णवन की वार्ता, प्रकाशक लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं 1985

चतुर्भुजदास पद संग्रह, प्रकाशक प्रो. के. मणि शास्त्री, विद्यासागर, कांकरौली

छीतस्वामी, सं. गो श्री ब्रजभूषण शर्मा, प्रकाशक प्रो. कंठमणि शास्त्री, विद्याविभाग, कांकरौली

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, प्रकाश शुद्धाद्वैत एकेडमी, कांकरौली, राजस्थान

नंददास ग्रंथावली, सं० ब्रजरत्नदास, प्रकाशक काशी नागरी प्राचरिणी सभा

नंददास (प्रथम और दि. भाग), सं. उमाशंकर शुक्ल, प्रकाशक प्रयाग विश्वविद्यालय

परमानंदसागर, सं. डॉ. गोवर्धननाथ शुक्ल, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़

पुष्टिमार्गीय दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता, रामदासजी द्वारा संपादित, प्रकाशक लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई।

प्राचीन भारत के कला विनोद, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रथम संस्करण

ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति, डॉ. रूपनारायण प्र० सं० यंगमैन एंड कंपनी, दिल्ली

ब्रजभाषा कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजन शिल्प, डॉ. सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य, डॉ. कणिका तोमर, प्रकाशक, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ब्रजभाषा, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र. सं.

ब्रजभाषा का व्याकरण, पं. किशोरीदास वाजपेयी, हिमालय एजेंसी कनखल

ब्रजमाधुरी सार, सं. वियोगी हरि, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, अष्टम संस्करण

ब्रजलोक संस्कृति, सं. डॉ. सत्येंद्र, प्रकाशक ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, डॉ. सत्येंद्र, ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

ब्रजविहार, श्री नारायण स्वामी, प्रकाशक, श्री कृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं. 1950 ई.

ब्रज विभव, सं. गोपालप्रसाद व्यास, साहित्य सम्मेलन, रामकृष्ण मार्ग, दिल्ली

ब्रज का इतिहास भाग 1,2 प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी, प्रथम संस्करण

ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, श्री प्रभुदयाल मीतल, दिल्ली 1966

ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास, श्री प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं.

ब्रज भाषा साहित्य का ऋतु सौंदर्य, संकलनकर्ता श्री प्रभुदयाल मीतल

भक्ति का विकास, डॉ. मुंशीराम शर्मा, चौखम्भा सीरीज, प्रथम संस्करण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय साधना और सूर साहित्य, डॉ. मुंशीराम, प्रथम संस्करण, सं. 2010, आचार्य शुक्ल, कानपुर

भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, डॉ. आबिद हुसैन (अनु. महेंद्र चतुर्वेदी, संस्करण सं. 2014)

भारत का सांस्कृतिक इतिहास, हरिदत्त वेदालंकार, द्वितीय संस्करण

भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, भाग 2, द्वितीय संस्करण

भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएं, पं. परशुराम चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, वि. स. 2014

भारतीय संस्कृति, डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, संस्करण 1952 ई.

भारतीय संस्कृति का विकास, वैदिक धारा, डॉ. मंगलदेव शास्त्री, संस्करण 1956 ई.

भारतीय संस्कृति का उत्थान, डॉ. रामजी उपाध्याय, प्रथम संस्करण

भारतीय संस्कृति को गो. तुलसीदास का योगदान, डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, संस्करण 1953 ई.

भारतीय संस्कृति, डॉ. देवराज, प्रथम संस्करण 1960, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य, डॉ. बैजनाथपुरी, संस्करण 1958 ई.

भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, प्रथम संस्करण

भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, डॉ. गुलाबराय, प्रथम संस्करण

भारतीय समाज विन्यास, डॉ. राधाकमल मुखर्जी, सं. 1947 ई.

भारतीय समाज और संस्कृति, शुभरत्न त्रिपाठी

भारतीय मूर्तिकला, श्री रायकृष्णदास, प्रथम संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

भक्ति काव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप, डॉ. जयनाथ नलिन, प्रथम संस्करण

भारत की चित्रकला, श्री राय कृष्णदास, प्रकाशक भारतीय भंडार प्रयाग, सं० 2007

भारतीय दर्शन, डॉ. बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर, बनारस

भक्ति का इतिहास, डॉ. नित्यानंद शर्मा, प्रथन संस्करण

मध्यकालीन धर्म साधना, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952 ई.

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डॉ. गौरीशंकर, हीराचंद ओझा, द्वितीय संस्करण

मुगल भारत, श्री निवाचारी, द्वितीय संस्करण 1950 ई.

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, डॉ. मदनगोपाल गुप्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1968

मध्यकालीन संत साहित्य, डॉ. रामखेलावन पांडेय, वाराणसी, 1965 ई.

मध्यकालीन भारत, दूसरा खंड, श्री परमात्माशरण, संस्करण 1935 ई.

मथुरा परिचय, श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, प्रथम संस्करण, मथुरा

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ. सत्येंद्र, साहित्य मंडल

मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, डॉ. हरगुलाल, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मध्युगीन हिन्दी कृष्ण काव्य में रूप-सौंदर्य, डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल, प्रथम संस्करण
मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति परंपरा और लोकसंस्कृति, डॉ. रामेश्वर दयाल, प्रथम संस्करण
मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, डॉ. दिनेशचंद्र भारद्वाज, प्रथम संस्करण
मानव और संस्कृति, डॉ. श्यामाचरण दुबे, प्रथम संस्करण
मानव समाज, डॉ. राहुल सांकृत्यायन, प्रथम संस्करण
मूर्तिकला का विकास, श्री एस. एम. असगर अली कादरी, संस्करण 1956 ई.
महाकवि सूरदास, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, प्रथम संस्करण
रामचंद्रिका, केशवदास, सं. लाला भगवानदीन, प्रथम संस्करण
रामायणकालीन संस्कृति, डॉ. शांतिकुमार नानू रामव्यास, प्रथम संस्करण
रास और रासान्वयी काव्य, डॉ. दशरथ शर्मा तथा डॉ. दशरथ ओझा, प्रथम संस्करण
राधावल्लभ संप्रदाय, डॉ. विजयेंद्र स्नातक, दिल्ली
लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य, श्री यज्ञदत्त शर्मा, प्रथम संस्करण
लोकजीवन और साहित्य, डॉ. रामविलास शर्मा, संवत 2012 (1950)
लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1956
लोकसाहित्य, डॉ. इंद्रदेव सिंह, प्रथम संस्करण
लोकधर्मी नाट्य परंपरा, डॉ. श्याम परमार, प्रथम संस्करण
लौकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ. विद्या चौहान, प्रथम संस्करण
लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, प्रथम संस्करण
लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, डॉ. कुलदीप, प्रगति प्रकाशन, प्रथम संस्करण
सांस्कृतिक भारत, डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, प्रथम संस्करण
साहित्य साधना और समाज, डॉ. भगीरथ मिश्र, प्रथम संस्करण
संस्कृति के चार अध्याय, डॉ. रामधारी सिंह दिनकर, द्वितीय संस्करण
सूरदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चतुर्थ संस्करण
सूरसागर, सं. नंददुलारे वाजपेयी, ना. प्रा. सभा, प्रथम संस्करण
सूरसागर, प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं. 1964 ई.
सूरदास, डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, प्रकाशक, हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग 1950 ई.
सूर निर्णय, श्री द्वारकादास पारीख तथा प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, द्वितीय सं.
सूर साहित्य, हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रंथरत्नाकर लिमिटेड, हीराबाग, गिरिगांव, बंबई।
सूर की काव्य कला, डॉ. मनमोहन गौतम, प्रथम संस्करण
सूर और उनका साहित्य, डॉ. हरवंश लाल शर्मा, प्रथम संस्करण, अलीगढ़
सूर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. प्रेमनारायण टंडन, प्रथम संस्करण
सूर की भाषा, डॉ. प्रेम नारायण टंडन, लखनऊ 1956
सूरदास जीवन और काव्य का अध्ययन, डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, प्रयाग 1959

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूर सौरभ, डॉ. मुंशीराम शर्मा

सूरदास, डॉ. पीताम्बर बड़थ्वाल

सूर साहित्य को सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ. सावित्री शुक्ल, प्रथम संस्करण

संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ. देवराज

सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, डॉ. रत्नचंद शर्मा, प्रकाशक, जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर

सोलहवीं शती के हिन्दी और बंगाली के वैष्णव कवि, डॉ. रत्नकुमारी, प्रथम संस्करण

सूर साहित्य में लोकसंस्कृति, डॉ. आद्याप्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रथम संस्करण 1967

हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. वासुदेव अग्रवाल, पटना 1956

हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रथम संस्करण, हिंदी ग्रंथ, गिरगांव, बंबई 1940 ई.

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा, परिवर्द्धित और संशोधित द्वितीय संस्करण

हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, ना. प्र. सभा, काशी

हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, संपादक डॉ. राजबली पांडेय

हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, श्री विशम्भर उपाध्याय, संस्करण सं. 2010

हिन्दू संस्कृति अंक कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर

हमारा सांस्कृतिक साहित्य, प्रो. जगन्नाथ राम शर्मा, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, 2 सं. 2010

हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, डॉ. रामनरेश शर्मा, प्रथम संस्करण

हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा

हिन्दी भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव, डॉ. शशि अग्रवाल

Anmcient Indian Culture, Prof. A.K. Chakaravarti

Human Community, Mr. B. Brownwell

Indian Culture, Sri. Hirendranth Datta

Sociaty & Its Changes Stucture, Prof. Mac. Iver

Sociology, Ginsberg

The Story of Civilization, Will Durant

Indian Philosophy, Dr. Radhakrishnan, Indian Edition, 1951

Social Life During the Mughal Age, P. L. Chopra, Agra 1963

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संकेत सूची

अ. और व० सं०	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय
अ. प.	अष्टछाप परिचय
अ. का. सां. मूल्यां.	अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन
कुंभन	कुंभनदास
कृष्ण	कृष्णदास
छीत.	छीत स्वामी
गोवि.	गोविन्द स्वामी
नंद.	नंददास
नंद. स्याम.	नंददास स्याम सगाई
नंद० रुक्मिणी	नंददास रुक्मिणी मंगल
नंद० मान०	नंददास मान मंजरी
नंद० रूप	नंददास रूप मंजरी
नंद० अनेका०	नंददास अनेकार्थ मंजरी
परमा०	

परमानंददास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पादटिप्पणियां

अष्टछाप तथा अष्टछापी काव्य

1 क. श्रीमद्भागवत् 2.10.4
1 ख. कृष्णाश्रय 1.2..4
2. चौरासी वैष्णवों की वार्ता में सूरदास की वार्ता प्रसग 1
3. कांकरोली का इतिहास पृ. २८, २९ वल्लभाचार्य कृत 'निबंध' के प्रथम प्रकरण की पुष्पिका।
4. चौरासी वैष्णवों की वार्ता में माधव भट्ट की वार्त्ता, प्रसंग 8 का भाव
5. श्री गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ. 27
6. अष्टसखान की वार्ता, पृ. 62
7. अष्टछाप परिचय, पृ. 67
8. कुभन 213
9. कुंभन 43
10. कुंभन 87
11. हिंदी साहित्य, पृ. 145, डॉ. ह. प्र. द्विवेदी
12. सूर संदर्भ, पृ. 34, नंद दुलारे वाजपेयी
13. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ. 202
14. सूर निर्णय, पृ. 76
15. अष्टछाप काकरौली, पृ. 10
16. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ. 298, सूर निर्णय, पृ. 105
17. सू.सा. 717
18. सू.सा. 763
19. सू.सा. 764
20. सू.सा. 765
21. सू.सा. 2281
22. सू.सा. 10.4
23. सू.सा. 10.3947
24. सू.सा. 10.899
25. सू.सा. 3775
26. अष्टछाप कांकरौली, पृ. 331
27. कृष्ण. 10.96
28. कृष्ण. 78
29. कृष्ण. 35
30. कृष्ण. 751
31. कृष्ण. 302
32. कृष्ण. 1040
33. कृष्ण. 1054
34. परमा. 48
35. परमा. 49
36. परमा. 788
37. परमा. 230
38. परमा. 446
39. गोवि. पद 234
40. गोवि. 46
41. गोवि. 407
42. गोवि. 360
43. गोवि. 407
44. गोवि. 181
45. गोवि. 204
46. गोवि. 463
47. गोवि. 343
48. दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता, पृ. 19
49. छीत. 63
50. छीत. 81
51. छीत. 102
52. छीत. 86
53. छीत. 5
54. छीत. 80, 118, 1.19, 1.39, 31
55. छीत. 34
56. छीत. 77
57. छीत. 106
58. अष्टछाप परिचय द्वितीय संस्करण, पृ. 278, 279
59. अष्टछाप परिचय द्वितीय संस्करण, पृ. 278, 279
60. अष्टछाप परिचय, पृ. 222
61. चतु.वि.वि.कॉ. 38

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

62. चतु. 122
63. चतुर्भुजदास 192 (अ.प., पृ. 286)
64. नंद. पदा. 5
65. नंद.ग्रंथा. 54 (सं. ब्रजरल दास)
66. भ्रमरगीत 60
67. दशक स्क., छठा अध्याय
68. रू.मं. 119, 391
69. चतु. श्लोकी षोडश ग्रंथ, श्लोक 1
70. श्रीमद्भागवत 10.26.15
71. नारदभक्तिसूत्र 65, (गीता प्रेस)
72. गीता 8.8
73. "श्री कृष्णः शरणंभम। सहस्त्र परिवत्सरमित काल जात कृष्ण वियोग जनितताप क्लेशानंद तिरोभावोहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तः करणानि तद्धर्माश्च दारागार पुत्राविते्तहापराणि आत्मना सह समर्पयामि। दासोऽहं कृष्ण तवास्मि।"
74. तत्वदीप निबंध, शास्त्रार्थप्रकरण, ज्ञानसागर बंबई, श्लोक 105
75. सू.सा.वें.प्रे., पृ. 69 नवमस्कंध
76. सू.सा. दशमस्कंध वें.प्रे., पृ. 10 595
77. सू.सा. 1178
78. सू.सा.वें.प्रे., पृ. 129, प्रथम स्कंध
79. सू.सा.वें.प्रे., पृ. 35, द्वितीय स्कंध
80. परमा. 900
81. कृष्ण. 1079
82. नंद रास, पृ. 182
83. नं.मान., पृ. 182
84. भक्ति रसामृतसिंधु 2.29
85. सू.सा. 2.6
86. कुंभन. 229
87. परमा. 866
88. कृष्ण. 1089
89. गो. 554
90. छीतस्वामी हस्त. 62
91. सू.सा. 6.1
92. परमा. 849
93. कृष्ण. 1081, 1085
94. कुंभन 214
95. गोवि. 3449
96. छीत. 132
97. सू.सा. 1.155
98. परमा. 574
99. नंद पदा. 341
100. सू.सा. वें. प्रे. 19
101. परमा. 749
102. कृष्ण. 1087
103. नंद.परि 197
104. छीत. 43
105. षोडश ग्रंथ, श्लोक 2, पृ. 72
106. सू.सा. 2.28
107. परमा. 590
108. नंद.दशम. अध्याय 28
109. छीत. 133
110. छीत. 134
111. परमा. 272
112. सू.सा. 1.1
113. नंद. रस, पृ. 39, भान. पृ. 61, अनेका. पृ. 98, रूप. पृ. 1, दशम. पृ. 183, रास. पृ. 155
114. कृष्ण. 1088
115. कुंभन. 1
116. परमा. 1
117. छीत.हस्त. 52
118. अंतःकरण प्रबोध षोडशग्रंथ, पृ. 56-57
119. कृष्णाश्रय—षोडश ग्रंथ, पृ. 68-69
120. सू.सा. 1.149
121. परमा. 832
122. सू.सा.वे.प्रे. प्रथम सं. 13
123. परमा. 873
124. परमा. 872
125. कृष्ण. 1099
126. भागवत् 10.14.32
127. सू.सा. 10.245, 535, 536, 537, 539
128. परमा. 668, 645, 650
129. सू.सा. 467, 468
130. चतु. 165
131. छीत. 77
132. गोवि. 288
133. सू.सा. 10.75, तथा 74, 76, 91, 46
134. परमा. 68 तथा 42, 71, 92
135. चतु. 145
136. सू.सा. 3166

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

137. भागवत् सुबोधिनी टीका, 1, 2
138. भागवत् 10.33.40
139. कृष्ण. 1085
140. परमा. 470
141. सू.सा. 1492, 1408, 1411, 1804
142. परमा. 132
143. नंद.पद., पृ. 341
144. कृष्ण 153
145. छीत. 106
146. कुंभन. 227 तथा 214
147. चतु. 172
148. गोवि. 299
149. भक्तिवर्धिनी षोडश ग्रंथ, श्लोक 2, 34
150. संन्यास निर्णय षोडश ग्रंथ, श्लोक 7

ब्रज लोक-संस्कृति का विकासात्मक अध्ययन

1. हिंदी साहित्य कोश 801
2. श्री ब्रह्मानंद सरस्वती के हिंदू संस्कृति लेख से उद्धृत, कल्याण सौर माघ 2006
3. भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, पृ. 1 पूर्वाभ्यास (डॉ. प्रसन्न कुमार आचार्य)
4. A.L. Kroeber & Clyde Klu Khohn, Culture, Page 33
5. डॉ. प्र.कु.आ. पूर्वाभ्यास, पृ. 1, (भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता)
6. आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष, पृ. 55
7. भारतीय संस्कृति का विकास वैदिक धारा, पृ. 3
8. भारतीय संस्कृति का विकास वैदिक धारा, पृ. 3
9. बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक, पृ. 2
10. भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ. 369
11. सूर और उनका साहित्य (परिशिष्ट), पृ. 13
12. अशोक के फूल—ह, पृ. 190, पृ. 75-76
13. हि.सा. का वृ.इति, भाग 16, पृ. 1
14. हि.सा. का वृ.इति, सं. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 4
15. पृथिवी पुत्र—डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. 85
16. हि.सा. का वृ.इति. षोडश भाग प्रस्तावना, पृ. 1
17. जनपद वर्ष 1, अंक पृ. 65 (सूर सा. में लोकसंस्कृति से उद्धृत)
18. हि.सा. का व.इति., भाग 16, पृ. 4
19. हि.सा. का वृ.इति., षोडश भाग, पृ. 12
20. हि.सा. का वृ.इति., षोडश भाग, पृ. 4
21. ब्रज लोक साहित्य, डॉ. सत्येंद्र द्वारा उद्धृत, पृ. 4
22. लोक संस्कृति विशेषांक (सम्मेलन पत्रिका)—हि.सा. सम्मेलन प्रयाग, पृ. 8, 9
23. मध्ययुगीन हिंदी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ. 9-10
24. 'वेदों में ब्रज' लेख से उद्धृत—डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी
25. कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचाल्याः शूरसेनका एष ब्रह्मर्षि देशों वै ब्रह्मावर्त्ता दिनः वरः (मनु. 2/16)
26. एरियन नामक यूनानी लेखक की 'इंडिका' में जमुना नदी का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि वह सौर सेनोई (शूरसेन) प्रदेश में बहती है जिसमें दो बड़े नगर (1) मेथोरा (Methora) और (2) क्लीसाबरा (Klesobara) हैं—ब्र.भा. 5/1, पृ. 17
27. ब्रज विभव में संकलित ब्रज के नामकरण लेख से उद्धृत, पृ. 44
28. हरिवंश पुराण 1/3ण् 6ण् 18, 19, 30 तथा 22/34
29. श्रीमद्भागवत् 10.1.8
30. श्रीमद्भागवत् 10.1.62.64
31. श्रीमद्भागवत् 10.1.62.64

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

32. श्रीमद्भागवत् 10.2.7
33. ब्रज का नामकरण, पृ. 46ग (ब्रजविभव में संकलित)
34. ब्रजभाषा का उद्‌गम और विकास—डॉ. अंबाप्रसाद सुमन ब्रजविभव, पृ. 241
35. कांकरोली का इतिहास, पृ. 49
36. नारद पुराण उत्तरभाग, अध्याय 79
37. सारा. 1088-1090
38. ग्राउज : मथुरा मेमॉयर, पृ. 80-81
39. सू.सा. 3472
40. कुं. 65, चतु. 312, कृ. 1084, परमा. 546 आदि ।
41. परमा. 288, 298, 262
42. नंद.की., भाग 1, पृ. 333
43. नंद. दशम्, पृ. 284
44. परमा. 298
45. परमा. 298 काँक
46. परमा. 174
47. परमा. 286, कुं. 56 आदि
48. कुंभन. 56
49. कुंभन. 10
50. परमा. 307
51. परमा. 298
52. चतु. 355
53. छीत. 192, 195, गोवि. 548, परमा. 579, 577
54. चतु. 43
55. हरिवंश पुराण, विष्णु पर्व, अ. 7
56. हरिवंश पुराण, विष्णु पर्व, अ. 9

अष्टछाप काव्य की लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति—सामाजिक परिप्रेक्ष्य

1. ऋग्वेद 10.90.92
2. सू.सा. 1.11
3. सू. सा. 1.15
4. सू.सा. 1.157
5. सू.सा. 1.440
6. नंद.दशम, पृ. 217
7. परमा. काँक 74
8. परमा. काँक 74
9. सू.सा. 10.248
10. सू.सा. 10.58
11. सू.सा. 10.57
12. सू.सा. 1.405
13. सू.सा. 3643
14. परमा. काँक 600
15. सू.सा. 2142
16. सू.सा. 195
17. सू.सा. 3152
18. सू.सा. 233
19. सू.सा. 2183
20. सू.सा. 1225
21. सू.सा. 4231
22. सू.सा. 4094
23. सू.सा. 3583
24. सू.सा. 242
25. सू.सा. 9, 31
26. सू.सा. 7.2
27. सू.सा. 534
28. सू.सा. 4230
29. सू.सा. 34.11
30. सू.सा. 1.261
31. सू.सा. 1.142
32. सू.सा. 1185
33. सू.सा. 3300
34. सू.सा. 2845
35. सू.सा. 9.3
36. सू.सा. 9.149
37. सू.सा. 3529
38. सू.सा. 3725
39. सू.सा. 3191
40. सू.सा. 2.32
41. सू.सा. 3296
42. नंद दशम, पृ. 229
43. सू.सा. 10.86
44. चतु. 5

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

45. परमा. 53
46. परमा 58
47. सू.सा. 9.75
48. सू.सा. 4044
49. सू.सा. 3609
50. सू.सा. 10.41
51. सू.सा. 2485
52. सू.सा. 3046
53. सू.सा. 3042
54. सू.सा. 10.41-47
55. सू.सा. 54
56. परमा. 744 तथा 838
57. सू.सा. 1.184
58. सू.सा. 1.91
59. सू.सा. 10.40
60. सू.सा. 10.193
61. सू.सा. 3051
62. सारा. 501
63. सू.सा. 10.40
64. कृष्ण. 950
65. सू.सा. 10.18
66. सू.सा. 3175
67. सू.सा. 1.23
68. सू.सा. 4183
69. सू.सा. 505
70. सू.सा. 3303
71. सू.सा. 743-759
72. नंद श्याम., पृ. 120
73. सू.सा. 3639, 1.42, 198
74. सू.सा. 1.293
75. सू.सा. 1.34
76. सू.सा. 2914
77. परमा. 890
78. सू.सा. 10,28, परमा. 5
79. सू.सा. 10, 37
80. कृष्ण. 854
81. सू.सा. 10, 35
82. कृष्ण. 855
83. नंद परि 10
84. कृष्ण. 856
85. सू.सा. 10.35
86. सू.सा. 10.35
87. सू.सा. 1.217
88. सू.सा. 1.186 तथा 187, 2290, 3397
89. सू.सा. 1581
90. सू.सा. 1583
91. सू.सा. 1938
92. परमा. 558, 909
93. सू.सा. 1.261
94. परमा. 1
95. परमा. 331
96. कृष्ण. 854
97. छीत. 6
98. गोवि. 82
99. कृष्ण. 854
100. नंद दशम, पृ. 240
101. परमा. 93, कृ. 176
102. चतु. 26, परमा. 458, कुंभन 237, छीत 67, गोवि. 292, कृष्ण 911
103. परमा. 53, नंद रूप, पृ. 21
104. परमा. 53, सू.सा. 9.94
105. चतु. 361, सू.सा. 10.101, नंद स्याम पं. 67, गोवि. 81
106. सू.सा. 1.275, नंद दशम, पृ. 240, पं. 17
107. परमा. 926, सू.सा. 3650, कुंभन 19
108. गोवि. 292, नंद रुक्मिनी., पृ. 146
109. सू.सा. 3124
110. चतु. 157. सू.सा. 10.276, कुंभन 242
111. कृष्ण. 854
112. सू.सा. 3946
113. कृ. 895, परमा. 926
114. सारा. 740
115. नंद दशम, पृ. 205. सू.सा. 2566
116. सू.सा. 1.336, नंद [illegible] 1619.54 सू.सा.
117. गोवि. 220, छीत. 56, चतु. 26, नंद दशम, पृ. 244, सू.सा. 10.217
118. चतु. 245, नंद.दशम, पृ. 219. सू.सा. 9.52
119. परमा 900, नंद.स्याम पृ. 119, छीत. 57
120. परमा. 293

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

121. कृ. 895
122. परमा. 483, कुंभन 90, गोवि. 80
123. नंद.दशम, पृ. 202, सू.सा. 9.173
124. सू.सा. 1.360
125. कुंभन 160, नंद रूप पृ. 11, चतु. 282, गोवि. 436
126. नंद.दशम, पृ. 215
127. नंद.दशम, पृ. 114
128. नंद.दशम, पृ. 221.5
129. नंद.दशम, पृ. 214
130. परमा. 34
131. कुभन 241, सू.सा. 1872, नंद रास पं. 136, चतु. 245
132. चतु. 202, नंद रस, पृ. 55, कुंभन 206, सू.सा. 9.44
133. कुंभन 194
134. कुंभन 225
135. छीत स्वामी 112, गोवि. 343, नंद रस, पृ. 56, 14, 15, 16, सू.सा. 1618, 973, 4230
136. सू.सा. 734 734, परमा. 701
137. सू.सा. 9.124
138. सू.सा. 9.119
139. नंद.दशम, पृ. 243, सू.सा. 1.4
140. सू.सा. 3373
141. सू.सा. 9.44
142. सू.सा. 1.50, कुंभन 60, नंद.दशम पृ. 221, गोवि. 10
143. सू.सा. 1618
144. सू.सा. 9.73
145. सू.सा. 4230
146. सू.सा. 5.69
147. परमा. 247, सू.सा. 9.44
148. सू.सा. 9.152
149. सू.सा. 9.44
150. गोवि. 13, चतु. 157, सू.सा. 1921, 1916
151. गोवि. 13, नंद.स्याम, पृ. 117, कुंभन 227, परमा. 4, सा. 10.32
152. गोवि. 131. सू.सा. 1618
153. परमा. 708. छीत. 61
154. [illegible], पृ. 224
155. कुंभन 10, गोवि. 13, नंद.दशम 227, परमा. 483, सू.सा. 9.46
156. परमा. 483
157. परमा. 87
158. चतु. 22, कुंभ. 10, परमा. 272, कृ. 210
159. गोवि. 227, परमा. 215, सू.सा. 1.50
160. चतु. 25, कृ. 891
161. सू.सा. 10.117
162. परमा. 3, सू.सा. 9-151, नंद. दशम, पृ. 228, चतु. 5, गोवि. 280
163. कुंभन. 19, सू.सा. 1032, परमा. 134. नंद.दशम, पृ. 116, चतु. 5, गोवि. 9
164. गोवि. 122, कृ. 889
165. कुंभन. 10
166. चतु. 149, छीत. 15, गोवि. 83
167. कुंभन. 10
168. चतु. 33, गोवि. 124, सू.सा. 2835
169. परमा. 703, छीत. 61
170. कुंभन. 184
171. परमा. 455, कुंभन. 11
172. कुंभन. 9, कृष्ण 897
173. कुंभन. 10, परमा. 810, नंद.दशम, पृ. 213
174. सू.सा. 9.27
175. सू.सा. 1.151.
176. सू.सा. 4187
177. सू.सा. 9.44
178. सू.सा. 3639
179. सू.सा. 8.53
180. सू.सा. 10.986
181. सू.सा. 1.179
182. परमा. 516
183. परमा. 418
184. परमा. 884
185. सू.सा. 10.218
186. सू.सा. 10.205
187. परमा. 118, कुंभन. 208, चतु. 275. सू.सा. 401, 1285
188. नंद.परि, पृ. 443
189. चतु. 282, परमा. 700
190. सू.सा. 420
191. परमा. 120, चतु. 229

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

192. परमा. 600
193. परमा. 533
194. परमा. 598, कुंभन. 91, गोवि. 33
195. गोवि. 32, चतु. 32, कुंभन 22, परमा. 599, सू.सा. 2112
196. गोवि. 37
197. सू.सा. 1404
198. नंद.परा., पृ. 434
199. सू.सा. 1690
200. सू.सा. 1017
201. सू.सा. 10.806
202. परमा. 443
203. परमा. 434
204. परमा. 98
205. परमा. 727
206. सू.सा. 3440
207. सू.सा. 3449
208. सू.सा. 4168
209. सू.सा. 4160
210. सू.सा. 9.51
211. सू.सा. 3449
212. सू.सा. 3178
213. सू.सा. 3436
214. सू.सा. 3436
215. भारतीय संस्कृति-शिवदत्त ज्ञानी, पृ. 95, 96
216. हि.सा. का वृहद इतिहास, भाग 16, प्रस्तावना, पृ. 58
217. अष्टछाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पृ. 188
218. सू.सा. 10.4
219. सू.सा. 10.40
220. नंद.दशम, पृ. 305
221. सू.सा. 10.23
222. सू.सा. 10.23
223. कृष्ण. 842
224. परमा. 3
225. कुंभन. 2
226. चतु. 3
227. सू.सा. 10.15
228. सू.सा. 10.16
229. परमा. 11
230. सू.सा. 10.17
231. सारावली 391-92
232. सू.सा. 10.24
233. गोवि. 12
234. सू.सा. 10.24
235. सू.सा. 10.25
236. कृष्ण 854
237. गोवि. 20
238. सू.सा. 10.4
239. कृष्ण 854
240. सू.सा. 10.26
241. सू.सा. 10.32
242. परमा. 21
243. परमा. 27, 15, 19
244. नंद.की.सं., भाग 1453, पृ. 53
245. कृष्ण. 843, परमा. 6
246. सू.सा. 10.32
247. परमा. 16
248. ब्रज लोक साहित्य के अध्ययन के आधार पर।
249. सू.सा. 10.40
250. डॉ. सत्येंद्र, ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 146
251. कुंभन कीर्तन संग्रह, भाग 1, पृ. 189
252. कृष्ण 900
253. परमा.काँक. 58, 59, 60
254. परमा. 38
255. सू.सा. 10.40
256. सू.सा. 10.86
257. हर्ष सां. अ., पृ. 65
258. परमा. 56
259. नंद.दशम, पृ. 229
260. परमा. 24
261. नंद.दशम, पृ. 129
262. सू.सा.पू. (ख. 2015), पद 704 (10.85)
263. सू.सू.पू. (ख. 2015), पद 705 (10.86)
264. सू.सा. 10.88.
265. सू.सा. 10.88 पू.पद 706
266. सू.सा. 10.89 (पूर्व. 707)
267. परमा. 50
268. सू.सा. 10.94 कुंभन 9, परमा. 12
269. सू.सा. 10.134

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

270. सू.सा. 10.151
271. सू.सा. 10.180
272. परमा. 53
273. कृष्णा 887, 888
274. परमा. 93
275. सू.सा. 3093
276. सू.सा. 3094
277. सू.सा. 3094
278. सारा. 332
279. सारा. 332
280. हि.सा. का वृ. इतिहास (संपादक राजबली पांडेय), खंड 1, अ. 4, पृ. 132
281. मनुस्मृति 3.27.24
282. कुंभन 10
283. नंद रु. 4
284. नंद.स्याम, पृ. 115
285. कुंभन 10
286. कृष्ण. 891
287. परमा. 306
288 सू.सा. 4186
289. सू.सा. 1072
290. सू.सा. 4185
291. परमा. 314
292. सारा. 639
293. कृ. 892
294. कृ. 892
295. सू.सा. 4186
296. परमा. 310
297. सू.सा. 4186
298. नंद. रुक्मिणी, पृ. 151
299. सू.सा. 9.24, 4186
300. सू.सा. 1071
301. सू.सा. 4186
302. सारा. 234
303. सू.सा. 4186
304. नंद की सं. भाग 2, पृ. 108
305. परमा. 314
306. सू.सा. 9.25
307. सू.सा. 1073
308. सू.सा. 9.25
309. सू.सा. 4187
310. सू.सा. 4187
311. अभिज्ञान 4.8 (कालिदास)
312. कृष्ण 895
313. सू.सा. 10.4
314. नंद.दशम, पृ. 202
315. कृष्ण. 895
316. सू.सा. 8190, 4192, 4198
317. सू.सा. 4186
318. सू.सा. पूर्वार्द्ध (सं. 2015) पद 1322
319. सू.सा. पूर्वार्द्ध (सं. 2015) पद 1326
320. सू.सा. पूर्वार्द्ध (सं. 2015) पद 1690
321. सू.सा. पूर्वार्द्ध (सं. 2015) पद 1692
322. सू.सा. पूर्वार्द्ध (सं. 2015) पद 1692
323. सू.सा. पूर्वार्द्ध 1694-99 तक।
324. सू.सा. 9.50
325. सू.सा. 1.86
326. सू.सा. 1.85
327. सू.सा. 9.66
328. सू.सा. 9.67
329. सू.सा. 9.50
330. सू.सा. 9.50
331. सू.सा. 9.52
332. सारावली पद 562, 943
333. परमा. 770
334. कृष्ण. 1007
335. चतु. 103
336. छीत. 61
337. कृष्ण. 1005
338. चतु. 103
339. कृष्ण. 1002
340. कृष्ण. 1010
341. परमा. 792
342. चतु. 119
343. कुंभन. 108
344. कृष्ण. 1043
345. कृष्ण. 1053
346. गोवि. 196
347. कृष्ण. 1057
348. कृष्ण. 1056
349. कृष्ण. 1054
350. सू.सा. (सं. 20.12) 3450
351. सू.सा. 1148
352. परमा. 230

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

353. गोवि. 57
354. चतु. 24
355. कृष्ण. 605
356. नंद. 5.78
357. कृष्ण. 929
358. कृष्ण. 930
359. परमा. 301
360. परमा. 304
361. परमा. 925
362. परमा. 924
363. कृष्ण. 1001
364. कुंभन. 80
365. सू.सा. 2919
366. सू.सा. पूर्वार्द्ध (संस्क. 2012), पद 461
367. गोवि. 151, 152-153
368. परमा. 337 तथा 338 से 382 तक
369. सू.सा. 7.6
370. परमा. 347
371. सू.सा. 8, 113
372. परा. 204
373. गोवि. 8
374. सूर निर्णयस, पृ. 12 से उद्धृत
375. परमा. 742
376. परमा. 743
377. कुभन. 90
378. चतु. 111
379. कृष्णदास 1028
380. कृष्णदास 1032
381. गोवि. 171
382. सू.सा. 10.86, परमा. 36, कुंभन. 3, चतु. 5
383. गोवि. 1.1
384. परमा. 5, कृष्ण. 851
385. सूर निर्णय, पृ. 230
386. कुंभन. 7
387. छीत. 2
388. चतुर्भुज 15
389. गोवि. 21
390. परमा. 164
391. कृष्ण 896
392 परमा. 187
393 कृष्ण. 898
394. चतु. 14
395. गोवि. 19
396. सू.सा. 412
397. परमा. 122
398. परमा. 296
399. सू.सा. 412
400. सिद्धांत रहस्य 1-2 (ब्रज में धर्म संप्रदायों का इतिहास) मीतल
401. सूर निर्णय, पृ. 230
402. चतु. 133
403. छीत. 66
404. कुंभन. 124, गोवि. 226, परमा. 780
405. परमा. 785
406. परमा. 784 तथा कुंभन. 122
407. गोवि. 218
408. कृष्ण. 1072
409. सूर निर्णय, पृ. 228
410. परमा. 734
411. परमा. 733
412. कुंभन. 86
413. नंद. भाग 2 परि.पू.
414. चतु. 109
415. गोवि. 164
416. कृष्ण. 1025
417. सूर. निर्णय, पृ. 214-15
418. परमा. 336
419. परमा. 761
420. परमा. 420
421. नंद.परि. 47
422. कृष्ण. 1011
423. सू.सा. 2842
424. कृष्ण. 1049
425. कृष्ण. 1065
426. कृष्ण. 1066
427. परमा. 791
428. सूरदास कीर्तन संग्रह, भाग 1, पृ. 161
429. परमा. 391
430. परमा. 321
431. सूर निर्णय, पृ. 240 से उद्धृत
432. परमा. 795, 797
433. परमा. 798
434. परमा. 796

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

435. कृष्ण. 1075
436. कृष्ण. 1074
437. चतु. 134
438. कुंभन. 126
439. गोवि. 220, 221
440. नंद.परि 80
441. छीत. 67
442. गोवि. 220
443. परमा. 795, 796, नं., परि 80, गोवि. 221
444. सूर निर्णय, पृ. 240, परमा. 798, कुंभन. 126, नंद.परि 8, चतु. 134, गोवि. 21, कृष्ण. 1075
445. परमा. 795
446. गोवि. 220
447. कुंभन. 125
448. परमा. 798
449. गोवि. 220
450. परमा. 795, 797, कुंभन. 127, नंद. परि 80
451. परमा. 207
452. परमा. 208
453. गोवि. 50, 51
454. चतु. 28, 29
455. कुंभन. 24, 25
456. कृष्ण. 906
457. परमा. 207
458. परमा. 205-208
459. कृष्ण. 908
460. गोवि. 50, 51
461. गोवि. 50, 51
462. कुंभन. 25
463. चतु. 30
464. कुंभन. 25
465. कृष्ण. 910
466. कृष्ण. 912
467. परमा. 207
468. परमा. 207
469. गोवि. 51
470. कृष्ण. 912
471. कृष्ण. 911, कुंभन. 24, चतु. 29.28
472. परमा. 208
473. गोवि. 51
474. परमा. 251
475. कुंभन 48
476. परमा. 252
477. कृष्ण. 914
478. सू.सा. 809
479. परमा. 261
480. परमा. 262
481. परमा. 264
482. परमा. 253
483. सू.सा. 809
484. कुंभन. 51
485. कृष्ण. 915
486. सू.सा. 810
487. परमा. 263
488. परमा. 264
489. चतु. 42
490. गोवि. 66
491. नंद.पदा, पृ. 334
492. नंद.पदा, पृ. 334
493. परमा. 261
494. सू.सा. 812 तथा सू.सा. 816
495. सू.सा. 908
496. परमा. 255
497. परमा. 272
498. परमा. 282
499. परमा. 272
500. कुंभन. 54
501. चतु. 43
502. चतु. 44
503. कृष्ण. 918, 921, 922. 923, 924
504. कृष्ण, 919
505. गोवि. 68
506. कुंभन. 49
507. कुंभन. 50
508. कुंभन 55
509. परमा. 261
510. परमा. 262
511. परमा. 257
512. परमा. 254
513. परमा. 258
514. परमा. 259

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

515. परमा. 260
516. परमा. 272
517. चतु. 39
518. गोवि. 80
519. परमा. 276, कुंभन. 55
520. गोवि. पद संग्रह 118, सारावली पद सं. 1051-1085
521. सू. सा. 10.2843 से 2855 तक, कृष्ण. 940 से 974 तक
522. कृष्ण. 944
523. परमा. 331
524. कुंभन. 65
525. कुंभन. 64, 69
526. कुंभन. 104
527. चतु. 73
528. छीत. 59
529. सू.सा. 2843
530. गोवि. 105
531. कृष्ण. 940
532. सू.सा. 2892
533. सू.सा. 2860 तथा 2861, 2869
534. परमा. 919
535. नंद, पृ. 336
536. कृष्ण 978
537 कृष्ण. 945
538 नंद, पृ. 340
539 कृष्ण. 979
540. चतु. 78
541. चतु. 80
542. चतु. 78
543. सू.सा. 2854, 60, 70
544. कृष्ण. 981
545. सू.सा. 975
546. सू.सा. 2864
547. सू.सा. 2866
548. सू.सा. 2859
549. कृष्ण. 992
550. कृष्ण. 997
551 सू.सा. 2864
552 सू.सा. 2864
553 सू.सा. 2865
554. नंद, पृ. 338
555. नंद, पृ. 390
556. सू.सा. 2902
557. सू.सा. 2872, 2889
558. सू.सा. 2854
559. सू.सा. 2881
560. सू.सा. 2890
561. कृष्ण. 978
562. सू.सा. 2805
563. सू.सा. 2872
564. कृष्ण. 977
565. कृष्ण. 984
566. सू.सा. 2876
567. सू.सा. 2877
568. सू.सा. 2879
569. सू.सा. 2892
570. सू.सा. 2899, सू.सा. 289 में कृष्ण का 'जुवती स्वांग' तथा 'नख छत' आदि की छाप बनाने का उल्लेख किया गया है।
571. सू.सा. 2903, 2907 तब तुम अंबर हरे हमारे कीन्हौं कौन उपाय अब तौ दाउँ परयौ धरिपाए छाँडहिं तुमहिं नंगाइ।
572. कृष्ण. 987
573. कृष्ण. 993
574. परमा. 333
575. परमा. 334
576. चतु. 92
577. गोवि. 115
578. छीत स्वामी 59
579. सू.सा. 2901, 2916
580. नंद.परि, पृ. 39
581. सू.सा. 2892
582. चतु. 87
583. सू.सा. 2888
584. कुंभन. 74, 76
585. कुंभन. 74
586. कृष्ण. 978
587. नंद.पदा., पृ. 337
588. गोवि. 112
589. गोवि. 112
590. गोवि. 121
591. कृष्ण. 994
592. कृष्ण. 995

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

593. सू.सा. 2854, 2866
594. चतु. 80
595. कृष्ण. 985
596. गोवि. 112
597. सू.सा. 2856
598. सू.सा. 2856
599. सू.सा. 2860
600. परमा. 333
601. नंद.परि, पृ. 389
602. गोवि. 124
603. गोवि. 126
604. परमा. 333
606. नंद.पदा., पृ. 330
607. कुंभन. 79, चतु. 74, छीत. 78, गोवि. 110, 114
608. सू.सा. 2868
609. गोवि. 124, कुंभन. 76, चतु. 80
610. सू.सा. 2907, 2908
611. कृष्ण. 950 तथा कुंभन. 74, नंद. 84, गोवि. 124
612. सू.सा. 2882
613. सू.सा. 2882
614. कृष्ण. 969
615. सू.सा. 2886
616. सू.सा. 2862
617. सू.सा. 2865
618. सू.सा. 2914
619. सू.सा. 2914
620. परमा. 332
621. कुंभन. 78
622. चतु. 74
623. कृष्ण. 992
624. सू.सा. 2904
625. सू.सा. 2901
626. परमा. 333
627. चतु. 84
628. कुंभन 74
629. कुंभन. 75
630. चतु. 74
631. सू.सा. 2857
632. कृष्ण. 980
633. कृष्ण. 9821
634. परमा. 916
635. सू.सा. 2854
636. सू.सा. 2895
637. कृष्ण. 978
638. कृष्ण. 969
639. कुंभन. 74
640. चतु. 80
641. चतु. 77
642. चतु. 85, 91, 97
643. चतु. 92
644. सू.सा. 2854, 2860, 2868, 76, 81, 78, 2910, 2995, 2900 आदि
645. परमा. 335
646. कृष्ण. 992
647. नंद.परि 91
648. सू.सा. 2914
649. सू.सा. 2909
650. सू.सा. 2895
651. सू.सा. 333
652. कृष्ण. 976
653. कुंभन. 74
654. नंददास 337, 338
655. चतु. 74, 80
656. गोवि. 108, 118
657. छीत. 58
658. गोवि. 125, सू.सा. 2910, 2895, 2915 आदि
659. सू.सा. 2911
660. चतु. 92
661. गोवि. 121
662. सू.सा. 2906
663. सू.सा. 2911
664. सू.सा. 2906
665. सू.सा. 2908
666. सू.सा. 2908
667. गोवि. 129

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टछाप काव्य में प्रतिबिंबित लोकमानस

1. सू.सा. 8.10
2. सू.सा. 4230
3. सू.सा. 4301, 4619, 7788 आदि
4. कृष्ण. 924
5. सू.सा. 4160
6. रामचंद्र वर्मा—प्रामाणिक हिंदी कोश, पृ. 1322
7. सू.सा. 9.161
8. सू.सा. 9.167, 3796
9. सू.सा. 9.76
10. सू.सा. 3178
11. सू.सा. 9.76
12. सू.सा. 9.76
13. सू.सा. 10238
14. सू.सा. 168
15. सू.सा. 3175
16. परमा. 48, गोवि. 5, सू.सा. 10.639
17. सू.सा. 10238
18. सू.सा. 4230
19. सारा. 279
20. सू.सा.उत्त., पद 4713
21. सू.सा. 3479
22. सू.सा. 4160
23. सू.सा. (सं. 2048) 4713
24. साहित्य लहरी, पद 81
25. सू.सा. 4232
26. सू.सा. 4232
27. सू.सा. 587
28. सू.सा. 9.18
29. परमा. 340
30. परमा. 489
31. श्रीमद्भागवत 1.3.26
32. सू.सा. 2.36
33. सारावली 609
34. श्रीमद्भागवत 1.3.6025
35. सू.सा. 2.36
36. सू.सा. 2.28
37. कृष्ण. 919, 933
38. परमा. 904

39क. परमा. 7

39ख. परमा. 7

40क. कुंभनदास 20

40ख. परमा. 280

41. सू.सा. 10.981
42. सू.सा. 9.60
43. सू.सा. 1055
44. सू.सा. 9.24
45. चतु. 36
46. परमा. 916
47. सू.सा. 1044
48. सू.सा. 1066
49. "स एवहि जात्सृष्टा तथापि सगुणो न हि।गुणाभिमानिनो ये वै तदंशाः सगुणाः स्मृताः।" तत्वदीप. शास्त्रार्थ, श्लोक 81
50. सू.सा. 483
51. सू.सा. 488
52. सू.सा. 8.10
53. सू.सा. 975
54. परमा. 289
55. कृष्ण. 920
56. कुंभन. 56
57. चतु. 48
58. गोवि. 74 तथा 67
59. सू.सा. 9.76
60. सू.सा. 10.64
61. सू.सा. 3357
62. सू.सा. 9.75
63. सू.सा. 9.163
64. सू.सा. 10.6
65. सू.सा. 9.76
66. सू.सा. 10.4 तथा नंद.दशम., पृ. 202
67. सू.सा. 1.164, 487, परमा. 278, सू.सा. 435
68. सू.सा. 1.262
69. सू.सा. 1.264
70. सू.सा. 9.77
71. गोवि. 70

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

72. सू.सा. 9.71
73. सू.सा. 3090
74. सू.सा. 3090
75. सू.सा. 1.151
76. सू.सा. 1.61
77. सू.सा. 2975
78. परमा. 27
79. परमा. 239
80. परमा. 870
81. सू.सा. 1.68
82. सू.सा. 1.52
83. परमा. 840
84. परमा. 52
85. परमा. 53
86. परमा. 58
87. सू.सा. 10.88
88. सारा. 421
89. नंद.दशम., पृ. 229
90. सू.सा. 1.86
91. नंद.रूप., पृ. 21
92. नंद.रूप., पृ. 22
93. "माई मोरहि दीठि न लागै तातै मसि बिंदा दियो भूपर।" सू.सा. 10.92
94. सू.सा. 10.200
95. परमा. 49
96. परमा. 61
97. परमा. 78
98. सू.सा. 987
99. सू.सा. 10.752
100. नंद.रूप., पृ. 23
101. सू.सा. 10.91, 10.92, 94, 98, 116
102. परमा. 45
103. परमा. 618
104. सारा. 899
105. सू.सा. 442
106क. परमा. 230
106ख. परमा. 463
107. सू.सा. 10.78
108क. सू.सा. 10.92
108ख. परमा. 58
108ग. सू.सा. 10.258
108घ. सू.सा. 10.83
110. सारा. 425-426
111. सू.सा. 755
112. सू.सा. 10.135
113. परमा. 78
114. भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा), डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. 66
115. सू.सा. 10.158
116. परमा. 100
117. सू.सा. 755
118. सू.सा. 756
119. नंद.स्याम., पृ. 118
120. नंद.रूप., पृ. 22
121. रामायण कालीन संस्कृति, पृ. 37
122. सू.सा. 4277
123. सू.सा. 4277
124. सू.सा. 9.83
125. सू.सा. 4276
126क. परमा. 48
126ख. परमा. 598
126ग. परमा. 599
127. छीत. 56
128. नंद.रुक्मिणी., पृ. 19
129. सू.सा. 2946
130. सू.सा. 9.164
131. सू.सा. 2859
132. सू.सा. 3453
133. सू.सा. 3455
134. सू.सा. 1.286
135. नंद.दशम., पृ. 276
136. सू.सा. 524
137. सू.सा. 540
138. नंद.दशम., पृ. 220
139. सू.सा. 1.286
140क. सू.सा. 540
140ख. सू.सा. 541
140ग. सू.सा. 540
141. सू.सा. 9.83
142. सू.सा. 3090
143. सू.सा. 517
144. सू.सा. 519
145. सू.सा. 544
146. सू.सा. 2935, 36

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

147. सू.सा. 2934, 37
148. परमा. 478
149. सू.सा. 819
150. सू.सा. 3259
151. सू.सा. 3261
152. सू.सा. 3265
153. सू.सा. 412
154. सू.सा. 1571
155. परमा. 411
156. सू.सा. 3089
157. सू.सा. 2943
158. सू.सा. 3029
159क. सू.सा. 3029
159ख. सू.सा. 3029, 3031, 3032
159ग. सू.सा. 3029, 3031, 3032
160. हिन्दी साहित्य की भूमि, पृ. 225
161. सू.सा. 1.337
162. परमा. 675
163. गोवि. 47
164. सू.सा. 1.210
165. सू.सा. 1.338
166. सू.सा. 3535
167. सू.सा. 10.140
168. सू.सा. 10.140
169. सू.सा. 1-2
170. परमा. 865
171. नंद.दशम., पृ. 261
172. गोवि. 343
173. सू.सा. 1522
174. सू.सा. 2.21
175. सू.सा. 2.19
176. सू.सा. 1.317
177. परमा. 468
178. सू.सा. 6.5
179. परमा. 840
180. चतु. 57
181. छीत. 43
182. कृष्ण. 1110
183. परमा. 572
184. नंद.मान., पृ. 61
185. गोवि. 93
186. परमा. 860
187. छीत. 189
188. कृष्ण 1121
189. परमा. 865
190. सू.सा. 1.11
191. सू.सा. 2.3
192. सू.सा. 800
193. सू.सा. 679
194. सू.सा. 10.24
195. सू.सा. 290
196. सू.सा. 294
197. सू.सा. 4893
198. सू.सा. 1.340
199. सू.सा. 1.340
200. सू.सा. 2.6
201. सू.सा. 2.6
202. नंद.पंच. 238
203. कृष्ण. 1108
204. कृष्ण. 1105
205. सू.सा. 1.222
206. परमा. 580, (576-82)
207. परमा. 586
208. सू.सा. 2.3
209. सू.सा. 9.5
210. सू.सा. 10.985
211. सू.सा. 765
212. सू.सा. 985
213. परमा. 876
214. सू.सा. 798
215. सू.सा. 708
216. कतहुँ अर्घ्य देत सूरज को, सारा. 678
217. सू.सा. 110.80
218. सू.सा. 10.767
219. सू.सा. 4181, नंद.रूक्मि., पृ. 151
220. नंद.दशम., पृ. 298
221. सारा. 651
222. गोवि. 257
223. सू.सा. 10.40
224. सारा. 680
225. सू.सा. 10248
226. सू.सा. 10.249
227. सू.सा. 9.96
228. सू.सा. 10.260

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

229. सू.सा. 10.263
230. सू.सा. 811
231. सू.सा. 817
232. नंद.दशम., पृ. 306
233. परमा. 272
234. सू.सा. 893
235. सू.सा. 899
236. परमा. 279
237. सू.सा. 964
238. सू.सा. 1062
239. सू.सा. 1.124
240. परमा. 824
241. सू.सा. 242
242. सू.सा. 52
243. परमा. 909
244. हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 20
245. अभिनव भारती (नाट्य शास्त्र टीका)
246. हरिवंश टीक 2.20.36
247. कृष्ण. 645
248. परमा. 916
249. कृष्ण. 982, नंद.पदा. 126
250. कृष्ण. 992
251. परमा. 28
252. परमा. 28.
253. परमा. १० तथा 6
254. परमा. 11
255. हिन्दी सा. का इति., आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 165
256. मध्य कालीन धर्म साधना, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 94
257. सूर और उनका साहित्य (भूमिका), पृ. 8
258. भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ. 54
259. सू.सा. 10.40
260. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 112
261. निजी संग्रह
262. उत्तरप्रदेश के लोक गीत (सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश), पृ. 63
263. निजी संग्रह
264. सू.सा. 10.28
265. सू.सा. 10.31
266. नंददास ग्रंथा., पृ. 337
267. गोवि. 2.13, कुंभ. 1.9, परमा. 1-12, चतु. 1018
268. कृष्ण 838
269. सू.सा. 1.86
270. सू.सा. 418o7
271. परमा. 926
272. परमा. 335
273. उत्तर प्रदेश में प्रचलित फाग की प्रारंभिक पंक्तियाँ
274. सू.सा. 3532-33 (नं.प्र.स.सं. 2015)
275. कृष्ण. 962.
276. उत्तर प्रदेश के लोकगीत, पृ. 68
277. सू.सा. 34.70
278. कृष्ण. 963
279. कृष्ण. 997
280. कृष्ण. 996
281. कुंभन. 76
282. कुंभन. 74
283. छीत. 54
284. चतु. 41
285. सू.सा. 3455
286. परमा. 799
287. कृष्ण. 1041
288. कृष्ण 1054
289. सू.सा. 3485
290. सू.सा. 3521
291. कृष्ण. 1043
292. सू.सा. 10.66
293. ब्रजभाषा का व्याकरण, पृ. 11, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
294-301. सू.सा. 4357, 61, 2341, 4222, 519, 301, 8, 824
302-309. परमा. 918, 463, 597, 463, 427, 297, 553, 135
310-311. नंद. विरह 3152
312-313. नंद.रूप.मं. 331, 463
314-315. नंद.रुक्मि. 149
316-320. कृष्ण. 9, 24, 27, 73, 79, 363, 352, 351, 311, 303, 282, 281, 277
321. चतुभुर्ज 9, 24, 27, 73, 79, 363, 352, 351, 311, 303, 282, 281, 277
322. छीत. 54, 97, 107, 169, 113

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

323. गोवि. 4, 5, 25, 26
324-325. परमा. 870, 551
326-328. नंद.भ्रमर 18, 68, विरह मंजरी दोहा 54
329. परमा. 451
330. छीत. 57
331. छीत. 164

ब्रज लोक-संस्कृति का आर्थिक पक्ष

1. चतु. 43
2. सारा. 882
3. परमा.काँक. 1248
4. सारा. 828
5. सू.सा. 10.329, ना.प्र.स. 947
6. मुगलकालीन भारत, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ. 225
7. मोरलैंड, पृ. 277, विलसन 480
8. सू.सा. 1.64
9. सू.सा. 1.143
10. सू.सा. 1.142
11. सू.सा. 1519
12. सू.सा. 185
13. सू.सा. 1.107
14. सू.सा. 1.107
15. सू.सा. 1.117, घर बिधंसि, नल कर निरषि हल बारि बीज बिथरैं।"
16. सू.सा. 1.185
17. परमा.काँक. 967
18. सू.सा. 185
19. सू.सा. 142
20. सू.सा. 185
21. सू.सा. 185
22. सू.सा. 185
23. सू.सा. 1.64
24. सू.सा. 1.64
25. सू.सा. 1.64
26. सू.सा. 1.143
27. सू.सा. 1510
28. सू.सा. 859
29. सू.सा. 153
30. सू.सा. 1855
31. सू.सा.न.प्र. 4218
32. सू.सा. 3604
33. सू.सा. 1.63
34. परमा.काँक. 1033
35. सू.सा. 1015
36. सू.सा.ना. 2542
37. सू.सा.ना. 657
38. सू.सा.ना. 80
39. सू.सा.ना. 542
40. सू.सा.ना. 102, 166
41. सूरदास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 160
42. सू.सा.ना. 1225
43. सू.सा. 1499
44. कुंभन. 23
45. चतु. 20
46. गोवि. 26
47. सू.सा. 3663
48. परमा. 137, सं.गो. शुक्ल
49. परमा. 136, सं.गो. शुक्ल
50. सू.सा. 10.300
51. परमा. 117
52. सू.सा. 1063
53. चतु. 215
54. गोवि. 192
55. परमा. 260
56. सू.सा. 10.174
57. सू.सा. 10.24
58. परमा. 18
59. चतु. 5
60. गोवि. 12
61. कृष्ण. 895
62. सू.सा. 10.413
63. गोवि. 339
64. परमा. 666
65. परमा. 118

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

66. सू.सा. 436
67. परमा. 295
68. सू.सा.पू. 2146
69. परमा. 125
70. परमा. 126
71. सू.सा. 10.3
72. सू.सा.
73. सू.सा. 1.56
74. सू.सा. 1.51
75. परमा. 257
76. परमा. 262
77. सू.सा. 102
78. सू.सा. 1.33
79. सू.सा. 1.168
80. सू.सा. 1.152
81. सू.सा. 4186
82. परमा. 313
83. सू.सा. 4784
84. सू.सा. 5
85. सू.सा. 1.45
86. कृष्ण. 854
87. परमा. 500
88. सू.सा. 1.219
89. सू.सा. 3303
90. सू.सा. 3663
91. सू.सा. 3664
92. सू.सा. 3664
93. परमा. 264
94. परमा. 263
95. सू.सा. 3663
96. सूर 195
97. सू. 2093
98. सू.सा. 1.310
99. सू.सा. 3965
100. सू.सा. 1528
101. सू.सा. 1529
102. सू.सा. 1.310
103. सू.सा. 1528
104. सू.सा. 1528
105. सूर 141
106. सू.सा. 1575
107. गोवि. 29
108. गोवि. 25
109. गोवि. 29, 28, 34
110. गोवि. 25, 43
111. गोवि. 39
112. परमा. 175, 190
113. चतु. 26
114. सू.सा. 1508
115. सू.सा. 1524
116. गोवि. 36
117. कुंभन. 11
118. गोवि. 26
119. गोवि. 27
120. सू.सा. 310
121. सू.सा. 669
122. परमा. 673, 674
123. परमा. 672
124. परमा. 172, गोवि. 41
125. परमा. 185
126. सू.सा. 1464
127. परमा. 186
128. परमा. 674
129. गोवि. 41
130. सू.सा. 3664, 3517
131. सू.सा. 3664, 3517
132. सू.सा. 1.196
133. सू.सा. 1.196
134. सू.सा. 3890
135. सू.सा. 3431
136. सू.सा.पू. 1693

अष्टछाप काव्य में ब्रज लोक-संस्कृति का राजनीतिक पक्ष

1. रामायण—उत्तराकांड (70-5, 6, 8)
2. कृष्णाश्रय, श्लोक सं. 2,3.5
3. अ. परिचय, पृ. 17-18
4. मथुरा [illegible] राज्य, तृतीय संस्करण,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पृ. 80-81
5. सू. वर्षोत्सवर कीर्तन संग्रह
6. नंददास—रामचंद्र शुक्ल
7. चतुर्भुजदास, पद 74
8. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ. 8
9. परमा., पद 1039
10. नंददास रू.मं., पृ. 147
11. सू.सा., पद 589
12. परमानंद, पद 589
13. नंद.रूप., पृ. 4
14. गोविंद स्वामी, पद 12
15. परमा. 483
16. सू.सा. 3714
17. भारतीय सामंतवाद, प. 172-177
18. देवगिरि के राजा रामचंद्र को 'राय रायान' की उपाधि देना (खिलजी कालीन भारत, पृ. 91) (तारीखे फिरोजशाही, अनु. रिजवी)
19. परमा. 479
20. गोवि. 9
21. गोवि. 13
22. सू.सा. 145
23. सू.सा. 1.144
24. सू.सा. 623, 631
25. सू.सा. 3991
26. सू.सा. नवम स्कंध, पद 54
27. नंददास रूप., पृ. 3
28. परमा., पद 198
29. सू.सा. 3639
30. वृहत् हिंदी कोश, पृ. 422
31. सू.सा. 1.53
32. परमा. 854
33. कुंभन. 397
34. परमानंद 494
35. सू.सा. 1.87
36. सू. सा. 2928
37. सू. सा. 3636
38. नंददास स्याम, पृ. 121
39. सारा. 732
40. सारा. 49
41. कुंभनदास 377
42. ये कहा जानें राजसभा कौ. सा-2968
43. सू.सा. 2904
44. परमा. 875
45. कुंभनदास 3
46. परमा. 512
47. सारा. 302
48. कुंभन. 377
49. परमा. 872
50. परमा. 880
51. कुंभन. 23
52. सू.सा. 2566
53. सू.सा. 9.75, 9.160
54. सू.सा. 1.40
55. सू.सा. 2476, 1024
56. सू.सा. 2476, 1024
57. नंददास दशम, पृ. 121
58. सू.सा. 523
59. कुंभनदास 249
60. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 74
61. हिंदू सभ्यता, पृ. 144
62. सू.सा. 1.40
63. सू.सा. 1.141
64. सू.सा. 1.64
65. सू.सा. 1.235
66. परमानंद 880
67. सू.सा. 9.54
68. सू.सा. 1.64
69. सू.सा. 9.54
70. सू.सा. 2875
71. सू.सा. 1937
72. सू.सा. 3446
73. सू.सा. 1.386
74. 'इति दुर्गः पंचविधि पंचवर्गः उदाहृतः' वा.रा. 2.10
75. चहुँ दिसि लंक दुर्ग दानव दल कैसे पाऊँ जान। सू.सा. 9.75
76. सू.सा. 9.76
77. सू.सा. 9.117
78. सू.सा. 4262
79. सारा. 621, सू.सा. 9.155, सारा. 702, सू.सा. 1.24, सू.सा. 1.289
80. सारा. 782

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

81. सू.सा. 4221
82. सू.सा. 4221, 4223
83. सारा. 782
84. सू.सा. 1.23, सारा. 288, 597
85. सू.सा. 1.64
86. सू.सा. 1.144
87. सारा. 602
88. सारा. 605
89. भारतीय संस्कृति का इतिहास, चतुरसेन शास्त्री, पृ. 345
90. सू.सा. 597
91. सारा. 779
92. सारा. 601
93. सू.सा. 9.125
94. सू.सा. 3532
95. सू.सा. 3313
96. सू.सा. 141
97. आइने. (ब्लौक), पृ. 244
98. सू.सा. 4804
99. सू.सा. 10.60
100. सू.सा. 3304
101. कबर, पृ. 294 (राहुल सांकृत्यायन)
102. सू.सा. 9.158
103. सू.सा. 9.58
104. सारा. 599
105. सूसावें 786
106. सू.सा. 2914
107. सू.सा. 470, 384. 307, 467, 64
108. सू.सा. 3661
109. सू.सा. 3304
110. सू.सा. 4281, 4839
111. सू.सा. 3185
112. सू.सा. 2946
113. सू.सा. 3931
114. सू.सा. 4801
115. सू.सा. 2747
116. सू.सा. 3313
117. सू.सा. 519, 4839. 3922, 2747, 4221
118. सू.सा. 4801
119. सू.सा. 548
120. सू.सा. 4839, 4840, 4221
121. सू.सा. 9.96
122. सू.सा. 1.64
123. सू.सा. 9.26
124. सू.सा. 1.307
125. सू.सा. 1.307, 9.44
126. सू.सा. 9.19
127. सू.सा. 9.91
128. सू.सा. 9.91
129. सू.सा. 9.158
130. सू.सा. 1.203, 4837, 272, 273, 274
131. सू.सा. 9.104, 584
132. सू.सा. 9.141
133. सू.सा. 1.289
134. सू.सा. 9.96
135. सू.सा. 9.97
136. सू.सा. 4267
137. सू.सा. 9.117
138. सारा. 9.117
139. परमा. 1144
140. सू.सा. 9.159
141. सू.सा. 9.98
142. सू.सा.वें, पृ. 472
143. सू.सा. 2939
144. सू.सा. 4834, जीत्यौ जरासंध बंदि छोरी
145. सू.सा. 2967
146. चतु. कीर्तन, भा. 1, पृ. 210
147. नंददशम., पृ. 219
148. कुंभन. 19
149. परमा. 475
150. गोवि. 29
151. रघुवंश 1.18
152. सू.सा., पृ. 2146
153. सू.सा. 235
154. परमा. 880
155. सू.सा. 64

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अष्टकाव्य में लोकोन्मुखी ब्रज संस्कृति का कलात्मक पक्ष

1. नाट्य शास्त्र 1.113
2. ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 5
3. बाल्मीकि रामायण उत्तराकांड 70-5.6.8.
4. भागवत् 10.41-19 से 23 श्लोक
5. ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्म खंड, अध्याय 17, श्लोक 21-27
6. परमा. 494
7. सू.सा. 2902
8. गोवि. 145

9 क. परमा. 337

9 ख. गोवि. 145

10. सू.सा. 888
11. सू.सा. 10.4165
12. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पृ. 597
13. सू.सा.पू. 658
14. सू.सा.उ. 3882
15. सू.सा.उत्त. 1602
16. भारतीय मूर्तिकला, पृ. 113
17. काँकरोली का इतिहास, पृ. 34
18. सू.सा., पद 642
19. सू.सा. 1044
20. सू.सा. (वे) 1273
21. सू.सा. 3931
22. सू.सा. 3547
23. परमा. 497
24. चतु. 109
25. परमा. 789
26. सू.सा. 3931
27. कृष्ण 1004
28. काँकरोली का इतिहास, पृ. 110
29. सू.सा.परमा. 56
30. ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 430
31. सू. कीर्तन, भाग 1, पृ. 262
32. परमा. 750
33. कृष्णदास पद संग्रह 1002
34. कृष्ण. पद संग्रह 1039
35. परमा. 41
36. भारत की चित्रकला, अध्याय 5, पृ. 56
37. भारत की चित्रकला, अध्याय 6, पृ. 79
38. सू.सा. पद 1097
39. सू.सा. 10.202
40. नंद.ग्रथा., पद 172
41. चतु. पद 205
42. छीत. 64
43. गोवि. 45
44. कुंभन. 106
45. अष्टछाप (कुंभनदास की वार्ता), पृ. 211
46. ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 464
47. ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 469
48. सू.सा. 1.169
49. परमा. 249
50. प्राचीन भारतीय मनोरंजन, मन्मथराय, पृ. 209
51. सू.सा. 1353
52. गो. 423
53. सू.सा. 1531
54. कृष्णदास 30, हस्त.अ. छाप का सां.मू., पृ. 599
55. कृष्णदास २९४
56. कुंभनदास 35
57. चतु. 32
58. गोवि. 63
59. 1012 से 1018 सारावली
60. अष्टछाप परिचय (मीतल) पृ. 364 से उद्धृत षट्ऋतु की वार्ता, पृ. 92
61. कुंभन 34
62. गोवि. 211
63. चतु. 77
64. नंददास पदा. 332
65. सूर सौरभ, द्वितीय भाग, पृ. 7
66. छीत स्वामी (ब्रजविभव, पृ. 504) पद 388
67. गोविंद स्वामी (वही) पद 356
68. छीतस्वामी पद. 53
69. सू.सा. 10.1375
70. परमा. 577
71. चतु. 338

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

72. सू.सा. 10.2963
73. नंददास ग्रंथावली, पद 171
74. गोवि. पद 125
75. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ. 796 डॉ. दीनदयाल गुप्त
76. परमा. 20, चतु. 15
77. सारावली (प्रकाशक प्रभुदयाल मीतल), पृ. 85
78. कीर्तन संग्रह, भाग 2 (प्रकाशक लल्लूभाई देसाई), पृ. 140
79. ब्रज की लीलाओं का इतिहास (मीतल) में उल्लिखित षटऋतु वार्ता, पृ. 12
80. कृष्ण. पद संग्रह 950
81. कृष्ण. पद संग्रह 653
82. कीर्तन संग्रह, भाग 2 (देसाई), पृ. 27
83. सू.सा. 2916
84. परमा. 230
85. चतु. 71
86. कुंभन. 120
87. परमा. 334
88. चतु. 172
89क. कृष्ण. पद सं. 217
89ख. कृष्ण. पद सं. 235
90. कृष्ण. पद सं. 235
91. कृष्ण. 976
92. छीत. 54
93. चतु. 86
94. गोवि. 124
95. कुंभन. 74
96. कृष्णदास 981
97. नंद. पदा. 6 अष्टछाप परिचय, पृ. 364
98. परमा. 333
99. सारा. 333
100. सू.सा. 2917
101. छीतस्वामी 134
102. कृष्णदास 980
103. परमा. 304
104. गोवि. 116
105. सारा. 1073
106. चतु. 80
107. कृ. 607
108. सू.सा. 1.153
109. कृ. 607
110. नंददास पदावली, पृ. 333
111. छीत. 80
112. गोवि. 356
113. सू.सा.उत्त. 3450
114. कृष्ण. 624
115. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 33
116. कृष्ण. 646
117. सू.सा. 1180
118. कुंभन. 34
119. परमा. 229
120क. कृष्ण 605
120ख. चतु. 71
121. सू.सा.ना.प्र. 1291
122. पाइ सुख सुरति सिद्धि भरत काव्य विविध रिद्धि,
अभिनय दर्शित सुहाग हुलास रंगराख्यौ। कृष्ण. 621
123. सू.सा. 2130, 658
124. परमा. 337
125. कृष्ण 854
126. गोवि. 4
127क. सू.सा. 9.36
127ख. सू.सा. 644
127ग. सू.सा. 1405
127घ. सू.सा. 1405
127छ. सू.सा. 256, 2311, 659
127ज. कुं. 96, सारा. 741
128. सृंगी मुद्रा भस्म त्वचा मृग अरु अवधारन पौन सू.सा. 4308 सृंगी बसन काज बल्कल प्रभु कीन्हे—सू.सा. 363
129. सू.सा. 659
130. सू.सा. 4804
131. आधुनिक काल में इसके स्थान पर 'झबला' शब्द बच्चों के प्रमुख वस्त्र के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। ब्रज के ऊष्म प्रदेश के लिए बच्चों के लिए सुविधाजनक यह वस्त्र गले में साधारण धागे को डालकर बनाया जाता है। इस तरह गले पर चुन्नट आ जाती है। धागे के द्वारा सुविधानुसार इन्हें कसा या ढीला

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया जा सकता है। इसे पहनाने तथा उतारने में शिशु को किसी तरह का कष्ट नहीं होता है।

132. सू.सा. 10.8, परमा. 450
133. परमा. 614
134. गोवि. 187
135. कुंभन. 10
136. गो. 15
137. सू.सा. 1457
138. परमा. 633, 198
139. सू.सा. 10.39
140. सू.सा. 10.44
141. परमा. 296
142. कृष्ण. 268
143. परमा. 734
144. परमा. 620
145. परमा. 621
146. सू.सा. 1311
147. कृष्ण. 1056
148. सू.सा. 4312
149. सू.सा. 10.39
150. परमा. 208
151. चतु. 188
152. कृष्ण. 1021
153. कृष्ण. 33
154. कृष्ण. 1008
155. परमा. 735
156. परमा. 426
157. सू.सा. 10.132
158. चतु. 189, गोवि. 15
159. कृष्ण. 979
160. सू.सा. 1991
161. सू.सा. 463
162. सू.सा. 4445
163. सू.सा. 1057
164. छीत स्वामी 86
165. चतु. 365
166. सू.सा. 1049
167. सू.सा. 694
168. परमा. 666
169. चतु. 202
170. परमा. 919
171. कृष्ण. 978
172. सू.सा. 2837
173. सू.सा. 1332
174. सू.सा. 1540, 1475
175. परमा. 201
176. सू.सा. 1035
177. गोवि. 135
178. सू.सा. 1.44
179. कृष्ण. 979
180. सू.सा. 2450
181. सू.सा. 2450
182. परमा. 369
183. गोवि. 42
184. परमा. 376, कुंभन. 317
185. सू.सा. 327
186. सू.सा. 2901
187. परमा. 919
188. सू.सा. 1124
189. कृष्ण. 50
190. चतु. 25
191. परमा. 376
192. सू.सा. 784
193. सू.सा. 693
194. सू.सा. 1054
195. कृष्ण. 979
196. कृष्ण. 10
197. कृष्ण. 88
198. परमा. 595
199. चतु. 140
200. परमा. 663
201. कृष्ण. 625
202. कृष्ण. 573
203. परमा. 223
204. कृष्ण, 101
205. परमा. 223
206. कृष्ण. 590
207. सू.सा. 10.96
208. सू.सा. 704, कृष्ण. 128, 140
209. कृष्ण. 28, 668
210. परमा. 120
211. कृष्ण. 642
212. सू.सा. 10.180

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

213. कृष्ण. 118, 31
214. कृष्ण. 128
215. सू.सा. 10.148
216. परमा. 45
217. चतु. 10
218. परमा. 90
219. कृष्ण. 31
220. गोवि. 13
221. सू.सा. 10.89
222. चतु. 9, छीत. 76
223. कृष्ण. 118
224. कृष्ण. 118
225. छीत. 76, परमा. 77
226. कृष्ण. 972
227. सू.सा. 10.184
228. कृष्ण. 798
229. परमा. 44, 45
230. झूलन आई सकल ब्रज-सुदरि षट दस भूषन सारी, परमा. 791
231. कृष्ण. 804
232. परमा. 233
233. कृष्ण. 755
234. कृ. 103
235. कृष्ण. 54
236. कृष्ण. 79
237. चतु. 108
238. कृ. 54
239. कृ. 804
240. चतु. 366
241. नंददास, पृ. 378
242. कृ. 84
243. सू.सा. 1498
244. परमा. 919
245. कृष्ण. 45, चतु. 92
246. कृष्ण. 48
247. छीत. 86
248. सू.सा.परि. 8
249. चतु. 92
250. चतु. 80
251. चतु. 80
252. सू.सा. 1475
253. सू.सा. 3610
254. परमा. 721 (काँकरौली)
255. कृष्ण. 33
256. सू.सा. 4060
256. सू.सा. 4060
257. सू.सा. 1540
258. कृष्ण. 54
259. कृष्ण. 48
260. कृष्ण. 48
261. चतु. 206
262. परमा. 136
263. कुंभन. 10
264. सू.सा. 2901
265. गोवि. 135
266. गोवि. 204
267. परमा. 918
268. कृष्ण. 804
269. कृ. 1063
270. सू.सा. 1540
271. सू.सा. 541
272. कृ. 804
273. कृ. 804
274. परमा. 919
275. कुंभन. 50
276. परमा. 919
277. नंद. कीर्तन, भाग 2, पृ.
278. ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 538
279. प्रामाणिक हिंदी कोश (श्री रामचंद्र वर्मा), पृ. 1228
280. सू.सा. 10.185
281. परमा. 608
282. परमा. 608
283. सू.सा. 1072
284. सू.सा. 10.184
285. परमा. 608
286. परमा. 207
287. नंद. रुक्मिणी, पृ. 146
288. सू.सा. 2617, कृ. 87
289. सू.सा. 3815 तथा 2010
290. परमा. 918, नंद रूप. पृ. 4, सू.सा. 1703, कृष्ण. 44
291. परमा 124
292. परमा 330

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

293. सू.सा. 2628
294. परमा. 919
295. परमा.काँक. 114
296. कृष्ण. 54
297. कुंभन. 252
298. सू.सा. 2118
299. कुंभन. 305
300. सू.सा. 10.24
301. कुंभन. 92
302. परमा. 919
302. परमा. 919
303. चतु. 199
304. परमा. 919, सू.सा. 1180, 1054, कृ. 90
305. सू.सा. 1076
306. सू.सा. 1053
307. सू.सा. 26.11, चतु. 80, सा. 1702, 2118, 1703
308. कुंभन. 319, कृ. 38 (मृगमद तिलक)
309. सू.सा. 2842
310. परमा. 122, 489
311. परमा. 919
312. चतु. 80
313. परमा. 595
314. कृष्ण. 89
315. परमा. 919
316. कुंभन. 50
317. सू.सा. 1075
318. कृष्ण. 971
319. कृष्ण. 976
320. कृष्ण. 971
321. सू.सा. 3937
322. कुंभन. 92
323. सू.सा. 829, 30, ना.प्र., परमा. 606, 615
324. परमा. 613
325. परमा. 642
326. चतु. 170
327. परमा. 644
328. सू.सा. 1074
329. छीत. 77
330. कुंभन. 175
331. सू.सा. 396
332. परमा. 705
333. परमा. 707
334. चतु. 283
335. सू.सा. 848
336. सू.सा.ना., पृ. 801, 829, 830, कलेवा सू.सा. 845, 859, 1037 बियारी
337. सू.सा.ना., पृ. 1831
338. सू.सा. 1014
339. सू.सा. 1014
340. परमा. 272
341. सू.सा. 1213
342. सू.सा. 1213
343. सू.सा. 1213
344. परमा. 272
3451. भूँग मकौरा पनौ पतघरा, इक कोरे इक भिजे गुरवरा ।
पापर बरी मिथौरि फुलौरी कुर बरी, काचरी पिठोरी ।
बहुत मिरच है किए निमोना, बेसन के दस बीसेक दोना ।
सू.सा.ना. 1014
346. महाभारत शांतिपर्व राज.धम. 101-5
347. "असभ्य नाग बीहड़ वनों में, गिरि कंदराओं में तथा नदी तट के एकांत स्थानों में छोटी बस्तियाँ बसाकर रहते थे और वे प्रायः संस्कृत आर्यों से वैर-भाव रखते थे। इसके लिए उन्हें दंड भी भोगना पड़ता था। पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण ने कालिय नाग को दंडित किया था।"—ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 83
348. सारा. 519, 521, 523
349. सू.सा. 3072
350. परमा. 499, 511, 512
351. नंद व ग्रंथा., अध्याय 18, पृ. 240
352. अर्थशास्त्र 8.3.50
353. सू.सा. 1.64
354. सू.सा. 4216 तथा 1.97
355. सारावली 665
356. सू.सा. 4.92
357. नंदरूप, पृ. 4
358. सारा. 191
359. परमा. 95

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

360. सू.सा. 4
361. रघुवंश 8.26
362. निरयावलिका सूत्र, पृ. 170-172 (ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 55)
363. रघुवंश 16-13, 46
364. आदि पर्व 127-31-52
364. सू.सा. 422
365. सा.सा. 422
366. सू.सा. 1159
367. सू.सा. 1160
368. सू.सा. 1161
368. सू.सा. 1161
369. सू.सा. 1162
370. नंद.रास. पंचम 28, 29
371. नंद.रास. पंचम 31
372. नंद.रास. पंचम 31
373. परमा. 738, 739
374. गोवि. 166
375. परमा. 744
376. परमा. 745
377. अष्टछाप काँकरौली, पृ. 39
378. सूर विनय पत्रिका—गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. 78-79
379. सारावली 665
380. सरावली 765
381. सारा. 762
382. रामायण कालीन संस्कृति, पृ. 100, डॉ. शांतिकुमार नानूराम व्यास
383. इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि, पृ. 161-162
384. सू.सा. 1.246
385. सू.सा.वे.प्रे. 3425
386. सू.सा.वे.प्रे. 2671
387. सू.सा. 1.101
388. सू.सा. 1.190
389. परमा. 261
390. परमा. 633
391. सू.सा. 1.98
392. सू.सा. 1.293
393. सू.सा. 1.292
394. सू.सा. 4253
395. नंद.अने., पृ. 104
396. सू.सा.वे. 2377
397. साहित्य लहरी के पद, परमा. 912, सू.सा. के दृष्टि कूट पद
398. सू.सा. 10.198
399. परमा. 695
400. परमा. 696
401. परमा. 628
402. परमा. 94
403. सू.सा.वें. 1431, पृ. 332
404. सू.सा. 239
405. सू.सा. 240
406. सारा. 905
407. परमा. 129
408. सू.सा. 10.213
409. सू.सा. 10.213
410. सू.सा. 10.214
411. परमा. 129
412. भारतीय प्राचीन क्रीड़ाएँ—कल्याण, हिंदू संस्कृति अंक में प्रकाशित लेख, पृ. 723
413. सार 904-5
414. नंद.दशम., पृ. 247
415. परमा. 272
416. सा.सा. 532
417. सू.सा. 533
418. सू.सा. 535
419. सू.सा. 10.243
420. सू.सा. 10.244
421. सू.सा. 10.84
422. सू.सा. 3968
423. परमा. 41
424. नंद. भाग 2, परि 8
425. सू.सा. 10, 170
426. सू.सा. 413
427. सू.सा 3544
428. सू.सा. 669
429. सू.सा. 10, 198
430. परमा. 624
431. परमा. 625
432. परमा. 626
433. सू.सा. 3439
434. सू.सा. 9.18
435. सू.सा. 673
436. नंद.रूप., पृ. 5

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश
सारांश

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Digital Preservation Foundation ... MoE-2025

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रेणु भटनागर

स्वतंत्रता के साथ जन्मी व बढ़ा रेणु भटनागर ने 1968 में लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम. ए. (संस्कृत) की उपाधि प्राप्त की और अगले ही वर्ष फ्रेंच प्रोफिशिएंसी की परीक्षा विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण करने के बाद लगभग दो वर्षों तक, लखनऊ के सुप्रसिद्ध 'महिला विद्यालय' में संस्कृत प्रवक्ता के रूप में अध्यापन किया। तत्पश्चात दिल्ली आकर पुन: अध्ययन का सिलसिला शुरू किया और हिन्दी में एम . ए. तथा पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। 1977 में दिल्ली विश्वविद्यालय से संबद्ध श्यामलाल कॉलेज के हिन्दी विभाग में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हुईं।

उन्नीस वर्षों के अध्यापन के बीच डॉ. भटनागर निरंतर अध्ययन व लेखन से जुड़ी रहीं। उनकी प्रकाशित पुस्तक *केशव के काव्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव* मध्यकालीन काव्य के कठिन प्रेत को साधने का प्रयास है तो *आँख मिचौनी* संग्रह की प्रत्येक कहानी अपने परिवेश से जुड़े रहने की संवेदना का प्रमाण है। विभिन्न व्यस्तताओं के बीच 1995 में लखनऊ विश्वविद्यालय से डी. लिट् की उपाधि प्राप्त करना उनके अध्ययन-प्रेम का परिचायक है। लखनऊ विश्वविद्यालय के सर्वोत्तम हिन्दी शोधप्रबंध के रूप में "पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी मैमोरियल स्वर्णपदक" और संपूर्ण विश्वविद्यालय के सर्वोत्तम शोधप्रबंध के रूप मैं "बैनर्जी रिसर्च प्राइज़" से सम्मानित होना उनकी उपलब्धि है।

संप्रति डॉ. भटनागर श्यामलाल कॉलेज के हिन्दी विभाग में रीडर हैं, और अपनी प्रतिभा को सँवारने में जुटी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सारांश प्रकाशन

भारतीय एवं विश्व साहित्य का प्रगतिशील मंच

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant